स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

# उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

## MAEC-106
## सार्वजनिक अर्थशास्त्र


खण्ड 01 : लोक अर्थशास्त्र की अवधारणा
खण्ड 02 : सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक उपक्रम
खण्ड 03 : करारोपण
खण्ड 04 : भारतीय कर प्रणाली
खण्ड 05 : सार्वजनिक ऋण एवं घाटा

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

# MAEC-106
# सार्वजनिक अर्थशास्त्र

**खण्ड 01 लोक अर्थशास्त्र की अवधारणा**

इकाई 01 विभिन्न राजकोषीय प्रणालियाँ में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण
02 लोक अर्थशास्त्र के उद्देश्य व अंग
03 सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त
04 बाह्याताएँ
05 मिश्रित वस्तुएँ
06 लोक चयन

**खण्ड 02 सार्वजनिक व्यय एवं सर्वजनिक उपक्रम**

इकाई 01 सार्वजनिक व्यय
02 सार्वजनिक व्यय, मूल्यांकन एवं बजटीय रूप
03 सार्वजनिक उपक्रम : मिश्रित अर्थ व्यवस्था के विकास स्वरूप में भूमिका
04 चूनाव कसौटियाँ
05 भारत में सार्वजनिक उपक्रमों में कीमत नीति प्रबन्धित कीमतें एवं आधिक्य सृजन
06 सैद्धान्तिक पहलू और कल्याणकारी प्रभाव

**खण्ड 03 करारोपण**

इकाई 01 करारोपण के सिद्धान्त
02 करारोपण में न्याय
03 आवंटन कुशलता
04 करापात
05 कर विवर्तन
06 राजकोषीय आयात

**खण्ड 04 भारतीय कर प्रणाली**

इकाई 01 भारतीय सार्वजनिक वित्त –1 : भारतीय कर प्रणाली
02 भारतीय सार्वजनिक वित्त –2 : प्रमुख कर
03 निजी आयकर : कर योग्य आय, कर आधार, कर मुक्त आय तथा अन्य कर छटें
04 निजी आयकर : दर का ढांचा तथा वर्द्धमानता
05 निगम आयकर : प्रमुख विषेशताएं, दर का ढांचा
06 निगम आयकर : कम्पनियों का वर्गीकरण, मूल्य ह्रास सम्बन्धी नियम इत्यादि

**खण्ड 05 सार्वजनिक ऋण एवं घाटा**

इकाई 01 सार्वजनिक ऋण का अर्थशास्त्र
02 सार्वजनिक ऋण संस्थापित सिद्धान्त क्रियात्मक एवं क्षतिपरक वित्त
03 आन्तरिक ऋण एवं वाह्य, सार्वजनिक ऋणों के मुद्दे
04 विकास के लिए राजकोषीय नीति : साधन गतशीलता विकास, वितरण तथा मूल्यों पर प्रभाव
05 पंचवर्षीय योजनाओं का वित्त पोषण
06 भारत के बजटीय घाटे की नीति

# उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

## गुरूकुल से छात्रकुल

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

# MAEC-106
## सार्वजनिक अर्थशास्त्र

### परामर्श–समिति

| | |
|---|---|
| **प्रोफेसर सीमा सिंह** | **कुलपति–अध्यक्ष** |
| प्रो. सत्यपाल तिवारी | निदेशक, मानविकी विद्याशाखा–<br>कार्यक्रम संयोजक |
| श्री विनय कुमार | कुलसचिव–सचिव |

### विशेषज्ञ समिति

| | | |
|---|---|---|
| प्रो. सत्यपाल तिवारी | **अध्यक्ष** | उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| डॉ अनिल कुमार यादव | **संयोजक** | उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| प्रो.किरन सिंह | | इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| प्रो. एम.के. सिंह | | एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली |
| डॉ. विश्वनाथ कुमार | | एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी |
| डॉ. अनूप कुमार | | इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज |

### पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

### सम्पादक

डॉ. चन्द्र प्रकाश राय — सह–आचार्य, अर्थशास्त्र, डी.सी.एस.के. पी.जी. कालेज, मऊ

### परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

### लेखक मण्डल

**लेखक**

डॉ. अनिल कुमार यादव
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
प्रो. (डॉ.) बृजेन्द्र सिंह बौद्ध
अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

**© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)**

**ISBN-**

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

उत्तर प्रदेश

**MAEC – 106**

राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

सार्वजनिक अर्थशास्त्र

खंड

01

अवधारणा

---

इकाई–01

## विभिन्न राजकोषीय प्रणालियाँ में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण

---

इकाई की रूपरेखा


1.0 परिचय

1.1 उद्देश्य

1.2 राज्य के बढ़ते हुए अधिकार – क्षेत्र के कारण

1.3 राज्य की आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारक

1.4 वैगनर के विचार

1.5 राज्य की आर्थिक क्रियाओं की सीमा

1.6 आर्थिक विकास हेतु सरकारी उपाय

1.7 राजस्व की अवधारणा

1.8 राजस्व की परिभाषा

1.9 राजस्व–विज्ञान या कला

**2.0 राजस्व का महत्व**

**2.1 सारांश**

**2.2 शब्दावली**

**2.3 सन्दर्भित ग्रन्थ**

**2.4 अभ्यास प्रश्न**

**2.5 वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

**परिचय :**

मनुष्य के जीवन में कुछ चीजों का उपयोग करना नितान्त जरूरी है। जिनमें कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं की एक विशेष मात्रा के उपयोग को उत्तरजीविता (Survival) के लिए नितांत आवश्यक (Essential) है, जैसे–आहार, जल, आवास, कपड़े इत्यादि। आम जनता को इन वस्तुओं एवं सेवाओं की प्राप्ति कैसे हों, इसके लिए अर्थशास्त्र की प्रथम चुनौती माना जाता है। वतुओं एवं सेवाओं का सृजन करना और आम लोगों तक पहुँचानें के लिए वितरण/आपूर्ति करना ही प्रथम लक्ष्य है। इन वस्तुओं एवं सेवाओं का सृजनकारी/उत्पादनकारी परिसंपत्तियों की स्थापना करना जरूरी है, जिसके लिए सर्वप्रथम पूँजी लगाने की आवश्यकता है, जिसे हम निवेश के रूप जानते है। लेकिन अब निवेश 'किसके' द्वारा और क्यों किया जाएगा? इस वजह से दुनिया में अलग–अलग आर्थिक प्रणालियाँ का विकास हुआ। अगर हम देखों तो प्राचीनकाल में भी आर्थिक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में राजकीय हस्तक्षेप रही है। जब मनुष्य कबीलों में जीवन व्यतीत करता था, तब भी कबीले का एक मुखिया अपने कबीले की सुरक्षा करता था। कबीले की सुख–शांति हेतु कबीलें के लोगों से वस्तुओं तथा पदार्थों का संग्रह करवाता था, जो तत्कालीन आवश्यकता थी। प्राचीन धारणाओं के अनुसार सबसे अच्छी सरकार वह है जो कम से कम कर लगाये और कम से कम खर्च करे। इससे स्पष्ट होता है कि सरकार को आर्थिक क्षेत्र में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। आर्थिक

हस्तक्षेप, जैसे व्यापार आदि के संचालन हेतु सरकार को उपयोग समझा जाता था। एडम स्मिथ इसी विचारधारा के समर्थक थे। प्राचीनकाल में बचत के बजट को सबसे अच्छा समझाा जाता था साथ ही प्राचीनकाल में सरकारी आय के साधन सीमित थे, और सरकारी व्यय में कमी की जाती थी। वर्ष 1500 तक कर आय का साधन नही था, परन्तु उसी समय जर्मनी में आय व सम्पत्ति आदि पर लगाये जाते थे। वर्ष 1776 में एडम स्मिथ की पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' (Wealth of Nation) का प्रकाशन हुआ। एडम स्मिथ के विचारों से प्रभावित होकर लोग स्तंत्र अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने लगे। एडम स्मिथ ने कहा कि–''व्यक्तिगत व्यावसायियों के उद्योगों का निरीक्षण करने तथा उनको सामाजिक हित के लिए सबसे उपयुक्त मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करने के कार्य से शासक (राजा) को पूर्णतया मुक्त कर दिया जाना चाहिए, जिसको पूर्ण करने के प्रयत्न में उसे सदा अनेक क्रान्तियों का सहारा लेना पड़ता है और जिसको उचित रीति से पूर्ण करने के लिए कभी मानव का विवेक ज्ञान पर्याप्त नहीं हो सकता।''[1] एडम स्मिथ के स्वतंत्र अर्थव्यवस्था संबंधी विचारों का बोलवाला हो गया। काफी समय अन्तराल के बाद बुराई आ गई क्योंकि एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करने लगा, 'हजूर' व 'मूजर' की भावना पनपने लगी। धन बचाने के लालसा इस प्रकार बढ़ी कि श्रमिकों में महिला व बच्चों से मनमाना काम लिया जाने लगा। यूरोप में श्रमिकों का जीवन–स्तर धीरे–धीरे गिरने लगा। इस प्रकार विश्व को 75 प्रतिशत जनसंख्या का अभाव व गरीबी का जीवन व्यतीत करने लगी। ऐसी स्थिति में नई विचारधारा जन्म लेने लगी। परस्परावादियों की अबन्ध आर्थिक नीति 'Laissez Faire and Laissez Passer' के स्थान पर हसतक्षेप नीति का समर्थन किया जाने लगा। यहाँ सरकारी हस्तक्षेप का आशय आर्थिक हस्तक्षेप से था। इसके बाद में समाजवादी विचारकों के द्वारा सरकारी हस्तक्षेप को उचित बताया था। समाजवादी विचारक में जे0एस0मिल0, रॉबर्ट ओबेन, सेन्ट सिमोनिपन्स, सिसमंडी व कार्ल मार्क्स ने

सरकारी हस्तक्षेप को उचित बताया था। अब प्रश्न उठता है कि आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप होना चाहिए या नहीं । सामान्यता नागरिक प्रशासन में राज्य की भूमिका प्रधान रहती है। उसी प्रकार आर्थिक प्रशासन में राज्य की भूमिका होनी चाहिए। सामाजिक व कल्याण के लिए यह जरूरी है कि सरकार जिनका प्रतिनिधित्व करती है, उनके प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इस संबंध में प्रो0लास्की ने कहा था कि–'' राज्य समाज की मेहराब की आधारशिला है, जो उन अनेक मानव – जीवन–जीवनों के रूप और स्वभाव को साँचे में ढालता है जिनके भाग्यों के संरक्षण का दायित्व उस पर है।''[2] इससे स्पष्ट होता है कि राज्य एक सार्वजनिक संस्था है और नागरिक एक अंग है। इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह नागरिकों के कल्याण में सहयोग एवं रक्षा करें। इस संबंध में स्टीनर (Stainer) कहते है कि ''सरकार की शक्ति आजकल प्रत्येक घर, प्रत्येक करखाने तथा प्रत्येक खेत में अनुभव की जाती है। यह अपने अन्तर्गत प्रत्येक कारखाने तथा प्रत्येक खेत में अनुभव की जाती है। यह अपने अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को समेट लेती है, उनका मार्गदर्शन , निर्देशन और नियंत्रण करती है। आर्थिक संस्थाए सरकारी कार्यवाही अथवा सरकारी हस्तक्षेप के सचेत अभाव के आधार पर कार्य करती है। आर्थिक जीवन का कोई भी कोना सरकार के हाथ से मुक्त नहीं है। कभी स्पर्श हल्का होता है और कभी भारी, कभी उपयोगी तो कभी रूकावट उत्पन्न करने वाला, यह मन के अनुकूल भी हो सकता है अथवा मनमाना भी और लाभप्रद अथवा अथवा आकांक्षायुक्त भी । किन्तु किसी एक स्थान पर , चाहे जो भी उसका चरित्र हो, सरकार की शक्ति हमारे आर्थिक जीवन को निकट से प्रभावति करती है। सरकारी नियम सभी आर्थिक क्रियाओं का मूल सहभागी है, और अधिकतर आर्थिक क्रिया की खुली सहयोगी भी।''[3] अधिकतर लोगों का विचार है कि दुनिया के देश अपने का आर्थिक स्तर उठाने हेतु राष्ट्र की सरकारों की आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण होनी चाहिए। यदि विकासशील देशों में आर्थिक विकास

हेतु स्वतंत्र अर्थव्यवस्था को स्वीकार कर लेते तो एशिया के अधिकतर देश आज भी रोजी व रोटी के मोहताज होते रहते। स्वतः क्रमिक विकास के विचार गले से नीचे नहीं उतरते है। इस संबंध में लिस्ट (List) के विचार उल्लेखनीय है। लिस्ट ने कहा कि–''अनुभव सत्य ही बताता है कि हवाएँ बीजों को उड़ाकर दूर–दूर ले जाती हैं, और उन बीजों के कारण बंजर भूमि पर सघन वन उग आते हैं, परन्तु क्या इस रूपान्तरण के लिए हवाओं की प्रतीक्षा करना बुद्धिमता होगी।''[4] विकासशील देशों को विकसित देशों से प्रतियोगिता करने में अनेक समस्याये है। ऐसी स्थिति राज्य सहयोग न करे तो इन देशों की अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं हो सकता है। राज्य के साथ व्यक्तियों की समस्याएँ है, जैसे रोटी, कपड़ा , मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि, जिनका समाधान व्यक्ति स्वयं नहीं कर सकता है। बल्कि यहाँ पर सरकार की सहयोग एवं सहायता करती है। इससे स्पष्ट होता जाता है कि इन समस्याओं के निदान हेतु राज्य का हस्तक्षेप अतिआवश्यक है। औद्योगिक क्राँन्ति के साथ देशों में आर्थिक असमानता बहुत तीव्र गति से पनप रही है। अर्थव्यवस्था पर पूर्णतः उद्योगपतियों का एकाधिकार हो गया। इस कारण नये विनियोगकर्ता व्यापार के क्षेत्र में प्रवेश पाने से वंचित रह गये।

यदि स्वतंत्र अर्थव्यवस्था को प्रतिस्थापित कर दिया जाए तो पूरी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कुछ ही नामी–गिनामी उद्योगपतियों का आधिपत्य स्थापित हो जाता और साधनहीन एवं उत्साही विनियोगकर्ता ऐंसी स्थिति में न टिक पाता। कुछ गिने चुने उद्योगपतियों से बचाने तथा उपभोक्ताओं व उत्पादकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप की महती आवश्यकता उचित समझा जाने लगा। इस संबंध में प्रो0 आर्थर लेविस ने कहा कि–'' कोई देश अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय प्रोत्साहन के बिना आर्थिक विकास नहीं कर सकता।''[5] विकासशील देश में आर्थिक विकास को निजी क्षेत्र के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता है, क्योंकि निजी लाभ–भावना सामाजिक व राष्ट्रीय लाभ

भावना के लिए घातक बन जाती है। इस संबंध में डॉ0बी0आर0 आंबेडकर विचार महत्वपूर्ण है, जिन्होंने अपने लेख 'स्मॉल होल्डिंग इन इंडिया एंड रेमेडीज 1917, में बताया गया था कि–'' कृषि का राष्ट्रीकरण''[6] किया जाना चाहिए। औद्योगिक विकास पर डॉ0 आंबेडकर का विचार था कि–''देश का गतिशील विकास औद्योगिक विकास के बिना संभव नहीं है। तेजी से होने वाला औद्योगिक विकास रोजगार बढ़ाएगा , साथ ही विदेशी पूँजी की भी बचत करेगा। सरकार को सामाजिक व राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने को इसके लिए आगे आना चाहिए। बीमा एवं वाहन व्यवहार का राष्ट्रीकरण होना चाहिए।''[7] इससे स्पष्ट होता है कि डॉ आंबेडकर निजीकरण की जगह सरकारीकरण (राष्ट्रीकरण) चाहते थे। इसलिए आर्थिक जीवन में राज्य की भूमिका होनी अतिआवश्यक है। भारतीय समाज आर्थिक असमानता होने के बावजूद, वर्तमान में स्वतंत्र अर्थव्यवस्था अहिस्ता पुनः अपनी जड़े मजबूत करने लगी है।

## 1.1 उद्देश्य : Objectives

- राजकोषीण प्रणालियाँ में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।
- राज्य के बढ़ते हुए अधिकार–क्षेत्र के कारणों का विश्लेषण किया जा सकता है।
- राज्य की आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारकों का विश्लेषण किया जा सकताहै।
- राज्य की आर्थिक क्रियाओं के महत्व को स्पष्ट कर सकेगें।
- राजस्व की संकल्पनाओं की परिभाषा और उदाहरण दे सकेगें।
- राज्य की आर्थिक क्रियाओं की सीमाओं को स्पष्ट कर सकेगें।
- राज्य के आर्थिक विकास के लिए सरकारी उपायों को समझ सकेगें।
- राजस्व – विज्ञान या कला अर्थात दोनों पर विश्लेषण कर सकेगें।
- राजकोषीय प्रणालियाँ में राज्य की भूमिका पर प्रकाश डाल सकेगें।

## 1.2 राज्य के बढ़ते हुए अधिकार क्षेत्र के कारण (Causes for the Ex[ansion of Government's Role)

देश में परिस्थितिजन के कारण सरकारी हस्तक्षेप में भी परिवर्तन आने लगे। प्राचीन काल में राज्य बाहय आक्रमणों से देश की रक्षा करता था। लेकिन आज लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था में आम आदमी के रोजगार से लेकर पीने के पानी तक की समस्या में सरकारी हस्तक्षेप देखने को मिलता है। साथ निजी क्षेत्र की बुराइयों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र का वितार हुआ। राज्य के हस्तक्षेप के प्रमुख कारण है, जैसे–रक्षात्मक कार्य (Protective functions) राट्र निर्माण से संबंधि कार्य (Nation- Building Functions) व्यापार–वाणिज्य से संबंधित कार्य (Commercial Functions) मौट्रिक सहायता (Monetary Assistance) मौट्रिक नीति संबंधित कार्य (Monetary Polley) मानव पूँजी–निर्माण संबंधित कार्य (Constructive Utilisation of Human Resources) पूर्ण रोजगार (Full Employment) राष्ट्र के आर्थिक ढाँचे की रक्षा करना (Maintenance of the Economic Frame work of the Nation) अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष सहभागिता (Direct Participation) व्यवस्थित नियमन व नियन्त्रण (Regulation and Control) सार्वजनिक वित्त से संबंधित कार्य (Public Finance Operations) नवप्रवर्तकों व विनियोगकर्ताओं को प्रभावित करना है। इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त कारणों का निजी क्षेत्र द्वारा निगमन नहीं किया जा सकता है। निजी क्षेत्र में स्वयं का लाभ आधारित कार्यो का संचालन की प्रमुखता रहती है। एक राष्ट्र के निर्माण हेतु आर्थिक स्थिरता, एकाधिकर, वस्तुओं का अभाव, दुर्लभ व बहुमूल्य खनिजों का शक्तिशाली राष्ट्रों को निर्यात प्राकृतिक सम्पदा का अपव्यय देश से विदेशों को मेघा का पलायन, तस्करी , अशिक्षा, निर्यातों की अपेक्षा आयातों का आधिक्य,

बेरोजगारी मुद्रा प्रसार, व मुद्रा संकुचन आदि पर अंकुष लगाना राज्य ही कर सकता है। यह कार्य निजी क्षेत्र के द्वारा संपातिद किये जाये, तो एक राष्ट्र बहुत जल्दी, दीवालियापन की ओर अग्रहर हो जायेगा। एक राष्ट्र की संपूर्ण अर्थव्यवस्था चौपट हो सकती है। इस संबंध में फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री सेन्ट साइमन (St. Simon) के विचार उल्लेखनीय है–''मान लीजिए फ्रान्स में सहसा पचास प्रथम श्रेणी के चिकित्सक पचास मूर्धन्य रसायनशास्त्री, भौतिक विज्ञानी, इतने ही बैंकर , दो सौ श्रेष्ठ व्यापारी, छः सौ बड़े किसान, पांच सौ योग्य लुहार, बढ़ई इत्यादि समाप्त हो जाते है। ऐसा होते ही पूरा देश धराशायी हो जायेगा, उसक प्रभुत्व और उसकी समृद्धि समाप्त हो जायेगी। परनतु इसके विपरीत मान लीजिए, यह सब तो सुरक्षित रहते हैं परन्तु राज्य परिवार के व्यक्ति, दरबारी एवं अधिकारी, मन्त्री, पुरोहित, न्यायाधीश, भूमि के स्वामी आदि नष्ट हा जायें, तो देश को दुःख तो होगा क्योंकि फ्रान्स एक भावुक देश है, परन्तु देश का कोई वास्तविक अहित नहीं होगा।''[8] उनका यह कथन से स्पष्ट होता है कि मानव पूँजी के उत्थान के लिए राज्य की महत्वपूर्ण है–''मजदूर वर्ग धनाढ् से एक प्रश्न पूछ सकते हैं, वह यह कि वह युद्ध के लिए टैक्स देने के लिए सहमत हैं तो फिर मजदूर की स्थिति सुधारने के लि धन देने में हिचकिचाहट क्यों करते हैं। जो धन लड़ाई पर खर्च किया जा रहा है, उससे कितने ही अशिक्षितों को विद्या और कितने ही रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया जा सकता है।''[9] इस कथन से स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र की अपेक्षा सरकारीकरण की कहती आवश्यकता है। सरकारी हस्तक्षेत्र में वृद्धि होना सामाजिक न्याय की दृष्टि में भी अति उपयोगी है।

## 1.3 राज्य की आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारक : (Factors Responsilbe for Increasing State's Economics Functions)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक क्षेत्र और जन–कल्याण राजय की अवधारणाओं को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। जबकि 19वीं शताब्दी में एडम स्मिथ का मत था कि राज्य के हस्तक्षेप से क्रूर और अन्यायपूर्ण व्यवहार जन्म लेता है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हृास हो जाता है। अतः राज्य को वह कार्य करना चाहिए, जिससे प्राकृतिक व्यवस्था में कोई बाधा न आयें एवं स्वतंन्त्र प्रतियोगिता बनी रहे। साथ ही ऐसे कार्य करना चाहिए, जो व्यक्त्गित प्रयत्नों से नहीं हो सकते है जैसे–सार्वजनिक निर्माण कार्य, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था आदि। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठा सकता था। इस सन्दर्भ में रॉबर्ट पील (Robert Peel) ने कहा था कि–'' धन सरकार की अपेक्षा लोगों के हाथों में अधिक फलदायी सिद्ध हो सकता है।''[10] इस संबंध में पानैल (Parnell) का कथन है–'' सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा विदेशी आक्रमण के विरूद्ध के विरूद्ध सुरक्षा की दृष्टि से जितने खर्च की वास्तविक आवश्यकता होती है, यदि सरकार के खर्चों का कोई भी अंश उस से अधिक किया गया है तो वह अपव्ययपूर्ण है तथा जनता के ऊपर डाला गया भारी दबाव है।''[11] 19 वीं शताब्दी के बाद सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने लगी। सुप्रसिद्ध जर्गन अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) ने ''राजस्व के कार्यकलाप में वृद्धि के नियम (Law of the Increase of state Activities) का प्रतिपादन करते हुये उल्लिखित किया कि–'' विभिन्न देशों और विभिन्न कालों की व्यापक तुलनओं से पता चलता है कि प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय और स्थानीय दोनों सरकारों के कार्यकलापों में वृद्धि होती रहती है। यह वृद्धि विस्तृत और गहन दोनों प्रकार की है। केन्द्रीय और स्थानीय सरकोर निरन्तर नये कार्य हाथ में लेती जाती है और पुराने कार्यों

को अधिक कुशलता तथा पूर्णता के साथ्ज्ञ करती है। इस प्रकार केन्द्रीय और स्थानीय सरकारें जनता की आर्थिक आवश्यकताएँ एक से अधिक परिमाण में अधिक संतोषजनक ढंग से पूरा करती है।''[12]

## 1.4 वैगनर के विचार (Wagner's Views

जर्मन अर्थशास्त्री र्वगनर के विचार को हम साधारण शब्दों में बैगनर्स लॉ भी कहते है। इससे अभिप्राय है कि सार्वजनिक व्यय आर्थिक विकास के साथ–साथ बढ़ता जाता है। वैगनर के मतानुसार–व्यय निम्नलिखित तीन प्रकार से प्रभावी होता है–

1. सार्वजनिक संस्थाएँ कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए अधिक और उत्तम तरीके से उत्पादन में लगी रहती हैं। यह संस्थाएँ वस्तु की माँग और आपूर्ति में सामंजस्य स्थापित करती है। पूँजी की पर्याप्तता होने के कारण संस्थाओं के कार्यों का संचालन अच्दी तरह से होता है, और इस तरह सार्वजनिक व्यय का कुशलतापूर्वक कार्य होता रहता है।
2. सार्वजनिक व्यय लोककल्याणकारी कार्यों को महत्व अधिक देता है, जिससे समाज का प्रत्येक वर्ग का जीवन स्तर में सुधार होता है। इसलिए सार्वजनिक व्यय निजी व्यय की अपेक्षा अधिकतम कल्याणकारी है।
3. सार्वजनिक व्यय का समाजहित में बड़ी–बड़ी परियोजना पर किया जाता है। जबकि निजी विनियोगकर्ताओं इन पर कार्य करना पसन्द भी नहीं करते है। निजी विनियोगकर्ता लाभ भावना से प्रेरित होकर विनियोग करते है जबकि सार्वजनिक व्यय सामाजिक लाभ की दृष्टि से किया जाता है। निजी लाभ भावना से विनियोजन जो सामाजिक लाभ की दृष्टि में न्यायोजित नहीं माना जा सकता है।

जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर ने सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणों को भी बताया है– आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष रूचि, सन्तुलित आर्थिक विकास के कार्य, आर्थिक असमानता को दूर करना और पूँजी का संचय करना , मानवीय आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु कार्य, जनसंख्या में वृद्धि, वेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु कार्य, आर्थिक नियोजन, युद्ध एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ जन व्यवहार, आदि। इन कारणों के निस्तारण हेतु सार्वजनिक व्यय का होना महत्वपूर्ण है। इन संबंधित कारणों के समाधान हेतु राजकीय हस्तक्षेप की दिन प्रतिदिन महती आवश्यकता है। विशेषकर विकासशील देशों के लिए सरकारी हस्तक्षेप अति आवश्यक है।

## 1.5 राज्य की आर्थिक क्रियाओं की सीमा (Limitations of State's Economic Functions)

यह स्पष्ट हो चुका है कि आर्थिक विकास हेतु सरकारी हस्तक्षेप उपयुक्त ही है। इस संबंध में दो विचार धारायें है–पहली पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप से संबंधत विचारधारा और दूसरी क्रमिक हस्तक्षेप से संबंधित विचारधारा। पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप में अर्थशास्त्रियों का मत है कि विकास कार्यों को सरकार करें क्योंकि निजी क्षेत्र में इनक कार्यों को छोड़ देने से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त नहीं होगा। समाजवादी विचारकों का कहता है कि सरकार को देश के संसाधनों पर सीधा हस्तक्षेप करना चाहिए। देश निजी उद्यमियों के सहारे देश का आर्थिक विकास तेज नहीं हो सकता है। क्रमिक हस्तक्षेप में अर्थशासत्रियाओं का मत है कि सरकार को आर्थिक क्षेत्र में एकाएक हस्तक्षेप नहीं बल्कि धीरे–धीरे हस्तक्षेप करना चाहिए। इस मत को विकास का न्यूनतम आवश्यक प्रयास (Critical Minimum Effort Mesis) कहा जा सकता है। यह अल्पविकसित देशों के सम्भव नहीं है। इससे स्पष्टहो जाता है कि देश में

परिस्थितियों का ध्यान में रखकर , कब, कैसे और कौन–सी आर्थिक प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए। जरूरत के हिसाब से सरकारी हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। यदि देश की सरकार प्रशासनिक ढाँचा भृष्टाचार में फंसा है, तो ऐसी स्थिति में देश का कल्याण न होकर शासन व प्रशासन के लोगों का कलयाण होना। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे निजी उपक्रम सरकारी प्रेरणा से चलते रहे और सार्वजनिक उपक्रम भी । यह स्पष्टहै कि सरकार भी उद्यमशील उपक्रमी वर्ग के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती है। इस प्रकार सरकारी हस्तक्षेप का मध्यम मार्ग होना चाहिए।

## 1.6 आर्थिक विकास हेतु सरकारी उपाय (Government's Measures to Promote Economic Development)

सरकार के द्वारा आर्थिक विकास हेतु किये जाने वाले उपाय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हो सकते है। पहला, प्रत्यक्ष रूप में सरकार उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता व आपूर्ति में वृद्धि करना, आर्थिक एवं सामाजिक संवाओं की व्यवस्था करना, औद्योगीकरण प्रक्रिया में भाग लेना, संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तनों को लाकर देश का विकास तीव्र किया जा सकता है। दूसरा, अप्रत्यक्ष रूप से सरकार मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति मूल्यनीति, तटकर नीहति, वित्तीय प्रबंधन प्रणाली के द्वारा देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। उपर्युक्त प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कारकों के आधार पर देश का आर्थिक विकास का ढाँचा निर्भर रहता है। इनके अच्छे प्रबंधन से देश का समुचित आर्थिक विकास तीव्र गति से हो सकता है।

## 1.7 राजस्व की अवधारणा (Concept of Public Finance)

संस्कृत शबद में राजस्व दो शबदों से मिलकर बना है। 'राजन्+स्व' अर्थात राजा का धन होता है। राजनीतिक दृष्टि से राजा तत्समय समाज का मुखिया माना जाता तो अर्थ लगाया जा सकता है कि मुखिया के धन से होगा। इस प्रकार राजस्व में राजा के धन का अध्यपन करते है। राजा के धन का कहाँ

से किस प्रकार लाता है और धन को किस प्रकार व्यय किया जाता है। इसे लोकवित्त भी कहा जाता है। लोकवित्त दो शब्दों से मिलकर बना है, लोक+वित्त से। लोक से तात्पर्य है–जनसमूह; वित्त से तात्पर्य है–मुद्रा। इस संबंध में डाल्टन का मतह ै कि–''राजस्व उन विषयों में से एक है जो अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के मध्य एक सीमा रेखा की भांति है। इसका संबंध सार्वजनिक संस्थाओं की आय एवं व्यय तथा एक दूसरे से समायोजन के साथ होता है।''[13] सरकार को आर्थिक गतिविधियों के लिए वित्त की व्यवस्था करनी पड़ती है। यह वित्त के कई स्त्रोत होते है। विशेषकर उन स्त्रोतों के परिवर्तशील होने की वजह से उनकी एक निश्चित सूची बना पाना एक कठिन कार्य है। महत्व की दृष्टि से कर–राजस्व, उधार से प्राप्तियाँ, पुराने दिए गए उधारों की मूल राशियों और उप पर ब्याज की वसूलियाँ, करेंसी के सृजन से आए, सरकारी उद्यमों से आए फीसें, जुर्माने तथा उपहार आदि की गिनती मुख्य स्त्रोतों में की जाती है। इस सन्दर्भ में प्रो0 डॉल्टन के विचार उल्लेखनीय है–''हमें सार्वजनिक प्राप्तियों और सार्वजनिक राजस्व के अर्थों में भेद करना चाहिए। सार्वजनिक प्राप्तियों के शब्द को एक विस्तृत अर्थ प्रदान करते हुए, इसमें राज्य को सभी स्त्रोतों से होने वाली प्राप्तियों को शामिल किया जाना चाहिए; जबकि इसके विपरीत सार्वजनिक राजस्व की अवधारणा को काफीसीमित अर्थों में लेते हुए उसमें सार्वजनिक ऋणों, सार्वजनिक संपत्ति के विक्रय तथा नोट छपाई से होने वाली प्राप्तियाँ को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।''[14]

**1.8 राजस्व की परिभाषा :–**

इस संबंध में प्रमुख अर्थशास्त्रिओं के विचार निम्नवत् है–

- प्रो0 फिण्डेल शिराज (Findlay Shirras) के अनुसार –''लोक–वित्त उन सिद्धान्तों का अध्ययन करता है जिनके अनुसार सार्वजनिक अधिकारी व्यय करते हैं तथा अपनी आय एकत्रित करते है।''[15]

- सी0एफ0बेस्टेबिल (C.F Bastable) के अनुसार –'' समस्त राज्यों में चाहे वे विकसित हों या अविकसित, किसी न किसी प्रकार का प्रावधान होना आवष्यक है, अतः राज्य साधनों की पूर्ति एवं उपयोग एक ऐसे अध्ययन की विषय सामग्री है, जो अंगेजी में राजस्व के नाम से पुकारा जाता है।''[16]
- एच0एल0लुट्ज (H.L Lutz) के अनुसार –'' सार्वजनिक या शासकीय कार्यों को पूर्ण करने के लिए आवश्यक साधनों का प्रावधान, संरक्षण एवं व्यय करने का अध्ययन ही राजस्व का विषय है।''[17]
- प्लेहन (Plehn) के अनुसार –'' राजस्व वह विज्ञान है जो राजनीतिज्ञ की उन क्रियाओं का वर्णन करता है जिन्हें राजस्व के उचित कार्यों के लिए मौद्रिक साधनों को प्राप्त करने एवं प्रयोग करने में उपयोग किया जाता है।''[18]
- यू0के0हिक्स (U.K Hiks) के अनुसार –'' राजस्व का मुख्य विषय ऐसी विधियों का अध्ययन व परीक्षण करता है जिनके द्वाारा शासन संस्था मांग की सामूहिक सन्तुष्टि की व्यवस्था करती है तथाा इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए आवश्यक कोष प्राप्त करती है।''[19]
- मेहता एवं अग्रवाल के अनुसार –'' राजस्व में सरकार के मौदिक एवं साख साधनों के अध्ययनों को सम्मिलित किया जाता है।''[20]

  उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अर्थशासत्रियाओं के विचारों में मूलभूत रूप से अन्तर नहीं है। आज लोक–वित्त में प्रमुख रूप से अन्तर नहीं है। आज लोक–वित्त में प्रमुख रूप सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक ऋण और राजकोषीण व्यवस्था एवं वित्तीय प्रशासन को सम्मिलत किया यगा है। वर्तमान में सभी लेखकों के द्वारा लोक–वित्त की विषय–सामग्री को इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

## 1.9 राजस्व–विज्ञान या कला : (Public Finance-Science or Art)

अर्थशास्त्र के संबंध में भी यही प्रश्न बनता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला अथवा दोनों। इसी प्रकार राजस्व पर भी यही प्रश्न है। परन्तु राजस्व को कला विज्ञान कहना इतना सरल नहीं है, इसे सिद्ध करना आवश्यक है। प्लेद्न के द्वारा लोकवित्त को विज्ञान मानते हुये कहते है कि–लोक अर्थशास्त्र में तथ्यों व सिद्धान्तों का नियमित एवं क्रमवद्ध संग्रह किया जाता है और सार्वजनिक वित्त के अध्ययन में डन वैज्ञिानिक विधियों व अन्वेषणों का सहारा लिया जाता है , जो इसे विज्ञान की सीमा में पहुँचाते है। सामान्य अर्थों में विज्ञान क्या है तो कहा जा सकता है कि–''विज्ञान किसी वस्तु के पूर्ण मान को आंकता है और इसका आधार सतर्क प्रयोग, ध्यानपूर्वक निरीक्षण एवं ठीक–ठीक विशलेषण करताहै। राजस्व द्वारा किसी भी प्रकार की वस्तुस्थिति के संबंध में निश्चित विवेचन करके उसके संबंध में पूर्व अनुमान लगा सकते है। इससे स्पष्ट होता है कि राजस्व विज्ञान है। राजस्व को कला के रूप में स्वीकार किया जाता है। कला का आशय है कि किसी कार्य को करने के ढंग से बताता है। सही दिशा की ओर की प्रवृत्ति होती है। कला ही बतलाती है कि आदर्श स्थिति कैसे प्राप्त की जाती है। लोकवित्त मे कला का पक्ष स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतम सामाजिक लाभ कैसे प्राप्त किया जा सकता है। सरकार का प्रयास होता है कि कर लगाते समय आम जनता का कल्याण हो और सरकार की आय भी प्रापत हो जाए। यही कला के पक्ष को उजागर करता है।

## 2.0 राजस्व का महत्व (Important of Public Finance)

प्राचनी विचारधारा के अनुसार राजस्व के क्षत्र को बहुत संकुचित कर दिया था। प्राचीन अर्थशास्त्रिओं का मानना था कि सरकारी हस्तक्षेप को बुरा और आर्थिक विकास हेतु निजी क्षेत्र को महत्व दिया गया था। यह भी सम्भव है कि परिस्थितिजन ही अर्थशास्त्रियों के विचार रहे होगें। तत्कालीन आम जनता का

विचार था कि प्रत्येक 'कर' एक बुराई है और प्रत्येक सरकारी व्यय अनुत्पादक है। एडम स्मिथ पूर्णरूप से स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के समर्थक थे। एडम स्मिथ के विचारों से सहमत होते हुए रिकोर्डो ने कहा था कि–''यदि तुम शान्तिपूर्ण सरकार चाहते हो तो तुमकों बजट को घटना होगा।''[22] रिकोर्डो के विचारों पर सहमत होते हुये जेबी0 से (J.B. Say) ने कहा था कि–'' वित्त की सबसे अच्दी योजना यह है कि खर्च कम करो और सबसे अच्छा 'कर' वह है जो मात्रा में सबसे म हो।''[23] रिकार्डो एवं जे0बी से के विचारों पर ही 'सर हेनरी पारनेल (Sir Parnell) ने कहा था कि–''व्यवसाय को बनाये रखने तथा विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए जो अनिवार्य व्यय है उसके अतिरिक्त व्यय का प्रत्येक अंश अपव्यय तथा अन्यायपूर्ण है तथा जनता पर अन्यायपूर्ण कर है।''[24] इनके विचारों से स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत व्यय उत्पादक होता है और सार्वजनिक व्यय अनुत्पादक है। प्राचीनकाल की विचारधारा वर्तमान समय में अप्रासंगिक है। क्योंकि वर्तमान समय के अर्थशास्त्री व सरकारें प्राचीन विचारधारा को उचित नहीं मानती है। परिस्थितियाँ बदल चुकी है। सरकार के द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता अर्थात सामाजिक कल्याणहेतु सार्वजनिक व्यय किया जा रहा है जिससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो रही है। जबकि वर्तमान समय में निजी व्यक्ति के द्वारा किया जानेवाला व्यय विलासिता, नशीली वस्तुओं का उपभोग, व भोग–विलास की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने वाला है। इससे स्पष्ट होता है कि यह व्यय लोक–कल्याणकारी नहीं हो सकता है। 1980 के दशक में राजस्व का विकास हुआ और विकासशील देशों में राजकोषीय संकट के कारण, विकास व समायोजन की चुनौती ने ही राजस्व को केन्द्र बिन्दु में ला दिया। 1930 की विश्वव्यापी मंदी के बाद राजस्व के अध्ययन का महत्व अत्यधिक जरूरी हो गया। इस संबंध में जेम्स विल्सन का विचार उल्लेखनीय है। कि–'' वित्त केवल अंकगणित नहीं है, वित्त एक महाननीति है। बिना अच्छेत्ति के अच्छी सरकार सम्भव नहीं और बिना अच्छी सरकार के अच्छा वित्त

सम्भव नहीं है।''[25] भारत जैसेविकाशील देश में आर्थिक असमानता कम करने के लिए अनेक प्रकार के राजकोषीय उपाय करने का प्रयत्न किया जाता है, जैसे– निम्नतम आय में वृद्धि, गरीब मजलूम के लिए धन व्यय में वृद्धि अमीरों पर प्रगतिशील कर लगाना, अत्यधिक आय एवं सम्पत्ति में कमी हेतु सरकारी कार्य किय जा सकते है। इस कारण भी राजस्व का महत्व बढ़ जाता है। भारत में सबसे अधिक परेशानी रोजगार सृजन की है। राजस्व रोजगार में वृद्धि कर सकता है। रोजगार के प्रभावपूर्ण मांग को बढ़ाने हेतु सरकार सार्वजनिक आय में वृद्धि, करों में कमी कर, रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जा सकते है। भारत की जनता की भावनएँ पूँजीवाद से समाजवाद की ओर है। इस संबंध में फिण्डले शिराज का कथन उल्लेखनीय है कि–'' राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं के लिए आर्थिक वित्त की आवश्यकता होती है। और इस वित्त को भी विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं पर सर्तकता से व्यय करना होता है। यह लोक वित्त के सिद्धान्तों की सहायता से ही किया जा सकता है।''[26]

राजस्व के कार्यों में करारोपण के बुरे प्रभाव सार्वजनिक व्यय के अच्छे प्रभवों से दूर किये जा सकते है। इस प्रकार कहा जा सकताहै कि प्रत्येक सरकारी व्यय बुरा नहीं है, उसी प्रकार प्रत्येक कर एक बुराई नहीं है, जैस–शराब व ताड़ी अफीम पर लगाया गया कर बुरा नहीं हो सकता है, क्योंकि इससे सामाजिक बुराइयाँ पर अंकुश लगाया जाता है। यह भी सूच्य है कि प्रत्येक प्रकार का कर समाज के लिए लाभदायक ही है। बहुत से करों काउत्पादन व बचत परभी विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसे करों को अच्छा नहीं माना जा सकता है। इसी तरह के सार्वजनिक व्ययों को भी उचित नही माना जा सकता है, जैसे–राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाने वाला व्यय अपव्ययपूर्ण ही है। इससे स्पष्ट होता है कि राजस्व इसीलिए महत्वपूर्ण है कि अधिकतम सामाजिक लाभ अर्थात कल्याण हों।

## 2.1 सारांश (Summary)

मनुष्य के जीवन में कुछ वस्तुओं का उपयोग करना आवश्यक है, जिससे जीवन–चक्र चलता रहता है। जीवन का चक्र एक कड़ी से दूसरे कड़ी में बांघा है। आर्थिक क्रियायें भी एक कड़ी से दूसरी कड़ी के संयोजन से पूरी होती है। हमने जीवन के सामान्य क्रियाकलापों के अध्ययन के रूप में विभिन्न राजकोषीय प्रणालियाँ में राज्य की आर्थिक क्रियाओं को समझा है। निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के आधार पर हम कहत सकते है कि इनकी बुनियादें काफी गहरी हैं जिनमें सरकार के कार्य–उदफदेश्य, इसका मुद्रा, रोजगार का सृजन अधिकार, कारोषण का अधिकार तथा उधार लेने की बेहतर स्थिति आदि शामिल है। लोकवित्त के अध्ययन को यथार्थता के स्तर पर लाने के एिल यह ध्याान रखना भी आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग होता है तथा निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों की गतिविधियों में वर्तमान में पारस्परिक गहरी निर्भरता रहती हे। अर्थव्यवस्था के कार्य–कलापों से संबद्ध वित्तीय प्रवाहों को सरकार अपनी नीतियों आदि से प्रभावित करती है। वर्तमान समय में समाजवादी विचार धारा के प्रभाव से कल्याणकारी भावनाओं का विकास होने लगा है। यह भी सत्य है कि सार्वजनिक व्यय से कल्याणकारी कार्यों एवं सामाजिक सुरक्षा पर कार्य किये जाते है जबकि निजी व्यय में अधिकांश कार्य विलासिता, नशीली व भोग–विलास की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने वाला होता है। आर्थिक विषमता के निराकण में सरकारी हस्तक्षेप होना अति आवश्यक है। वर्तमान में शिक्षा, स्वास्थ्य, वृद्धावस्था पेंशन अर्थात सामाजिक कल्याण आदि पर सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खर्च किया जाता है। साथ बेरोजगारी की समस्या व आर्थिक असमानता पर सरकार ही कदम उठाती हैं इस प्रकार कहा जा सकता है कि निजी व्यय की अपेक्षाकृत सरकारी व्यय अधिक महत्वपूर्ण है। लोवित्त का संबंध राजकोषीय नीतियों से है, जो देश की आर्थिक नीतियों तथा अर्थव्यवस्था

को प्रभावित करती हैं। सभी सरकारों का लक्ष्य एक न्यायोचित वित्त व्यवस्था द्वारा सामाजिक न्याय लाना होता है।

## 2.2 शब्दावली (Keywords)

1. राजस्व (Revenue); 2. सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure ); 3. वित्तीय प्रशासन (Financial Administration ); 4. स्थिरता (Stability ); 5. सामाजिक कल्याण (Social Welfare ); 6. अधिकतम सामाहित हित (Maximum Social Advantage ); 7. निजी क्षेत्र (Private Sctor ); 8. रक्षात्मक कार्य (Protective Functions ); 9. राष्ट्र निर्माण कार्य (Nation-Building Function ); 10. व्यापर वाणिज्य के कार्य (Commercial Funcitons); 11. मौद्रिक सहायता (Monetary Assitance ); 12. मौद्रिक नीति (Monetary Policy ); 13.प्रत्यक्ष सहभागिता (Direct Participations ); 14. अहस्तक्षेप (Laissez Faire ); 15. प्रभावी मांग (Effective Demand ); 16. जनहितकारी राज्य (Welfare State ); 17 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy ).

## 2.4 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. राज्य के बढ़ते हुए अधिकार क्षेत्र के दो कारण बताइए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था मे राज्य की भूमिका की विवेचना कीजिए।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्व के महत्व को स्पष्ट करें।
4. लोकवित्त की सीमायें की विवेचना कीजिए।
5. लोकवित्त का अर्थ लिखिए।
6. लोकवित्त की अवधारणा से आप क्या समझते है।
7. राजकोषीय प्रणालियाँ में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण कीजिए।

8. भारतीय अर्थव्यवस्था 'राज्य का स्थान' के महत्व को समझाइये।
9. वैगनर के विचारों की व्याख्या कीजिए।
10. आर्थिक विकास के लिए सरकारी उपायों की विवेचना कीजिए।
11. आर्थिक विकास हेतु प्रत्यक्ष सरकारी उपायों को समझाइयें।
12. आर्थिक विकास हेतु अप्रत्यक्ष सरकारी उपायों को समझाइयें।
13. राज्य की आर्थिक क्रियाओं के वृद्धि के कारकों का मूल्यांकन कीजिए।
14. क्या लोकवित्त एक आदर्श या वास्तविक विज्ञान है?
15. लोकवित्त को विज्ञान एवं कला के रूप में समझाइए।
16. आर्थिक और समाजिक उपकरण के रूप में लोवित्त के महत्व को समझाइए।
17. लोकवित्त के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
18. प्रो0 डाल्टन द्वारा लोकवत्त की दी गई परिभाषा को संक्षेप में समझाइए।
19. लोकवित्त आर्थिक विकास एवं मूल्य–स्थिरता में किस प्रकार सहायता कर सकता है।
20. ''प्रत्येक सरकारी व्यय बुरा नहीं है, उसी प्रकार प्रत्येक 'कर' एक बुराई नहीं है।'' इस कथन को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

## 2.5 वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Question Answers )

1. राज्य की बढ़ती आर्थिक क्रियाओं के लिए आवश्यकता होती हैः
   क. आर्थिक वित्त ख. सामाजिक वित्त ग. राजनीतिक घ. इनमें से सभी
2. आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रत्यक्ष उपायों से कौन सा उपाय है?
   क. मौद्रिक नीति ख. राजकोषीय नीति ग. मूल्य नीति
   घ. संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तनों का लाना
3. आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा किये जाने वाले अप्रत्यक्ष उपायों से कौन सा उपाय है?

क. औद्योगीकरण में भाग लेना ख. संस्थागत परिवर्तन लाना

ग. मौदिक नीति ग. उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति में वृद्धि करना

4. राजस्व के कौन–से चार विभाग है?

क. सरकारी आय, सरकारी व्यय, सरकारी ऋण, राजकोषीय नीति

ख. राष्ट्रीय आय, व्यक्तिगत आय, उपभोग , वितरण

ग. उपभोग, विनिमय, राजस्व, वितरण

घ. भूमि, श्रम, संगठन, साहस

5. ''यदि तुम शान्तिपूर्ण सरकार चाहते हो तो तुमको बजट को घटना होगा।'' यह कथन किसका है?

क. रिकार्डो ख. एडम स्मिथ ग. जे0वी0से0 घ. पारनेल

6. ''वित्त की सबसे अच्दी योजना यह है कि खर्च कम करो और सबसे अच्छा कर वह है जो मात्रा में सबसे कम हो।'' यह कथन किसका है?

क. मार्शल ख. जे0वी0से ग. पीगू घ. हिवस

7. ''व्यवसाय को बनाये रखने तथा विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए जो अनिवार्य व्यय है उसके अतिरिक्त व्यय का प्रत्येक अंश अपवयय तथा अन्यायपूर्ण है तथा जनता पर अन्यायपूर्ण कर है।'' यह कथन किसका है?

क. एडम स्मिथ ख. ओहलिन ग. पारनेल घ. परैटो

8. वित्त अर्थशास्त्री ने सरकारी हस्तक्षेप को उचित बताया है?

क. रॉबर्ट ओवेन ख. एडम स्मिथ ग. पारनेल घ. रिकार्डो

9. किस अर्थशास्त्री ने सरकारी हस्तक्षेप को उचित बताया है?

क. एडम स्मिथ ख. सिसमांडी ग. कार्ल मार्क्स घ. रॉबर्ट ओवेन

10. ''राज्य समाज की मेहराब की आधारशिला है, जो उन अनेक मानव–जीवनों के रूप और स्वभाव को साँचे में ढालता है जिनके भाग्यों के संरक्षण का दायित्व उस पर है।'' यह कथन किसका है।

क. एडम स्मिथ ख. प्रो0 लास्की ग. कालीमार्क्स घ. जे. एस.मिल

11. ''अनुभव सत्य ही बताता है कि हवाएँ बीजों को उड़ाकर दूर–दूर ले जाती है, और उन बीजों के कारण बंजर भूमि पर सघन वन उग आते है, परन्तु क्या इस रूपान्तरण के लिए हवाओं की प्रतीक्षा करना बुद्धिमत्ता होगी? यह कथन किसका है?

क. प्रो0 लास्की ख. स्टीनर ग. लिस्ट द. सेन्ट सिमोनियन्स

12. ''कोई देश अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिया प्रोत्साहन के बिना आर्थिक विकास नहीं कर सकता।'' यह कथन किसका है?

क. एडम स्मिथ ख. मार्शल ग. पीमू घ. आर्थर लेविस

13. भारत लोकवित्त के सन्दर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

क. केन्द्रीय बजट में दर्शाए गए विदेशी ऋण ऐतिहासिक विनिमय दरों पर निर्भर होते है।

ख. निरतर अधि ऋण ने अर्थव्यवस्था में वास्तविक ब्याज दरों को ऊँचा।

ग. हाल ही के वर्षों में राजकोषीय घाटे और सकल घरेलू उत्पाद के बीच बढ़ते अनुपात का निजी निवेशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

घ. ब्याज की अदायगी केन्द्र सरकार के योजनात्तर राजस्व व्यय का अकेला सबसे बड़ा घटक है।

उपरोक्त कथनों में से कौन सा/से कथन सत्य है?

अ. 1,2 और 3 ब. 1 और 4 स. 2,3 और 4 घ. ये सभी

14. स्वतंत्र बाजार व्यवस्था में राजकोषीय नीति का क्या भूमिका होगी?

क. अहस्तक्षेप ख. हस्तक्षेप ग. दोनों घ. इनमें से कोई नहीं

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–**


1. Adam Smith, The wealth of Nations, Book IV, Chaptr IX.
2. The keystone of the Socialarch, Moulding the form and substance of the myriad human lives whose destinies it is charged. Laski
3. George stainer, Govt role in economic life, P.Z
4. List, National system of political economy.
5. लोक अर्थशास्त्र जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
6. उठाया सौ अके का सवाल, मूलचंद राणा, संग्रहणीय अंक, पांचजन्य पत्रिका, अप्रैल 2015 भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड।
7. उठाया सौ अके का सवाल, मूलचंद राणा, संग्रहणीय अंक, पांचजन्य पत्रिका, अप्रैल 2015 भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड।
8. St, Simon; quoted by Alexander Gray in The socialist Tradition, P. 198.
9. भारतीय संसदीय पद्धति गांधी एवं उनके समकालीन विचारक, संपादक डॉ0 प्रतिमा यादव, इन्द्रिरा पब्लिसिंग हाऊस, भोपाल (म0प्र0) पृ00–167
10. Feel," Speches", quoted in Mc Grefor, Public Aspects of Finance P.71
11. H. Parnell," on financial reforms," Quoted by G. Findlay shirras in the science of public finance, P.31
12. लोक अर्थशास्त्र–जे0सी0पन्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा

13. राजस्व, डॉ0 जे,सी0 वार्ष्णेय, डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा
14. लोवित्त, एच0एल0 भाटिया, विकास पब्लिसिंग हाऊस प्रा0लि0 नई दिल्ली।
15. Findlay shirras, the science of public fiannce.
16. Bastable, C.F , Public finance 8.7
17. H.L. Lutz, Public finance , 8.7
18. Plehu, Public finance . P.1
19. U.K Hicks, Public fiancé P.1
20. राजस्व , डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्त, साहतय भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा0) लि0, आगरा।
21. David Ricardo, Political Economy, P.159
22. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल , आगरा।
23. Sir Parnell, Financial Reform; quoted by H.C. Adams, Science of finance, P,50
24. राजस्व, डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा।
25. राजस्व, डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा।

## खण्ड – 01

## इकाई – 02

# लोक अर्थशास्त्र के उद्देश्य व अंग

**1.0 परिचय :–** वर्तमान समय में लोकवित्त का प्रमुख उद्देश्य 'अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना है। एक प्रसिद्ध कहावत भी है कि ''धन से ही गाड़ी चलती है'' (Money makes the mare go)। आधुनिक समय में कल्याणवादी एवं समाजवादी सिद्धान्तों के प्रसार के फलस्वरूप राज्य की क्रियाओं में वृद्धि हुई है। इसके साथ–साथ लोक–वित्त का महत्व भी निरन्तर बढ़ता गया है। आर्थिक विकास, रोजगार तथा वितरण तथा वितरण से संबंधित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार को अनिवार्य रूप से लोक–वित्त के सिद्धान्तों का प्रयोग करना पड़ता है। सरकार को कोई भी उपक्रम, कोई भी योजना और कैसा भी आयोजन–नियोजन तब तक प्रारम्भ और पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि वह सरकार आवश्यक अर्थ–कोष की व्यवस्था न कर ले और फिर उचित वित्त–व्यवस्था करके उसका समुचित रीति से व्यय न करे। प्रत्येक देश की सरकार अपनी वित्तीय नीति के द्वारा देश की आवश्यकता के अनुसार औद्योगिक संरचना का निर्माण करती है तथा पूर्ण रोजगार के स्तर तक पहुँचने का प्रयास करती है। धन के समान वितरण की व्यवस्था करना उतना ही आवश्यक है जितना धन के उत्पादन में वृद्धि करना। लोकवित्त के द्वारा आधुनिक सरकारें सामाजिक विषमता को कम करने तथा राष्ट्रीय धन का सन्तुलित वितरण करने का कार्य करती हैं। वर्तमान में लोक–वित्त को केवल राज्य की आय में वृद्धि का साधन–मात्रा ही नहीं माना जाता, वरन आज यह सामाजिक न्याय का एक शक्तिशाली अस्त्र बन गया है। लोकवित्त सरकार द्वारा लोक–कल्याण की एक कुंजी है, राष्ट्र के न्यायोचित विकास का मार्ग है और सरकार द्वारा उसके कर्तव्यों एवं दायित्वों को पूरा करने का एक सुगम साधन है। एक विकासशील देश में लोकवित्त का उद्देश्य और भी अधिक है क्योंकि उसे

पूँजी–निर्माण, रोजगार, आय तथा उत्पादन में वृद्धि और नियोजित अर्थतन्त्र के संचालन के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

**1.1 राजस्व की विषय–सामग्री या क्षेत्र :–** डाल्टन के अनुसार '' राजस्व में मुख्य विभाजन सार्वजनिक आय एवं सार्वजनिक व्यय के मध्य है जो कि विषय की दो समान शाखाओ का निर्माण करता है। सार्वजनिक ऋण को एक पृथिक शाखा के रूप में माना जाता है क्योंकि वे अनेक विशेष समस्याओं को जन्म देते है।''[1] वर्तमान समय में जब से लोक–कल्याणकारी राज्यों का विकास हुआ है, तब से निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता है कि लोक–वित्त के क्षेत्र के अन्तर्गत किन–किन कार्यों को सम्मिलित किया जाय, क्योंकि आज तो सारी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन राजस्व में ही किया जाता है। हैरोल्ड ग्रीब्ज के अनुसार, ''खोज की वह शाखा है जो सरकारों की आय तथा व्यय से संबंधित है। आधुनिक समय में उसके चार बड़े–बड़े भाग हैं– राजकीय आय, राजकीय व्यय, राजकीय ऋण और राजकोषीय व्यवस्था की कुछ समस्याएँ, जैसे राजकोषीय प्रबंध और राजकोषीय नीति।''[2] वर्तमान समय में राजस्व के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों का अध्ययन किया जाता है सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आय, सार्वजनिक ऋण, वित्तीय प्रशासन, राजकोषीय नीति।

## 1.2 सार्वजनिक आय (Public Revenue):-

इस संबंध में उन स्त्रोतों का अध्ययन आता है जिनसे सरकार को धन प्राप्ति होती है। जिसमें विभिन्न प्रकार के कर–राजस्व तथा कर–भिन्न राजस्वों के स्त्रोतो, उनकी परस्पर निर्भरता और लाभ–हानियों का सर्वेक्षण रहता है। साथ ही उन सिद्धान्तों का अध्ययन भी किया जाता है जिनके आधार पर सरकार को राजस्व जुटाना चाहिए। राजस्व के विभिन्न स्त्रोतों में मुख्य रूप से कराधान, सार्वजनिक ऋण तथा मुद्रा निर्माण विशेय रूप से वर्णनीय है। वर्तमान

में सार्वजनिक आय का मुख्य स्त्रोत 'कर' है, इसलिए कराधान के अध्ययन के विभिन्न करों के चयन से संबंधित सैद्धांतिक न्यम, कर–भार की समस्याऐं तथा कराधान के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव शामिल है। कर का निर्धारण करते वक्त सरकार यह ध्यान रखती है कि करों का भार लोगों पर कम से कम पड़े और सरलता से आय प्राप्त हो जाए। करों के अतिरिक्त सार्वजनिक आय के स्त्रोत है जैसे लोक उद्यमों से लाभ , आय और लाभांश, अनुदान, शुल्क, जुर्माने, ब्याज, अर्थदण्ड की प्राप्तियाँ आदि शामिल है। इसे साथ ही मुद्रा का निर्माण भी सरकार के लिए एक राजस्व स्त्रोत हो सकता है। इस स्त्रोत से राजस्व प्राप्ति बहुत हद तक सरकार द्वारा लिए जाने वाले निवल उधार पर निर्भर करती है। अतः यह कि आय–स्त्रों कई प्रकार के समाज और अर्थव्यवस्था के हितों और हानियों की उत्त्पत्ति का कारण बनता है।

## 1.3 सार्वजनिक (Public Expenditure) :-

राजकीय व्यय में सरकारी व्यय का वर्गीकरण तथा व्यय करने की नीतियों का अध्ययन किया जाता है। व्यय करने हेतु यह ध्यान रखा जाता है कि व्यय किन–किन मदों में तथा कितनी मात्रा में किया जाये और इसका प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कैसा पड़ेगा। सार्वजनिक व्यय के अपव्यय रोकने हेतु आय किये जाते है। लोक बजट से कई प्रकार की वित्तीय राशियों की अदायगी की जाती है। इनमें सरकार द्वारा व्यय की गई राशियों के अतिरिक्त निवेशित राशियाँ, नए दिये जाने वाले उधार तथा अनुदान आदि भी शामिल रहते हैं। सार्वजनिक व्यय अपने आकार–प्रकार तथा अपनी विविधता के कारण अर्थव्यवस्था के वित्तीय प्रवाहों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से प्रभावित करता है। इसके परिणामस्वरूप मांग–पूर्ति के ढांचे भी प्रभावित होते है। सरकार सार्वजनिक व्यय को विभिन्न कुशल नीतियों–अस्त्रों के रूप में भी प्रयोग करती है। इनक कुशल नीतियों में जनकल्याण, विकास आर्थिक स्थिरता, रोजगार संवर्धन, तथा कीमतों पर नियंत्रण आदि शामिल हो सकते है।

## 1.4 सार्वजनिक ऋण (Public Debt ):-

जब सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय अधिक होत है तब इस व्यय की पूर्ति हेतु ऋण लेकर की जाती है। एक समय था कि जब लोक ऋण को सरकारी बजट की अल्पावधिक वित्तीय आवश्यकता से निपटने का साधन मात्र माना जाता था। परन्तु वर्तमान में, एक आधुनिक सरकार का स्थाई रूप से ग्रस्त रहना और लोक ऋण का एसक नीति औजार के रूप में प्रयोग किया जाना, आर्थिक चिन्तन के सर्वस्वीकार्य अंग बन चुके है। लोक ऋण के आकार, घटक, स्वामित्व ढाँचे तथा अन्य आयामों के नियमन का अर्थव्यवस्था की मौद्रिक आवश्यकताओं की संतुलित पूर्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही सरकार स्वयं उधार देती है। वर्तमान में कई देशों में स्थिति इतनी गंभीर हो गई है कि सरकार द्वारा ब्याज का भुगतान तथा ब्याज की वसूली के ऑकड़े को लोक बजट की महत्वपूर्ण मदें बन गए है। अर्थव्यवस्था की स्थिरता और संतुलित विकास के सन्दर्भ में, लोकऋण ने एक प्रभावी नीति–औजार का स्थान प्राप्त कर लिया है। आधुनिक सरकारों में लोक ऋण द्वारा संसाधन जुटाने की प्रवृत्ति काफी सक्षम हो गई है। लेकिन लोक ऋण का प्रभाव इसके सरकार द्वारा प्रयोग करने तक सीमित न होकर, ब्याज की अदायगी और मूलधन को लौटाने पर भी निर्भर करता है। ये अदायगियाँ सार्वजनिक बजट से ही की जाती है और राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण भाग बन गई हैं। यह भी स्पष्ट है कि ऋण संबंधी नीतियों व ऋण प्राप्त करने के तरीकों एवं ऋण की राशि को खर्च करने की मदों आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें राजकीय ऋण के भुगतान की समस्याओं व विधियों का भी अध्ययन किया जाता है।

## 1.5 वित्तीय प्रशासन (Financial Administration):-

सरकार कीसमस्त आय–व्यय से संबंधित गतिविधियाँ वित्तीय प्रशासन से जुड़ी रहती है, जैसे–लोक बजट बानाना, अपनाना, तथा कार्यान्वित किया जाना भी

वित्तीय प्रशासन के महत्वपूर्ण अंग है। अतः इसकी सुदृढ़ता प्रदान किए बिना सरकार अपने वित्तीय साधनों के अपव्ययों की रोकथाम करने में सफल नहीं हो सकती है। साधारणतः आय–व्यय के प्रबंध को ही वित्तीय प्रकार माना जाता है। केन्द्र व राज्य में बजट विभाग होता है, जो बजटों का मूल्यांकन करता है औश्र आगामी बजटों में रूपरेखा का भी प्रस्तुतीकरण करता है। विता–प्रशासन सम्पूर्ण लेखों का मूल्यांकन एवं हिसाब भी रखता है। वित्तीय प्रशासन लोक–वित्त का प्राचीन अंग हैं बगैर इसके लोकवित्त्त व्यवहारिक नही हा सकता है। इस संबंध में बेस्टेबिल कहते है कि–'' हमें केवल विधियों का अध्ययन ही अपेक्षिपत नहीं है वरन् उन सिद्धान्तों का र्प्यवेक्षण भी आवश्यक है जिनके अनुसार वे विधियाँ अपनायी जाती है। वित्त की कोई भी पुस्तक तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक कि यह वित्तीय शासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।''[3]

## 1.6 सार्वजनिक उद्यम (Public Enter prises):-

सरकारें सार्वजनिक उद्यमों को एक नीति के के अन्तर्गत इस्तेमाल करना चाहती है। इस प्रकार किसी भी देश में प्रचलित चिन्तन के अनुरूप सार्वजनिक उद्यमों को प्रदान की गई भूमिका में परिवर्तन होता रहा है। भारत में भी बलदते चिन्तन की प्रवृत्ति देखी जासकती है। जबकि स्वतंत्रता के उपरान्त सरकार का विचार था कि समाजिक और आर्थिक विकास के लिए सार्वजनिक उद्यमों का होना आवश्यक है। जिससे सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा और भारतीय अर्थव्यवस्था को नियोजित किया जा सके। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर यह सोच कई प्रकार से दोषयुक्त थी। इसके साथ इस सोच को भी विश्व व्यापी स्तर पर स्वीकार किया जाने लगा कि बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक विकास की दर बढ़ जाती है। इस सोच को अपनाते हुए, भारत में भी सार्वजनिक उद्यमों की भूमिका को कम करने के साथ–साथ निजी–क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस विचार धारा के कारण सार्वजनिक उद्यम अर्थव्यवस्था और सरकार के लिए वित्तीय कमजोरी के नहीं बल्कि वित्तीय क्षमता के स्त्रोत होने चाहिए।

## 1.7 आर्थिक स्थायित्वीकरण (Economic stabilization):-

राजस्व के अन्तर्गत इस विभाग जन्म बहुत बाद में हुआ, क्योंकि 1930 की विश्वव्यापी मंदी के बाद यह महसूस हुआ कि एक नीति होनी चाहिए। जब जाकर 'राजकोषीय नीति' (Fiscal Policy) का जनम हुआथा। राजकोषीय नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आ रहे उताव–चढ़ाव को रोका जा सकता है। अर्थात अर्थव्यवस्था में समानता लाने व न्यायोचित विरण व्यवस्था, के तहत देश में उत्पादन स्तर को बढ़ाने तथा एकाधिकारी व्यवस्था में सुधार लाने के लिए राजकोषीय नीति का उपयोग किया जाता है। वर्तमान की सरकारें अपनी आर्थिक नीति में राजकोषीय नीति के जरिये आर्थिक विकास की ऊँची दर, ऊँचे स्तरों पर आय और रोजगार की स्थिरता तथा वितरणीय असमानताओं में कमी लाने का पूरा प्रयास करती है। इस कारण राजकोषीय नीति के प्रभावों के अध्ययन लोक–वित्त में महत्वपूर्ण स्थान है।

## 1.8 संघीय वित्ती (Federal Finance) :-

भारत में सामाजिक आर्थिक के कारण अधिकतर राज्यों में बहुस्तरीय सरकारें है। केन्द्र सरकार के साथर राज्य की साकारें और स्थानीय निकाय भी है। बहुस्तरीय सरकारें होने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि सरकारी–कार्यों को विभिन्न स्तरों में आवंटन संबंधी नियम, विनियम, अधिनियम की संरचना की जाए, जिससे आवंटन से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाए और अर्थव्यवस्था को विकास की ओर ले जाने के लिए समुचित समाधानों की खोज की जाए। बहुस्तरीय सरकार होने के कारण यह आवश्यक है कि राजय स्तरीय विकास प्रवाहों का विकसित होने की जरूरत है। इससे संबंधत कई प्रकार की समस्याओं एवं प्रश्न है, जिनका अध्ययन वर्तमान में लोक–वित्त का एक महत्वपूर्ण माना जाह`।

## 1.9 बजटीय वर्गीकरण (Budgetary classifications):-

आम बजट के प्रभाव का आंकलन हेतु बजट प्रस्तुति के कई नए प्रकारों की संरचना की जाती है, जैसे–भारत सरकार की बजटीय प्राप्तियाँ और बजटीय वितरण की तीन विधियाँ है–पहली भारत की समेकित निधि, दूसरी भारत का लोक खाता और तीसरी आकस्मिकता निधि। इसके साथ ही देश की समस्त प्राप्तियों और वितरणों को लोक–वित्त और पूँजी खातों में वर्गीकृत किया जाता है। भारत सकार की अब तक की वजट नीति में मिश्रित प्रभ्ज्ञाव देखने को मिलते है। भारत की बजट नीति आर्थिक विकास के साधनों को गतिशीलता बनाने का ध्यान रखा जात है। भले ही आय की असमानता व मूलयों में निरतर वृद्धि जारी रही है, फिर भी सरकार का यह प्रयास होता है कि एकाधिकार एवं आर्थिक केन्द्रीकरण कम से कम हो। प्रत्येक बज्ट में कोशिश की जाती है कि भारत में बेरोजगारी समस्या हाल हो सके और आर्थिक विकास को गति मिले। इसके लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों एवं योजनओं पर व्यय किया जाता है। उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लोक वित्त के अन्तर्गत उपर्युक्त विभागों का आपस में सह–सम्बन्ध है, अर्थात एक–दूसरे से संबंधित है। इनका अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। ये विभाग एक–दूसरे के पूरक की भूमिका में है। इन सभी विभागों के सामंजस्य से अधिकतम सामाजिक लाभ एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति सम्भव है।

## 1.10 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (Principle of Mazimum Social Advantage ):-

लोकवित्त का उद्देश्य है कि समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसलिए डाल्टन के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को 'अधिकतम सामाजिक सिद्धान्त कहा गया है। जबकि प्रो0 पीगू इस सिद्धान्त को कुल अधिकतम कुल कल्याण का सिद्धान्त कहते है। वर्तमान में दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जिसका उद्देश्य समाज को अधिकतम सुख–सुविधाएँ पहुँचाने का न हों। ऐसी स्थिति में एक ऐसे सिद्धान्त की खोज करना आवश्यक होता है, जो कि लोकवित्त के दोनों क्षेत्रों पर लागू हो। यह नियम

उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। धन की वृद्धि के साथ उसकी उपयोगिता घटती जाती है तथा धन की मात्रा कम होने पर उपयोगिता बढ़ती जाती है। डाल्टन के अनुसार–'' यह नियम राजस्व के मूल मे विद्यमान रहता है तथा राजस्व की सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिसमें राजकीय आय–व्यय संबंधी कार्यों के फलस्वरूप अधिकतम लाभ होता है।''[5] लोक वित्त की सभी क्रियाओं से क्रय–शक्ति का हस्तान्तरण है जिसके परिणामस्वरूप अधिक साधनों के उपयोग में भी परिवर्तन होात है। सरकार कर तथा अन्य रूप में हर व्यक्ति से क्रय शक्ति लेती है और उसे पुनः लोक–व्यय के रूप में हर व्यक्ति को हस्तान्तरित कर देती है राज्य जब हर व्यक्तिओं से कर लेता है तो उनको कुछ त्याग करना पड़ता है। इसके विपरीत, लोक–व्यय से हर व्यक्ति को लाभ अथ्वा सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार सीमान्त सामाजिक व्याम की मात्रा सीमान्त सामाजिक सन्तुष्टि की मात्रा के बराबर होने पर अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अतः राज्य को सार्वजनिक व्यय उसी सीमा तक बढ़ाने चाहिए जहाँ पर व्ययों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता करारोपण के सीमान्त त्याग के बराबर न हो जाए। अधिकतम सामाजिक लाभ को निम्नवत तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिक

| कर व व्यय की इकाई | 'कर' से होने वाला सामाजिक त्याग | 'सार्वजनिक व्यय' से होने वाली सामाजिक उपयोगिता |
|---|---|---|
| 1 | 10 | 55 |
| 2 | 15 | 45 |
| 3 | 20 | 35 |
| **4** | **25** | **25** |
| 5 | 30 | 15 |
| 6 | 35 | 5 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जैसे–जैसे हर व्यक्ति पर कर–भार बढ़ता है वैसे–वैसे सामाजिक त्याग में वृद्धि होती हैं। उपयोगिता हृास नियम की प्रवृत्ति के कारण ऐसी सिीति उत्पन्न होती है। तालिका के अनुसार अधिकतम सामाजिक लाभ चौथी इकाई पर है। साधारतणतः चौथी इकाई के बाद सरकार को 'कर' नहीं लगाना चाहिए। अगर सरकार इससे आगे 'कर' लगाये जायेगे तो सामाजिक त्याग 25 बढ़कर 30 तक पहुँच जायेगा और सामाजिक लाभ 25 से घटकर 15 हो जायेगा। इस चौथी इकाई पर लाभ और तरूाग आपस में बराबर है। यह सूच्य है कि करारोपण की पहली, दूसरी, तीसरी इकाई के त्याग से व्यय की गई राशि से मिलने वाला लाभ अधिक है। इस प्रकार करारोपण उस बिन्दु तक किया जाए जहाँ पर व्याम और लाभ दोनों बराबर है। अतः इस बिन्दु तक कर लगाना सामाजिक हितों के अनुकूल होगा। इस सिद्धान्त की रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

अब रेखा लोक व्यय की सीमान्त उपयोगिता को प्रकट रती है। तथा स द रेखा करों की सीमान्त अनुपयोगिता को प्रकट करती है। इन रेखाओं की प्रवृत्ति से स्पष्ट होता है कि जैसे–जैसे लोक व्यय बढ़ता जाता है, उससे प्राप्त सामाजिक लाभ अथवा उपयोगिता बढ़ती चली जाती है और करों की मात्रा बढ़ने के साथ–साथ उनसे हुई अनुपयोगिता बढ़ती चली जाती है। ये दोनों रेखाएँ उ बिन्दु पर मिलती है। इसी बिन्दु पर सामाजिक लाभ अधिकतम होगा। कर तथा व्यय इससे कम अथवा अधिक होने पर अनुपयोगिता अधिक तथा उपयोगिता कम होगी। अतः कर व व्यय की मात्राएँ उ म के बराबर रखना ही अधिक उपयुक्त होगा। अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति हेतु समसीमान्त उपयोगिता नियम का पालन करना आवश्यक है। राज्य द्वारा इस प्रकार व्यय किया जाना चाहिए जिससे प्रत्येक मद पर किये गये व्यय की अन्तिम इकाई से समान उपयोगिता मिले। विशेषकर सरकारों को यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी करों के लिए अलग–अलग सीमान्त त्याग समान हो। अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त इस बात को भी स्पष्ट करता है कि सरकार को किस सीमा तक आय व व्यय

का संचालन करना चाहिए। सार्वजनिक व्यय की मदों को इस प्रकार विभाजित करना चाहिए कि मद पर व्यय की जा रही राशि, उससे मिलने वाला सामाजिक लाभ बराबर हो। आचरण समसीमान्त उपयोगिता नियमानुसार दो। तभी हर व्यक्ति को अधिकतम लाभ मिलेगा। उदाहरण के तौर पर यदि कोई राष्ट्र विकसित हो या विकासशील इनकी अपनी–अपनी समस्याएँ हाती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक समस्या से उसे समान उपयोगिता नही मिल सकती है। हो सकता है कि किसी देश में समस्याएँ युद्ध, शिक्षा, स्वास्थ्य की है। अब यदि सरकार युद्ध पर अधिक व्यय कर दे और शिक्षा, स्वास्थ्य पर कम व्यय करे, तो इससे समाज का अधिकतम कल्याण नहीं होगा। अतः सरकार तभी अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकती है जब वह सभी समस्याओं पर बराबर व्यय करें। इसके अतिरिक्त अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त यह भी व्याख्या करता है कि आय के विभिन्न स्त्रोतों में करों का निर्धारण किस प्रकार किया जाए कि सामाजिक त्याग न्यूनतम हो। किसी मद में करों के लगने सीमान्त त्याग दूसरे मद की अपेक्षा अधिक होता है, तो सरकार का यह दायित्व है कि वह पहली मद में कर–भार कम कर दूसरी मद में समायोजित कर दे। इस प्रकार से सामाजिक त्याग में अवश्य कमी आयेगी। सरकार यह भी कर सकती है कि धनी व्यक्तियों की अपेक्षा निर्धनों पर कर–भार कम कर देने से सामाजिक त्याग में बहुत कमी आयेगी।

**डाल्टन का मत है** कि ''एक समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने की दो शर्तें हैं– पहली उत्पादन में वृद्धि ; दूसरी, जो उत्पादित हुआ है, उसके वितरण में विकास करना।''[6]

उत्पत्ति में वृद्धि लाने के लिए जरूरी है कि–

1. उत्पादन शक्ति में वृद्धि लानी होगी, जिससे न्यूनतम प्रयासों के फलस्वरूप प्रति श्रमिक अधिक उत्पादन सम्भव हो सके;
2. उत्पादन संगठन में विकास करना, जिससे बेरोजगारी व अन्य कारणों आदि से आर्थिक साधनों क्षय को न्यूनतम किया जा सकें;

3. उत्पादन के ढाँचे या निर्माण में वृद्धि करना जिससे समाज की आवश्यकताओं को उत्तम ढंग से पूर्ण किया जा सके।

**डाल्टन का मत है कि** '' वितरण के विकास के संबंध में डाल्टन का विचार है कि–

1. सभ्य समाज में व्यक्तियों एवं परिवारों की आय के उच्चावचनों को कम करना होगा;
2. समाज के निर्धन वर्ग के व्यक्तियों विभिन्न समयावधि को आय के उच्चावचनों को कम करना होगा।

''वर्तमान में एक सुसंगठित समाज में सामन्यतया पूर्ण रोजगार को ही प्रथम आर्थिक उद्देश्य माना गया है।''[7] इससे उत्पादन में वृद्धि होती है। भविष्य पर समुचित ध्यान देना लोक–वित्त की क्रियाओं के लिए आवश्यक है। सरकारों को वर्तमान में कम लाभ की अपेक्षा भविष्य में अधिक लाभ को प्राथमिकता देने की महती आवश्यकता है। इस संबंध श्रीमती उर्सला हिक्स का विचार है कि–'' लोक वित्त की नीति तथा कार्य दो बातों के आधार पर निश्चित किये जाने चाहिए– पहला, उत्पादन स्तर; तथा दूसरा, उपयोगिता – स्तर। इस प्रकार, लोक–वित्त का उद्देश्य न केवल उत्पादन को अधिकतम करना बल्कि अधिकतम उपयोगिता अथवा सन्तुष्टि के आदर्श को प्राप्त करना भी होना चाहिए।''[8]

## 1.11 प्रो0 मसग्रेव के विचार (Views of Musgarave):-

डाल्टन ने बताया कि सरकार आय व व्यय के सामूहिक परिणामस्वरूप में समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अर्थव्यवस्था का प्रबन्धन ऐसा होना चाहिए, जिससे समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस संबंध में प्रो0 पीगू का मत है कि–'' जहाँ तक राजनीतिक सिद्धान्त का संबंध है, अधिकतम सामूहिक कल्याण प्रत्येक स्थान पर होयही राज्य का सही उद्देश्य होना चाहिए।''[9] प्रो0 मसग्रेव के द्वारा डाल्टन एव पूमू के विचारों पर विचार प्रकट किये

हैं। प्रो0 मसग्रेव का मत था कि ऐसी तकनीक का विकास किया जाए, जिससे व्यक्ति सामाजिक वस्तुओं के प्रति अपने अधिमान को प्रकट कर सकें। प्रो0 मसग्रव के अनुसार –

1. साधनों को विभिन्न जन–उपयोग मे वितरित किया जाना चाहिए।
2. राजकीय व्यय को केवल उसी बिन्दु तक संपन्न करना चाहिए, जिस पर कि अन्तिम इकाई से प्राप्त होने वाला सीमान्त सामाजिक लाभ उस सीमान्त सामाजिक त्याग के बराबर हो जो कर के रूप में द्रव्य की अन्तिम इकाई देने में किया जाता है। प्रो0 मसग्रेव के विचार को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में सार्वजनिक व्यय अ, अ रेखा द्वारा दिखाया गया है। तथा करों के रूप में त्याग को ब रेखा के द्वारा दिखाया गया है। इन दोनों ही स्थितियों में उपयोगिता क्रमशः कम होने से गिरती हुई रेखा बनायी गई है। न, न रेखा ब, ब में से अ, अ को घटाने से प्राप्त होती है, जो शुद्ध बचत को दर्शाती है। बजट का अनुकूलतम आकार ᑫ म पर निर्धारित होता है। जहाँ पर सीमान्त शुद्ध लाभ शून्य हो जाता है। करों के रूप में न्यूनतम त्याग विचार सार्वजनिक व्यय के रूपमें अधिकतम लाभविचार से मेल खाता है, और यह दोनों विचार बजट नियोजन के सामान्य सिद्धान्त में सम्मिलित हो जाते है। व्यवहार में त्याग व उपयोगिता को मापने में कठिनाइयाँ आती है लेकिन उसे व्यक्तिगत के आधार पर दूर किया जा सकता है।

## 1.12 श्रीमती उर्सला हिक्स (Views of Mrs Hicks):-

श्रीमती हिक्स के अनुसार – राजस्व से संबंधित किसी नीति का निर्माण करते वक्त दो बातों को आधार बनना चाहिए– उत्पादन स्तर दूसरा, उपयोगिता स्तर।

1. **उत्पादन स्तर :–** श्रीमती हिक्त का कहना है कि प्रत्येक आर्थिक नीतियों का अन्तिम उद्देश्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है, ताकि आवश्यकताओं की

सन्तुष्टि करने के साधनों का अधिकतम उत्पादन बढ़ाया जाए। इसी स्तर को 'उत्पादन स्तर' माना जाता है और यह उस समय प्राप्त किया जा सकता है जब उत्पादन के साधनों का विभाजन उपयुक्त ढंग से हो। यह भी सूच्य है कि अगर उत्पादन अधिक नहीं है तो वितरण व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो, लेकिन अधिकतम सामाजिक कल्याण में वृद्धि होना सम्भव नहीं है। श्रीमती हिक्स के शब्दों में–'' उत्पादन को अधिकतम करने की शर्त यह है कि उत्पन्न वस्तुओं के स्थिर रहने की दशा में, साधनों के विरण में परिवर्तन करके दूसरी वस्तुओं का उत्पादन कम किये बिना एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि करना असम्भव हो''[10] इससे स्पष्ट होता है कि उत्पादन को बढ़ाये बिना वितरण कितना भी न्यायोजित हो, पर समाज में अधिकतम सामाजिक कल्याण में वृद्धि होना सम्भव नहीं है।

2. **<u>उपयोगिता स्तर :–</u>** श्रीमती हिक्स के अनुसार –'' उपयोगिता उस समय अधिकतम होगी, जबकि एक व्यक्ति की संतुष्टि को दूसरे व्यक्ति की सन्तुष्टि को कम किये बिना ही बढ़ाना सम्भव हो, जबकि क्षतिपूर्ण हेतु पूर्ण व्यवस्था की जा चुकी हो।''[11] इससे स्पष्ट होता है कि वस्तुओं का वितरण ऐसा होना चाहिए कि एक व्यक्ति की सन्तुष्टि में वृद्धि हो , तो अधिकतम सामाजिक कल्याण को सम्भव बनाया जा सकता है। इस संबंध में श्रीमती हिक्त कहती है कि–''उत्पादन को अधिकतम करना 'उत्पादन अनुकूलतम' साधनों के आबंटन से संबंधित है, उत्पादन को अधिकतम करने की शर्तें यह हैं कि उत्पादन की दी हुई व्यवस्था के अन्तर्गत यह असम्भव रहेगा कि घटकों का पुनः आबंटन करके एक वस्तु के उत्पादन को दूसरी वस्तु को घटाये बिना बढ़ाया जाए।''[12] श्रीमती हिक्त के विचार में व्यावहारिकता छोड़कर सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर ही बल दिया गया है। इस विचार को व्यवहार मे लागू करने पर पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता होती है।

## 1.13 अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की आलोचनाएँ अथवा व्यावहारिक कठिनाइयाँ (Practical Diffieculties or criticism of principle of maximum social advantage):-

**डाल्टन के अनुसार –**" यह सिद्धान्त सरल है, स्पष्ट एवं शोधपूर्ण है परन्तु इसका व्यावहारिक दृष्टिकोण बहुत कठिन है।"[13] सिद्धान्त की कठिनाइयाँ निम्नवत है–

1. करों के द्वारा सीमान्त त्याग करना सार्वजनिक व्यय द्वारा उत्पन्न सीमान्त उपयोगिता की माप करना तथा इनमें सन्तुलन बिन्दु प्राप्त करना व्यावहारिक रूपसे अत्यधिक कठिन है। एक राष्ट्र के लोगों को प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता और सीमान्य अनुपायोगिता का आंकलन करना तथा इन दोनों में सन्तुलन स्थापित करना तथा इन दोनों में सन्तुलन स्थापित करना राज्य के लिए एक बहुत जटिल समस्या है। कर–वसूली तथा सार्वजनिक व्यय का कार्य सरकारों के द्वारा विभिन्न स्थानों एवं विभागों पर किया जाता है। अतः राज्य के लिए यह असम्भव कार्य है कि वह अनुपयोगिता तथा उपयोगिता का पूरा–पूरा ब्यौरा तैयार कर उनमें संतुलन स्थापित करें।
2. करों से उत्पन्न होने वाली अनुपयोगिता तथ लोक–व्यय द्वारा प्रापत होने वाली उपयोगिता का अनुमान लगाना सम्भव हो जाए तो भी यह जानना अत्यन्त कठिन होगा कि प्रत्येक कर का पृथक–पृथक रूप में कितना–कितना भार पड़ा और प्रत्येक मद पर किये गये व्यय से कितनी संतुष्टि प्राप्त हो सकी है।
3. लोक व्यय , भविष्य आधारित होता है जबकि करों के कारण त्याग तत्काल करना पड़ता है। भविष्यकालीन लाभ एवं वर्तमान त्याग के आधार पर अधिकतम सामाजिक लाभ का आंकलन करना अव्यवहारिक है। भविष्य की उपयोगिता का सही अनुमान लगाना असम्भव व कठिन है, साथ ही राज्य की क्रियाएँ आर्थिक एवं गैर–आर्थिक दोनों उद्देश्यों से प्रभावित होती है।

4. यह कि करों से उत्पन्न तयाग कभी–कभी समाज के लाभकारी भी होते हैं। नशीली वस्तुओं के प्रयोग पर कर लगाने से उनके उपयोग में कमी आती है और समाज को हानि की जगह लाभ होता है।
5. यह भी सूच्य है कि कर तथा सार्वजनिक व्यय का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गो पर अलग–अलग पड़ता है। यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किस वर्ग पर कितना लाभ–हानि हुई होगी।

## 1.14 राजस्व का उद्देश्य तथा महत्व (Objectives and Importance of public finance) :-

1. राज्य की गोपनीयता को बनाये रखने के उद्देश्य से राष्ट्रीय हित के कार्यों को स्वयं संचालित करने पड़ते है। अन्यथा की स्थिति में राष्ट्र की स्वतन्त्रता खतरें में पड़ सकती है, जैसे– देश के सैनिक से संबंधित योजनाओं, राष्ट्र क रक्षा संबंधित योजनाएँ, का संचालन सरकार स्वयं करती है, इसे साथ आर्थिक उच्चावचन को रोकने में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
2. सरकार को लोक हित में कार्य करना पड़ते है। वर्तमान समय में राज्य का क्षोभ बड़ा होने के कारण अतिरिक्त आय की आवश्यकता होती है, जिससे साख एवं मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इसलिए साख–मुद्रा के प्रसार को नियंत्रण को रोकने का लोक–वित्त का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है।
3. वर्तमान समय में लोक वित्त का असर जनता के जीवन में पड़ता है जबकि प्राचीनकाल में लोकवित्त का उद्देश्य धन प्राप्ति तक ही सीमित था। लोकवित्त की क्रियाओं से वर्तमान समय में उत्पादन, रोजगार, आय–स्तर पर असर पड़ता है, साथ ही आय की असमानता को सरकार अपने वितरण के माध्यम से दूर करने का भी लोकवित्त का उद्देश्य बन गया है।
4. लोक कल्याणकारी कार्यो को संपादित कार्य राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। राज्य का दायित्व है कि लोक कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से जनता के जीवन स्तर में सुधार हों। लोक कल्याणकारी योजनायें जैसे–सामूहिक बीमा,

वृद्धावस्था पेन्शन, स्वास्थ्य बीमा, सामाजिक सुरक्षा, खाद्याान्न सुरक्षा , निर्धनों को विशेष छूट, अनिवार्य शिक्षा, बच्चो का भोजन , व्यवस्था आदि पर सरकार विशेष ध्यान देती है। कल्याणकारी योजनाओं के कारण राज्य का दायित्व बढ़ने लगा है। जिससे लोक वित्त के कार्य क्षेत्र में भी वृद्धि हो गई है। वर्तमान में विश्व में कल्याणकारी योजनाओं का महत्व बढ़ गया है। प्रत्येक राष्ट्र कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से आन्तरिक एवं बाहय सुरक्षा व्यवस्था बनाये रखने का प्रमुख उद्देश्य है। इसक परिणाम स्वरूप राजस्व को महत्व बढ़ गया है।

5. विश्वव्यापी मन्दी के बाद स्पष्ट हो गया था कि बिना सरकारी हस्तक्षेप के रोजगार की कोरी–कल्पना है। वर्तमान में सरकार के द्वारा संचालित योजनाओं को लोकवित्त के अन्तर्गत रखा व्यथा जाता है। लोकवित्त से सरकार का ध्यान आकर्षित करती है कि साधनों के अभाव में प्रशुल्क नीति अचनाकर, एक राष्ट्र अपना आर्थिक वकास कर सकता है। वर्तमान में देशों के द्वारा आर्थिक विकास हेतु घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाते है, साथ ही लोक वित्त यह भी स्पष्ट करता है कि इसे कैसे नियंन्त्रित किया जा सकता है।
6. राजस्व की क्रियाओं के माध्यम से सरकारें आर्थिक नियोजन को सफल बनाती है। जहाँ पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण रहात है। राज्य के कार्यों में वृद्धि एवं आर्थिक क्रियाओं में वृद्धिद्ध के कारण लोकवित्त का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है। राज्य आर्थिक विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं के हेतु करारोपण के माध्यम से आर्थिक असमानता को दूर करने में सफलता मिलती है। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जाती है। प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के लक्ष्य एवं विषमताओं के निराकरण हेतु अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का अनुपालन करती है।

## 1.15 सारांश :–

अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता कर–भार के त्याग के  बराबर होना चाहिए साथ ही

विभिन्न साधनों पर लगाये गये कर भार से उत्पन्न सीमान्त त्याग बराबर होना चाहिए तथा विभिन्न उपयोगों पर सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बराबर होना चाहिए। हम कह सकते है कि इस सिद्धान्त में दिये गये सुझााव उपयोगी होने के बावजूद सरलता से नहीं  अपनये जा सकते है। सैद्धांतिक और मात्रीकरण दोनों स्तरों पर त्रुटियाँ विद्यमान है। फिर भीर सरकार अपने बजटीय नीतियों का मूल उद्देश्य समाज के कल्याण में विशुद्ध लाभ बढ़ोतरी ही होना चाहिए और इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक स्तर पर कुछ कसौटियाँ की खोज हमेशा जारी रखी जाना चाहिए। सरकार को सर्वप्रथम विभिन्न बजटीय नीतियों और गतिविधियों के समाज और अर्थव्यवस्था पर होने वाले प्रभावों की जानकारी प्राप्त कर, अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संभावनाओं पर भी विचार किया करना चाहिए। इस तरह से पूरी तथ्यात्मक जानकारी के बाद, बजटीय नीतियों को समाजपयोगी बनाया जा सकता है। बजटीय प्रक्रिया में करों के चयन, कुल राजस्व का कर, कर भिन्न घटकों में वितरण आदि सभी प्रकार के प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार के पश्चात उसमें संशोधन किये जा सकते है। जिससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो सकें। बजट के विभिन्न कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन की सहायता से बजटीय निर्धारण, कार्यान्वयन, मूल्यांकन में कई प्रकार के सुधारों द्वारा अधिकतम सामाजिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। सार्वजनिक बजट का आकार कई आर्थिक और गैर–आर्थिक कारकों पर निर्भर करता है। बजट को अधिक कल्याणकारी हेतु सरकार की अपनी प्रशासनिक क्षमता, समाज का संस्थागत ढाँचा, बजटीच उद्देश्य एवं उनकी व्यावहारिकता आदि कायोगदान होता है। व्यावहारिकता की दृष्टि से बजटीय राजस्व और व्यय की प्रत्येक मद के सभी आयामों पर अध्ययन कर दी तय किया जाना चाहिए कि बजट का आकम् और औचित्य कितना होना चाहिए, जिससे समाज का अधिकतम कल्याण सुनिश्चित किया जा सकें। वर्तमान समय में देश के आर्थिक ढाँचे में लोकवित्त का महत्व बढ़ गया है। राजकीय व्यवस्था की सर्वोत्तम प्रणाली वही है जो देश के उत्पादन में उन्नति करके उसके वितरण में भी सुधार करे। डाल्टन ने यूनानी में कहा–''सरल चीजें नहीं, वरन कठिन चींजे ही सुन्दर हुआ करती हैं।''उस संबंध में कॉलरिज ने कहा कि– ''सूरज

नदियों, झीलो व समुद्रों आदि से पानी लेकर बगीचों, खेतों आदि काम के स्थानों पर वर्षा के रूप में डालता है, पर वह बगीचों, खेतों आदि नमी खींचकर समुद्रों, झीलों, नदियों आदि बेकार स्थानों पर भी डाल सकता है।''

## 1.16 शब्दावली :–

विशुद्ध हित (Net Benefit) सिद्धान्त की कसौटियाँ (Test of the Principle) आर्थिक कल्याण (Economic welfare) सामाजिक लाभ (Social Benefit) कार्यक्रम और निष्पादन बजट (Programme and performance budgeting) सीमान्त सामाजिक त्याग (Marginal Social Sacrifice) सीमान्त सामाजिक सन्तुष्टि (Marginal Social Satisfaction) अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Advantage)

## 1.17 प्रश्न उत्तर (Question-Answer)

1. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को समझाइये।
2. ''राजस्व की सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिसके अन्तर्गत राज्य अपने कार्यों द्वारा अधिकतम समाजिक लाभ्ज्ञ प्राप्त कर सकता है।'' डाल्टन के कथन की व्याख्या कीजिए।
3. लोकवित्त के उद्देश्य पर अपने विचार दीजिए?
4. लोकवित्त की विषय सामग्री पर विचार प्रकट कीजिए?
5. राजस्व के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
6. प्रो0 मसग्रेव के विचारों की व्याख्या कीजिए।
7. श्रीमती उर्सला हिक्स के विचार पर टिप्पणी कीजिए।
8. सार्वजनिक व्यय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
9. सार्वजनिक आय की विवेचना कीजिए।
10. सार्वजनिक ऋण पर एक निबंध लिखें।

11. वित्तीय प्रशासन पर विचार रखें।
12. आर्थिक स्थायित्वीकरण पर एक लघु लेख लिखिए।
13. लोक–उद्यम पर एक लघु निबंध लिखिए।
14. संघीय वित्त पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
15. बजटीय वर्गीकरण पर एक लघु निबंध लिखिए?
16. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिान्त को संक्षेप में बताइये?
17. लोक अर्थशास्त्र के अंगों पर एक निबन्ध लिखिए?

## 1.18 वस्तुनिष्ठ प्रश्न–उत्तर :–

1. अधिकतम सामाजिक कल्याण किस बिन्दु पर होता है?

   क. सामाजिक त्याग और सामाजिक उपयोगिता के बराबर होने पर,

   ख. सामाजिक उपयोगिता सामाजिक त्याग होने से अधिक होने पर,

   ग. सामाजिक त्याग के सामाजिक उपयोगिता से अधिक होने पर,

   घ. उपर्युक्त में कोई नहीं।

   उत्तर – (अ)

2. निम्न में से लोकवित्त के कौन–से चार विभाग है?

   क. सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, राजकोषीय व्यवस्था

   ख. उपभोग, विनिमय, वितरण तथा लोकवित्त

   ग. भूमि, श्रम, पूँजी, साहस

   घ. राष्ट्रीय आय, व्यक्तिगत आय, उपभोग, वितरण

   उत्तर – (अ)

3. समाज को प्राप्त कुल उपयोगिता कुल त्याग से होती है।

   क. समान ख. कम ग. अधिक घ. ऋणात्मक

4. प्रत्येक कर की सीमान्त उपयोगिता विभिन्न स्तरों पर होनी चाहिए?

क. समान ख. असमान ग. अधिक घ. कम

उत्तर – (अ)

5. उपयोगता व त्याग को मापना हैः

क. असमभव ख. सम्भव ग. सरल घ. अतुलकीय

उत्तर– (अ)

6. अधिकतम सामाजिक लाभ के आधार हैः

क. आर्थिक कल्याण ख. उपभोग ग. विनिमय घ. पूँजी

उत्तर–(अ)

7. श्रीमती हिक्स के विचार के मुख्य बातें हैः

क. शान्ति ख. सुरक्षा ग. पूँजी घ. उत्पादन व उपयोगिता

उत्तर– (द)

8. श्रीमती हिक्त के अनुसार राजस्व की नीति को निर्मित करते समय किन दो बातों को आधार बनानाचाहिएः

क. उपभोग का स्तर, पूँजी का स्तर

ख. रोजगार का स्तर, आय का स्तर

ग. उत्पादन का स्तर, उपयोगिता का स्तर

घ. इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स)

9. क्रारोपण की सीमान्त अनुपयोगिता विभिन्न स्तरों पर होनी चाहिएः

क. अधिक ख.कम ग. समान घ. असमान

उत्तर – (स)

10. व्ययों की सीमान्त उपयोगिता प्रत्येक स्तर पर होनी चाहिएः

क. समान ख. असमान ग. बराबर घ. इनमें से कोई नहीं

उत्तर – (अ)

11. डाल्टन के मतानुसार ''एक समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने की दो शर्ते हैः

क. उपभोग विनियोग में विकास में वृद्धि

ख. उत्पाद में वृद्धि , वितरण में विकास

ग. उपर्युक्त (अ) व ब दोनों

घ. इनमें से कोई नहीं उत्तर (ब)

12. डाल्टन का सिद्धान्त किस नियम पर आधारित हैः

क. सम–सीमान्त उपयोगिता नियम

ख. उपयोगिता ह्रास नियम

ग. उपभोक्ता बचत नियम

घ. इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ब)

13. कर लगाने से नागरिकों की क्रय शक्ति होनी चाहिए?

क. अधिक ख. कम ग. समान घ. असमान

उत्तर (ब)

14. ''सरल चीजें नही, वरन् कठिन चीजें ही सुन्दर हुआ करती है।'' यह कथन किसका है।

क. डाल्टन ख. श्रीमती हिक्त ग. एडम स्मिथ घ. पीगू

उत्तर (अ)

15. लोक संस्थाओं से अभिप्राय है–

क. केन्द्रीय सरकार ख. राज्य सरकारें ग. स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ

घ. उपर्युक्त सभी

उत्तर (द)

16. लोकवित्त में कौन–सा सिद्धान्त अधिक तर्कपूर्ण है?

    क. न्यूनतम सामूहिक त्याग सिद्धान्त

    ख. न्यूनतम कर सिद्धान्त

    ग. मितव्यायता का सिद्धान्त

    घ. अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त

**1.19 संदर्भित ग्रन्थ सूची :–**


1. Dalton, Principles of public , P-03
2. Financing Government, 5th edn. P.1
3. लोक अर्थशास्त्र, जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
4. मुद्रा, बैकिंग एवम लोक वित्त, डॉ0 टी0टी0सेठी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
5. Dalton, Public finance, PP-09-10
6. Dalton , o[, cit.p.8
7. Dalton , o[. cit. 8.9
8. मुद्रा बैकिंग एवं लोकवित्ता, डॉ0 टी0टी0 सेठी लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
9. लेक अर्थशास्त्र, जे0सी0पन्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
10. U.Hicks. Public Finance, P. 121.
11. राजस्व, वार्ष्णेय एवं श्रीवास्तव, साहितय भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्री व्यूटर्स, आगरा।
12. U. Hicks Public finance p-12
13. राजस्व, वार्ष्णेय एवं श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स आगरा , 24

## खण्ड – 01

## इकाई – 03

# सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त (Theory of Social Goods)

**1.0 परिचय :–** बजट नीति के आंबटन कार्यों का विश्लेषण हेतु सामाजिक वस्तुएँ व उससे संबंधित सिद्धान्त एक आधार प्रस्तुत करता है। यह भी सूच्य है कि यह विश्लेषण कठिनआयों से घिरा हुआ है, जिसे मापा जाना सम्भव नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र के अर्थशास्त्र से सामाजिक वस्तु का महत्व है, जितना निजी क्षेत्र के अर्थशास्त्र में उपभोक्ता एवं फर्म के सिान्त का महत्व है। व्सतुए वास्तविक उपभोग योग्य उत्पाद, सामग्री और माल को संदर्भित करती है। वस्तुओं की भौतिक विशेषताएं जैसे कि आकार, रूप, परिमाण, वनज आदि होते है। कुछ वस्तुओं को उपभोक्ता द्वारा एक बार उपयोग के लिए बनाया जाता है, जबकि कुछ का उपयोग बार–बार किया जा सकता है। वस्तुओं का बाजार में व्यापार किया जाता है। वस्तुओं के उत्पादन, वितरण और खपत में समय अन्तर होता है। जब खरीदार वस्तु खरीदता है और कीमत चुकाता है, तो वस्तु का स्वामित्व विक्रेता से खरीदार के पास चला जाता है। वस्तुएँ समूह में निर्मित होती हे। तथा पूरे समूह में वस्तुएँ एक जैसी होती है। इस तरह, कम्पनी द्वारा पेश की गई एक विशेष वस्तु में , पूरे बाजार में, समान विशेषताएँ , जैसे कि–किताबें, पेन, बोतलें, बैग आदि शामिल है। पूँजीवाद के जोर पकड़ने से पहले राज्य समाज की गतिविधियों में चयि लिया करते थे। इसकी मूल वजह यह भी थी कि आम जनता बाजर–व्यवसाी से अपेक्षित लाभों की जानकारी नहीं थी। जैसे–जैसे पूँजीवाद के विकास के साथ–साथ सरकारी हस्तक्षेप की हानियों की जानकारी में भी वृद्धि होती गई। इससे यह स्पष्ट हो गया कि हस्तक्षेप से अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को ठेस पहुँचती है। इसके फलस्वरूप यह स्वीकार किया जाने लगा कि राज्य की गतिविधियों को सीमित करना ही उचित होगा। इस प्रकार वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता हेतु राज्य का न होकर निजी क्षेत्र का जोना चाहिए। इस विचारधारा के प्रतिपादक एडम स्मिथ को माना जाता है। एडम स्मिथ ने राज्य के द्वारा हस्तक्षेप न करने

की नीति को एक सैद्धांतिक स्तर प्रदान किया एवं बाजार अर्थव्यवस्था को अनियन्त्रित रखने का समर्थन किया था। साथ ही एडम स्मिथ के अनुसार कुछ सेवाएँ अर्थात गतिविधियाँ तथा वस्तुएँ ऐसी होती है जो अर्थव्यवस्था के लिए अति आवश्यक होते हुए भी निजी क्षेत्र की क्षमता से परे होती है। इन वस्तुओं एवं सेवाओं की नियंत्रण के सरकार ही कर सकती है। एडम स्मिथ के मत में समयानुसार संशोधन होते–होते, सरकारी गतिविधियों की सीमाओं में अनेक प्रकार से विस्तार के औचित्य को मान्यता मिली। आर्थिक विचाकरों में इस धारणा को संशोधित करते हुये राज्य को हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस की गई। कम से कम राज्य किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं अर्थात समस्त समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। राज्य से यह आशा की जाने लगी कि वह समाज के अधिकतम समूह के लि सर्वाधिक संभव कल्याण प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेगा। वर्तमान स्थिति यह है कि बाजर व्यवस्था एवं अहस्तक्षेप की नीति की समर्थक सरकारें भी सामाजिक कल्याणकारी नीतियों के औचित्य को मान रही है। अद्यतन यह कल्याणकारी नीतियाँ हर सरकार के कार्यक्षेत्र का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। सरकार का यह प्रयास रहता है कि अर्थव्यवस्था में आय, रोजगार, मुद्रास्फीति, विषमता, से संबंधित समस्यायें न हो। सरकार की आर्थिक गतिविधियों में सामाजिक वस्तुओं अर्थात संवाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता जा रहा है। अनेक राष्ट्र ने इन उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उद्योगों और सेवाओं के राष्ट्रीयकरण का मार्ग भी अपनाया गया है। समय के साथ–साथ सरकारी क्षेत्र की सीमाओं के निर्धारण संबंधी आर्थिक और राजनीतिक विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहा है। वर्तमान में सर्वस्वीकृत विचार यह है कि सरकार को अपनी क्षमतानुसार वे नीतियों को अपनाना चाहिए, जिनका उद्देश्य समाज अधिकतम कल्याण हो। वर्तमान में सरकार का अब कर्तव्य बन गया है कि वह अर्थव्यवस्था में उच्चावन को रोकें तथा आय–रोजगार, गरीबी, मुद्रास्फीति, असमानता आदि की समस्याओं पर विचार करते हुये, स्थायी समाधान करें।

## 1.1मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवघारणा (Concept of mixed economy) :-

मिश्रित अर्थव्यवस्था में समाजवादी तथा उदारवादी दोनों तरह की अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताएँ निहित होती है। इसमें निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों की साझेदारी होती है। निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र का सहायक होता है; जैसे भारत की अर्थव्यवस्था ।दूसरे शब्दों में कह सकते है कि वे अर्थव्यवस्थाएँ जिसमें उदारवादी तथा निजी आर्थिक कारकों को प्रभाविकता रहती है तथा आयात–निर्यात पर न्यूनतम प्रतिबन्ध रहते हैं, उन्हे खुली अर्थव्यवस्था कहते हैं, जैसे– हाँगकाँग, सिंगापुर। ऐसी अर्थव्यव्था जो बाहय अर्थव्यवस्थाअें से किसी भी प्रकार से संबंध नहीं रखती है, साथ में आयात–निर्यात की गतिविधियाँ शून्य होती है एवं निजी क्षेत्र की भूमिका नगण्य रहती है, उन्हे बन्द अर्थव्यवस्था कहते है; जैसे– उत्तरी कोरिया। मिश्रित अर्थव्यवस्था में खुली एवं बन्द अर्थव्यवस्था, अपने विकास हेतु दोनों अर्थव्यवस्था का सहयोग लेते है। आवश्यकतानुसार न्यूनतम प्रतिबन्ध आयात निर्यात पर समयानुसार प्रतिबन्ध को हटा लिया जाता है, और आयात निर्यात भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है। ऐसी अर्थव्यवस्था न पूर्णतः बन्द, न पूर्णतः ,खुली अर्थात मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। उदारवादी अर्थव्यवस्था ऐसी अर्थव्यवस्था है, जहाँ आर्थिक गतिविधियाँ पर राज्य का न्यूनतम नियंत्रण होता है तथा निजी क्षेत्र अधिक प्रभावकारी एवं स्वतन्त्र होता है। यह अर्थव्यवस्था एडम स्मिथ के 'लेसजफयर' (Laissezfair) या अहस्तक्षेप के सिद्धान्तों पर कार्य करती है। इसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy) भी कहा जाता है। इसमें बाजार की शक्तियाँ अधिक प्रभावकारी भूमिका में होती है, जैसे–यूएसए, ब्रिटेन, फ्रांस की अर्थव्यवस्थाएँ। दूसरा पक्ष समाजवादी अर्थव्यवस्था। समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) राज्य की महत्वपूर्ण शक्ति होती है, जो राज्य की समस्त आर्थिक गतिविधियों को नियन्त्रित तथा निर्देश्ज्ञित करती है। यह उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की संकल्पना को लेकर चलती है तथा इसमें बाजारी शक्तियाँ नियंत्रित रहती है; जैसे– भूतपूर्व सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था। इस प्रकार कहा जा कसता है कि उदारवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवसाी के कारको के आवश्यकतानुसार उपयोग को मिश्रित अर्थव्यवस्था माना जा सकता है। सरल शब्दों में सार्वजनिक तथा निजी,

दोनों क्षेत्रों की साझेदारी होती है। इस प्रकार देखा जाए तो प्रत्येक आधुनिक अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित है। सरकार अपनी गतिविधियों के साथ–साथ निजी क्षेत्र को भी विभिन्न प्रकार से नियंत्रित करती है। वर्तमान में साधनों का आंवटन के बाजर व्यवस्था के हाथ में सीमित नहीं रहता है। वर्तमान में स्थिति ऐसी है कि सरकार आर्थिक नीतियाँ सर्वव्यापी दिखाई देती है। वर्तमान में आधुनिक अर्थव्यवस्था को निजी और सरकारी दोनों क्षेत्रों के अस्तित्व के कारण एक मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। यही स्थिति भारत में भी है। भारत में सरकार का विता व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय रिजर्ब बैंक सहित देश की वित्तीय संस्थाओं के एक बड़े भाग पर सरकार का स्वामित्व है। मुद्रा निर्माण भी भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक के हाथों तक ही सीमित है। बजटीय घाटों, उधार–नीति तथा अन्य ऐसे अनेक नीतिगत कारकों से सरकार अर्थव्यवस्था के संचालन को पर्याप्त रूप प्रभावित कर सकती है। विभिन्न प्रकार के राजस्व तथा व्यय संबंधी निर्णयों का प्रयोग नीति–निर्धारक–उत्पादानों के रूप में किया जाता है। इसके साथ सरकार देश की अर्थव्यवस्था को विभिन्न प्रकार से नियमित और नियंत्रित करने में लगी रहती है, जिसका  प्रभाव इसके अपने राजस्व तथा व्यय आयामों पर भी पड़ता है। सरकारें यह भी जानती है कि सार्वजनिक आय–व्यय , ऋण तथा लोक उद्यम आदि ऐसे सक्षम हथियार हैं निजके द्वारा विभिन्न प्रकार की नीतियों की संरचना की जा सकती हैं सरकार का कार्यक्षेत्र केवल अर्थव्यवस्था में भागीदार बनने तक ही सीमित नहीं है; इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका यह भी है कि अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित करना भी है। ऐसी अर्थव्यवस्था जो केन्द्रीय आयोजन के द्वारा नियंत्रित न होकर बाजार व्यवस्था द्वारा संचालित होती है। वहाँ  भी अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने की आवश्यकता वर्तमान में सभी सरकारें करती है। अनियन्त्रित नहीं होते है। इसमें गिने–चुने लोगों के हाथ में आर्थ्रिक शक्ति केन्द्रित हो जाने की प्रवृत्ति होती है। इसमें उत्पादन, कीमतों तथा रोजगार स्तर आदि में चक्रीय उतार–चढ़ाव (Cyclical fluctuation) आते रहते है। औद्योगीकरण एवं शहरीकरण से सामाजिक समस्याएँ पैदा होती है। शहर में आम जनता के स्वास्थ्य, सफाई वआवास आदि के दोषयुक्त स्थिति में होने के साथ प्रदूषण तथा सामाजिक अपराधों में वृद्धि की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता हैं इसीलिए सरकार, सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा अवसंरचनात्मक

सुविधाओं का प्रबंध, पूंजी निर्माण में योगदान, श्रमिक–मालिक , औद्योकि सुरक्षा, चिकित्सा और जन–स्वास्थ्य, परिवार–कल्याण, प्रौद्योगिकी और पर्यावरण , परिवहन औरसंचार आदि शामिल हैं इसके अतिरिक्त सरकार के सामने आंतरिक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के साथ विदेशों के साथ आर्थिक एवं राजनीतिक संबंधों के कारण भी कुछ समस्याएँ होती हैं इन सब कारणों से सरकार अपनी आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि करती है। परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र की गतिविधियों को नियंत्रित की भी आवश्यकता होती है। इससे स्पष्ट है कि सरकार अपनी क्षमतानुसार आदर्श बजटीय नीतियों का चयन करें और कार्यन्वत करें, जिससे समाज को अधिकतम सामाजिक न्याय हो सकें।

## 1.2 उद्देश्य :–

1. सामाजिक वस्तुएँ से संबंधित सिद्धान्त बजट नीति के आबंटन कार्य विश्लेषण के लिए एक आधार को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।
2. सार्वजनिक क्षेत्र के अर्थशास्त्र में सामाजिक वस्तु के सिद्धान्त की महती आवश्यकता है।
3. समाज का सामाजिक हित हेतु सामाजिक वस्तुएँ के सिद्धान्त की महती आवश्यकता है।

## 1.3 सामाजिक वस्तु की अवधारणा ( Concept of Social Goods):-

सामाजिक वस्तुओं वह वस्तुऐं मानी जाती हैं जिनके उत्पादन होने से बाहन लाभ का सृजन होता है, और जिसका उपयोग समाज के प्रत्येक व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है। सामाजिक वस्तुओं काउत्पादन एक व्यक्ति के द्वारा किया जाने लगे, तो इसके लाभ बिखार जायेंगे। ऐसे विखराव प्रभाव द्वारा, उत्पादनकर्ता द्वारा बाहय लाभ प्रदान करने में संपत्ति का अधिकार स्थापित नहीं हो सकता है। ऐसे लाभ का विभाजन सम्भव नहीं है, और इसके लिए मूल्य नहीं लिया जा सकता लेकिन जो व्यक्ति मूल्य नहीं देते है, उन्हें भी इसके उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी वस्तु के उत्पादन में बाहय लाभ न होकर बाहय हानि हो जाती है, तो उसे सामाजिक हानि कहा जाता है। सामाजिक हानि

उन समस्त आर्थिक क्रियाओं को कहा जा सकता है, जिनके उत्पादन से समस्त बाहय लागतों का सृजन हो और जो जनसंख्या के बड़े भाग को प्रभावित करती हों।

## 1.4 जनहितकारी/उत्कृष्ट वस्तुएँ (Merit Goods):-

जनहितकारी वस्तुएँ वह कहलाती हैं, जिनसे प्राप्त लाभ आन्तरिक का बाहय होते है। लेकिन इनका उत्पादन की मात्रा का निर्धारण व्यक्ति के स्थान पर सरकार द्वारा किया जाता हैं। इन वस्तुओं की विशेषता यह है कि इनके उपभोग से न केवल उपभोक्ता, ही नही गैर–उपभोक्ता भी लाभान्वित होते है, जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, सुविधाएँ, प्रदूषण रहित एवं स्वच्छ वातावरण, शुद्ध खाद्य पदार्थ और पीने का साफ–सुथरा पानी आदि है। इससे स्पष्ट है कि इन वस्तुओं की उपलब्धि समाज के सभी वर्गों के लिए पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। परन्तु कठिनाई यह है कि यदि इनकी आपूर्ति का कार्यभार केवल बाजार–व्यवस्था पर छोड़ दिया जाए, तो इस लक्ष्य को प्राप्त करने की संभावना बहुत कम हो जाती है। ऐसा होने के कारण यह है कि बाजार–व्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन मात्राएँ उनकी अनुमानित कीमतों और उनसे अपेक्षित लाभ–आय के आधार पर तय की जाती है। लेकिन समाज के वे सभी वर्ग के सदस्य जिन्हें इस वस्तुओं की जरूरत है, वह बाजार भाव नहीं चुका सकते या चुकाना नहीं चाहते। ऐसी स्थिति में सरकार उनकी उत्पादन लागत का एक भाग वहन करें या निजी स्त्रोतों से होने वाली आपूर्ति के अतिरिक्त स्वयं भी उनके उत्पादन तथा उपलब्धि में सक्रिय भाग ले। इसके साथ ही सरकार जनहितकारी वस्तुओं की जरूरी मात्राओं को उपलब्ध कराने की संपूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना चाहिए।

## 1.5 सार्वजनिक वस्तुएँ (Pubic Goods):-

सार्वजनिक वस्तुएं समाज में सभी की आवश्यकताओं को सामूहिक रूप से पूरा करती हैं, जैसे–सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज के शक्ति, परिवहन, संचार, देश की सुरक्षा जैसी अवसंरचनात्मक सुविधाएँ सामूहिक जरूरतों को पूरा करती है। सामूहिक जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ सार्वजनिक वस्तुएँ कहलाती है। इनकी पूर्ति समाज कल्याण के उद्देश्य से देश के सभी नागरिकों के लिए होती

है। यह निजी वस्तुएं से भिन्न है क्योंकि इनका लाभ सभी लोगों को सामूहिक रूप से मिलता हे। साथ ही इन पर अपवर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। इन पर कीमत प्रक्रिया भी लागू नहीं होती हैं आय जन को इनसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ्ज्ञ होता है, एवं इनकी उत्पादन लागत का भार भी संपूर्ण समाज पर पड़ता है। इनके उपभोग की कोई निश्चित कीमत नहीं होती है, लेकिन इनके लिए सभी को अनिवार्य भुगतान करना पड़ता है। इनकी सीमान्त लागत सामान्यतः शून्य अथवा के आस–पास होती है, जैसे– एक पुल अथवा सड़क से यदि एक और मोटर वाहन निकलती है तो उस आंतरिक्त इकाई की कोई अतिरिक्त लागत नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि विकास की द्रष्टि से और नई सड़कों एवं पुल का निर्माण करना जरूरी हो सकता है। सीमान्त लागत शून्य होने पर औसत लागत गिरती है। सार्वजनिक वस्तुएं वा उपभेग जिनता अधिक लोगों द्वारा किया जायेग, उनकी औसत लागत उतनी ही कम होगी। इनके उत्पादन पर समान लागत नियम लागू होता है। इस प्रकार सार्वजनिक वस्तुएं का उपभोग देश में सभी लोग करते है। इनके उपभोग से कोई भी वंचित नहीं रहता, लेकिन इनके उपभोग के लिए प्रत्यक्ष रूप में कीमत नहीं चुकानी पड़ती है। कीमत प्रक्रिया उत्पादन और उपभोग के बीच संबंध स्थापित नहीं करती है, इसलिए सार्वजनिक वस्तुएं का उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा नहीं किया जाता है। इसीलिए सरकार के द्वारा किया जाता है।

सार्वजनिक वस्तुएं के उत्पादन के संबंध में दो बातें मूल रूप से है – पहली सरकार द्वारा इनका कितना उत्पादन किया जा; दूसरा इनकी उत्पादन लागता चुकाने में प्रत्येक उपभौकता का कितना अंशदान हो? इनमें से दूसरी बात का उत्तर अधिक जटिल है, क्योंकि यह निश्चित नहीं हो पाता है कि प्रत्येक व्यक्ति का इनके उपभोग में हिस्सा कितना है। इसके अतिरिक्त देश की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा किये गये व्यय से किसी एक व्यक्ति को कितना लाभ हुआ, इसका अनुमान लगाना असम्भव है। लोकवित्त के अन्तर्गत करेगी, जिससे समाज को अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति हो। एक स्वतंत्र बाजार में साधनों का अनुकूलतम आवंटन कीमत प्रक्रिया होता है। एक विकसित पूंजीवादी व्यवस्था में तो यहविचार किया जा

सकता है, लेकिन एक देश में जहाँ लोगों के निजी साधन सीमित हैं, वहाँ सरकार का दायित्व होगा कि समाजकी जरूरत के हिसाब से आपूर्ति के लिए आवश्यक उपाय करें।

## 1.6 निजी वस्तुएँ (Private Goods):-

निजी वस्तुएँ से आश्य उन सभी वस्तुएं एवं संवाओं से है, जिनका उपभोग लोगों द्वारा अपनी निजी अथवा व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है, जैसे–खाद्य पदार्थ, कपड़ा, मकान, संचान, मनोरंजन आदि के साध नही निजी वस्तुएं है। इन वस्तुओं की कीमतें बाजर में उनकी उत्पादन लागत तथा उनकी मांग के स्वरूप से आधार पर निर्धारित होती है। जो व्यक्ति बाजार की कीमत पर खरीदना चाहते है, वह खरीद सकते है,साथ ही व्यक्ति में खरीदने की क्षमता होती है। जिन लोगों में खरीदने की क्षमता नहीं होती है, वह न उपभोग से वंचित हो जाते है। साधारणतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन्हें खरीदना अनिवार्य नहीं है। इन वस्तुएँ का लोगों के बीच वितरण इनके लिए प्रभावपूर्ण–मांग तथा बाजार कीमतों पर निर्भर करता है। इस प्रकार कीमत प्रक्रिया लोगों को दो भोगों में बांट देती है, एक वे जो इनका उपभोग करते है, दो वह जो उपभेग नहीं करते है। इस प्रकार इन वस्तुओं पर अपवर्जन का सिद्धान्त (Principle of exclusion) प्रभावी होती है। कीमत प्रक्रिया समाज में कुछ लोगों को इनके उपभोग से वर्जित कर देती है। कीमत अथवा बाजार की प्रक्रिया उसस्थिति में प्रभावपूर्ण नहीं होती, जब निजीवस्तुएं केउत्पादन के साथ बाहातः (Externalities) की धारणा जुड़ी होतीहै, जो कि अनुकूल अथवा प्रतिकूल अथवा उत्पन्न करती है। यहां पर कहना चाहूँगा कि एक पिछड़े क्षेत्र में कोई उद्योगविकसित होता है तो इसे बाहतः के प्रभाव में आर्थिक लाभ मिलता है लेकिन यदि इस उद्योग की वजह से क्षेत्र में प्रदूषण बढ़ता है, तो इसका प्रतिकूल प्रीााव पड़ता है। बाहतः के कारण उत्पन्न होने वाले लाभ हानि की बाजार में कीमत नहीं लगायी जा सकती$^{\text{ै}}$। और न ही यह निश्चित किया जा सकता है कि किसको कितना लाभ या हानि हुई।

## 1.7 सार्वजनिक वस्तुओं एवं निजी वस्तुओं मे तुलना (Comparison Between Public Goods and Private Goods:-

1. सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन सरकार के द्वारा होता है, और इनका उत्पादन सामूहिक उभोग के लिए होता है जिस वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं है। इसके विपरीत निजी वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र के लोगों द्वारा किया जाता है और जिस पर वर्गन का सिद्धान्त लागू होता है।
2. यह कि सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ता के अधिमान को अभिव्यक्ति स्वतः नही होती है जबकि निजी वस्तुओं के संबंध में यह अभिव्यक्ति स्वतः होती है।
3. यह कि सार्वजनिक वस्तुओं काउपयोग सार्वजनिक होता है जबकि निजी वस्तुओं का उपयोग सामूहिक नहीं होता है।
4. यह कि व्यक्ति निजी वस्तु का भुगतान नही कर पाता है, और वह उस वस्तु के उपयोग से वंचित हो जाता है, जबकि सार्वजनिक वस्तु का उपयोग सभी व्यक्तिओं को समान रूप मिलता है, साथ ही मूल्य न देने पर भी व्यक्ति सार्वजनिक वस्तु से वंचित नहीं होता है।
5. यह कि निजी वस्तुओं की मांग एक दिये गये मूल्य के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त होता है, जबकि सार्वजनिक वस्तुओं की मांग अनेक उपभौकतओं द्वारा मांगी गई मात्राओं के लम्बवत योग द्वारा ही प्राप्त होती है। इसे रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है– (म= म(1) = म(2)= अ म )

उपर्युक्त रेखाचित्र में ब अक्ष पर मात्रा तथा स अक्ष पर कीमत को दर्शाया गया है। रेखाचित्र में निजी वस्तुओं व सार्वजनिक वस्तुओं की मांग को दर्शाया गया है। सार्वजनिक वस्तु की मात्रा अ ब दोनों ही व्यक्तिओं को समान रूप से प्राप्त होती है, जबकि व्यक्ति (1), व्यक्ति (2) की तुलना में उसी वस्तु की कीमत कम अदा करता है।

6. यह कि सार्वजनिक वस्तुओं का उपयोग प्रतियोगिता से रहित होती है जबकि निजी वस्तुओं के उपभोग में प्रतियोगिता पाई जाती है।
7. यह कि निजी वस्तु में व्यक्ति (1) का उपयोग व्यक्ति (2) के उपभोग में कमी लाताहै। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में किसी एक उपभौक्ता के उपभोग में वृ ि, दूसरे उपभौक्ता के उपभोग में कमी नहीं लाता है।

8. यह कि निजी वस्तु के संबंध में

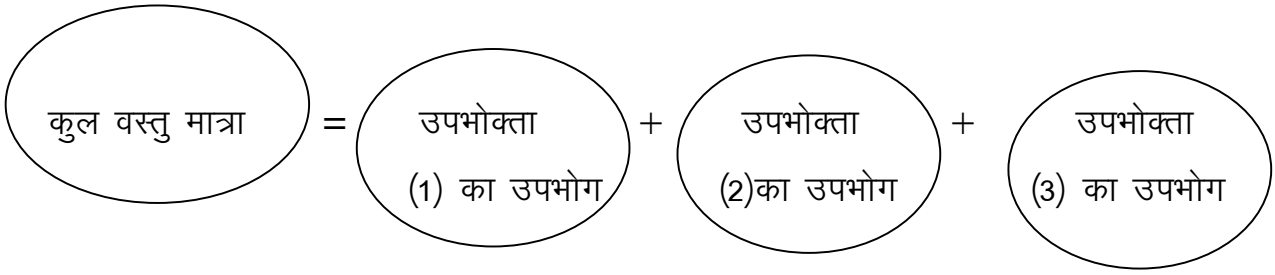


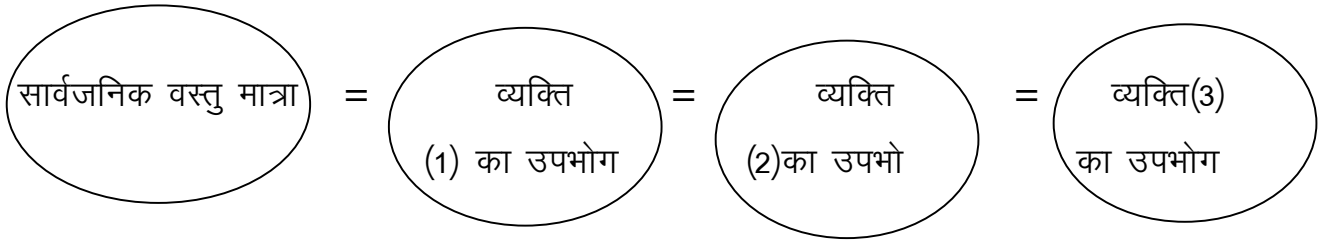


**वस्तुएँ (Commodities):-**

वस्तु का संबंध मानव की इच्छाओं को सन्तुष्टकरने वाले भौतिक तथा गैर–भौतिक पदार्थों (

(Material and Non-Material object) से है। लेकिन अर्थशास्त्र में वस्तु को संकीर्ण अर्थ (Narrow Sense) के रूप में प्रयोग किया जाता है। अर्थशास्त्र में वस्तु केवल उन्हीं भौतिक पदार्थों से संबंधित है, जिनमें यह विशोषता होती है कि जिन्हे एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित तथा वहवस्तु जिसे एक सेदूसरे वस्तु से बदला हो सके, जिसे हम वस्तु तथा आर्थिक वस्तु कहा जा सकता है।

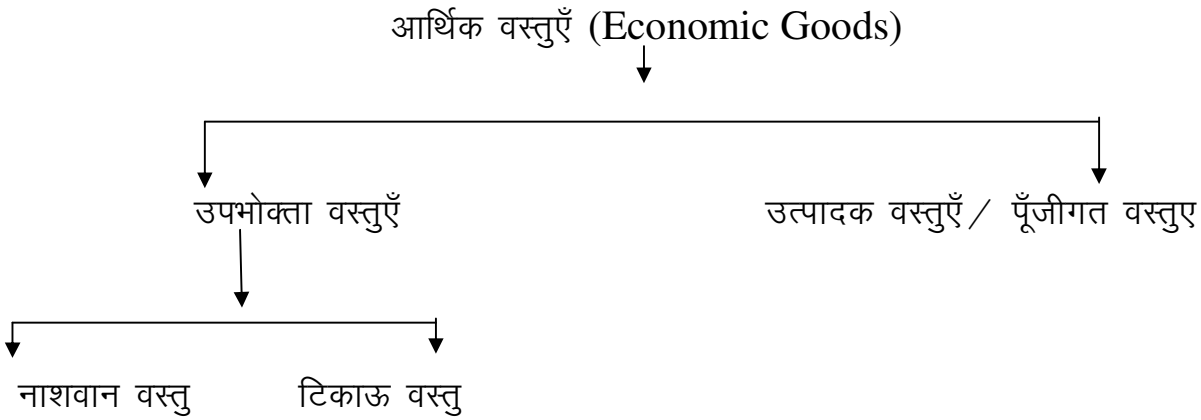


**1.7 उपभोक्ता वस्तुएँ :–**

उपभोक्ता वस्तुएं वह हैं, जो प्रत्यक्ष रूप में मानवीय इच्छाओं को सनतुष करती है, जैसे– अनाज, कपड़ा, जूता, आदि उपभोक्ता वस्तुओं के अन्तर्गत आती है। उपभोक्ता वस्तुएं दो तरह की हो सकती है। पहली नाशवान वस्तु (Perishable commodity) दूसरी टिकाऊ वस्तु (Durable) नाशवान वस्तु वह है जो उपभोग करने के बाद नष्ट हो जाती है, जैसे रोटी, कोयला, पेय पदार्थ आदि । टिकाऊ वस्तुएं वह वस्तु है जिनकी उपयोगिता दीर्घकालीन बनी रहती है और जिनका उपभोग एक लम्बी अवधि तक किया जा सकता है; जैसे–फर्नीचर, कपड़े, मकान, वाहन आदि।

## 1.9 उत्पादक वस्तुएं (Productive Goods):-

उत्पादक वस्तुएँ वह वस्तुएँ होती है जो उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग देती है साथ ही निजकी सहायता के बिना उत्पादन कार्य पूरा नहीं किया जा सकता है। उत्पादक वस्तुएँ को 'नाशवान वस्तु' एवं 'टिकाऊ वस्तु' में विभाजित किया जा सकता है।

इस प्रकार नाशवान वस्तुएँ वह है, जिनका प्रयोग उत्पादन में केवल एक बार ही किया जा सकता है; जैसे कोयला, कच्चा माल आदि। इसके विपरीत टिकाऊ वस्तुएं वह है, जिनका उत्पादन में अनेकां बार उपयोग किया जा सकता है; जैसे–पूंजीगत उपकरण, मशीनें , फर्नीचर आदि।

## 1.10 स्थानापन्न, वस्तुएँ (Substtitutes Goods)

स्थानापन्न वस्तुएं वह है, जो एक–दूसरे के बदले एक ही उद्देश्य के लिए प्रयोग की जाती है चाय–कॉफी। इस तरह की वस्तुओं जब एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तब अन्य बातें समान रहने की दशा में (स्थानापन्न वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने पर) स्थानापन्न वस्तु की मांग में वृद्धि हो जायेगी; जैसे–कॉफी की कीमत बढ़ने की दशा में चाय की मांग में वृद्धि होती है। उपर्युक्त रेखाचित्र में ग ग वक्र स्थानापन्न वस्तु के मांग वक्र को प्रदर्शित करता है। वस्तु स की कीमत  अ प1 होने स्थानापन्न वस्तु की मांग अ ब1 है। यदि स वस्तु की कीमत बढ़कर अ प2 हो जाती है तो अनेक उपभोक्ता स वस्तु का उपभोग त्याग कर स्थानापन्न वस्तु ब के उपभोग पर स्थानान्तरित हो जायेगें, जिससे ब वस्तु की मांग में वृद्धि हो जायेगी।

## 1.11 पूरक वस्तुएँ (Complementery Goods):-

पूरक वस्तुएँ वह है जो किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए साथ प्रयोग की जाती है; जैसे–मोटरसाइकिल–पेट्रेल। यदि मोटरसाइकिल की कीमत में वृद्धि हो जाये तब मोटरसाइकिल की पूरक वस्तु पेट्रसेल की मांग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जबकि पेट्रोल की कीमत में कोई परिवर्ततन नहीं होता है। इस प्रकार पूरक वस्तुओं की कीमत और खरीदी जाने वाली मात्रा में विपरीत संबंध पाया जाता है। उपर्युक्त रेखाचित्र में ग ग पूरक वस्तुओं की मांग रेखा है। यदि स वस्तु की कीमत अ प1 से बढ़कर अ प2 होती है तो ब वस्तु की पूरक वस्तु व की मांग अ ब, से घटकर अ ब2 रह जाती है।

## 1.12 स्वतंत्र वस्तुएँ (Independent Goods):-

स्वतंत्र वस्तुएं वह है, जिनकी मांग और पूर्ति एक–दूसरे को प्रभावित नहीं करती और जिनका प्रयोग एक–दूसरे के बिना आसानी से और बिना किसी रूकावट से किया जा सकता है जैसे–पुस्त और टेलीफोन आपस में स्वतन्त्र वस्तुएं हैं। स्वतन्त्र न तो स्थानापन्न वस्तुओं की श्रेणी में आती है और न ही पूरक वस्तुओं की श्रेणी में। यही कारण है कि स्वतन्त्र वस्तुओं के संबंध में मांग की आड़ी लोच (Crose Elasticity of Demand) शून्य होती है।

## 1.13 प्रकट अधिमान सिद्धान्त (Revealed Prefrence Theory):-

उपभोग करते समय उपभोक्ता के सामने एक नहीं अनेक संयांग हो सकते है। वह उन संयोगों में से किसी एक संयोग को खरीदता है, उपभोक्ता अन्य संयोगों की अपेक्षा किसी निश्चित संयोग को ही क्यों खरीदता है प्रो0 सैम्युलसन कहते है कि–''खरीदी जाने वाली वस्तु का संयोग शेष संयोगों की अपेक्षा अधिक उपयोगी है, या खरीदी जाने वाली वस्तु का संयोग शेष संयोगों की तुलना में सस्ता है;'' जैसेकि – यह मान लिया जाए कि अनेक संयोगों में से उपभोक्ता 'अ' एक संयोग को खरीद लेता है। इसका अर्थ है कि शेष अन्य संयोगों, जिनको वह खरीद सकता है की अपेक्षा 'अ' संयोग को ही खरीदता है, क्योंकि शेष संयोग उसके लिए निम्न कोटि के हैं। दूसरे शब्दों में, यह कि एक उपभोक्ता शेष संयोगों की अपेक्षा 'अ' संयोग को खरीदता है। यहां पर यह कहना पर्याप्त नहीं है कि उपभोक्ता के लिए शेष संयोगगों की अपेक्षा 'अ' संयोग अधिक रूचिकर है, इसलिए वह 'अ' संयोग को पसन्द करता है। यह बात तभी सही हो सकती है, जबकि उपभोक्ता को संयोगों की कीमत सूची ज्ञात हो। यह सम्भव है कि 'अ' संयोग की अपेक्षा शेष सभी संयोग महंगे होंगे। यदि 'अ' संयोगों की तुलना में अधिक महंगा है फिर भी उपभोक्ता संयोग 'अ' को ही खरीद कर रहा है, तो ऐसी परिस्थिति में हम कह सकते है कि 'ब' की तुलना में 'अ' संयोग को दसके द्वारा 'प्रकट रूप में पसन्द किया गया है।'' या संयोग 'अ' की तुलना में संयोग 'ब' ''प्रकट रूप से निम्न कोटि का समझा गया है।''

## 1.14 निजी व सामाजिक वस्तुओं में अन्तर (Doference Between Private and Social Goods):-

1. प्रकट अधिमान(Revealed Preference) :– साधारणतः प्रकट अधिमान बाजार की व्यवस्था अर्थात नीलामी अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। उपभोक्ता द्वारा वस्तु के लिए बोली लगायी जाती है और अधिक अधिमान वाले उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तत्पर हो जाते हैं। उत्पादक भी उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनकी उपभोक्ता द्वारा

मांग की जाती है। इसी उपभोक्ता की मांग के आधार पर बाजार तंत्र का निर्माण किया जाता है और बाजार व्यवस्था कार्य करती है।

2. वर्जन का सिद्धान्त (Exclusion Principle):- वर्जन सिद्धान्त के अन्तर्गत केवल वही व्यक्ति वस्तु का उपभोक कर पाते हैं जो कि बाजार मूल्य का भुगतान करने को तत्पर रहते है; जैसे कि–यदि व्यक्ति 'अ' किसी वस्तु 'क' का उपभोग इस कारण करता हैं क्योंकि उसने उसकी कीमत अदा की है और दूसरा व्यक्ति 'ब' उस वस्तु के उपभोग से इस कारण वंचित रह जाता है कि उसने उसके लिए कीमत का भुगतान नहीं किया है। वर्जन के सिद्धान्त में यह जरूरी है कि व्यक्ति को समपत्ति पर कानूनी अधिकार प्राप्तर होना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के विश्लेषण के आधार पर बाजर में निजी वस्तुओं ि निपुण प्रावधान किया जाता है। इन वतुओं का लाभ केवल उन्ही उपभोक्तओं को मिलता है, जो इसके लिए मूल्य का भुगतान करते है। लाभ आन्तरिक होते है और उपभोग में प्रतियोगिता बनी रहती है। अधिकांशतः वस्तुओं की व्यवस्था बाजार तंत्र के द्वारा ही सम्भव हो सकती है। लेकिन कुछ ऐसी वतुएँ होती है जिनका प्रवधान बाजार व्यवस्थ्या द्वारा सम्भव नहीं हो सकता है अर्थात वर्जन का सिद्धान्त उन पर लागू नहीं हो पाता और उपभोक्ता उन वतुओं के लिए अधिमान को प्रकट नहीं कर पाते है। इससे उपभोग में प्रतियागिता भी नहीं पायी जाती है। इन वस्तुओं को सार्वजनिक वस्तुओं के वर्ग में रखा जाता है। इन सार्वजनिक वस्तुओं को सामाजिक एवं उत्कृष्ट दो भागों में विभजित किया जा सकता है।

तालिका : वतुओं का विभाजन

| उपभेग | वर्जन | |
|---|---|---|
| | सम्भव | सम्भव नहीं |
| (क) प्रतियोगी | 2 | 3 |
| (ख) प्रतियोगी नहीं | 3 | 4 |

उपर्युक्त तालिमा में प्रतियोगिता एवं वर्जन के आधार पर वतुओं कोचार भागों में विभाजित किया गया है। स्थिति 1 में केवल निजी वस्तुएं आती है जहां पर उपभोग में प्रतियोगिता के साथ्ज्ञ–साथ वर्जन भी लागू होता है। बाजारतंत्र द्वारा इन व्तुओं की व्यवसाी कुशलता के आधार पर सम्भव की जाती है। शेष तीनों परिस्थितियों में बाजार तंत्र का उपयोग सही ढंग से सम्भव नहीं हो पाता है। स्थिति 2 में बाजार के टूटने का कारण वर्जन का सम्भव न होना, जबकि स्थिति 3 में प्रतियोगिता की अनुपस्थिति के कारण होता है। स्थिति 4 में यह दोनों ही तत्व उपलब्ध है। स्थिति 3 व 4 में सामाजिक वस्तुएं व स्थिति 2 में उत्कृष्ट वस्तुएं प्राप्त होती है। इस विभाजन पर मसग्रव की यह मान्यता रही है कि सामाजिक वतुओं की आपूर्ति उपभोक्ता के अधिमान के आधार पर की जाती है।

**कठिनाइयाँ/आलोचना :–**

1. यह कि विशिष्ट वर्ग द्वारा उपभोक्ता पर कुछ सीमा तक अधिमान लादा जा सकता है, क्योंकि यह वर्ग अधिक शिक्षित हो सकता है या इसका संबंध किसी विशेष दल के साथ्ज्ञ सम्भव हो सकता है।
2. यह कि सरकारी बजट द्वारा निम्न लागत वाले मकान या बच्चों को दूध की आपर्ति की जा सकती है, यद्यपि इनके उपभोग में प्रतियागिता पाई जाती तथा इन पर वर्जन के सिद्धान्त को भी लागू किया जा सकता है।
3. यह कि समाज द्वारा उपभोक्ता के स्वतंत्र अधिमान पर अपना अधिमान थोप दिया जाता है।

## 1.15 अविभाज्य वस्तुएँ (Non-Divisibility Goods):-

किसी वस्तु के अविभाज्य होने की प्रमुख विशेषता है िकइस पर समाज के हर उस सदस्य का भी बराबर का अधिकार बनता है जो उसके लिए अदायगी न करना चाहता हो अथवा न कर सकता हो। सामान्यतः कह सकते है कि समाज का प्रत्येक सदस्य इस वस्तु के उपभोग का समान अधिकारी होता है। इस वतु के उपभोग में किसीसंभावतउपभोक्ता को लाभान्वित होने से रोकना संभव नहीं होता है। एक

अविभाज्य वस्तु कीदूसरी विशेषता यह है कि एक उपभेक्ता द्वारा उपभोग किए जाने पर अन्य उपभोक्ताओं के लिए इसकी उपलब्ध मात्रा में कमी नहीं आती ; जैसे– आक्रमण सेदेश की रक्षा, रेडियो एवं टी0वी0 प्रसारण, सड़क पर की गई रोश्ज्ञनी आदि। यह भी ध्यान रखना अनिवार्य नहीं है कि हर अविभाज्य वस्तुएं से सभी उपभोक्ता समान रूपसे लाभान्वित हो ; जैसे कि– सीभ व्यक्तिओं का समान अधिकार होते हुए भी किसी सार्वजनिक पाकै के पड़ोस में रहने वालों को उसकी शुद्ध वायु से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसी प्रकार समान्यतः देश की सीमा के पास तथा अन्य महत्वपूर्ण सथानों के पास रहने वाले लोगों को विदेशी आक्रमण से होने वाली क्षति की संभावना अधिक होती है।

## 1.16 विभाज्य वस्तुयें (Divisibility Goods):-

विभाज्य वस्तुएं वह है जिनसे समाज के कुछ सदस्यों को लाभन्वितहोने रोका जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप से इन वस्तुओं पर अपवर्जन नियम (Principle of exclusion) लागू होता है। बाजार–व्यवस्था में विभाज्य वस्तुएं मुफ्त न मिलकर कीमत पर मिलती है। इन्हे वही लोग खरीद सकते है, जिनमें कीमत चुकाने की क्षमता होती है साथ हीइनको खरीदने के इच्दुक होते है।यदि सरकार या अन्य संस्थाओं के द्वारा इन वस्तुओं को निः शुल्क मुहैया करा रही हो तो किसी न किसी आधार पर उन उपभोक्ताओं की पहचान की जा सकती है , जिन्हें वंचित रखा गया है।

## 1.17 सारांश :–

जनहितनकारी वस्तुओ की उपलब्धता में पर्याप्त बढ़ोतरी हेतु सरकार उनकी उत्पादन लागत का एक भाग वहन करने का जिम्मा उठाए एवं निजी स्त्रोतों सेहोने वाली आपूर्ति के अरिक्त स्वयं भी उनके उत्पादन तथा उपलब्धि में सक्रिय भाग ले। सरकार आवश्यक मात्राओं को मुहैया करने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। वस्तुओं की अविभाज्यता के कारण सार्वजनिक वस्तुओं का वित्त–पोषण बाजार–व्यवस्था द्वारा संचालित निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। निजी क्षेत्र के उत्पदकों को मुफ्तखोरों (Free riders)

की समस्या का सामना करना पड़ता है। वे कीमत न चुकाने वाले उपभोक्ताओं को अपनी उत्पादित वस्तुओं से वंचित नहीं रख सकते है। अविभाज्य वस्तुओं का उत्पादन और वितरण निजी क्षेत्र के स्थान पर सरकारी क्षेत्र में होने चाहिए ताकि उनका वित्त–पोषण राज्य कोष से किया जा सके। निजी वस्तुओं के विभाज्य होने के कारण उनका उत्पादन तथा वितरण निजी क्षेत्र द्वारा ही उत्तम रहता है। इस निर्णय में कुछ अपवाद भी हो सकते है। वस्तुओं की उचित कीमत निर्धारण करने में कई प्रकार की नैतिक और अन्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लोक वस्तुओं को निजी क्षेत्र में रखने पर उत्पादनकर्ताओं द्वाराउपभोक्ताओं के शोषण के अवसर बढ़ जाते है। अतः ऐसी वस्तुओं का उत्पादन और उनका उपभोक्ताओं में विरण सरकारी क्षेत्र में होना चाहिए। निजी क्षेत्र में रखे जाने पर उनके समुचित नियमन की प्रशासनिक व्यवस्था होनी चाहिए। वस्तुओं का वर्गीकरण उनकी विशेषताओं की प्रधानता के आधार पर ही किया जाता है। जिस वस्तु में शुद्ध लोक वस्तुओं की विशेषताओं की प्रधानता हो, उसे लोकवस्तु मान लिया जाता हैएवं निजी वस्तुाओं की विशेषताओं की प्रधानता वाली वस्तुएं निजी वस्तुओं के तौर पर वर्गीकृत कर ली जाती है। विभिन्न गैर–आथ्रिक आधार पर अपनाए गए अपवादों के साथ लोक विशेषता प्रधान वस्तुओं को सरकारी क्षेत्र और निजी विशेषता प्रधान वस्तुको को निजी क्षेत्र में रखना चाहिए। एड्म स्मिथ ने इस आधार पर सरकार द्वारा अपना असितत्व बनाए रखने के अतिरिक्त, विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा–व्यस्था, आंतरिक शांति एवं कानून बनाए रखना न्याय की व्यवस्था तथा अवसंरचनात्मक सुविधाओं को सरकारी कार्यक्षेत्र में रखने की सिफारिश की। समय के साथ–साथ सरकारी क्षेत्र की सीमाओं के निर्धारण संबंधी आथ्र्ज्ञिक और राजनीतिक विचारधाराओं में परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान में सर्वस्वीकृत चिन्तन यह है कि हर आधुनिक सरकार को अपनी क्षमतानुसार वे नीतियां अपनानी चाहिए जिनका ध्येय समाज को सर्वाधिक सम्भव कल्याण हो। इस कारण सरकार का कर्तव्य है कि वह अर्थव्यवस्था में आय, रोजगार, विकास, मुद्रास्फीति, क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं आदि की समरूाओं का समुचित समाधान करने का प्रयत्न करे।

## 1.18 शब्दावली : (Key words) :-

1. उत्कृष्ट वस्तुयें (Merit Goods)
2. सार्वजनिक/लोक वस्तुएं (Public /Social Goods)
3. अविभाज्यतां (Non-Divisibility)
4. वर्जन का नियमं (Principle of Exclusion)
5. मुफ्तखोरें (Free riders)
6. अहस्तक्षेपं (Laissez Faire)
7. जनहितकारी अर्थव्यवस्था (Welfare slate)
8. मिश्रित अर्थव्यवस्थां (Mixed Economy)
9. उदारवादी अर्थव्यवस्थां (Liberal Economy)
10. पूँजीवादी अर्थव्यवस्थां (Capitalistic Economy)
11. उतार–चढ़ावं (Cyclical Fluctuations)
12. निजी वस्तुएं (Private Goods)
13. नाशवान वस्तुएं (Perishable Commodity)
14. टिकाऊ वस्तु (Durable Goods)
15. उत्पादक वस्तुएं (Productive Goods)
16. स्थापन्न वस्तुएं (Subtitutes Goods)
17. प्रूक वस्तुएं (Complementry Goods)
18. स्वतंत्र वस्तुएं (Independent Goods)
19. प्रकट अधिमान (Revealed Preference)
20. वर्जन का सिद्धान्त (Princple of Exclusion)
21. अविभाज्य (Non-Divisibility Goods)
22. विभाज्य वस्तुएं (Divisibility Goods)

## 1.19 सन्दर्भित ग्रन्थ (Reference Books


1. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
2. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
3. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
4. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021


## 1.20 प्रश्न उत्तर (Question Answer)

1. समाजिक वस्तुओं की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
2. निजी तथा सामाजिक वस्तुओं में अन्तर विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक वस्तुओं व निजी वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
4. निजी वस्तु से आप क्या समझते है?
5. सार्वजनिक वस्तु से आय क्या समझते है?
6. उत्कृष्ट वस्तुएं को समझाइऐ?
7. वर्जन का सिद्धान्त समझाइए?
8. प्रकट अधिमान सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए?
9. अविभाज्य वस्तु क्या होती है?
10. विभाज्य वस्तु क्या होती है?
11. भारतीय अर्थव्यवस्था में मिश्रित अर्थव्यवस्था की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
12. उपभोक्ता वस्तुएं क्या है?
13. उत्पदक वस्तुएं क्या है?
14. स्थानापन्न वस्तुओं की अवधारणा को समझाइए।

15. पूरक वस्तु क्या है?
16. स्वतंत्र वस्तु से आप क्या समझते है?
17. वर्जन सिद्धान्त व प्रकट अधिमान सिद्धान्त का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

## 1.21 बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर

1. निजी वस्तुएं होती है
   क. विभाज्य ख. अधूरी ग. कल्पित घ. वास्तविक (उत्तर –क)
2. सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग होता है
   क. सीमित ख. सामूहित ग. निजी घ. अवास्तविक (उत्तर– ख)
3. सार्वजनिक वस्तु का उत्पादन किया जाता है
   क. निजी द्वारा ख. संस्था द्वारा ग. विदेश द्वारा घ. सरकार द्वारा (उत्तर–घ)
4. उत्कृष्ट वस्तुएं होती है
   क. निजी ख. मौलिक ग. सार्वजनिक घ. सार्वभौमिक (उत्तर–ग)
5. सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था की जाती है।
   क. समाज हेत ख. निजी हेतु ग. सरकार हेत घ. विदेश हेतु (उत्तर–क)
6. स्कूलों में भोजन की व्यवस्था हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहायता होती है?
   क. निजी वस्तु ख. उत्कृष्ट वस्तु ग. स्वतंत्र वस्तु घ. स्थानापन्न वस्तु (उत्तर–ख)
7. स्कूलों में शिक्षा व स्वास्थ्य हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहायता होती है?
   क. उत्कृष्ट वस्तु ख. निजी वस्तु ग. पूरक वस्तु घ. नाशवान वस्तु (उत्तर–क)
8. समाजवादी एवं उदारवादी दोनों तरह की अर्थव्यवस्थाओं की विशेषता निहित होती है?
   क. खुली अर्थव्यवस्था ख. मिश्रित अर्थव्यवस्था ग. बन्द अर्थव्यवस्था

घ. इनमें से कोई नहीं (उत्तर–ख)

9. खुली अर्थव्यवस्था के उदाहरण है–

क. रूस–जपापन ख. चीन–पाकिस्तान ग. भारत–नेपाल

घ. हांगकांग–सिंगापुर (उत्तर–घ)

10. बन्द अर्थव्यवस्था के उदाहरण है–

क. नेपाल ख. भारत ग. जापान घ. उत्तरी कोरिया

(उत्तर–घ)

11. प्रदूषण रहित स्वच्छ वातावरण एवं शुद्ध खाद्य पदार्थ के उदाहरण है

क. निजी वस्तु के ख. उत्कृष्ट वस्तु के ग. पूरक वस्तु के

घ. स्थानापन्त वस्तु के (उत्तर–ख)

12. वर्जन का सिद्धान्त प्रभावी होता है

क. सामाजिक वस्तुओं पर ख. निजी वस्तुओं पर ग. क ख दोनों पर

घ. इनमें से कोई नहीं (उत्तर–ख)

13. निजी वस्तुओं का उपभोग होता है?

क. सामूहिक ख. व्यक्तिगत ग. क,ख दोनों घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर–ख)

14. सामाजिक वस्तुओं का उपभोग होता है–

क. सामूहिक ख. व्यक्तिगत ग. क,ख दोनों घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर–क)

15. अविभाज्य वस्तुएं होती है–

क. आक्रमण से देश की रक्षा

ख. रेडियो व टी0वी0 प्रसारण

ग. सड़क पर की गई रोशनी

घ. उपर्युक्त सभी (उत्तर–घ)

16. विभाज्य वस्तुएं होती है–

क. मुफ्त न मिलकर कीमत पर मिलती है

ख. समाज के कुछ सदस्यों को लाभान्वित होने से रोका जाता है।

ग. इन वस्तुओं पर अपवर्जन का सिद्धान्त लागू होता है।

घ. उपर्युक्त सभी

(उत्तर–घ).

# खण्ड–01, इकाई–04

# बाह्यताएँ (**Externalties**)

## 01. परिचय (**Introduction**)–

आस्ट्रियन, इतालवी तथा स्वीडिश अर्थशास्त्रियों के विचारों को प्रस्तुत किया गया। इनका कोई प्रभाव ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों पर पाँच दशक तक नहीं पड़ा। मिल, मार्शल, बैस्टेबल आदि ने सीमान्त विश्लेषण का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं किया। यह स्थिति वर्ष 1920 तक बनी रही। विभिन्न प्रकार के लोक व्यय की विवेचना अवश्य हुई, लेकिन सामाजिक वस्तु की प्रकृति पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 1920 में पीगू की प्रसिद्ध पुस्तक Economic of Welfare प्रकाशित हुई। इसमें बाह्यता की धारणा को प्रस्तुत कर एक नये परिप्रेक्ष्य का समावेश किया गया। पीमू ने सामाजिक तथा निजी शुद्ध उत्पत्ति में अन्तर किया। निजी शुद्ध उत्पत्ति (Private net Product) आन्तरिक लागत एवं लाभ की माप है जिन्हें बाजार कीमत में शामिल किया जाता है। सामाजिक शुद्ध उत्पत्ति में अन्य लोगों से सम्बन्धित उन लागतों तथा लाभों को सम्मिलित किया जाता है जिनके लिए क्षतिपूर्ति नहीं होती (लागत की स्थिति में) या जिनके लिए कीमत नहीं ली जा सकती (लाभ की हालत में)। जिस वस्तु के उत्पादन में सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक होता है उसे आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। ऐसी

वस्तुओं पर कर लगाने की आवश्यकता है जहाँ निजी लागत की तुलना में सामाजिक लागत अधिक रहती है। इस प्रकार बाह्यताओं के समायोजन के लिए कर तथा आर्थिक सहायता (Subsidey) के रूप में लोक वित्तीय यन्त्रों की आवश्यकता होती है। 1928 में पीगू की पुस्तक– A Study in Public Finance प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में पीगू बाह्यता तथा सामाजिक वस्तु के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं कर सके; वस्तुतः लोक व्यय पर विशेष लिखा ही नहीं गया। उन्होंने करदान योग्यता के सिद्धान्त के आधार पर लोक व्यय की उच्चतम सीमा के निर्धारण की विवेचना की। उनका कथन था कि ''जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रावधान सरकारी विभागों द्वारा इस प्रकार होता है कि उनकी बिक्री फीस के आधार पर हो सकती है तथा इससे इनकी कुल उत्पादन लागत वसूली हो जाती है, वे कोई समस्या पैदा नहीं करती है। इन वस्तुओं तथा सेवाओं पर कितने साधनों को लगाना चाहिए यह इनकी माँग द्वारा तय होगा लेकिन फीस के द्वारा अधिकांश लोक व्यय की व्यवस्था सम्भव नहीं है। अतः लोक व्यय कितना होगा इसके निर्धारण के लिए कोई स्वचालित मशीन नहीं है। इसके लिए किसी अन्य विधि को अपनाना होगा।'' यह अन्य विधि सन्तुलन का सिद्धान्त (Principle of Balance) है। इसके अनुसार लोक व्यय की अधिकतम मात्रा निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ लोक व्यय पर

किये गये अन्तिम रूपये की सीमान्त उपयोगिता निजी व्यय पर खर्च किये गये अन्तिम रूपये की उपयोगिता के बराबर हो जाती है। इसी सिद्धान्त का उपयोग पीगू ने लोक व्यय के विभिन्न मदों पर खर्च की मात्रा के निर्धारण के लिए भी किया। माना कि लोक व्यय का परिमाण निर्धारित हो जाता है। अब समस्या यह है कि किस मद पर कितना खर्च किया जाए, इसे निर्धारित करना है। लोक व्यय की विभिन्न परियोजनाओं की सीमान्त उपयोगिता को बराबर करके इस समस्या का समाधान हो जाएगा।

## 1.1 उद्देश्य (Objectives)–

(1) लोक व्यय की मात्रा का निर्धारण

(2) आर्थिक सहायता पर निर्णय

(3) पीड़ित आर्थिक इकाइयों की पहचान

(4) आर्थिक इकाइयों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी

(5) मानक सूक्ष्म आर्थिक ढाँचे में बाह्यताओं का प्रभाव

(6) सार्वजनिक/बाजार हस्तक्षेप के लिए आधार

(7) सार्वजनिक अर्थशास्त्र एवं पर्यावरण अर्थशास्त्र का परिचय

## 1.2 बाह्यताएँ (Externalties)–

बाह्यताओं को साधारण शब्दों में अतिरिक्त प्रभाव, पड़ोसीपन प्रभाव, ऊपरी प्रभाव एवं अन्य पार्टी प्रभाव (Externalities,

additional effects; neighbourhood, neighbourhood effects, third party effects) भी कहा जाता है। यह प्रभाव हानिकारक एवं कल्याणकारी हो सकते हैं। इन प्रभावों का रूप वित्तीय, तकनीकी या किसी अन्य प्रकार का हो सकता है। यदि इन बाह्यताओं से पीड़ित अथवा लाभान्वित आर्थिक इकाइयों की पहचान की जा सके और उन पीड़ित इकाइयों की क्षतिपूर्ति की जा सके। इन दोनों शर्तों को पूरा होने पर इन्हें विक्रय (Marketable) बाह्यताओं के नाम से जाना जा सकता है, और इन शर्तों के पूरा न करने की स्थिति में इन्हें अविक्रय (Non-marketable) बाह्यताएँ कहा जाता है। जैसे– किसी बिजलीघर से निकलने वाले धुएं का प्रदूषण समाज के लिए तो एक लागत है, लेकिन उस बिजलीघर के लिए नहीं है। इसी तरह से एक निजी क्षेत्र के उत्पादनकर्ता के लिए किसी क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा लोगों की सामान्य जानकारी में वृद्धि आदि कल्याणकारी, अविक्रय बाह्ताओं के कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे उस उत्पादनकर्ता को आय–प्राप्ति नहीं होती है। किसी वस्तु की 'सीमांत निजी लागत' और 'सीमांत निजी आगत' को उसकी बाह्ताओं की अनुमानित लागत और कल्याण द्वारा समायोजित (Adjust) किए जाने पर उसकी 'सीमांत सामाजिक' और 'सीमात सामाजिक आगत' की प्राप्ति होती है। एक विचाराधीन वस्तु की उत्पादन मात्रा उसकी वास्तविक

सामाजिक जरूरत के बराबर होने के लिए जरूरी है कि उसकी सीमान्त सामाजिक लागत उसके सीमांत सामाजिक आगत के बराबर हो, अर्थात् उसकी लागत और आगत के अनुमानों में बाह्यताओं की अनुमानित लागत और हित को भी सम्मिलित किया जाए। परन्तु निजी क्षेत्र के उत्पादनकर्ता उत्पादन निर्णय लेते समय इन बाह्यताओं को अनदेखा करते हुए केवल ''निजी सीमांत लागत'' और निजी सीमांत आगत पर ध्यान देते हैं। इस कारण निजी क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं की मात्राएँ समाज की वास्तविक जरूरतों के बराबर न होकर अधिकतर उनसेअधिक अथवा कम होती है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु अविक्रय बाह्यताओं वाली वस्तुओं का उत्पादन और विवरण का काम सरकारी क्षेत्र को सौंपा जाना चाहिए ताकि उनकी उत्पादन मात्राओं के तय करने में इन बाह्यताओं को स्थान दिया जा सके तथा इसके विपरीत अविक्रय अतिरिक्त प्रभाव न होने के कारण शुद्ध निजी वस्तुओं को निजी क्षेत्र में रखा जाना चाहिए। यह भी सत्य है कि वास्तविक स्तर पर इसके अपवाद भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और अन्य गैर–आर्थिक कारणों से इनको सरकारी क्षेत्र में रखने का निर्णय भी लिया जा सकता है।

## 1.3 निजी विनिमय की दक्षता (**The efficiency of Private Exchange**)–

निजी बाजार में क्रेता व विक्रेता वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय विक्रय करते हैं। क्रेता और विक्रेता व्यक्ति, निगम या दोनों हो सकते हैं। निजी बाजार में स्वैच्छिक लेन–देन तभी होता है जब क्रेता एवं विक्रेता को लाभ प्राप्त होते हैं। यदि किसी क्रेता और विक्रेता को हानि होने की स्थिति में वह लेन–देन नहीं करेगा। इस प्रकार क्रेता और विक्रेता को सभी स्वैच्छिक निजी बाजार खोजने के लिए प्रोत्साहन मिलता है, जिनमें उन्हें लाभ होने का है। इस तरह उन्हें संभावित लेन–देन का बाजार प्रापत हो जाता है अर्थात् बाजार में ''संसाधनों का कुशल आवंटन'' प्राप्त कर लिया है। इसका तात्पर्य है कि क्रेताओं और विक्रेताओं के पास से सभी संसाधन आवंटन कर दिया गया है ताकि वह क्रेता और विक्रेता यथासम्भव समृद्ध रहें। इस प्रकार के निजी बाजार में लेन–देन को आमतौर पर कुशल माना जाता है, क्योंकि लेन–देन के फलस्वरूप सभी पक्षों को संसाधनों के अनुरूप यथासम्भव लाभ मिलता है। किसी वस्तु के कुशल उत्पादन कोबताने का तरीका है कि ''हमें उत्पादन करना चाहिए जब भी अतिरिक्त लाभ अतिरिक्त लागत से अधिक हो तो अधिक अच्छा होता है, लेकिन जब स्थिति विपरीत हो तो हमें लेन–देन

नहीं करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि वस्तु की सभी इकाइयों का उत्पादन किया जाता है। जिसका मूल्य अधिक होता है उत्पादन लागत से उन इकाइयों का उत्पादन नहीं किया जाता है।

## 1.4 बाह्यताओं के प्रकार (Types of externalities)–

निजी बाजार विनिमय की दक्षता के आधार 'शुद्ध निजी वस्तुओं' के साथ अच्छी तरह से कार्य करता है। एक शुद्ध निजी वस्तु वह वस्तु है जिनसे उत्पादन में उपभोग में शामिल न होने वाले लोगों को न तो हानि होती है और न ही लाभ मिलता है। लेकिन कुछ वस्तुयें शुद्ध निजी वस्तु नहीं है, क्योंकि उनमें बाह्तायें सम्मिलित होती है। बाह्तायें तब उत्पन्न होती है, जब किसी व्यक्ति की आर्थिक गतिविधि, जैसे उपभोग या उत्पादन में शामिल न होने के बावजूद व्यक्ति की भलाई को प्रभावित करती है। वैसे तो बाह्यता शब्द का अर्थ है कि कोई व्यक्ति लेन–देन से बाहर होने के बावजूद भी उत्पादन से प्रभावित होता है। बाह्यतायें दो प्रकार की होती हैं–

(अ) **नकारात्मक बाह्यता (Negative externality)**– जब कोई गतिविधि में न सम्मिलित होने वाले लोगों के लिए लागत (कष्ट/हानि) उत्पन्न होती है, जिसे नकारात्मक बाह्यता कहते हैं, जैसे– कारें और फैक्ट्रियाँ वायु प्रदूषण

उत्पन्न करती है, जो लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त जैसे भीड़–भाड़ वाले इलाके में कारें मोटर वाहन प्रवेश करते हैं और गाड़ियों की गति धीमी हो जाती है। जिसमें प्रदूषण से शिकार होने वाले ड्राईवर लागत उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों का तब सम्भव होती है जब एक पक्ष की कार्यवाही दूसरे पक्ष पर लागत थोपती है। यह गतिविधियाँ विभिन्न स्तरों पर आसपास के जीवन और पर्यावरण को आघात पहुँचाती है। जैसे– इस्पात संयंत्र अपना कचरा नहीं में बहा देता है। लेकिन नदी के तट पर मछुवारे जीवनयापन करते है। इस्पात प्लांट जितना अधिक कचरा नदी में बहायेगा, मछलियों का फायदा है अर्थात् मछल समर्थन में है। इसके विपरीत इस्पात प्लांग के पास अपने उत्पादन निर्णय लेते समय मछुआरों पर लगने वाली बाह्य लागत के लिए कोई सहायता नहीं दी जाती है। गैर अर्थशास्त्री सोचते हैं कि नकारात्मक बाह्यता पैदा करने वाली कोई भी गतिविधि को नहीं करना चाहिए। जबकि नकारात्मक बाह्यताओं वाली कई गतिविधियाँ भी बड़े लाभ पैदा करती है। एक अर्थशास्त्री के लिए नकारात्मक बाह्यताओं के साथ समस्या यहनहीं है कि गतिविधि घटित होती हैं, बल्कि यह है कि इसका बहुत अधिक घटित होना है। नकारात्मक बाह्ताओं वाली वस्तुओं का अति उत्पादन इसलिए होता है क्योंकि

किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु के उत्पादन या उपभोग की सभी लागतों को कवर नहीं करती है। यदि सभी लागतों का हिसाब लगाया जाए, तो इन वस्तुओं की कीमतें अधिक होंगी और लोग उनका कम उपभोग करेंगे। यदि नकारात्मक बाह्यतायें, जैसे वायु प्रदूषण से होने वाली हानि की लागत को कर के रूप में वस्तु पर लगाया जाता है, तो लोगों को उस वस्तु के उत्पादन और उपभोग की पूरी लागत का एहसास होगा, और माँगी गई राशि कुशल राशि होगी। इससे स्पष्ट है कि कर का सही ढंग से निर्धारण किया गया है।

**<u>मैनकीव की नकारात्मक बाह्यताओं पर चर्चा (Mankiw's discussion of Negative externalties)</u>**–

माना कि एक वस्तु को लेते हैं जिसका उत्पादन नकारात्मक बाह्यता पैदा करता है। हम बाजार के परिणाम जानने के लिए माँग–पूर्ति वक्र का उपयोग करते हैं–

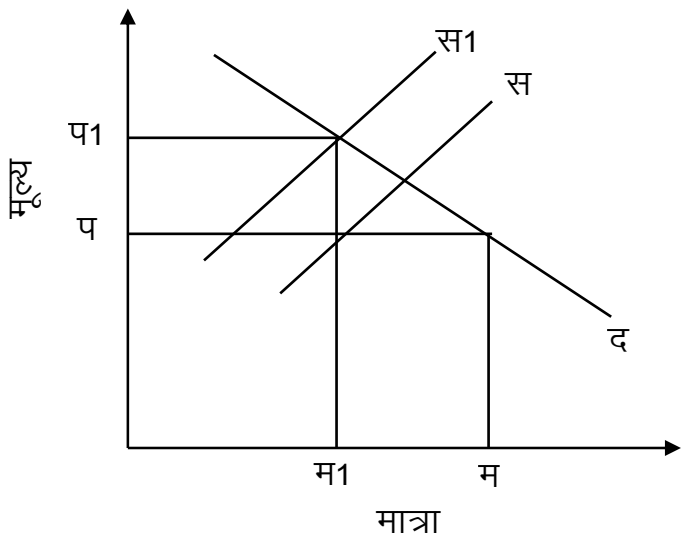

यह कि बाजार परिणाम का कुशल स्तर वहाँ होता है जहाँ माँग वक्र और 21 वक्र एक दूसरे को काटते हैं। यह परिणाम रेखाचित्र में प1 और म1 द्वारा दिखाया गया है। ध्यान दें कि म > म1 है। इसका अर्थ है कि बाजार इस वस्तु की कुशल मात्रा से अधिक उत्पादन करता है। इसे अतिउत्पादन कहा जात सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प < प1 है। इसका अर्थ है कि बाजार मूल्य कुशल मूल्य से कम है। क्या वस्तु बाजार के परिणाम को अप्रभावी बनाती है। निजी बाजार आपूर्तिकर्ताओं को वस्तु की कुछ इकाइयों (म1 और म के बीच की इकाइयाँ) का उत्पादन करने के लिए प्रेरित करता है जिनकी उत्पादन लागत उपभोक्ताओं के लिए उनके मूल्य से अधिक होती है। क्योंकि म1 और म के बीच वस्तु की इकाइयों के लिए, माँग वक्र जो उपभोक्ताओं के लिए मूल्य मापता है। स1 वक्र जो सभी लामतों को मापता है।

**(ब) <u>सकारात्मक बाह्यतायें (Positive Externalties)</u>–**

सकारात्म बाह्यतायें तब उत्पन्न होती हैं जब कोई व्यक्ति को लाभ प्राप्त होता है जैसे– जो लोग संक्रामक रोग के खिलाफ टीकाकरण करवाते हैं, उनके टीकाकरण के कारण अन्य लोगों में यह संक्रामक रोग होने की संभावना कम हो जाती है। जो लोग अपनी सम्पत्ति में सुधार करते हैं वे अधिक सुखदायक

पड़ोसी बनाकर और सम्पत्ति के मूल्यों में वृद्धि करके अपने पड़ोसियों के लिए लाभ उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में सकारात्मक बाह्यता तब होती है जब एक पक्ष की कार्यवाही से दूसरे पक्ष को लाभ प्राप्त होता है जैसे– एक व्यक्ति अपने घर के सामने एक खूबसूरत बगीचा लगाता है, जिससे उस क्षेत्र में रहने वाले अन्य लोगों को लाभ हो सकता है। यह दूसरों के लिए एक सकारात्मक बाह्यता है। एक और उदाहरण है जैसे–शिक्षा से बाह्य लाभ होते हैं। शिक्षित माता–पिता से बच्चों को लाभ प्राप्त होता है और समाज को लाभ मिलता है क्यों शिक्षा से अपराध, सामाजिक अशांति और बेरोजगारी तथा कल्याण लागत में कमी आती है। एक शैक्षिक प्रणाली में, स्वीकार्य सामाजिक मूल्य शामिल हों, संचार में सुधार हों और लोकतांत्रिक संस्थानों को मजबूत किया जाए, समाज के लाभकारी हैं।

**मैनकीव की सकारात्मक बाह्यताओं पर चर्चा (Mankiw's discussion of Positive Entermalities)**–

हम सकारात्मक बाह्यताओं का विश्लेषण के लिए समान दृष्टिकोण का उपयोग कर सकते हैं। मैनकीव 'सकारात्मक उपभोग बाह्यताओं' पर चर्चा करते हैं। हम माँग–पूर्ति वक्र का उपभोग करेंगे। इस बार आपूर्ति वक्र ठीक है क्योंकि इसमें

लागतों का ध्यान रखा गया है, लेकिन माँग–वक्र को लेकर समस्या है। यह वस्तु के खरीदारों के लिए निजी लाभ का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन इसमें शामिल नहीं हुए लोगों के लिए बाहरी लाभ का नहीं। इसलिए हम ''सामाजिक लाभ'' वाला नया वक्र प्रस्तुत करते हैं जिसमें खरीदारों और असंबद्ध लोगों के लिए सभी लाभ शामिल हैं–

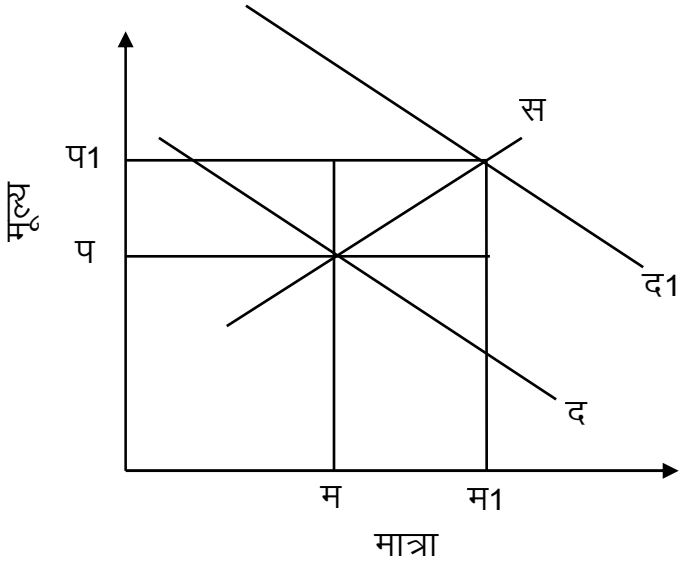


रेखाचित्र में बाजार मूल्य और मात्रा को 'प1' और 'म1' के रूप में दिखाया गया है। जो सामान्य आपूर्ति और माँग वक्रों से उत्पन्न होता है। लेकिन बाजार का परिणाम कुशल परिणाम नहीं है। कुशल परिणाम तब होता है जहाँ आपूर्ति 'द1' वक्र को पार करती है, और इसी 'प1' और 'म1' चिन्हित किया जाता है। ध्यान देने वाली बात है कि यदि म < म1 की स्थिति है तो कहा जा सकता है कि बाजार इस वस्तु की कुशल मात्रा से कम

उत्पादन करता है। इस उत्पादन को सीमा के अन्दर उत्पादन कहा जा सकता है अर्थात् (under production) यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि प < प1 की स्थिति है तो बाजार मूल्य कुशल मूल्य से कम है। बाजार मूल्य अलग–अलग कारणों से नकारात्मक उत्पादन बाह्ताओं और सकारात्मक उपभोग बाह्यताओं दोनों के लिए बहुत कम है।

उत्पादक साधनों के अनुकूलतम वितरण के लिए जरूरी है कि कीमत उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो। इस नियम की मान्यतायें हैं–

1.7 <u>लाभ प्राप्त करने का सिद्धान्त (**Principle of Making Profits**)</u>– लाभ की नीति के विरूद्ध इसीलिए बोला जाता है

1.8 <u>प्रो0 डाल्टन का कीमत–नीति सिद्धान्त (**Prof. Dalton's Price-Policy Principles**)</u>– प्रो0 डाल्टन कीमत–नीति के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्तों पर जोर देते हैं– (1) सामान्य कराधान सिद्धान्त (2) अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त (3) ऐच्छिक कीमत सिद्धान्त।

(1) **सामान्य कराधान सिद्धान्त (General Taxation Principle)** :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जैसे जिन्हें उपभोक्ताओं को मुफ्त में दिया जाता है। जिन्हें शुद्ध

(2) अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त (**Compulsory Cost-of-Service Principle**) :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जिनके

(3) ऐच्छिक कीमत सिद्धान्त (**Voluntary Price Principle**) :

यह पर काफी भिन्नता एवं वाद–विवाद का जरूरी है।

1. यह कि वस्तु के उपभोग से सामाजिक कल्याण में वृद्धि

1.9 <u>लोक उद्यमों के प्रकार (**Types of Public Enterprises**)</u>– लोक उद्यमों का संगठन संवैधानिक व्यवस्था, सरकार की

(1) विभागीय उद्यम (**Departmetal Enterprises**)–

विभागीय संगठन लोक उद्यमों का एक परम्परागत स्वरूप

(2) लोक निगम (**Public Corporation**)–

लोक निगम एक वैधानिक निगम होती है। उस सम्बन्ध में द्वारा प्रबन्ध का स्वरूप व कार्यों तथा सरकार के साथ

(3) सरकारी कम्पनी (**Government Company**)–

इसमें अधिकांश पूँजी का धारक सरकार है। भारतीय

1.10 <u>लोक उद्यमों की वित्त व्यवस्था (**Financing of PUblic Prises**)</u>– लोक उद्यम वित्तीय व्यवस्था हेतु प्रमुख स्त्रोत है,

**1.11 सारांश (Summary)**– वस्तुओं और सेवाओं के उत्पाद और उपभोग से उत्पन्न होने वाले तीसरे पक्ष प्रभाव है जिनके लिए कोई उचित मुआवजा नहीं दिया जाता है। यदि मूल्य तंत्र उत्पादन और उपभोग की सामाजिक लागतों और लाभो को ध्यान में नही रखता है तो बाह्यताएं बाजार की विफलता का कारण बनती है। दो कम्पनियों एक दूसरे पर नकारात्मक प्रदूषण बाह्य प्रभाव डालती है। बाह्ता प्राथमिका प्रक्रिया का उपोत्पाद है। यह दुष्प्रभाव अच्छा या बुरा हो सकता है।

**1.12 शब्दावली (Keywords)**–

लोक उद्यम (Public enterprises); निगम (Corporations); निजी शुद्धि उत्पत्ति (Private net product); सकारात्मक (Positive) नकारात्मक (Negative) विक्रय (Marketable)

**1.13 सन्दर्भित पुस्तकें (Reference Books)**–


1. लोक अर्थशास्त्र, जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
2. मुद्रा, बैकिंग एवम लोक वित्त, डॉ0 टी0टी0सेठी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
3. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03


**1.14 प्रश्नों का उत्तर दीजिए (Answer the Question)**–

1. बाह्यता से आप क्या समझते है?

2. बाह्यता का परिचय दीजिए?

3. नेटवर्क बाह्यता क्या है?

4. निजी विनिमय की दक्षता की व्याख्या कीजिए?

5. सकारात्मक और नकारात्मक बाह्यताओं में अन्तर बताइये?

## 1.15 बहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर (Objective Type Question-Ansewr)–

(1) कौन सी वस्तु सार्वजनिक है

(अ) कलम (ब) प्रकाश स्तम्भ

(स) परिवार (द) स्मुदाय

(उत्तर ब)

(2) सावर्जनिक वस्तुओं के उदाहरण है

(अ) राष्ट्रीय रक्षा (ब) मच्छर उन्मूलन

(स) मौसम की भविष्यवाणी (द) उपर्युक्त सभी

(उत्तर द)

## खण्ड – 01

## इकाई – 05

# मिश्रित वस्तुएँ

# Mixed Goods

**1.0 परिचय :–**

आवश्यकताओं की संतुष्टि मनुष्य की इच्छाऐं असीमित होती है। आवश्यताओं की संतुष्टि होने पर नई आवश्यकताएं फिर जन्म ले लेती है। ऐसी सभी चीजें जो हामरी आवश्यकता को संतुष्ट करती है, वह वस्तु कहलाती है। जैसे–भूख लगने पर भोज, बीमार पड़ने पर दवाईयां, गर्मी के लिए कूलर, पंखा, समाचार हेतु पत्र पोस्ट कार्ड आदि। कुछ आवश्यकतायें ऐसी भी होती है, जिन्हें वतुओं संतुष्टि नहीं किया जा सकता है। अर्थात अध्यापक का ज्ञान, नर्तक की नृत्यकला, एडवोकेट, चिकित्सक की योग्यता सेवा द्वारा ही कुछ आवश्यकताओं में संतुष्टि किया जा सकता है, इन्हें सेवाअएं कहते है। इस तथ्य मनुष्य की सन्तुष्टि की पूर्ति वस्तु एवं सेवाएं से होती है। मिश्रित वस्तुओं को समझने के लिए आवश्ष्यक है किन निजी वस्तुएं तथा सामाजिक वस्तुएं अन्तर को समझना जरूरी है।

**1.1 निजी वस्तुएं व सार्वजनिक वस्तुएं में अन्तर :–**

| निजी वस्तुएं | सार्वजनिक वस्तुएं |
|---|---|
| 1. निजी लागत एवं लाभ | **बहय लागत एवं लाभ** |
| 2. उपभोग में प्रतिद्वन्ता ज्ञान | **उपभोग में प्रतिद्वन्दिता की अनुपस्थिति** |
| 3. ज्ञान<br>भुगतान एवं लाभ साथ–साथ<br>लाभ स्पष्ट<br>भुगतान करने वाला तथा लाभ पाने वाला अभिन्न | **अज्ञानता**<br>**भुगतान क्या लाभ साथ–साथ नहीं**<br>**लाभ अस्पष्ट**<br>**भुगतान करने वाले तथा लाभ पाने वाला अभिन्न नहीं** |

1.2 **मिश्रित वस्तुएं :–**

उपर्युक्त निजी एवं सार्वजनिक वस्तुएं के अन्तर से स्पष्ट होता है कि उन्हे धुव्रीय स्थिति (Polar Cases) कहा जा सकता है। क्योकि इस रूप में यह बताया जासकता है कि निजी वस्तुओं के लाभ मेंपूण्र प्रतिद्वन्द्विता है। जबकि सामाजिक वस्तुओं के लाभ में इसापूरा अभाव है। इस संबंध में कहा जाता है कि कोइ सामाजिक वस्तु नहीं है औरयदि है तो शायद केवल प्रतिरक्षा (Defence) वास्तविकता यह है कि अधिकांश वस्तुओं से निजी लाभ के साथ–साथ विभिन्न डिग्री में वाहय लाभ भी मिलतेहे। इसप्रकार कहा जा सकता हे कि इनमें निजी एवं सामाजिक दोनों प्रकार के वस्तुओं के गुण विद्यमान है। जैसे कि कारोना वाइरस का टीका लगवाने से उस व्यक्ति को लाभ मिलता हे जो टीका लगवाता है। यह व्यक्तिगत लाभ का उदाहरण है, जबकि टीका लगवाने के बायह लाभ भी हैं क्योंकि इससे छूत काभय कम हो जाता है। (टीका लगवाने से कोराना नहीं होगा) इसलिए एक व्यक्ति से दूसरे के पास इस बीमारी के पहुंचने का भय नहीं रह जाता है। ऐसी वस्तुओं को मिश्रित वस्तुये कहा जाता है। सामाजिक वस्तुओं का प्रावधान बजट द्वारा होता है। किन्तु मिश्रित वस्तुओं के लिए बजट की सम्पूर्ण प्रावधान की आवश्यकता नहीं । निजी खरीद को सब्सिडी अर्थात आर्थिक सहायता देने से काम चल सकतस है। रेखा चित्र निम्नवत है–

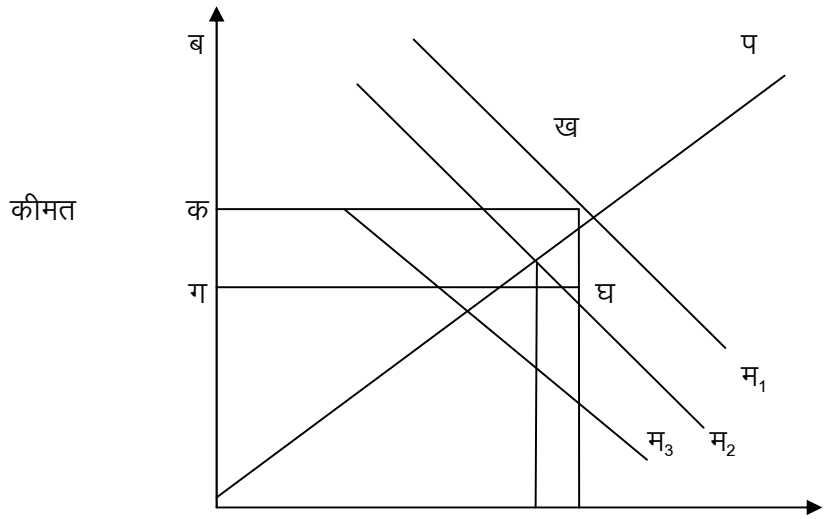


इस रेखा चित्र में $म_2$ निजी वस्तु बाजार मांग वक्र है। $म_3$ इस वस्तु का अतिरिक्त मांग है, जो यह बताता है कि बाहय लाभ के कारण उस वस्तु की

कितनी अतिरिक्त मांग होती है। $म_2$ तथा $म_3$ के योग को $म_1$ द्वारा दिखाया गया है। वस्तु की पूर्ति वक्र 'प' है। रेखाचित्र से स्पष्ट है निजी बाजार में साम्य उत्पत्ति 0च है। जबकि इसकी अधिकतम उत्पत्ति 0 छ होनी चाहिएं यह अधिकतम उत्पत्ति तभी समभव है जब सरकार इस वस्तु के उत्पादकनत्र को ख घ के बराबर आर्थिक सहायता दे, जो $म_1$ तथा $म_2$ का अन्तर है। 0 छ मात्रा औरसत लागत छ ख है जिसका भुगतान छ घ मात्रा में उपभोक्ताओं द्वारा होता है तथा घ ख मात्रा में सरकार द्वारा आर्थिक सहायता के रूप में है। यदि इसे शुद्ध निजी वस्तु मान लिया जाए तो केवल 0 च मात्रा की उत्पत्ति होगी, जिसका कुल भुगतान उपभोक्ताओं द्वारा होगा ओर आर्थिक सहायता शून्य हो जायेगी।

## 1.3सामाजिक वस्तुएं सहितसीमित या आंशिक वाहयताएं (Social Goods with Limited Spill-over):-

माना कि समाज में दो व्यक्ति 'अ' तथा 'ब' है। यह भी मान लिया जाए कि 'क' निजी वस्तु है तथा 'ख' सामाजिक वस्तु है। 'क' की $क_अ$ ात्रा का उपभोग'अ' द्वारा होत है तथा $क_ब$ मात्रा का ब द्वारा। दोनों व्यक्ति अ तथा ब सामाजिक वस्तु 'ख' का उपभोग समान मात्रा में करते है, अर्थात $ख_अ$ $ख_ब$ ख । दोनों वस्तुओं से अ तथा ब को उपयोगिता $U_अ = U_अ (क_अ , ख_अ)$ तथा $U_ब = U_ब$

$(क_ब , ख_अ)$.....1

सीमित बाहयताओं वाली सामाजिक वस्तुओं के उपयोगिता फलन को निम्नवत् लिखा जा सकता है–

$U_अ = U_अ (क_अ , ख_अ , ख_ब)$ तथा $U_ब = U_ब (क_ब , ख_अ , ख_ब)$.....2

उपर्युक्त उपयोगिता फलन मे स्पष्अ होता है कि 'क' शुद्ध निजी वस्तु है। 'क' का 'अ' द्वारा उपभ्ज्ञोग 'अ' के लिए उपयोगी है, इससे 'क' को मतलब नहीं। इसका विपरीत भी सही है। अब सामाजिक वस्तु 'ख' को लें। समीकरण (–02) से स्पष्ट होता है। कि 'ब' द्वारा 'ख' के उपभोग से 'अ' को फायदा पहुंचता है। इससे स्पष्ट है कि 'अ' के लिए $ख_ब$ शुद्ध सार्वजनिक वस्तु है, लेकिन 'ब' के लिए निजी वस्तु है। सइ प्रकार 'ख' में सामाजिक वस्तु का जो गुण पाया जाता है वह दो

तरफा (Non Reciprocal) गुण नहीं है, जैसे कि –प्रदूषण (Pollution) को दूर करने के लिए 'ब' द्वाराजो उपाय किये जाते है, माना कि उनसे 'अ' को फायदा पहुचता है क्योंकि 'ब' मकान की ऊपरी मन्जिल पर रहता है और 'अ' निजली मन्जिल मे लेनि इसका विपरीत सही नहीं अर्थात प्रदूषण रोकने के लिए 'अ' द्वारा उठाये गये कदम से 'ब' को लाभ नहीं मिलताह`।

## 1.4बाहयताएं जिनका स्थानापन्न नहीं (Non-Substituable Externalities):-

पहली स्थिति से स्पष्ट होत है कि 'ब' द्वारा 'ख' का उपयोग 'अ' द्वारा 'ख' के उपभोग का स्थानापन्न है। अब एक दूसरी स्थिति को लेते हे। दोनों उपभोक्तओं के लिए उपयोगिता फलन निम्नवत है–

$U_{अ} = U_{अ}$ (क$_{अ}$ , ख$_{अ}$ तथा $U_{ब} = U_{ब}$ क$_{ब}$ , ख$_{ब}$ , ख$_{अ}$ ).....3

इस समीकरण से स्पष्ट है कि 'ब' द्वारा 'ख' के उपभोग ( अर्थात ख$_{ब}$ के उपभोग ) अ 'अ' को लाभ पहुंचता है, लेकिन यह लाभ 'ब' द्वारा 'ख' के खुद उपभोग अथ्रत ख$_{ब}$ से मिलने वाले लाभ से पृथक है। माना कि 'अ' अपनी आय में वृद्धि करने के लिए शिक्षा पर खर्च करता है। यह भी मान लिया जाता है। कि 'अ' को 'ब' की शिक्षा में भी रूचि है। यह रूचि किसी भी कारण से हो सकती है, जैसे, केवल परोपकार के ख्याल से, या इस कारण कि 'ब' की शिक्षा से उसे 'अ' अधिक सुरक्षा मिलेगी या इसलिए कि 'ब' की शिक्षा से 'अ' के सामाजिक वातावरण में सुधार आयेगा। इस स्थिति में 'अ' ब को आर्थिक सहायता देने को प्रस्तुत हो सकता है या इसके विपरीत 'ब' अ को आर्थिक सहायता दे सकता है, लेकिन 'अ' द्वारा 'ख' की मांग (ख$_{अ}$ क) का कोई सीधा संबंध ख$_{ब}$ के स्तर से नहीं होगा।

यहां एक ऐसी वस्तु पर बात की जा रही है जिससे दो तरह के लाभ प्राप्त होते है। समान अर्थ में कहा जा सकता है कि ख$_{अ}$ तथा ख$_{ब}$ योगात्मक रूप में उपलब्ध होते हे। अन्तर इस बात को लेकर है कि बाहय उपभोग सिर्फ एक का प्रतिस्थापन (Substitue) है, निजी उपभोग के सभी पक्षों का नहीं।

## 1.5 मिश्रित लाभ वाली वस्तुएं (Mixed Benefit Goods) :-

यहां पर ऐसी वस्तु की बात की जा रही है जिससे दो तरह के लाभप्राप्त हो रहे है। एक वह लाभ है, जो शुद्ध रूप से निजी है क्योकि इसका संबंध सिर्फ उपभोक्ता के खुद के उपभोग से है। इसका लाभ वह है जो पूर्णतः सामाजिक है और जो सभी उपभोक्तओं को समान रूप से मिल रहा है। उदाहरण तौर शिक्षा को लेते है। कोई व्यक्ति अपनी शिक्षा से अधिक आय के उपार्जन के रूप में लाभ्ज्ञ प्राप्त करता है , लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षित होने से समाज के सांस्कृतिक वातावरण में सुधार के कारण सभी को लाभ पहुंचता है। इससे स्पष्ट है कि लोगों को शिक्षित करने के लिए आर्थिक सहायता देना चाहिए तथा सुलभ शिक्षा होनी चाहिए। इस संबंध में सैम्युएलसन ने केवल दो ध्रुवीय स्थिति (शुद्ध निजी वस्तु तथा शुद्ध सामाजिक वस्तु ) की विवेचना की है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में केवल शुद्ध निजी वस्तु की बात कही जाती है, जहां बाहयताएं अनुपस्थित रहती है। इसमें विपरीत शुद्ध एकाधिकार वह स्थिति है, जहां बाहयताएं अनुपस्थित रहती है। इसके विपरीत शुद्ध एकाधिकार वह स्थिति है जहां केवल सामाजित वस्तु की बात उठती है क्योकि याहं केवल बाहयताएं ही रहती है, निजी पहलू अनुपस्थित रहता है। सैम्युएलसन उन दोनों वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं अर्थात मिश्रित वस्तुओं का स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार बाजार यन्त्र के द्वारा शुद्ध निजी वस्तुओं की स्थिति में इष्टतम (Optimal) परिणाम निकलते हे। शुद्ध सामाजिक वस्तुओं की स्थिति में स्वैच्छिक बाजार भुगतान पर कुछ भी छोड़ा नहीं हा सकता। इस संबंध में मसग्रव का कहना है कि ' इन दो धुव्रीय स्थितियों के मध्य कई प्रकार की अपूर्णताएं हो सकती है, जिनके लिए विभिन्न अंशों में आर्थिक सहायता दी जा सकती है जबकि शुद्ध सामाजिक वस्तु को 100 प्रतिशत सब्सिडी की जरूरत है। अब स्थिति में उपयोगिता फलन निम्नवत होगा–

$U_{अ} = U_{अ}$ (क$_{अ}$ , ख$_{अ}$ ख$_{अ}$ +ख$_{ब}$ ) तथा $U_{ब} = U_{ब}$ (क$_{ब}$ , ख$_{ब}$ , ख$_{अ}$ ख$_{अ}$ +ख$_{ब}$ ).4

## 1.6 मिश्रित वस्तुओं और हाइमैन (Hyman : Mixed Goods):-

मिश्रित वस्तुओं को हाइमैन के द्वारा चार भोगों में विभक्त किया गया है,

1. शुद्ध निजी वस्तुएं (Pure private Goods)

2. निजी वस्तुएं जो बाहृयताओं का सृजन करती है (Private Goods with externalities)
3. आंशिक सार्वजनिक वस्तुएं (Partially public goods mixed cases)
4. शुद्ध सार्वजनिक वस्तुएं (Pure Public Goods)

**सारांश (Summary) :-**

मिश्रित वस्तुओं ऐसी वस्तु होती है कि निजी लाभ के साथ बाहृय लाभ भी प्रापत होती है साि इनमें निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के गुण विद्यमान होते है। इससे एक व्यक्ति के लाभ्ज्ञ के साथ पूरे समाज को भी लाभ मिलता हे। इस प्रकार की वस्तुओं के उपयोग से दो तरह के लाभ प्राप्त होते हे। एक उपभोक्ता के खुद उपयोग करने से दूसरा लाभ पूर्णतः समाजिक रूप सभी उपभोक्ताओं को समान रूप से मिलता है जैसे व्यक्ति के शिक्षित होने से समाज के सांस्कृतिक वातावरण में सुधार के कारण सभी लोगों को लाभ पहुंचता है।

**1.8 शब्दावली (Keywords) :-**

1. ज्ञान (Knowledge)
2. अज्ञानता (Ingornace)
3. धुव्रीय स्थितियां (Polar cases)
4. पूर्ण प्रतिद्वन्दिता (Wholly rival)
5. पूरा अभाव (Wholly Unviral)
6. प्रतिरक्षा (defence)
7. आंशिक बाह्तायें (Partial externaties)
8. दो तरफा (Non reciprocal)
9. प्रदूषण (Pollution)
10. इष्टतम (Optimal)
11. योगात्मक (Additive)

12. प्रतिस्थापना (Substitute)

## 1.9 सन्दर्भित ग्रन्थ सूची (Reference Books):-


1. R.A Musgrane : The Theory of public finance
2. R.A Musgrane : Fiscal systems
3. David N. Hyman : Public Finance : A Contemporary Application of theory to policy
4. R. W Houghton: Public Finance
5. Musgrance : Public Finance in a Demoratic Society Vol- 1


## 1.10 प्रश्न उत्तर (Question Answer ):-

1. निजी वस्तुओं और सार्वजनिक वस्तुओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. मिश्रित वस्तुएं की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक वस्तुएं सहित आंशिक वाह्यताएं को बताइए।
4. बाह्यताएं जिनका प्रतिस्थान नहीं की व्याख्या कीजिए।
5. मिश्रित लाभ वाली वस्तुएं को समझाइए।
6. मिश्रित वस्तुओं को हाईमैन ने कितने भागों में बांटा है?

## खण्ड–01

## इकाई–06

# लोक चयन Public Choice

1.0 परिचय :– अर्थशास्त्र हमें बताता है कि व्यक्ति की असीमित आवश्यकताओं (Unlimited wants) की पूर्ति अपने सीमित संस्थाओं (Scarce resource) से कैसे करें। इस ओर सर्वप्रथम ध्यान प्रो रॉबिन्स का जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक (An Essay on the Nature and significance of Economic science (1932) में इस संबंध में विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा था कि–'' लक्ष्यों तथा उसके सीमित एवं वैकल्पिक उपयोगों बाले साधनों के परस्पर संबंधों के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।'' इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित है और उनके पास साधन सीमित है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता है। इसलिए आवश्यकताओं को जरूरत के हिसाब से चयन करना पड़ेगा। दूसरें शब्दों में कह सकते है कि साधनों की सीमितता की वजह से ही व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं के बीच चयन करना पड़ता है और यही चयन की समस्या एक आर्थिक समस्या बन जाती है। प्रत्येक परिवार की आय सदैव सीमित होती है। एक परिवार अपनी सीमित आय का प्रयोग आवश्यकता को सन्तुष्ट करने वाली किसी भी वस्तु का सेवा को खरीदने के लिए कर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक समाज अपने सीमित साधनों अर्थात भूमि, श्रम , पूंजी तथा उद्यम का प्रयोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सवंओं का उत्पादन करने के लिए कर सकता है। यह कि परिवार एवं समाज दोनों के साधन सीमित है। इसलिए इनका प्रयोग एक वस्तु की प्राप्ति का उत्पादन के लिए किया जायेगा तो किसी दूसरी वस्तु का त्याग करना पड़ेगा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज को अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह चयन करना पडत्रता है कि वह अपने सीमित साधनों का प्रयोग कौन–सी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करने के लिए रकें तथा कौन सी वस्तुओं तथा सेवाओं का त्याग करें। आवश्यकताओं की तुलना में साधनों की सीमितता ही हमारे सामने इस समस्या को जन्म देती है। हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु किन–कि7 साधनों का कितनी–कितनी मात्रा मे उपभोग करें, इसके लिए हमें चयन करना पड़ेगा। अन्तः अर्थशास्त्र में इस चयन की समस्या का ही अध्ययन किया जाता है और इसे ही आर्थिक समसरूा कहा जाता है। इस आर्थिक चयन की समस्या कोप्रो0 एरिक रोल परिभाषित करते हुये कहते है कि–''आर्थिक समस्या मूलतः चयन की आवश्यकता में से उत्पन्न होने वाली समस्या है। यह वह चयन है, जिसमें वैकल्पिक उपयोगों वाले सीमित संसाधनों का प्रयोग किया जाता है। यह संसाधनों के मितव्ययी उपयोग

की समस्या है।'' इस संबंध में प्रो0 लेफ्टविच कहते है कि–'' आर्थिक समस्या का संबंध वैकल्पिक मानवीय आवश्यकताओं में सीमित साधनों का प्रयोग करने और इन साधनों का इसदृष्टि से उपयोग करने से है कि आवश्यकताओं की अधिकतम समभव सन्तुष्टि हो सके।'' आर्थिक समस्या पर सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीमित साधनों के प्रयोग से संबंधित चयन की समस्या ही आर्थिक समस्या कहलाती है।

आर्थिक समस्याएं का अध्ययन व्यष्ट अर्थशास्त्र के अर्न्तगत साधनों के आवंटन से संबंधित समरूाओं का समाधान किया जाता है, इसके अतिरिक्त साधनों के पूर्ण उपयोग संबंधी समस्यायें जैसे–बेरोजगारी, मुद्रा प्रसार का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र तथा साधनों के विकास तथा योजना के निर्माण से संबंधित समस्याएं का अध्ययन, विकास का अर्थशास्त्र व वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादक तथा वितरण में कुशलता से संबंधित समस्याओं का अध्ययन कल्याण का अर्थशास्त्र में किया जाता है।

## 1.1 दुर्लभता का अर्थ (Meaning of Scarcity)

दुर्लभता एक सापेक्ष अवधारणा है। इसका अर्थ कि मांग की तुलना में पूर्ति का अभाव, साथ्ज्ञ ही साध्नाों की कीमत शून्य ही क्यों न हों। अर्थात साधन (वस्तुयें एवं सेवायें) दुर्लभ इसलिए मानी जाती है, क्योंकि इनकी मांग पूर्ति से अधिक होती है 1. मांग – पूर्ति

जहाँ मांग साधनों की मांग और पूर्ति साधनों की पूर्ति से है। मकोनल के अनुसार–'' दुर्लभता वह स्थिति है, जिसमें एक निश्चित समय में साधनों की उपलब्धता उनकी मांग से कम होती है।'' इससे स्पष्ट है कि दुर्लभता तुलनात्मक है, इससे आशय है कि वस्तुएं एवं उन्हें उत्पदन करने वाले साधन उनकी आवश्यकताओं की तुलना में कम होती है।

दुर्लभता

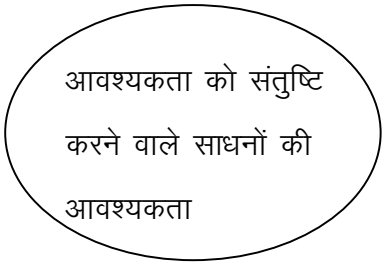


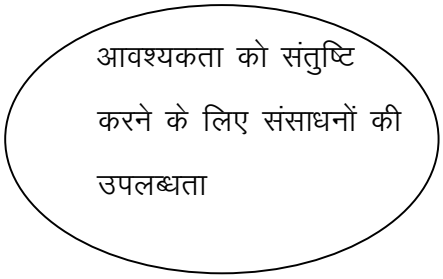


इससे स्पष्ट है कि दुर्लभता मूल्य का कारण बनती है। जो वस्तु किसी अधिक दुर्लभ (सीमित) होती है, उसका मूल्य उतना ही अधिक होता है , जैसे–हीरे की कीमत, प्लेटिनम, स्वर्ण की कीमत आदि। इसके साथ अगर दुर्लभता कम तो मूल्य भी कम जैसे–पानी की कीमत। और दुर्लभ्ता नही ंतो कीमत नहीं; जैसे

सूर्य की रोशनी। लेकिन ध्यान रखने भी जरूरत है कि किसी वस्तु की शून्य कीमत का अर्थ यह नहीं होता है कि उस वस्तु की दुर्लभता नहीं है, जैसे कि–एक सरकारी अस्पताल में मरीजों को दवाइयां बिना कोई कीमत लिये अर्थात निःशुल्क दी जाती ळै। फिर भ्झी दवाइयों की मांग उसकी पूर्ति से अधिक हो सकती है। वह दुर्लभता की स्थिति है।

**1.2 उद्देश्यः–**

1. व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं के बीच चयन में करने में प्रो0 राबिन्स के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है।
2. चयन की एक आर्थिक समस्या के समाधान में प्रो0 राबिन्स के विचार अति अवश्यक है।
3. भविष्य व वर्तमान के बीच सीमि साधनों का बंटवारा की समस्या का निदान में लोक चयन की महती आवष्रूकता है।

1.3 प्रो0 राबिन्स के अनुसार लोक चयन की समस्या के आधार निम्नवत है–

1. साधनों की सीमित होना (Means are limited):-

   प्रो0 रॉबिन्स के मतानुसार, मनुष्य के साधन उसकी आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होते है। यहां साधनों की सीमितता का आशय है कि मांग की अपेक्षा सीमित होने से है। यहां पर कह सकते है कि आवश्यकता–साधन । यदि आवश्यकता –साधन होता, तो आर्थिक समस्याएं उत्पन्न नहीं होती औश्र हर मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से पूर्ण कर लेता, लेकिन ऐसा वास्तविक में नहीं हो सकता है, इसलिए हमेशा साधनों और आवश्यकताओं के बीच में संघर्ष है।
2. आवश्यकताओं का अनन्त होना (Unlimited Wants):-

   प्रो0 रॉबिन्स के मतानुसार मनुष्य की आवश्यकताएं उसके साधनों की अपेक्षा अधिक होती है। मनुष्य के जीवन में आवश्यकताओं का कोई अन्त नहीं है। वास्तविक जीवन में जब एक आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है, तो उसके बाद ही कोई दूसरी आवश्यकता जन्म ले लेती है और जैसे ही आवश्यकता पूर्ण होने पर तीसरी आवश्यकता का उदय होने लगता है और तीसरी के बाद चौथी, पांचवी छटवी, सातवी आठवी .....आवश्यकता जन्म लेती है। इच्छाओं का यह क्रम लगातार अन्त तक चलता ही रहता है।
3. आवश्यकताओं का समान न होना (Wants differ in urgency):-

   किसी भी मनुष्य की आवश्यकताएं समान महत्व की नहीं हो सकती है। मनुष्य सामाजिक हो या असमाजि हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसकी आवश्यकताअें की जरूरतों में भारी अन्तर

होता है। जिस मनुष्य की जो जरूरत अधिक तीव्र होती है, वह उसकी पूर्ति सबसे पहले करने का प्रयत्न करता है। कम जरूरत वाली आवश्यकता की पूर्ति बाद में करता है।

4. साधनों के वैकल्पिक उपयोग (Atternative uses of factors):-

   प्रो0 रॉबिन्स के मतानुसार , साधनों की सीमितता की बात ही नहीं की है, साथ ही यह भी बताया है कि साधनों के वैकल्पिक प्रयोग (Atternativ use) भी किया जा सकता है , जैसे–दूध का चयन करते है। इसे पीने के काम में लाया जा सकता है, और इसकी कॉफी एवं चाय बनाई जा सकती है तथा दही, व खोया बनाया जा सकता है। इसी प्रकार कपड़ा और लकड़ी आदि के द्वारा अनेका अनेक साधनों के एक से अनेक प्रयोग किये जा सकते हैं। साधनों के इसी गुण के कारण उपभोक्ता हमेशा अपने साधनों को सर्वप्रथम उन आवश्यकताओं की पूर्ति पर खर्च करता है, जो उसके लिए अधिक उपयोगी होती है।

## <u>लोक चयन : एक आर्थिक समस्या (Public Choice : An Economic Proble):-</u>

प्रो0 रॉबिन्स के द्वारा बतायें गये अर्थशास्त्र में चयन की आर्थिक समस्या को एक आर्थिक समस्या का रूप प्रदान करते है। प्रो0 रॉबिन्स के द्वारा बताये गये चारों कारक प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होते है। इस तरह से चयन की समस्या उत्पन्न करते है। यह भी स्मरण रहे कि ये सभी समस्याएं दुर्लभता की मूल समस्या के कारण उत्पन्न होती है जैसे–समाज में कौन सी वस्तुएं उत्पादित की जाती औश्र उसकी मात्रा होनी चाहिए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वस्तुओं के उत्पादन करने में उत्पादन के संसाधनों का किस प्रकार वितरण किया जाए। अब प्रश्न है कि उत्पादन के साधन पूरी तरह से उपयोग होते हैं या उनमें से कुछ अप्रयुक्त है? अब बात आती है कि वस्तुएं किस प्रकार उत्पादित होती है अर्थात वस्तुओं के उत्पादन में किस प्रकार की तकनीकी का इस्तेमाल हुआ है। फिर, उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का समाज में वितरण का तौर–तरीका कैसे होगा। इसके अतिरिक कह सकते है कि राष्ट्र में उत्पादन साधन पूरी कुशलता या दक्षता से उपयोग में लाय गये हों, साथी ही राष्ट्र में उत्पादन क्षमता अर्थात आय में वृद्धि हो रही है कि नहीं अक्षता स्थित है।

1. यह कि समाज के पास देश के सभी व्यक्तिओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्टि करने के लिए पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध नहीं होते है। इसलिए उपलब्ध साधनों की सीमितता भी दृष्टि का ध्यान रखते हुये, ऐसा प्रतीत होता है कि क्या समाज के समस्त साधनों का पूर्ण रूप से उपयोग हो रहा है या नहीं। क्योंकि जब साधन सीमित हो तो यह आवश्यक है कि उत्पादन के लिए समस्त साधनों का प्रयोग किया जाए, जिससे समाज के लोगों को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सकें। यह कि समाज अपने उपलब्ध साधनों को स्वेच्छा से निष्प्रयोग पड़े रहने की मात्रा नहीं दे सकता है।

लेकिन पूँजीवादी देश में मन्दी के समय (1929–23) कुछ इस प्रकार की व्यवस्था सामने आ थी कि भारी मात्रा में श्रम–शक्ति तथा अन्य उत्पादन के साधनों का पूर्ण उपयोग नही होता है, जिससे एक तरफ श्रमिकों में बेरोजगारी फैल जाती है और दूसरी तरफ फैक्ट्रियां , खानों जैसे उत्पादन के साधन बन्द हो जाते अथवा अपने क्षमतानुसार कम उत्पादन करते है। मन्दी की स्थिति में उपलब्टध साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है, जिससे कारण भयंकर बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस महामंदी की स्थिति के परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्री जे00एस0 केन्स ने अपनी पुस्तक "General Theory of Employment , Interest and Money" लिखी थी, जिसका प्रकाशन 1936 में हुआ। प्रो0 केन्स ने बताया कि श्रमिकों में बेरोजगारी तिाि उद्योगों में बड़ी मात्रा में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता का मुख्य कारण कुल मांग (Aggregate demand) की कम होना जब 1939 के बाद जब द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मुद्रा स्फीति बढ़ने का कारण समस्त मांग का अत्यधिक बढ़जाना है। प्रो. केन्स द्वारा प्रेरित आर्थिक सिद्धान्त की यह शाखा जिसमें समूची अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार, राष्ट्रीय आय तथा सामान्य कीमत–स्तर के निर्धारण के विषय का अध्ययन किया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र का संबंध साधनों के प्रयोग की स्थिाति से है।

2. यह कि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को यह निर्णय करना पड़ता है कि क्या उत्पादन किया जाए अर्थात किन–किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय और इसकी मात्रा कितनी हो। साधन सीमित होने के कारण, अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं में से चयन करना ही पड़ता है कि किन वस्तुओं को उत्पादित किया जाए और किन वस्तुओं को नहीं। समाज जिन वस्तुओं का उत्पादन न करने का निर्णय करता है उन वस्तुओं के लिए आवश्यकताऐं अतृप्त रहेंगी। दूसरें शब्दो मे समस्या यह कि किन आवश्यकताओं की तृप्ति या पूर्ति की जाए और किन की नहीं। यदि समाज किसी वस्तु का ज्यादा मात्रा में उत्पादन करनाचाहता है तो उसे अन्रू दूसरी वस्तुओं के उत्पादन से कुछ साधन हटा लेने होंगे। इसलिए प्रकार अर्थव्यवस्था एक वस्तु को पहले से अधिक मात्रा में उत्पादित करने का निश्चय करती है तोउसे किन्ही दूसरी वस्तुओं का उत्पादन कम करना होग, जैसे–युद्ध के समय राष्ट्र युद्ध संबंध वस्तुओं जैसे बन्दूकों, रक्षा संबंधी हथियाों के उत्पादन बढ़ाने का निश्चय करता है, तो उसे असैनिक वस्तुओं और सेवाओं के निर्माण में से कुछ साधन कम करके उन्हें युद्ध सामग्री के निर्माण पर लगाने होंगे। हम अधिक रक्षा संबंधी हथियाओं और अधिक खाने–पीने की वस्तुएं नहीं कर सकते। अधिक रक्षा संबंधी हथ्यिाओं के लिए कुक्ष खाने–पीने की वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है। किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय, वस्तुओं तो असंख्य है, जैसे–मकान, स्कूल चावल, दालें, रेडियो, टी0वी0 गेहूँ कपड़ा, मशीनें, साबुन, लिपिस्टिक, नाइलन आदि वस्तुएं में चयन करना होता है। समाज जब एक बार यह निर्णय कर लेता है कि किन

वस्तुओं का उत्पादन किया जाएगा, तोउसेउत्पादन के लिए चयन की गई वस्तुओं मे से प्रत्येक को कितनी–कितनी मात्रा में उत्पादित किया जाए। इस संबंध में वस्तु के चयन का निर्णय करना होता है, जैसे कि – समाज ने गेहूँ, अस्पताल, स्कूल, और कपड़ा उत्पादित करने का निर्णय किया। साधन सीमित होने के कारण समाज इन चुनी हुई वस्तुओं का भी असीमित रूप में उत्पादन नहीं कर सकता। इसलिए समाज को इसका निर्णय अवश्य करना चाहिए कि कितना गेहूँ, कितने अस्पताल, कितने स्कूल, कितने मीटर कपड़ा उत्पादित किया जाए। प्रत्येक वस्तु को कितनी मात्रा में तैयार किया जाए अर्थात किन वस्तुओं को कम मात्रा में उत्पादित किया जाएगा, और किन को ज्यादा मात्रा में। इससे स्पष्ट होता है कि किन–किन वस्तुओं का तथा कितनी–कितनी मात्रा में उत्पादन करना है, इसका समाधान है कि सीमित पूँजीवादी समाजवादी, मिश्रित हो, साधनों का आवंटन का निर्णय करना पड़ता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में साधनों का आवंटन का निर्णय स्वतंत्र बाजार पद्धति (Price mechanism) के माध्यम द्वारा लिए जाते है। पूंजीवादी अर्थव्यव्स्था में मांग और पूर्ति की शक्तियों के रूप से कार्य करने के परिणामस्वरूप निर्धारित होती है। अतः वस्तुओं का उत्पादन तथा साध्नों का आवंटन निर्धारित करती है।

3. यह कि उत्पादन कैसे किया जाय अर्थात वस्तुओं के उत्पादन में कौन तकनीकी का प्रयोग किया जाए। वस्तु के उत्पादन हेतु अनेक वैकल्पिक तनीक होती है। इन्ही तकनीकी में से अर्थव्यवस्था के लिए चुनना पड़ता है। जैसे–कपड़े का उत्पादन, स्वचलित कारघों (Automatic looms) या विद्युत कारघों (Power looms) या हथकरघों (Hand Looms) से किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था को यह निर्णय करना होता है कि कपड़ा हथकरघों अथवा विद्युत, स्वचालित द्वारा। खेतों की सिंचाई–नलकूपों, तालाबों, नहरों के द्वारा की जा सकती है। अर्थव्यवस्था की निर्णय लेना होता है। कि खेतों की सिंचाई किस से की जाए इससे स्पष्ट है कि उत्पादन में तकनीक का चयन करना पड़ता है। उत्पादन हेतु तकनीकी प्रयोग जैसे–हथकरघें द्वारा कपड़े का उत्पादन किया जाता है, तो अधिक श्रम एवं कम पूंजी का उपयोग होता है, तब इसको श्रम प्रधान तकनीक माना जाता है। विद्युत स्वचालित करघें द्वारा कपड़े का उत्पादन किया जाता है तो कम श्रम और अधिक पूंजी का उपयोग होता है। तग इसकों पूंजी प्रधान तकनीक (Capital intensive technique) माना जाता है। उत्पादन हेतु वह तकनीक चुनी जाती है, जिसमें उत्पादन लागत कम से कम हो। उत्पादाकों द्वारा उत्पादन की किस तकनीक का चयन करना है, इसका उत्पादन सिद्धान्त के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। उत्पादन के सिद्धान्त में हम साधनों (Input) और उत्पादन (Output) के बीच भौतिक संबंधो की विवेचना करते है। साध्नों तथा उत्पादन में यह भौतिक संबंध वस्तुओं के उत्पादन लागत को निर्धारित करते है। यह उत्पादन लागत वस्तुओं की पूर्ति को

निश्चित करती है, जो कि वस्तुओं की मांग से क्रिया द्वारा वस्तुओं की कीमतों को निर्धारित करती है।

4. यह कि समाज के सदस्यों में राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण किस प्रकार किया जाए। वस्तुओं एंव सेवाओं की कुल उत्पादित राशि कसे किस–किस को कितना–कितना चाहिए। राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण मुद्रा आय के वितरण पर निर्भर करता है। जिनकी मुद्रा आय अधिक होगी, उनकी अधिक खरीदने की क्षमता होगी। इसलिए वह वे वस्तुओं एंव सेवाओं को अधिक मात्रा में क्रय कर लेते हे। जिनकी मुद्रा आय कम, उनकी क्रय क्षमता कम होगी, तो राष्ट्रीय उत्पादन का कम हिस्सा क्रय कर पायेगें। मुद्रा आय का जितनी अधिक समता से विभाजन होगा, उत्पादन भी उतने ही सम रूप से वितरित होगा। इसके विपरीत मुद्रा आय का असमान वितरण तो राष्ट्रीय उत्पादन का भी उतना ही अधिक विषम रूप से वितरण होगा। एक सिद्धान्त है कि समाज के सभी व्यक्तिओं को सम–भाग प्राप्त हो, अर्थात राष्ट्रीय मुद्रा आय का पूर्णतः समान वितरण हो। दूसरा सिद्धान्त है कि विभिन्न व्यक्तियों के राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता पेदा होगी। लेकिन यह भी सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन में किए गए अंशदान के अनुसार आय प्राप्त हो। राष्ट्रीय उत्पादन या आय के वितरण में मुख्य कठिनाई यहै कि वितरण औचित्य और न्याय पहलू (Equity Aspect) को प्रोत्साहन पहलू (Incentive Aspect) के साथ कैसे समन्वित (Reconcilation) किया जाए। न्याय की द्रष्टि से पूर्ण समानता के आधार पर राष्ट्रीय उत्पादन या आय का पूर्ण समान रूप से, वितरण, अधिक उत्पादन तथा कार्य करने के लिए प्रोत्साहन (Incentive to Produce or work more) पर कुप्रभाव पड़ताहै। यदि समानता बनाए रखने के फलस्वरूप अधिक उत्पादन के के प्रोत्साहन को नष्ट किया गया था अथवा उसे अधिक हानि पहुंचाई गई तो विरण के लिए उपलब्धप कुल राष्ट्रीय उत्पादन कम हो जाएगा, जिससे सभी लोगों का जीवन–स्तर घर जायेगा। अतः राष्ट्रीय आय व उत्पादन में कितनी असमानता हो, इस बात का निर्णय प्रत्येक अर्थव्यवस्था को करना पड़ेगा। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिकों को उनकी उत्पादकता से कम मजदूरी मिलती है। लेकिन यदि पूर्ण समानता के आधार पर राष्ट्रीय उत्पादन तथा आय का विरण किया जाए तो उद्यमकर्ताओं द्वारा अधिक उत्पादन तथा कमार्य करने के लिए प्रोत्साहन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को वितरण हेतु यह निश्चित करना पड़ेगा कि कितनी समानता तथा असमानता हों। आर्थिक सिद्धान्त में वितरण का सिद्धान्त में साधनों की कीमत निर्धारण का सिद्धान्त (Theory of Factor Pricing) है, जो कि वस्तुओं के कीमत निर्धारण के सिद्धान्त का एक विस्तृत अंग के रूप में है। विगत वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन आदि पूंजीवादी राष्ट्रो ने आय और सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने के लिए कदम उठाए है,

जिसका राष्ट्रीय उत्पादन पर प्रभाव पड़ा है। संपत्ति का वितरण एक संस्थागत कारक है। इससे स्पष्ट होता है कि पूंजीवादी देशो के द्वारा असमानता कम करने पर प्रयत्न किये जा रहे है। जबकि इस परिप्रेक्ष्य में भारत को असमानता कम करने पर विचार करना चाहिए।

5. यह कि साधन सीमित एवं कम हैं, इसलिए यह जरूरी है कि उनका अधिकतम कुशलता से उपयोग किया जाना चाहिए। एक बात है कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था से कार्य कर रही है या नहीं। दूसरी बात है कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीयआय का उत्पादन व वितरण कुशलता के साथ्ज्ञ हो रहा है या नहीं। इसके पश्चात राष्ट की अर्थव्यवस्था को कौान–कौान वस्तुयें उत्पादित करनी है तथा कैसे और फिर उत्पादित वस्तुओं का वितरण किस प्रकार किया जाना है। अतः अर्थव्यवस्था का उत्पादन एवं वितरण कुशलता पूर्वक हुआ है या नहीं। एक राष्ट्र मेंउत्पादन 'कुशल' तब कहा जा सकता है कि उत्पादन के साध्नों को वस्तुउत्पादन के लिये इस प्रकार प्रयोग किया जाए कि उनके विभिन्न वस्तुओं मु पुर्नरावंटन से किसी एक व्सतु के उत्पादन को बढ़ाना , किसी अन्य के उतपादन को घटाए बिना सअम्भव हो। यदि राष्ट्र में उत्पादन या साधनों का आवंटन अकुशल होगा, यदि विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का पुर्नराण्टन करके किसी अन्य वस्तु के उत्पदन को घटाए बिना, किसी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाया जाना सम्भ्ज्ञव हो। विभिन्न राष्ट्रो में उत्पादन तथा वितरण की अकुशलताएं पाई जाती है। यदि इन अकुशलताओं को दूर यिका जाए तो राष्ट्रीय उत्पादन तथा लोगों के कल्याण सन्तुष्टि में वृद्धि की जा सकती है। लेकन अकुशलताओं को हटाने के लिए कुछ लागत उठानी पड़ेगी। यदि इन अकुशलताओं को हटो की लागत, उकने दूर होने से प्राप्त लाभ अथवासन्तुष्टि की अपेक्षा अधिक है, तो इन्हें हटज्ञना हितकर नहीं होगा। लेकिन अर्थव्यवस्था में पाई जाने वाली इन अकुशलताओं के सही परिमाण के संबंध में हम नहीं जानते है। आर्थिक सिद्धान्त का वहभागजिसमेंउत्पादन तथा वितरणकी कुशलताओं तथा अकुशलताओं के संबंधमें विवेचन की जाती है, कल्याणकारी अर्थशास्त्र कहा जाता है। आर्थ्ज्ञिक कुशता के तीन प्रकार होते है, एक तकनीकी कुशलता दूसरी आवंटन विषयक कुशलता तीसरी उपभोग या वितरण विषयक कुशलता है। आवंटन की दृष्टिसे कुशलता तब पाई जाती है जबवस्तुओं के उत्पादन काढांचा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथाअधिमानों के अनुरूप होता है। उपभोग अथवा वितरण संबंधी कुशलता की प्राप्ति तब होती है जब आय वितरण दिया हुआहोने पर मिली उपभोक्त की सन्तुष्टि में वृद्धि करना किसी अन्य को सन्तुष्टि घटाये निा सम्भव न हो।

6. यह कि राष्ट्र में उत्पदन क्षमता बढ़ रही है, या स्थिर है अथवा घट रही है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता मे वृ िहो रही है, तो वह अर्थव्यवस्था में वस्तुओं तथासेवाओं में निरन्तर अधिक

उत्पादन कर सकतीहै। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्र में आम जनता का जीवन स्तर ऊँचा होगा।इस प्रकार कहा जाता है कि उत्पादन क्षमता में वृद्धि और परिणामस्वरूा कुल राष्ट्रीय उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने को आर्थिक होने को आर्थिक विकास कहा जाताहै। आर्थिक विकास की समस्या कासंबंध यह है कि कुल राष्ट्रीय आय का कितना भाग लोगों द्वारा उपीाोग कर लिया जाए और कितना बचाया जाए ताकिउसे विनियोग कार्यों में लगाया जासके। किसी वर्ष जितनी राष्ट्रीय आय उत्पादित की जाए और वहसारी की सारी उपभोग कर ले जाता औश्र कुछ न बयसाजा गया तो विनियोग नहीं होगा। विनियोग के न होने के कारणर पूँजी निर्माण नहीं होगा अर्थात पूँजीगत वसतुओं में मशीनरी, फैक्ट्रियाँउपकरण व औजार आदि में वृद्धि न होगी। पूँजी निर्माण की दर शून्य हो जाने पर आर्थिक विकास बाधित होगा अर्थात भविष्य में राष्ट्रीय उत्पादन और आय घट जायेंगे। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ने के लिए जरूरीहै किराष्ट्रीय आय में कुछ अंश की बचत का, निनियोग कार्यों में लगाया जाए। उपभोग और विनियोग हेतु वर्तमान वर्ष में उपलब्ध उत्पादन क्षमता अथ्ज्ञवा उत्पादन के साधनों की उपलब्ध मात्रा कितना भाग उपभोक्ता वस्तुओं के बनाने में लगाया जाए और कितनाभाग पूँजीगत वस्तुओं के बनाने में लगाया जाए।दूसरी बात यहळ` कि कितनी मात्रा में कुल उपभोक्ता वस्तुओं बनाई जाए और कितनी मात्रा में कुल पूँजी वस्तु बनाई जाए। जितनी ही अधिक किसी राष्ट्र में पूँजी वस्तुओं में विशुद्ध वृद्धिद्ध की जाती है, भविष्य में राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय उतनी ही तेजी से बढ़ेगी। इस प्रकार के निर्णय लेने हेतु वर्तमान और भविष्य के चयन कीसमस्या में निहित है। पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए वर्तमान उपभोग के स्तर में कमी करना होगा। वर्तमान में पूँजीगत वस्तुओं काउत्पादन में वृद्धि हेतु भविष्य में उपभोग वस्तुओं काउत्पादन बढ़ना सम्भव होगा। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के द्वारा रेगना निर्णय लिा जउ कि उपभोग वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के बीच अनुपात क्या होना चाहिए साथ ही कितना अनुपात वर्तमान में व कितना भविष्य के लिए बचाया जाए। प्राकृतिक साधनों के उपयोग के लिएयह निर्णय जरूरी है। आर्थिक विकास सेउत्पन्न प्रदूषण जैसे कुप्रभावों पर भी ध्यान आकर्षित होना चाहिए। इन सभी विषयों का अध्ययन 'आर्थिक विकास के सिद्धान्त' केअन्तर्गत कियाजाताहे।

## 1.5 अवसर लागत की अवधारणा (Concept of opportunity cost):-

अवसर लागत की अवधारण इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पत्ति के साधन सीमित और बहु–प्रयोगात्मक होते हे। साधन सीमित होने के कारण उन सभी का प्रयोग, सामान्य रूप से सभी प्रयोगो मे पूर्ण रूप से नही किया जा सकता है। समाज की दृष्टि सेउसको किसीएकउद्देश्य के लिए प्रयोग करने का अर्थ है कि उसको अन्य उद्देश्य में प्रयोग करने का अवसर त्यागना पड़ेगा। अतः

किसी साधन या आर्थिक वस्तुओं के प्रयोग की अवसर लागत दूसरे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग में त्यागके मूल्य के बराबर होती है। इस तरह, अवसर लागत है, स्पष्ट रूप से चयन में अवसर लागत शामिल है।इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह लागत जो किसी साधन को उसके वर्तमान कार्य में लगे रहने के लिए प्रेरित है, अवसर लागत कहा जाता है, अर्थात किसी एक वस्तु के उत्पादन की लागत अन्य वस्तु की वे मात्राएं है जिनका हमें त्याग करना पड़ रहा है। पिस्तौल बनाने की अवसर लागत इमारत की वह मात्रा होगी, जो पिस्तौल बनाने के लिए साधनों के प्रयोग के कारण हम पैदा नहीं कर सकेंगे। पिस्तौल और इमारत बनाने के लिए साधन चाहिए। साधन सीमित हैं, इसलिए हम पिस्तौल बना सकते या इमारत। इस प्रकार उत्पादित वस्तु की लागत को उसमें लगे साधनों में व्यक्त न करके,उस वस्तु में व्यक्त कियाजा सकताहै जो उत्पन्न नहीं की जा सकती या उत्पन्न न की जाने वाली वस्तु एकप्रकार का खोया अवसर है और इसलिए इस वस्तु की लागत है, जो वास्तव मेंउत्पन्न की ईहै। अवसर लगात की अवधारणा को उत्पादन सम्भावना वक्र से स्पष्ट किया जा सकता है।

## 1.6 उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve):-

प्री0 रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा में मितव्ययता की समस्या की ओरध्यान आकर्षित कराया है, जो कि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक समस्यायें है । गैलबेथ की Affluent Society में भी इसी समस्या पर विचार किया गया है। मितव्ययता की समस्या काउत्पन्न होना, साधनों का सीमित होना है। प्रो0 सैम्युएलसन ने मितव्ययताकी व्याख्या उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से कीहै। यह यथार्थ यह कि अर्थव्यवस्था में पूर्णरोजगार तथा पूर्णउत्पादन होने पर भ्झी सीमित साधनों के कारण असीमित मात्रामें वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन सम्भव नहीं है। उत्पादन सम्भावना वक्र की तीन मान्यताएँ एकअर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार है तथा पूर्णउत्पादन प्राप्त किया जा रहा है, दूसरी साधनों की उपलब्ध पूर्तियाँ स्थिर हैं लेकिन उनका विभिन्न उपयोगों में सीमित रूप में पुनः आवंटन सम्भव है; तथा तीसरी विश्लेषण की अवधि में तकनीकी स्थिति में परिवर्तन नहीं होता है। अर्थव्यवथ्ज्ञा में केवल दो वस्तुओं 'अ' तथा 'ब' का उत्पादन किया जा रहा है। 'अ' उपभोग वस्तु तथा 'ब' पूँजगत वस्तु।अर्थव्यवस्था में उपलब्ध साधन सीमित है इसलिए इन दोनों वस्तुओं काउत्पादन सीमित मात्रामें किया जा सकताहै। अब अर्थव्यवस्था को निर्णय करना है कि इनमें से किस वस्तु का कितना उत्पादन करें। यदि 'ब' के उत्पउदन में वृद्धि करनी है तो 'अ' के उत्पादन में लगे साधनों मेंसे कुछ को वहा ंसे हटाना होगा। इसी प्रकार 'उ' का उत्पादन बढ़ाने के लिए 'ब' के उत्पादन में लगे साधनों में से हटाना होगा। मितव्ययता की समस्या का सार है कि हम तबना एक वस्तु के उत्पादन को घटाये दूसरी वस्तु का अधिक उत्पादन प्राप्त नहीं कर सकते है।

**उत्पादन सम्भावना तालिका :**

| वस्तु | उत्पादन विकल्प | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | क | ख | ग | घ | च |
| अ | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 |
| ब | 10 | 8 | 6 | 4 | 0 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'क' विकल्प के अन्तर्गत के 'ब' वस्तु काउत्पादन किया जा रहा है। तथा 'च' विकल्प के अन्तर्गत केवल 'अ' वस्तु का उत्पादन किया जा रहा हे। ये दानों ही अवास्तविक स्थितियां है। एक अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन में उपभोग वस्तु 'अ' तथा पूँजीगतवस्तु 'ब' एक निश्चित अनुपात में सम्मिलित होते है। 'क' से'च' की ओर बढ़ने पर अ' का अधिकउत्पादन होताहै, जिसके लिए 'ब' के उत्पादन में कमी होतीहै। इसके विपरीत , च से क की ओर आने पर अर्थव्यवस्था द्वारा वर्तमान सन्तुष्टि का त्याग किया जाता है ,ताकि पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हो सके, जिसके भविष्य में उपभोग के लिए अधिक उत्पादन करनासम्भव हो। इस प्रकार पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण उत्पादन की स्थिति में किसी समय पर 'ब' वस्तु का अधिक उत्पादन करने पर 'अ' वस्तु के उत्पादन में कुछ कमी करनी होगी। हालांकि साधन सीमित हैं, इसलिए 'अ' तथा 'ब' दोनों के उत्पादन में एकसाथ वृद्धि सम्ज्ञव नहीं होगी। उत्पादन सम्भावना तालिका को रेखाचित्र में दर्शाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर 'ब' वस्तु की इकाइयां और समान्तर अक्ष पर 'अ' वस्तु की इकाइयां ली गई है। यह चक्र दोनों वस्तुओं के 'क' से 'च' तक के विभिन्न सम्भावना संयोगों को प्रकट करताहै। इस उत्पादन सम्भावना वक्र को रूपान्तरण वक्र भी कहते है। एक संयोग से दूसरे संयोग की ओर बढ़ने पर हम 'ब' का रूपान्तरण 'अ' मे करते है। और इसकेलिए हमें 'ब' से साधन हटाकर 'अ' के उत्पादन मे लगाने होते है। वक्र के भीतर कोई भी बिन्दु इस ओर संकेत करताहै कि साधनों काउचित उपयोग नहीं हो रहाहै।

उत्पादन सम्भावना वक्र मूल बिन्दु के नतोदर होता है जिसका,अर्थ है कि हम ज्यो–ज्यों बिन्दु खसे ग तथा घ की ओर बढ़ते है, त्यों त्यों उत्पादन सम्भावना वक्र पर रूपान्तरण की दर बढ़ती जाती है। प्रो सैम्युएल्सन के अनुसार ''पूर्णरोजगार अर्थव्यवस्था में प्रतिस्थापन जीवन का नियम है। उत्पादन सम्भावना वक्र अथवा सीमान्त क्षेत्र समाज के चुनावों की व्यंजन सूची दर्शाता है।'' इसी से इष्ठतम उत्पाद मिश्र का पता चलता है।उत्पादन सम्भावना वक्र या बहुत व्यावहारिक महत्व है। रूस और अमेरिका केउत्पादन सम्भावना वक्रों की तुलना करने पर हम पाते है कि 1917 की क्रांति के बाद रूस ने पूँजीगत वस्तुओं केउत्पादन को अधिक महत्व दिया,जिससे उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में कमी हुई और रूस के

लोगों का जीवन स्तर गिर गया । दूसरी ओरअमेरिकाएक औशेगिक देश होने के कारण उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के लिए भीसाधन लगा सका, जिससे वहांके लोगों को जीवन स्तर ऊँचा उठ सका उत्पादन सम्भावा वक्र से हमे तीन समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती हे।एक किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए दूसरा उत्पादन कैसे किया जाए,तीसरा उत्पादन किसके लिए किया जाए।

## 1.7 स्वतंत्र बाजार व्यवस्था में आर्थिक समस्याओं का हल (Solutio of Economic Problems in a free market Economy):-

स्वतंत्र बाजार व्यवस्था का तात्पर्य है कि स्वतंत्र उद्यम पूँजीवादी प्रणाली से है। पूँजीवादी व्यवस्था मूलभूत समस्याओं के हल करने में किसप्रकार निर्णय लेती है–

1. **किन–किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए ? :–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में किन–किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए,इसका निर्णय राष्ट्र के उपभोक्ताओं के द्वारा किया जाता हे। इस संबंध में प्रो बेन्हम ने कहा था कि–'' पूँजीवाद के अन्तर्गत उपभोक्ता राजा होता है।'' उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करेगा जिन्हें उपभोक्त चाहिए है। यहभी सत्य है कि उत्पादन उपभोक्ता क इच्छाओं , आवश्यकताओं एवं आस्वादों की अवेहला कर अन्य वस्तुओं काउत्पादन करता है तो उसे ही हानि होगी क्योंकिउन वस्तुओं को कौन क्रय करेगा ? जब किसी वस्तु में असाधारण रूप मूल्यों में वृि होती है तो यह इस बता का प्रमाण है कि उपभोक्ता उस वस्तु को चाहत है। अतःअपने ही हित में उत्पादक को उसी वस्तु का उत्पादन करना चाहिए।
2. **कैसे उत्पादन किया जाये या किस तकनीक सेउत्पादन किया जाय? :–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में इस बात का निर्णय एवं उद्योगपति /वयवायी करताहै। प्रत्येक उद्योगपति अधिकतम लाभकी दृष्टि से उत्पादन करता है। ऐसी स्थिति में अधिकतम लाभ्ज्ञ वह तभी कमा सकता है, जब उसकी लागत न्यूनतम होगी। अतःवह ऐसी उत्पादन विधि अथवा तकनीक अपनायेगा जिसेस उसकी लागत कमसे कम आये। वह उत्पादन के विभिन्न साधनों का प्रयोग इस ढंग से करेगा कि उसकी लागत न्यूनतम हो। पूँजीवाद में उत्पादन तकनीक कानिर्धारण उद्योगपति के द्वारा स्वयं किया जाता है।
3. **उत्पादित वस्तुओं का विरण कैसे होता है ? :–** स्वतंत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं का वितरण कैसे करती है। व्यवसायी लोग वस्तुओंएवंसेवाओं को बचेकर लाभ कमाते है। इस प्रकार व्यवसायीन्यूनतम लागतबालेउत्पादन का संगठन करके कमायी जाती है। व्यवसायियों उद्योगपतियों केकर्मचारीभी अपनी आय लगभगइसी तरहकमाते है। श्रमिकों को इसलिए रखा जाता है क्योंकि वे वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में अपना अंशदान करते है। व्यावसायियों में श्रमिकों कीसेवओं को प्रापत करने की हाड़ इतनी तीव्र होती है कि मजदूरियां ऊपर उठने लगती है और एक स्थिति

ऐसीआ जाती है कि प्रत्येक श्रमिक को मजदूरी उसके द्वारा उत्पादित की गई वस्तु बिक्री मूल्य में किये गये अंशदान ने अनुपात में मिलने लगती है। अतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की आय उसके द्वारा उत्पादन में किये गये अंशदान में निर्धारित होती है।

4. **वर्तमान एवं भविष्य के बीच चयन कैसे किया जाता है ? :–** स्वतंत्र उद्यम पूँजीवादी व्यवस्था में बाजर–कीमत यन्त्रावली के माध्यम से स्वतः ही मूल्य का निर्धारण हो जाता है जैसे–एक उपभोक्ता को निर्णय लेनाहोता है। वह अपनी मौद्रिक आय का कितना अंश उपभोक्ता वस्तुओं पर खर्च करे और कितना अंश भविष्य के लिए बचत करे, अर्थात उपभोक्ता को खर्चएवे बचत के बीच अपनी आय का वितरण करना होता है। एसी स्थिति में कीमत यन्त्र से मार्गदर्शन मिल जाताहै। यदि ब्याज दर ऊची है तो उपभोक्ता कम खर्च और अधिक बचत करेगा। इस प्रकार बाजार कीमत यन्त्र उपभोक्ता के चयन को सरल एवं सुविधाजनक बना देती है। ऐसे ही राष्ट्र की आर्थिक प्रणाली को निर्णय करना है कि आर्थिक साधनों का कितना भाग वर्तमान में उपभोग करन है तथा कितना भाग भवष्यि हेतु बचत के लिए रखा जाए ; जैसे भूमि के गर्भ में पड़े खनिज तेल का कितना भाग वर्तमान में उपभोग हेतु निकाला जाए और कितना भाग को भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जाए। इसका चयन में भी कीमत यन्त्रप्रणाली सहायक होती है। यदि बाजार में तेल की कीमतें में वृद्धि होतीजा रही है और भविष्य में तेल की कीमते में वृद्धि होने की सम्भावना है तो तेल को भूमि के गर्भ में ही पड़े रहने देना ही अधिक लाभदायक होगा।तेल उत्पादक अरब देश इस समय इसी नीति को अपना रहे है। कभी–कभी सामाजिक कारणों से बाजार कीमत यन्त्र से शासित नहींहो पाते है। ऐसी परिस्थिति में राज्य हस्तक्षेप के माध्यम से साधनों के प्रयोग करे नियंत्रित किया जाता है।

## 1.8 पूँजीवादी प्रणाली का परस्परावलम्बन (Inter dependence of the capitalist system:-

पूँजीवादी व्यवस्था में सभी कारक एक दूसरे पर निर्भर रहते है। एक साथ आर्थिक निर्णय में सहायक होते है। इस संबंध में ''आर्थिक क्रियाओं का चक्राकार प्रवाह' देखने को मिलता है। पूँजीवादी व्यवस्था में परिवार तथा व्यवसाय मूलभूत आर्थिक कारक के रूप कार्यशील दिखते है। परिवार मुख्यतः साधन–पूर्तिकर्ता होते है। व्यवसायों को विभिन्न प्रकार के साधन अथवा उत्पादक सेवाएं पूर्ति करते है। व्यवसाय उत्पादन के संगठनकर्ता होते है। इसलिए वस्तुओं एवं सेवाओं काउत्पादन करने हेतु वे परिवारों की उत्पादक सेवाओं को खरीदते है। इन सेबाओं के बदले परिवारों को व्यवायों से मौद्रिक आय प्राप्त होती है। परिवारों को मजदूरियां , ब्याज, लाभ्ज्ञ के रूप में आय प्राप्त होती है। इसके साथ परिवार उपभोक्ता व व्यय इकाइयाँ भी है। वे अपनी आय को वस्तुओं एवं सेवाओं पर उपभोग करते हे, जिनका उत्पादन व्यवयाअयों की ओर प्रवाहित होता है।

व्यवसाय इस आय का प्रयोग पुनः परिवारों को उनकी सेवाओं केबदले मजदूरिया, ब्याज एवं लाभ्ज्ञ चुकाने में करते है। इस तरह से सेवाओं के बदले मजदूरियाँ ब्याज एवं लाभ चुकाने मे करते है। इस तरह से 'चक्रकार व्राह' सतत जारी रहता है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में दो प्रवाह होते है। अदा पक्ष के अन्तर्गत उत्पादक सेवाओं का प्रथम प्रवाह परिवारों की ओर से व्यवसायों की ओर जता है। दूसरा प्रवाह मौद्रिक आय के रूप में व्यवसायों की ओर से परिवारों की ओर जाता है। इसके विपरीत, प्रदा पक्ष के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रथम प्रवाह व्यवसायों की ओर से परिवारों की ओर होता है और इनके बदले वापसी में मौद्रिक भुगतानों का दूसरा प्रवाह परिवारों की ओर से व्यवसायों की ओर होता है। यह परस्परावलम्बन पूँजीवाद व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। साधारणताः कहा जाए तो इस चक्रीय प्रवाह का कोई प्रारम्भ बिन्दु नहीं है। प्रत्येक कारक प्रत्येक अन्य कारक पर निर्भर करता है। इस प्रकार ''आर्थिक क्रियाओं का चक्राकार प्रवाह'' पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के परस्परावलंबन को अच्छे ढंग से व्यक्त करता है।

## 1.10 चयन की समस्या – एक किफायत की समस्या (The problem of choice is a problem of economising):-

आर्थि द्रष्टि से सीमितता सपेक्षित होती है। आर्थिक वस्तुएं एवे सेवाएँ भी सीमित होती है। क्योंकि वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित करने के साधन सीमित होते है। सीमितता की समस्याऔर अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि उपलब्ध साधन को कई वैकल्पिक प्रयोगों में प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए वैकल्पिक प्रयोगों में इष्टतम प्रयोग काचुनाव भी एक आर्थिक समस्याहै जिसका मूल कारण साधनों की सीमितता है। साधनों की सीमितता के कारण मानव साधनों को अधिक कुशलता के साथ प्रयोगों में प्रयोग करके अधिकतम हित या सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है, अर्थात मानव अपने सीमित साधनों को किफायत के साथ प्रयोग करते हुए अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि चयन की समस्या एक किफायत की समस्या है। अनन्त इच्छाओं एवं सीमित साधन तथा किफायत की समस्या एक साथ कार्यशील होकर मानव को अवश्यकताओं के बीच विवेकपूर्ण चयन के लिए प्रेरित करते है। इस विवेकपूर्ण चयन के अन्तर्गत मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को उनके जरूरत के हिसाब से एक वरीयता क्रम में रख सकता है। इस विवेकपूर्ण चयन का नैतिकता से कोई संबंध नही होता, जरूरत के हिसाब से इस विवेकपूर्ण चयन का वरीयता क्रम निर्धारत होता है। जैसे शराबी के लिए शराब का स्थान विवेकपूर्ण चयन में ऊपर आता है। नैतिकता के आधार पर इस चयन क्रम बदला नहीं जा सकता है। चयन समस्या वर्तमान व भविष्य में उपस्थित रहती है। भविष्य वर्तमान के बीच

सीमित साधनों का बंटवाए भी एक चयन की समस्या है जिसका आधार साधनों का विवेकपूर्ण आवंटन ही है।

**सारांश (Summary):-** एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक समस्यायें एक दूसरे से जुड़ी हुई है, साथ ही इनमें परस्पर निर्भरता है। कौन सी वस्तुओं और कितनी मात्रा में उत्पादन करना है, व उत्पादन कैसे किया जाए तथा किसके लिए उत्पादन किया जाए, इनका समस्याओं का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आता है, जो वष्टि एवं समाष्टि अर्थशास्त्र दोनों से संबंधत है। क्या साधनों का प्रयोग कुशलता से हो रहा है व क्या समस्त समस्त साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा है, इनका समस्याओं का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र से है। अर्थव्यवस्था की इन समस्याओं के संबंध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं है। अलग–अलग अर्थशास्त्रिओं ने अनेक प्रकार से समस्याओ की विवेचना की है। यह कि ये सभी समस्याओं का उदय होना, साधनों की सीमितता है और चयन की समस्या की ओर ले जाती है। इन सभी समस्याओं का समाधान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत यन्त्र के द्वारा किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में निर्णय केन्द्रीय नियोजन अधिकार प्राप्त सरकार के द्वारा किये जाते है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी उद्यमियों एवं सरकार के द्वारा लिये जाते है साथ ही सरकार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निजी क्षेत्र के नियंत्रण एवं नियमन तथा सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योग–धन्धे स्थापित करने के साथ सरकार और भी कार्यो को सम्पादित करती है, जैसे कल्याणकारी योजनाओं का कार्यान्वयन आदि। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

## 1.12 शब्दावली (Keywords):-

1. लोक चयन (Public Choice)
2. सीमित साधन (Scarce resource)
3. अनन्त आवश्यकताएं (Unlimited wants)
4. कुल मांग (Aggregate demand)
5. स्वचालित करघों (Automatic Looms)
6. हथकरघो (Hand looms)
7. विद्युत करघों (Poewer loomd)
8. पूँजी प्रधान तकनीक (Capital intensive Technique)
9. अदा (Input)

10. प्रदा (out put)
11. न्याय पहलू (Equity aspect)
12. समन्वित (Recociliation)
13. प्रोत्साहन पहलू (incentive aspect)
14. अधिकतम कुशलता (Maximum efficiency)
15. कुशल (Efficient)
16. पुर्नरावंटन (Reallocation)
17. अकुशलताएं (Inefficiencies)
18. कल्याण (Welfare)
19. विशुद्ध (Net)
20. कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product)
21. अवसर लागत (Opportunity cost)
22. उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve)
23. मितवययता (Economising)
24. रूपान्तरण वक्र (Transformation Curve)
25. इष्टतम (Optimum)
26. नतोदर (Concave)
27. कीमत यंत्र (Price Mechanism)
28. परस्परावलम्बन (Interdependence)
29. परिवार (House holfd)
30. व्यवसाय (Business)
31. चक्राकार प्रवाह (Circular flow)
32. किफायत (Economy)
33. विवेकपूर्ण चयन (Rational Choice)
34. वरीयता क्रम (Scale of preference)

## 1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Book):-

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त , एम0एम0 सेठ, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा वर्ष 2012
2. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त , सुनील शर्मा, सागर पब्लिशर्स, जयपुर वर्ष–2011
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ जेपी0 मिज्ञा, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा वर्ष 2021
4. व्यावसायिक अर्थशास्त्र, डॉ0 वी0सी सिंह एवं डॉ पुष्पा सिंह, एस0वी0पी0 डी0 पब्लिशिंग हाऊस, आगरा वर्ष 2017
5. व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ अनुपम अग्रवाल, एस0वी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष 2021
6. अर्थशास्त्र, डॉ जेसी पन्त एवं डॉ एस0पी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा वर्ष 2003
7. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एच0एल0 आहूजा, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली वर्ष 1990
8. An Essay on the Natue 7 significance of Economic Science by Lionel Robbins, Machmillan and Co. Limited. London 1945

## 1.14 प्रश्न उत्तर (Question Answer):-

1. चयन की समस्या क्या है।
2. ''अर्थशास्त्र सीमितता तथा चुनाव का विज्ञान है।'' स्पष्ट कीजिए।
3. चयन की समस्यायें क्यों उत्पन्न होती है : स्पष्ट कीजिए।
4. प्रो0 राबिन्स के चयन के आधारों की व्याख्या कीजिए।
5. चयन की समस्या को एक किफायत की समस्या क्यो कहते है?
6. उत्पादन सम्भावना वक्र किसे कहते है? इसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की आर्थिक समस्याओं को किस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है?
7. उत्पादन सम्भावना वक्र की अवधारणा को समझाइये।
8. एक अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्याओं की विवेचना कीजिए। एक मुक्त बाजार व्यवस्था इन्हें किस प्रकार हल करती है।
9. मिश्रित अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती है?
10. पूँजीवादी प्रणाली में परस्परावलम्बन से क्या तात्पर्य है?
11. उत्पादन सम्भावना वक्र की प्रकृति की व्याख्या कीजिए। इस वक्र द्वारा आर्थिक जीवन के कुछ आधारभूत तथ्यों की व्यवस्था कैसे की जाती है?
12. ''आर्थिक समस्या दुर्लभता तथा चुनाव की समस्या है।'' विवेचना कीजिए।
13. आर्थिक समस्या किस तरह चयन की आवश्यकता से उत्पन्न होने वाली समस्या है? समझाइए।
14. आर्थिक समस्या चयन की समस्या क्यों मानी जाती है?

15. संसाधनों की किफायत क्यों जरूरी होता है?
16. चयन की समस्या का सारांश लिखिए।

## 1.15 वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective question answer):-

1. चयन की समस्या उत्पन्न होती हैः
   क. सीमित साधनों के कारण  ख. असीमित आवश्यकताओं के कारण
   ग. क तथा ख दोनों के कारण  घ. इनमें से कोई नही
   (उत्तर ग)
2. चयन की समस्या में कौन सा कारक सम्मिलित हैः
   क. अनन्त आवश्यकताएं  ख. असीमित साधन  ग. साधनों के वैकल्पिक प्रयोग
   घ. इनमें से सभी  (उत्तर घ)
3. चयन की समस्या हैः
   क. आर्थिक समस्या  ख. गैर आर्थिक समस्या  ग. सामाजिक समस्या
   घ. इनमे से कोई नही  (उत्तर क)
4. निम्न में से कौन से कार्य आर्थिक प्रणाली के हैः
   क. वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन  ख. वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग
   ग. विनियोग  घ. उपर्युक्त सभी  (उत्तर घ)
5. आर्थिक समस्याओं की जननी हैः
   क. असीमित आवश्यकताएं  ख. साधनों का वैकल्पिक उपयोग
   ग. सीमित साधन  घ. इनमें से कोई नहीं  (उत्तर ग)
6. कौन सा वक्र उत्पादन और उपभोग वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता हैः
   क. पूर्ति वक्र  ख. समोत्पादक वक्र  ग. उत्पादन सम्भावना वक्र
   घ. तटस्थता वक्र  (उत्तर ग)
7. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं वितरण के प्रमुख साधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण किसका होता हैः
   क. सहकारी  ख. सरकारी  ग. निजी  घ. इनमें से कोई नहीं
   (उत्तर ग)
8. आर्थिक विकास होने पर उत्पादन सम्भावना वक्र :

क. अपरिवर्तित रहता है ख. मूल बिन्दु की ओर खिसक जाता है।

ग. मूल बिन्दू से दूर खिसक जाता घ. तीनों दशाएं सम्भव है। (उत्तर ग)

9. आर्थिक स्वतंत्रता सर्वाधिक प्रमुख संस्था हैः

क. सामन्तवाद मे ख. पूँजीवाद में ग. समाजवाद में

घ. मिश्रित अर्थव्यवस्था में (उत्तर ख)

10. समाजवाद में आर्थिक निर्णय लेने वाली प्रमुख संस्था हैः

क. उपभोक्ता ख. श्रमिक ग. पूँजीपति घ. शासकीय शक्ति

(उत्तर घ)

11. उत्पादन सम्भावना वक्र यह नहीं दिखाती है कि :

क. क्या उत्पादन किया जाय ख. कितना उत्पादन किया जाए

ग. कैसे उत्पादन किया जाय घ. न्यून रोजगार की स्थिति (उत्तर घ)

12. लोक चयन की समरूा का मूल कारण हैः

क. सीमित साधन ख. असीमित साध्य ग. उपर्युक्त दोनो

घ. इनमे से कोई नहीं (उत्तर ग)

13. मानव के पास साधन एवं साध्य होते है, क्रमशः

क. सीमित, असीमित ख. असीमित, सीमि ग. उपर्युक्त दोनों सत्य

घ. इनमे से कोई नहीं (उत्तर क)

14. सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए :

क. साधन सीमित है ख. साधन असीमित है ग. क तथा ख दोनों

घ. इनमें से कोई नहीं (उत्तर क)

15. मानवीय आवश्यकताएं है–

क. सीमित ख. अनन्त ग. क तथा ख दोनों घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर ख)

16. अवसर लागत का अर्थ होता है–

क. वैकल्पक प्रयोग की लागत ख. अवसर के अनुसार उत्पादन में परिवर्तन करना

ग. अवसर के अनुसार साधनों को बदलना घ. अवसर के अनुसार लागत को बदलना

(उत्तर क)

खण्ड –02, इकाई–01

# सार्वजनिक व्यय

सार्वजनिक व्यय से तात्पर्य वर्तमान सरकार के माध्यम से किया गया खर्च है | सार्वजनिक व्यय केंद्र की सरकार, राज्य की सरकार व स्थानीय सरकारों के माध्यम से किया जाता है| वर्तमान समय में राज्य का स्वरूप कल्याणकारी माना जाता है| अतः सरकारी बड़े-बड़े कार्यो और विभिन्न उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के लिए भारी मात्रा में व्यय करती है| अपने कार्य को पूर्ण करने के लिए सरकार जो धनराशि खर्च करती है, उसे सार्वजनिक व्यय कहा जाता है। वर्तमान युग में सरकार के द्वारा बहुत अधिक मात्रा में विभिन्न कार्यो पर खर्च किया जाता है| अतः सार्वजनिक व्यय को राजस्व विभाग का एक प्रमुख अंग माना गया है, इस विभाग के अंतर्गत जिन बातों का अध्ययन किया जाता है, उनमें से कुछ बातें निम्नवत हैं-

**लोक वित्त-**

- किन-किन मदों पर सरकार के द्वारा व्यय होना चाहिए, और किन बातों पर नहीं अर्थात सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र सार्वजनिक व्यय कितने प्रकार के होते हैं अर्थात सार्वजनिक

व्यय का वर्गीकरण, सार्वजनिक व्यय करने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन और आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात सार्वजनिक व्यय के प्रभाव|

**निजी व्यय तथा सार्वजनिक व्यय में भिन्नता**

यद्यपि निजी व्यय तथा सार्वजनिक व्यय दोनों में ही आय और व्यय के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है| इसके बावजूद भी दोनों में भिन्नताओं को निम्न दर्शाया गया है-

**आय व्यय का समायोजित रूप**- निजी व्यय, आय के अनुसार किया जाता है, इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति पहले अपनी वास्तविक आय का अनुमान करता है तत्पश्चात उसी के आधार पर अपने लिए व्यय की योजना को निर्धारित करता है। सार्वजनिक व्यय में पहले व्यय का अनुमान लगाया जाता है तत्पश्चात, उसकी पूर्ति के लिए संसाधनों की खोज की जाती है| निजी व्यय का मूल उद्देश्य प्राय निजी लाभ व व्यक्तिगत कल्याण हेतु होता है| प्रत्येक व्यक्ति सर्वदा ऐसे मदों में व्यय करता है जिससे उसे स्वयं या उसके परिवार के सदस्यों को लाभ प्राप्त हो पाए किंतु सार्वजनिक व्यय समाज के हित की दृष्टि से किया जाता है| निजी उद्देश्यों से प्रेरित होकर कभी भी सार्वजनिक व्यय नहीं किया जाता |इस प्रकार से सार्वजनिक व्यय का मूल उद्देश्य सामाजिक कल्याण से जुड़ा हुआ होता है| व्यय का क्षेत्र, निजी व्यय का क्षेत्र सीमित दायरे में आता है

क्योंकि व्यक्ति की क्रियाएं एक सीमा तक निर्धारित होती हैं किंतु सार्वजनिक व्यय का सीमा क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत होता है क्योंकि इसको  सरकार द्वारा आवंटित किया जाता है|

**नियंत्रण-** निजी व्यापार पर प्राय व्यक्ति अपना स्वयं का नियंत्रण रखता है किंतु सार्वजनिक व्यय हेतु सांसद व महालेखा परीक्षक एवं नियंत्रण का पूर्ण नियंत्रण होता है

**प्रभाव**- निजी व्यय यदि सावधानीपूर्वक ना किया जाए तो उसका प्रभाव व्यक्ति विशेष के जीवन पर पड़ता है किंतु सार्वजनिक व्यय का प्रभाव पूरे समाज और देश के आर्थिक जीवन पर अपना प्रभाव डालता है क्योंकि शासन को हानि की पूर्ति से बचने के लिए नए-नए करों को जनता के ऊपर लगाना पड़ता है ताकि सार्वजनिक व्यय में होने वाले खर्च की पूर्ति की जा सके।

**सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के विभिन्न कारण-**

आधुनिक समय में संसार में प्रत्येक देश के सार्वजनिक आय में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है| सार्वजनिक व्यय में इस वृद्धि का मूल कारण यह है कि राज्यों के कार्यों में विस्तृत और गहन दोनों प्रकार की वृद्धियां दर्ज की गई है| वृद्धि से तात्पर्य यह है कि राजकीय कार्यों की संख्या पहले की तुलना में अधिक हो गई है और उनके कार्य कई गुना बढ़ गए हैं| गहन वृद्धि से तात्पर्य यह है कि पहले जो कार्य राज्य के मौलिक कार्यों के अंतर्गत आते थे उन्हें पहले की अपेक्षा अब अधिक व्यय  की आवश्यकता के अंतर्गत माना जाने लगा है| जिसके फल स्वरुप यह कार्य विगत वर्षों में बहुत ही खर्चीले हो गए हैं जैसे पहले की अपेक्षा अब युद्ध और सैनिक व्यवस्थाओं पर बड़ी मात्रा में धान का खर्च होने लगा है |अधिक ट्रैफिक के कारण भी अब चौड़ी और मजबूत

सड़कों के बनाए जाने की आवश्यकता महसूस हो रही है| सरकारी व्यय के विस्तार का एक दूसरा कारण जनसंख्या की वृद्धि भी है देश की जनसंख्या बढ़ाने के साथ-साथ सरकार के लिए अपने कार्यों और उत्तरदायित्वों में वृद्धि करना भी अति आवश्यक हो गया है सरकार बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए हर क्षेत्र चाहे वह शिक्षा जगत हो, चिकित्सा हो, नागरिक सुविधा हो, कृषि या औद्योगिक विकास या रोजगार की व्यवस्थाओं को सुचार रूप से व्यवस्थित करना सभी के लिए उसे एक बड़ी मात्रा में  व्यय की आवश्यकता होती है |

आंतरिक शांति को बनाए रखने के लिए भी उसे पुलिस व न्याय व्यवस्था का भी विस्तार करना होता है| बढ़ती हुई जनसंख्या विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को भी जन्म देती है| जैसे अपराध, गरीबी ,ट्रैफिक की भीड़भाड़ जिससे सुचारू रूप से, करने के लिए सरकार को बड़ी मात्रा में धान के व्यय की आवश्यकता पड़ती है| इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि का कारण सार्वजनिक व्यय भी रहा है विभिन्न देशों में ,प्रमुखता से अर्ध विकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए वहां की सरकारों के द्वारा अनेक आर्थिक संसाधनों का नियोजन किया गया है, जिससे कि उनके कार्य क्षेत्र में काफी बढ़ोतरी हुई है और जो कहीं ना कहीं सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को भी आंचलिक करती है आधुनिक काल में राज्यों के व्यय में भारी वृद्धि का एक मूल कारण युद्ध और उससे बचाव हेतु होने वाला व्यय भी है। 20 वीं सदी के प्रारंभ से ही संसार में लगातार कहीं ना कहीं युद्ध चल ही रहा है या फिर शीत युद्ध जैसी स्थिति बन रही है| पहले और दूसरे महायुद्ध के समय विभिन्न देशों में अधिक धनराशि  युद्ध के मद  पर व्यय की गई थी।, यद्यपि

अभी संसार तीसरे विश्व युद्ध से बचा हुआ है किंतु शीत युद्ध जारी है| संसार के अनेकों देश काफी मात्रा में सैनिकों पर व्यय कर रहे हैं |संसार में संसार के दो शक्तिशाली देश रूस और अमेरिका तो बहुमूल्य विनाशक शास्त्रों और अस्त्रों के निर्माण पर, बड़ी-बड़ी सेना को रखने के लिए भी बड़ी मात्रा में व्यय कर रहे हैं। इसके अलावा, संसार में भीषण युद्ध भी होते रहते हैं जैसे कोरियन युद्ध, भारत चीन युद्ध, वियतनाम युद्ध भारत पाक युद्ध इत्यादि यह भी एक कारण है जो कहीं ना कहीं सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को निर्धारित करता है| विश्व संघ की स्थापना होने के पश्चात अंतरराष्ट्रीय संसाधनों की भी  स्थापना हुई और उनका लगातार विस्तार हो रहा है| जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ ,विश्व राष्ट्र संगठन इत्यादि, यह संस्थाएं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रों के सार्वजनिक वित्त का कुछ भाग अवश्य ही व्यय कर देती हैं| उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के प्रस्ताव और सिफारिश के द्वारा ही श्रमिकों के प्रति विभिन्न सुविधाओं को प्रदान करने हेतु सरकार के व्यय में भी आवश्यक रूप से वृद्धि की जाती है उपर्युक्त कर्म से विभिन्न देशों के सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि दर्ज की गई है| भविष्य में भी इन्हीं कार्यो से सार्वजनिक व्यय में और अधिक वृद्धि होने की संभावना है।

**सार्वजनिक व्यय का महत्व और उपयोगिता-**

सार्वजनिक व्यय का राजस्व के क्षेत्र में उतना ही महत्व है जितना की अर्थशास्त्र में है सार्वजनिक वित्त की सभी क्रियाएं इसी के चारों ओर गोल-गोल चक्कर लगाती रहती है| पिछली शताब्दी में

राजकीय व्यय को बड़ी उदासीनता के साथ देखा जाता था और अर्थशास्त्री भी सभी प्रकार के राजकीय व्यय को नकारात्मक दृष्टि से ही देखते थे पिछले 75 वर्षों में यह संभव हो पाया है कि व्यक्तियों ने राजकीय व्यय के अंतर्गत आने वाले साधनों को वास्तविक महत्व देने का प्रयास किया है| प्राचीन समय में राज्य का मुख्य कार्य केवल पुलिस न्याय और सुरक्षा तक ही सीमित रहता था, जिससे उसका अस्तित्व बना रहे| प्राचीन अंग्रेज लिखको ने व्यय के सिद्धांत के अध्ययन की आवश्यकता को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया, क्योंकि सरकार के सिद्धांत को जिसे वह मान्यता देते थे ,उसका मूल कार्य सरकार को स्थिरता के साथ चलाना तक ही सीमित था यह माना जाता रहा है कि व्यक्ति सरकार की अपेक्षा अधिक कुशलता से धन के व्यय को निर्धारित कर सकता है| यह माना जाता था कि व्यय का प्रत्येक भाग, जो सामाजिक न्याय बनाए रखने और विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के बाहर आता है वह अपव्यय है, या अनुचित है तथा जनता पर बुरे दबाव बनाने के बराबर है| अतः सरकारी व्यय को अनावश्यक और अनुपयोगी माना जाता था|

**रोबर्ट पील का कथन था** कि, राज्य की तुलना में मुद्रा जनता के हाथों में अधिक फलदाई होती है| सार्वजनिक व्यय का विरोध करते हुए ग्लैड स्टोन ने इसे  तीव्र गति से होने वाला नुकसान बताया था और इसे नकारात्मक संज्ञा दी थी| आधुनिक अर्थशास्त्री इस विचार पर सहमत नहीं है |

**डाल्टन** का यह मानना था कि आधुनिक अर्थशास्त्री ऐसे गलत विचारों को ठीक करने में सफलता पा रहे हैं और इस प्रश्न को सिद्धांत के आधार पर विवेकपूर्ण ढंग से रखने में समर्थ होने के बावजूद भी अपनी असमर्थता को जाहिर कर रहे हैं| सार्वजनिक व्यय का मूल महत्व इस बात से निहित है कि देश की अर्थव्यवस्था पर  सकारात्मक प्रभाव पडना चाहिए| सार्वजनिक व्यय समाज की प्रगति का सूचक माना जाता है यदि वह देश में उत्पादन को बढ़ाने और वितरण में विषमताओं को कम करने के लिए किया जाता है तो इस व्यय के माध्यम से आर्थिक जीवन को भी प्रभावित किया जा सकता है |सार्वजनिक व्यय अब देश में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्षम माना जाता है| शिक्षा, स्वास्थ्य, सेवा सस्ते मकान की व्यवस्था, मनोरंजन पर करने वाला व्यय व्यक्ति की कार्य कुशलता में वृद्धि को सकारात्मक प्रदान करता है| सार्वजनिक व्यय, अल्प व्यय वाले व्यक्तियों को बचत करने की योग्यता की ओर उन्मुख करता है क्योंकि उनकी यह व्यय उनकी वास्तविक आय में वृद्धि करता है| पेंशन, प्रोविडेंट फंड आदि के रूप में सरकारी व्यय व्यक्ति के जीवन में सुरक्षात्मक भावनाओं का प्रसारण करने में सक्षम रहते हैं| सिंचाई ,कृषि, उद्योग धंधे ,विद्युत शक्ति, परिवहन के साधनों पर वह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में वृद्धि को उन्मुख करता है| प्रतिरक्षा पर वह उत्पादक होने के बावजूद भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आक्रमण से होने वाले व्यय को न्यूनतम करता है तथा राष्ट्र की सुरक्षा के लिए भी अति आवश्यक माना जाता है| निर्धन व्यक्तियों की भलाई के लिए किया गया व्यय देश में धन के वितरण की असमानताओं को कम करने में मददगार होता है| **किन्स** ने यह सिद्ध किया कि

सरकार व्यय के माध्यम से देश में मंदी और बेरोजगारी को रोकने में सक्षम हो सकती है| उनके द्वारा सुझाव दिया गया की मंदी की स्थिति में उसे दूर करने हेतु सरकार के द्वारा सामाजिक, सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर व्यय को बढ़ावा देना चाहिए।

व्यक्तिगत व्यय की कमी को सरकारी व्यय से पूरा करना चाहिए ताकि निवेश और उपभोग के मानक को बढ़ाया जा सके| सरकारी व्यय में एक प्रकार से नागरिकों की आय होती है सरकारी व्यय बढ़ने से नागरिकों की आय बढ़ती है, वस्तुओं की मांग बढ़ती है ,जो मंदी को दूर करने के लिए आवश्यक होती है| सार्वजनिक आय कम करके मुद्रा स्फीति को रोका जा सकता है, अल्प विकसित देशों में सार्वजनिक व्यय से विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है| शिक्षा, विद्युत, शक्ति परिवहन और संचार के साधनों पर किया गया व्यय देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक माना जाता है |

**सार्वजनिक व्यय की वर्गीकरण-**

**सुरक्षात्मक, व्यावसायिक और विकासात्मक व्यय**

प्रोफेसर एडम्स ने सार्वजनिक व्यय को तीन वर्गों में बांटा था

**सुरक्षात्मक व्यय-** वह व्यय होता है जो देश के नागरिकों की जान माल की सुरक्षा हेतु किया जाता है जैसे पुलिस सेवा न्यायालय जेल आदि पर व्यय|

**व्यावसायिक व्यय-** वह व्यापारिक व्यय, होता है जो देश में व्यापार और वाणिज्य की उन्नति के लिए किए जाते हैं| जैसे यातायात, डाक ,रेल तार आदि पर व्यय किया जाना|

**विकासात्मक व्यय**- यह वह व्यय होता है जो देश के विकास के लिए और नागरिकों के कल्याण हेतु किए जाते हैं| जैसे शिक्षा, मनोरंजन, सामाजिक बीमा, सार्वजनिक निर्माण इत्यादि

**उत्पादक सार्वजनिक व्यय-**

डाल्टन के अनुसार किसी व्यक्ति उत्पादकता की एकमात्र आर्थिक कसौटी उसके द्वारा उत्पन्न आर्थिक कल्याण होता है| लूटज के अनुसार यदि किसी क्रिया के फल स्वरुप उपयोगिता का सृजन होता है अथवा ऐसी वस्तु होती है जिससे आवश्यकता की संतुष्टि हो सके तो ऐसी क्रिया को उत्पादक कहेंगे| इस प्रकार डाल्टन के अनुसार उत्पादकता की कसौटी आर्थिक कल्याण की उत्पत्ति तथा लूटेज के अनुसार उपयोगिता का सृजन होती है |इन विचारों को ध्यान में रखते हुए उत्पादक और अनुत्पादक व्यय की निम्न परिभाषाएं है –

**उत्पादक व्यय-** व्यय जिस से प्रत्यक्ष रूप में उपभोग योग्य वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन होता है, उत्पादक व्यय कहलाती हैं|

**अनुत्पादक व्यय-** वह व्यय जिससे आर्थिक कल्याण की प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उत्पत्ति नहीं होती है अनुत्पादक व्यय कहलाता है| उदाहरण के तौर पर उद्योगों ,व्यवसाय ,सड़कों, शिक्षा चिकित्सा स्वास्थ्य आदि पर किया जाने वाला व्यय उत्पादक व्यय कहलाता है किंतु किसी कार्य पर अनावश्यक रूप से किया गया व्यय अनुत्पादक व्यय कहलाता है । केंद्रीय वे राज्य व्यय

,स्थानीय व्यय इसका वर्गीकरण आधार प्रशासन की अंतर्गत इकाई है| **केंद्रीय व्यय** से तात्पर्य उसे व्यय से है जो, देश की केंद्रीय सरकार के माध्यम से किया जाता है |जैसे भारत सरकार द्वारा सुरक्षा पर किया गया व्यय, इसे संघीय व्यय भी कहा जाता है |**राज्य व्यय**, वह व्यय होता है जो देश की राज्य सरकारों के माध्यम से किया जाता है| जैसे पुलिस शिक्षा आदि पर राज्य सरकारों द्वारा व्यय किया जाता है, इसे प्रांतीय व्यय कहा जाता है। स्थानीय व्यय  वह होता है जो स्थानीय सरकारों के माध्यम से किया जाता है| जैसे कॉरपोरेशन ,नगर पालिका, जिला परिषद, ग्राम पंचायत द्वारा किया जाने वाला व्यय |

अपवर्ती और परवर्ती व्यय जेके मेहता के अनुसार सार्वजनिक व्यय दो प्रकार से हो सकते हैं-

**अपवर्ती व्यय और परवर्ती व्यय** अपरवर्ती व्यय वह व्यय होता है जिसकी लागत जनता द्वारा प्रयोग के बढ़जाने से भी नहीं बढ़ती है| जैसे सुरक्षा पर होने वाला व्यय हवाई अड्डों पर होने वाला व्यय आदि|

परवर्ती व्यय वह व्यय होता है जो उपयोग बढ़ाने के साथ-साथ बढ़ते हैं और उपयोग घटने  के साथ-साथ घट जाते हैं |जैसे डाक सेवाएं शिक्षा आदि पर होने वाला व्यय।

विकास व्यय और गैर विकास व्यय में सार्वजनिक व्यय को बहुदा विकास में और गैर विकास में के रूपों में बांटा जा सकता है| जैसे भारत में केंद्र सरकार और राज्यों के बीच होने वाला व्यय होता है जो देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के हेतु खर्च किया जाता है|

**चालू व्यय और पूंजी व्यय, चालू व्यय**, वे हैं जिन्होंने सरकार की चलती रहने वाले कार्यो के लिए हर वर्ष खर्च करना होता है पूंजी व्यय विशेष परियोजनाओं के अंतर्गत होने वाला व्यय है जो स्वभाव से विनियोजक और अनावर्ती होता है| जैसे सार्वजनिक भवनों के निर्माण में लगने वाली लागत और आर्थिक विकास की परियोजनाओं पर होने वाले खर्च को पूंजी व्यय के अंतर्गत जाना जाता है|

**योजना व्यय और गैर योजना व्यय-** सार्वजनिक व्यय का यह वर्गीकरण भारत में सरकारी बजट के अंतर्गत नहीं आता बल्कि योजना आयोग के प्रतिवेदनों के आधार पर इसका प्रयोग किया जाता है| भारत की योजना आयोग के अंतर्गत आने वाली विभिन्न परियोजनाओं पर किया जाने वाला व्यय, योजना व्यय के अंतर्गत आता है| इन योजना परियोजनाओं का संबंध कृषि, विद्युत, जल पूर्ति निर्माण, यातायात आदि के अंतर्गत आता है| दूसरी ओर विस्थापितों के पुनर्वास तथा उनकी राहत पर होने वाला व्यय ,सीमा क्षेत्र के विकास के अंतर्गत होने वाला व्यय ,गैर योजना व्यय के अंतर्गत आता है यह सुझाव दिया गया है कि केंद्रीय और राज्य सरकारों को चाहिए कि वह अपने बजट में अलग-अलग तरह से योजनाएं और गैर योजना को दृष्टिगत करें, यह इसलिए आवश्यक होता है कि धन की बड़ी राशि, योजना में सम्मिलित स्कीमों पर खर्च की जाती हैं साथ ही गैर विकास स्कीमों पर भी इनका खर्च किया जाता है| अतः बजट प्रपातों में यह बात स्पष्ट होनी चाहिए की कितनी धनराशि योजना के अंतर्गत प्रतिवर्ष खर्च की गई या खर्च की जाने वाली है| अनुमान समिति ने यह सुझाव दिया है कि एक अलग वितरण दिया जाना

चाहिए जिसमें योजना व्यक्ति समीक्षा की जाए जिससे विकास हुए और गैर विकास संबंधी अनुमान दिखाए जाएं और इस व्यय को राजस्व और पूंजी के विभागों में बताकर बजट में दिखाया जाए, कुछ राज्यों ने हाल ही के वर्षों में बजट प्रपातों में योजनाएं और गैर योजना व्यय को अलग तरह से दिखाने के लिए प्रयत्न किए हैं।

**फ्रेंडलेस राज का सिद्धांत** सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत के अंतर्गत आता है सार्वजनिक व्यय के चार सिद्धांत बताए गए हैं, पिंडली ने  इनका वर्णन अपनी पुस्तक में भी किया है -

1-लाभ का सिद्धांत

2- मितव्ययिता का सिद्धांत

3-स्वीकृति का सिद्धांत

4 -बचत का सिद्धांत

**1-लाभ का सिद्धांत** इस सिद्धांत के अनुसार सरकारी व्यय की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, कि अधिकतम सामाजिक लाभ व कल्याण हो सके, अधिक से अधिक व्यक्तियों को अधिक से अधिक लाभ दिया जा सके| व्यावहारिक नियम इस सिद्धांत में सामाजिक कल्याण का मापन ठीक प्रकार से संभव नहीं हो पता है| अतः इस सिद्धांत का पालन करने के लिए निम्न नियम उपयोगी बताए गए हैं |सार्वजनिक व्यय के निम्न नियम प्रभाव में लानी चाहिए-

विदेशी आक्रमण से रक्षा लेकिन इस मद का असीमित राशि के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता|

आंतरिक शांति व न्याय सुव्यवस्था उत्पादन को प्रोत्साहन, उसमें वृद्धि आर्थिक असमानताओं को कम करना, सार्वजनिक व पूरे समाज के लिए हितकर होना चाहिए, उसे होने वाला लाभ केवल किसी एक वर्ग क्षेत्र या व्यक्ति तक सीमित नहीं होना चाहिए यदि सार्वजनिक वैसे निहित स्वार्थ की स्थापना होती है तो उसे पोषण प्रदान करना चाहिए| ऐसा वे लाभ के सिद्धांत के अनुकूल नहीं होगा| सार्वजनिक व्यय किसी नीति द्वारा नहीं होना चाहिए |

**अपवाद-** यद्यपि आमतौर से सार्वजनिक व्यय पूरे समाज के लाभ के लिए होना चाहिए लेकिन निम्न दिशाओं में विशिष्ट विशेष वर्ग क्षेत्र व्यक्ति के आधार पर वांछनीय होगा जबकि व्यय की मात्रा बहुत थोड़ी हो, जबकि वह व्यक्ति अथवा वर्ग न्यायालय द्वारा उसे व्यक्ति मात्र का अधिकार प्राप्त कर सकता है|

वह किसी अनादरकृत नीति के अनुसार होना चाहिए, वह किसी पिछड़ी जाति व क्षेत्र पर किया जाना चाहिए, जब व्यक्तियों को सरकार पुरस्कार, वृद्धि प्रदान करें, अल्पकाल में चाहे, यह विशेष हित में मालूम हो लेकिन दीर्घकाल में इसे पूरे समाज को लाभ होना चाहिए| इसके लिए विशिष्ट व्यय को जनहित के रूप में माना जाएगा |

**मितव्ययिता का सिद्धांत**- मितव्ययिता का अर्थ यह नहीं होता कि वह ही ना किया जाए वास्तव में सरकार को व्यय सावधानीपूर्वक करना चाहिए ,सरकार कुशलता के अभीष्ट रूप के साथ-साथ अभीष्ट उद्देश्यों को पूरा करते हुए न्यूनतम व्यय करें, कहीं यह ना हो जाए कि सरकार वांछनीय और आवश्यक व्यय को ही सीमित कर दे या उसमें कटौती कर दे| यद्यपि आम तौर से

सरकारी वे लाभप्रद होते हैं कभी-कभी यह हानिकारक भी हो सकते हैं हानिकारक व्यय को रोकना ही **मितव्ययिता** कहलाती है मितव्ययिता का सिद्धांत का एक अर्थ यह भी होता है कि वह धन को सरकार इस प्रकार खर्च करें कि जिस समाज में उत्पादन कुशलता वह क्षमता में अधिकतम वृद्धि हो सके इसके लिए यह आवश्यक है कि सर्वजानिक व्यय को लोगों के कार्य बचत और विनियोग करने हेतु योग्यता तथा इच्छा पर उचित रूप से प्रभावित किया जा सके ताकि आर्थिक संसाधनों का दुरुपयोग ना हो पाए| सिद्धांत का महत्व निम्न तर्कों पर आधारित होता है –

सार्वजनिक व्यय की मात्रा बहुत अधिक होने के कारण अपव्यय की संभावना अधिक होती है सार्वजनिक व स्वभाव से व्यय व्यक्तिगत होता है जो सरकारी धन कर्मचारी व्यय के माध्यम से होता है वह उनका अपना निजी नहीं होता अतः सार्वजनिक व्यय में लाभकारी आने की संभावना अधिक होती है| सार्वजनिक व्यय में इस बात की संभावना होती है कि सरकारी कर्मचारी अपने स्वार्थ की सिद्ध के लिए धन का दुरुपयोग ना करें इन कर्म से सार्वजनिक व्यय में त्वयता बरतना अति आवश्यक होता है। व्यवहारिक नियम इस सिद्धांत का पालन करने में निम्न उपयोगी बातें बताई गई है-

सरकारी कर्मचारी व्यय करने में उतनी सावधानी से काम ले जितने की वह अपने व्यक्तिगत व्यय करने में लेते हैं, केवल आवश्यक मदो पर या अनिवार्य परिस्थितियों में व्यय किया जाये |सरकारी विभागों में सामग्री खरीदने के लिए टेंडर मांगे जाने चाहिए, भेजे गए माल का नमूने

से मिलान करना चाहिए ,न्यूनतम मूल्य निर्धारित किये  जाने चाहिए, स्टोर्स में दिए गए माल का समुचित लेखा होना चाहिए |सार्वजनिक लेखा के अपडेट का समुचित प्रबंध किया जाना चाहिए, संसद में विवेकपूर्ण बहस होनी चाहिए|

लाभ व्यय हेतु  किए हुए धन से जनता को प्रत्यक्ष लाभ त्वरित अवस्था में प्राप्त होना चाहिए, जिस से कर देने में किसी को असंतोष महसूस ना हो, उचित व प्रणाली के माध्यम से जनता सरकार के प्रति विश्वास व समान सम्मान की भावना जागृत होती है| जिससे सरकार अधिक सीमा तक कर लगाने में समर्थ होती है उत्पादन शक्ति में उन्नत होने से समाज की कर देने की क्षमता बढ़ेगी| भविष्य में राज्य द्वारा अधिक आय प्राप्त होने की आशा रहेगी| अपव्यय पर अंकुश रखने से कर में कमी  होगी , उन दशाओं में जब की सरकार को आवश्यकता अनुसार कर से आय  ना मिलने पर होने वाले घाटे का वित्त प्रबंध आसान हो जाएगा|

**स्वीकृति का सिद्धांत**- इस सिद्धांत का अभिप्राय है किसी भी सार्वजनिक व्यय करने से पूर्व  उस मद की स्वीकृति उचित अधिकारियों से प्राप्त की जाए| अस्वीकृत राशि सरकार की किसी भी विभागीय कर्मचारियों को नहीं देनी चाहिए यही नहीं जितनी राशि व्यय करने की स्वीकृति हो उससे अधिक भी व्यय नहीं होना चाहिए|  साथ ही जिस कार्य उद्देश्य या क्षेत्र के लिए व्यय करने की स्वीकृति मिली हो उसी के लिए व्यय होना चाहिए |

स्वीकृति तीन प्रकार की होती है –

वैधानिक स्वीकृति

प्रशासनिक स्वीकृति

तकनीकी स्वीकृति

1- **वैधानिक स्वीकृति** -जनतंत्र की स्थापना और संसदीय प्रणाली के विकास के साथ यह आवश्यक हो गया है कि जब तक किसी विशेष व्यक्ति, संसद द्वारा स्वीकृत न हो जाए तब तक उस मद में धन का व्यय नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में संसदीय स्वीकृति के द्वारा व्यय की अधिक सीमा निर्धारित की जाती है| इस सीमा में कोई भी सरकारी विभाग व व्यय आवश्यकता से अधिक नहीं कर सकता परंतु इससे कम व्यय करने से भी काम निकल जाए तो राशि व्यय करने हेतु सरकार उसे ज्यादा नहीं कर सकती दूसरे शब्दों में कहें तो वैधानिक स्वीकृति आदेशक नहीं होती है|

2- **प्रशासनिक स्वीकृति-** वैधानिक स्वीकृति के पश्चात भी विभिन्न विभागों में उच्च अधिकारियों की उचित स्वीकृति प्राप्त करना अति आवश्यक होता है इसे सार्वजनिक व्यय एक नियमित और नियंत्रित रूप में आवश्यकता के अनुरूप समय पर सुनिश्चित हो पता है उच्च अधिकारी अपने से नीचे के अधिकारियों को इस प्रकार की स्वीकृति देते समय इस बात का ध्यान रखते हैं की वैधानिक स्वीकृति के भीतर ही संबंधित विभाग में किस समय क्या व्यय किया जाना है अथवा नहीं और एक निश्चित अवधि में इसे कितनी बार व्यय करना है।

**3-तकनीकी स्वीकृति-**जब कभी सरकार ऐसे कार्यों के अंतर्गत व्यय करना चाहती है जिनका पूरा करने के लिए तकनीकी समस्याओं को हल करना आवश्यक होता है तो सरकार के व्यय करने से पूर्व विशेषज्ञों की अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक होती है इस अनुभूति को ही तकनीकी स्वीकृति कहा जाता है इस तकनीकी स्वीकृति के अंतर्गत निर्माण कार्य में विशेष रूप से तकनीकी राय लेना आवश्यक होता है| जैसे सड़के बनाना, नहर बनाना, विद्युत परियोजना, लोहा इस्पात कारखाना इत्यादि, कारण यह है कि विशेषज्ञ ही बता सकते हैं किसी एक योजना को जिसे सरकार जरूरी समझ रही है पूरा करना आवश्यक है अथवा नहीं और उसमें होने वाले व्यय का निर्धारण भी उन्हें विशेषज्ञों के माध्यम से किया जाता है तकनीकी स्वीकृति स्वभाव से सलाहकार होती है और इसका मानना या ना मानना सरकार की इच्छा पर निर्भर होता है| स्वीकृति वैधानिक और प्रशासनिक स्वीकृति पहले ही प्राप्त कर ली जाती है|

उपयोगी नियम स्वीकृति के सिद्धांत को क्रियान्वित करने के लिए निम्न व्यावहारिक नियम बताए गए हैं-

प्रत्येक विभाग के अधिकारी और उपाधिकारियों के लिए अधिकतम व्यय सीमा का निर्धारण होना चाहिए किसी अधिकारी द्वारा ऐसे व्यय  के लिए स्वीकृत नहीं दी जानी चाहिए जिससे आगे चलकर इसके बढ़ जाने की आशंका हो, इसकी स्वीकृति देना उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर होना चाहिए| ऋण द्वारा किया जाने वाला व्यय केवल उन्हीं

कार्यों पर होना चाहिए जिसके लिए ऋण लिया गया हो प्रणयात्मक व्यय को ऋण लेकर नहीं करना चाहिए| ऋण लिए जाने पर उसकी वापसी के लिए शोध कोष की व्यवस्था की जानी चाहिए|

**लाभ-** मितव्ययिता से अपव्यता से बचाव सार्वजनिक कार्यों में देरी नहीं होती है आवश्यक कार्यों को करने में धन का अभाव नहीं होता है सार्वजनिक व्यय निर्धारण नीति के अनुसार होता है|

**बचत का सिद्धांत**- इस सिद्धांत के अनुसार सरकार को अपनी बजट में व्यय से अधिक आय अर्जित करनी होती है जिससे की बचत में कुछ बच जाए, दूसरे शब्दों में कहें तो सरकार को अपने बजट में बचत दिखानी चाहिए| फाइंडेल सिराज के अनुसार यदि किसी राज्य का बजट बचत दिखता है तो उस देश के वित्त मंत्री की कुशलता का परिचय प्राप्त होता है| परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण अनुमानित व्यय से अधिक व्यय करना पड़ता है|

**निष्कर्ष-**

सार्वजनिक व्यय से तात्पर्य सरकार के माध्यम से किया जाने वाला व्यय होता है सार्वजनिक व्यय केंद्रीय सरकार राज्य सरकारों और स्थानीय सरकारों के माध्यम से किया जाता है । आधुनिक समय में राज्य का स्वरूप कल्याणकारी प्रत्यक्ष के रूप में होता है अतः सरकारी विशाल कार्यों और विस्तृत उत्तरदायित्वों पर भारी मात्रा में धन का व्यय करती हैं जर्मन अर्थशास्त्री वैज्ञानिक सार्वजनिक व्यय से जुड़े कार्यों के संबंध में एक नियम का प्रतिपादन किया जिसे उन्होंने राज्य सरकारों की क्रियाओं में वृद्धि का नियम कहा राज्य की क्रियाओं में वृद्धि

विस्तृत और गहरी दोनों तरह की होती है । विस्तृत का अर्थ सरकार निरंतर नए कार्यों का प्रतिपादन करती रहती है। गहरी का अर्थ पुराने और नए कार्यों को अधिक कुशलतापूर्वक पूरे तौर पर समाप्त करना होता है । सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने के अनेक कारण हो सकते हैं इनमें जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण ,आर्थिक नियोजन, विकास लोकतंत्र प्रणाली की लोकप्रियता, सरकारी कार्यक्षेत्र में वृद्धि इत्यादि है। समान वितरण का सिद्धांत यह कहता है कि धन के वितरण की असमानता सार्वजनिक व्यय के माध्यम से दूर हो होना चाहिए । सार्वजनिक व्यय का उत्पादन ,वितरण एवं रोजगार पर सीधा प्रभाव पड़ता है राज्य द्वारा निर्धन व्यक्तियों के जीवन निर्वाह की वस्तुएं सस्ते मूल्य पर प्रदान करके उनके कार्य क्षमता में वृद्धि का प्रयास लगातार किया जाता है। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से क्षेत्रीय विकास किया जा सकता है ।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. मुखर्जी, अनित एन., 2007. "शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय: चयनित मुद्दों और साक्ष्यों की समीक्षा," वर्किंग पेपर्स एचडी1, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पॉलिसी।
2. आर प्रेमलता, 2020। "भारत में सामाजिक क्षेत्र पर सार्वजनिक व्यय का पैटर्न," शानलैक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, शानलैक्स जर्नल्स, वॉल्यूम। 9(1), पृष्ठ 57-62, दिसंबर।

3. एंथोनी एस कौराकिस, एट अल। "ग्रीस और पुर्तगाल में सार्वजनिक व्यय वृद्धि: वैगनर का नियम और परे।" एप्लाइड इकोनॉमिक्स, वॉल्यूम। 25, नहीं. 1, 1993, पृ. 125-134.

4. कासिम अल-मफलेही, मोहम्मद और अर्जुन, दिलीप, यमन में सार्वजनिक व्यय के विकास के पाठ्यक्रम का विश्लेषण (1 अगस्त, 2022)। SSRN पर उपलब्ध: https://ssrn.com/abstract=4177531 या http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.4177531

5. दास, पी.के., और कर, एस. (2016, फरवरी)। सार्वजनिक व्यय, जनसांख्यिकी और विकास: भारत से सिद्धांत और साक्ष्य। सामाजिक विज्ञान अध्ययन केंद्र, कलकत्ता, कलकत्ता, भारत: श्रम अध्ययन संस्थान IZA।

6. कुशवाह, मनीषा और तिवारी, राधा, गुजरात में शिक्षा और आर्थिक विकास पर सार्वजनिक व्यय की एक अनुभवजन्य जांच (20 सितंबर, 2019)। SSRN पर उपलब्ध: https://ssrn.com/abstract=3457074 या http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3457074

7. गुप्ता, एस. (1996). अनुत्पादक सार्वजनिक व्यय: नीति विश्लेषण के लिए एक व्यावहारिक दृष्टिकोण [पैम्फलेट श्रृंखला 48]। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष प्रकाशन। https://www.imf.org/external/pubs/cat/longres.aspx?sk=566.0 से पुनः प्राप्त करें

8. हुआ.वाई, (2016)। शिक्षा और आर्थिक विकास पर सार्वजनिक व्यय के बीच संबंध: चीन से साक्ष्य (मास्टर थीसिस, क्लेम्सन विश्वविद्यालय। से पुनः प्राप्त)

9. मुकित, डी.एम. (2012, सितंबर)। शिक्षा और आर्थिक विकास पर सार्वजनिक व्यय: बांग्लादेश का मामला। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च इन बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन एंड इकोनॉमिक्स (आईजेएआर-बीएई), 1(4), 10-18।'

10. बोस, एन., हक, एम. ई., ओसबोर्न, डी.आर. (2007)। सार्वजनिक व्यय और आर्थिक विकास: विकासशील देशों के लिए एक अलग-अलग विश्लेषण। मैनचेस्टर स्कूल, 75 (5), 533-556.डीओआई: 10.1111/जे.1467-9957.2007.01028.x

11. देवराजन, एस. स्वरूप, वी., ज़ू, एच. (1996)। सार्वजनिक व्यय और आर्थिक-आर्थिक विकास की संरचना। मौद्रिक अर्थशास्त्र जर्नल, 37(2), 313-344। डीओआई: 10.1016/एस0304-3932(96)90039-2।

खण्ड–02

इकाई – 01

## सार्वजनिक व्यय , मूल्यांकन एवं बजटीय रूप,

# Public Expenditure Evaluation & Budget

**परिचय :–**एक राष्ट्र कीसरकार के समवितरण अर्थातव्यय कई भागों में दर्शाए जा सकते है। उदाहरण तौर पर रख–रखाव ,समाज, अर्थव्यवस्था तथा राज्य सरकरों की सहायता वअन्य सरकारों की सहायता को शामिल यिका जाता है। इस सभी समवितरणों को सामाजिक तौर पर सार्वजनिक व्यय कहा जा सकता है। यह भी स्पष्ट है कि सम विवरणो को निर्विवाद भागों में बांटना अत्यधिक कठिन है। अधिकार देशो मे सार्वजनिक व्यय में सतत वृद्धि होती रहती है। कुछ आर्थिक सलाहकारों के द्वारा सरकार को अपनी आर्थिक क्रियाओं को सीमित रखने का सुझााव दिया जाता है। क्योंकि प्रत्येक आर्थिक इकाई न केवल अपना हित अच्दी प्रकार समझती है, एवं उसकी रक्षा करने को तत्पर भी रहती है। सरकारों को आर्थिक हितों की पहचान करना, व्यक्तिगत इकाइयों के लिए असंभव होता है। इस प्रकार अपनी व्यय नीतियों को अनेक अनुसार ढालने का औचित्य भी विवादास्पद माना जाता है। अगर सरकारें इस सुझााव को अपनी व्यय नीतियों में स्वीकार करती तो सार्वजनिक व्यय में इतनी जल्दी–जल्दी वृद्धि न हो पाती जितनी कि अभी है। आधुनिक समाज और अर्थव्यवस्था को समक्ष ऐसी बाधाएं उत्पन्न होती है, जिन्हें कोई सरकार अनदेखा नहीं कर सकती है। इस समाधान हेतु सरकार को प्रयत्न करने पड़ते है, और सार्वजनिक व्यय मे वृद्धि हो जाती है। इन बाधाओं में जैसे–श्रम शोषण, असमान वितरण, क्षेत्रीय असमानताऐं, इनके साथ्ज्ञ इसी तरह की अनगिनत सामाजिक–आर्थिक होती है। सरकार का कर्तव्य है कि वह समाज के कल्याण तथा अधिमतम सामाजिक हित के लिए इन बाधाओं का निराकरण करने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न में सरकार की गतिविधियों में वृद्धि के साथ–साथ  उसके व्यय में भी वृद्धि हो स्वाभाविक है। सार्वजनिक व्यय से संबंधित सिद्धान्त जैसे– अधिकतम सामाजिक हित का सिद्धान्त, व सरकारी सेवाओं की पूर्ति के सिद्धान्त तथा मूल्य और कीमतों के सामान्य सिद्धान्त, और इससे संबंधित गणितीय प्रतिरूपों आदि भी सार्वजनिक व्यय के आवंटन में इतने कारगर सिद्ध नहीं हो सके है। अर्थव्यवस्था में साधनों का निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में आवंटन काफी जटिल एवं व्यापक है। अब कैसे लोक व्यय पर निर्णय लिया जाए। एक तरफ बजार व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को ठीक तरह से समझने में असमर्थ है। और दूसरी तरफ सार्वजनिक व्यय से संबद्ध निर्णयों में भी .त्रुटियां होती है। इस प्रकार लो कव्यय के जरिये बाजर व्यवस्था की गलतियों से छुटकारा पाने की आशा निर्रथक है। यह भी सत्य है कि बाजर व्यवस्था में गलतियाँ होने

बावजूद सार्वजनिक व्यय की आवश्यकता में भी वृद्धि होती रहती है। समाज की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं का आंकलन ठीक कैसे किया जाए। इसक विश्लेषण हेतु मतदान प्रणाली अथवा प्रकट अधिमान सिद्धान्त को तरहीज दी गई है। मतदाओं के अपनी इच्छाओं को यथार्थ रूप से प्रकट किया है या नही, तथा किसी वस्तु की मांग प्रकट न होने के कारण, यह भी हो सकता है कि मतदाताओं में उस वस्तु की कीमत अदा करने की क्षमता न हो। लेकिन क्षमता न होने का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति के पास उस वस्तु आवश्यकता नहीं ; जैसे कि– इलाज के लिए पैसा न होते हुए भी गरीब आदमी को भी इलाज की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि एक धनवान व्यक्ति को। माना कि तीन आदमियों से यह प्रश्न पूछा जाय कि वे सार्वजनिक व्यय में तीन वस्तुओं अ, ब, स को दी जाने वाली प्राथमिकता पर अपना मत व्यक्त करें।

**वस्तु की प्राथमिकता स्थान**

| | प्रथम | द्वितीय | तृतीय |
|---|---|---|---|
| 1. मतदाता | अ | ब | स |
| 2. मतदाता | ब | ग | अ |
| 3. मतदाता | स | अ | ब |

इस मतदान का परिणाम एकदम श्रमिक है। मतदाता यह कहें कि अ, ब, स किसी सार्वजनिक वस्तु की भी आवश्यकता नहीं है। तो क्या ऐसी स्थिति मेंसरकार का अस्तित्व ही समाप्त कर देना चाहिए? जैसे कि–समाज का प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सोचे कि उसके मना करने पर भी सरकार देश में कानून और व्यवस्था बनाए रखना तथा इस सोच के आधार पर यह मत प्रकट करे कि सरकार को कानून और व्यवथा बनाए रखने की कोई आवश्यकता है। तो क्यार सरकार अपने इस दायित्व का निर्वहन न करें ? इसके अतिरिक्त कानूनी तौर पर सरकार की कई बाध्य व्यय मदें भी होती है, जिनमें परिवर्तन करना संभव नहीं होता है। वर्तमान में सार्वजनिक क्रियाओं का ध्येय मुख्य रूप से सामाजिक कल्याण हेतु विस्तृत होता जा रहा है। इन आर्थिक क्रियाओं का संबंध आय एवं धन के वितरण, अधिकतम हित, नियोजित विकास, सामाजिक हित संबंधी वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि आदि से है। सार्वजनिक ऋण में वृद्धि भी सरकार की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि का कारण बनी है। अगर देखा जाए तो प्राचीनकाल में अर्थशास्त्रिओं ने सार्वजनिक व्यय को उतनी तवज्जो नहीं दी थी, जितना कि वर्तमान में अर्थशास्त्री दे रहे है। प्रो रॉबर्ट पील का कथन है कि –''धन सरकार की अपेक्षा लोगों के हाथों में अधिक फलदायी सिद्ध हो सकता है।'' परिणामस्वरूप लोक–वित्त का क्षेत्र अधिक संकुचित हो गया था। प्रो00 पारनैल का कथन है कि प्रत्येक सरकारी व्यय अपव्ययपूर्ण है। प्राचीनकाल में इस तरह के

कथन के कारण थे कि सरकार का कार्य क्षेत्र केवल न्याय, पुलिस और सेना तक ही सीमित थे। प्राचीनकाल के अर्थशास्त्रियां का कहना था कि प्रत्येक सार्वजनिक व्यय अनुत्पादक तथा अपव्यपूर्ण होता है, साथ ही धन का उपयोग सरकार की अपेक्षा व्यक्ति द्वारा अच्छे ढंग से हो सकता है। सार्वजनिक व्यय को अनावश्यक समझा गया क्योंकि सरकारी व्यय का विस्तार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कम कर देता था। 19 वीं सदी के बाद प्राचीनकाल विचारधारा में परिवर्तन आया, और सरकारी हस्तक्षेप को तवज्जों मिलना प्रारम्भ हुआ । समाजवादी विचारधारा, कल्याणकारी राज्यों की स्थापना व लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के कारण सरकारी हस्तक्षेप और अधिक व्यापक होने लगा, जिसमें अर्थशास्त्रियों जैसे–वैगनर, फ्रउरिक लिस्ट, कार्ल मार्क्स, तथा जे0एस0 कीन्स आदि। वर्तमान में स्थिति यह है कि सरकारी हस्तक्षेप प्रगतिशील और कल्याणकारी राज्यों का पर्याय बन चुका है। आज राष्ट्र का प्रवेश आर्थिक क्षेत्र में हो चुका है, फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने स्वाभाविक है।

**1.1 उद्देश्य :–**

1. सार्वजनिक व्यय पर प्रभावी नियंत्रण रखना , घोटालों व अपव्यय से बचना तथा अनावश्यक मदों पर व्यय किए जाने को रोकना।
2. सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था प्रदान करने हेतु।
3. राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था अर्थात अमन – चैन का वातावरण निर्मित करना।
4. राष्ट्र के विकास को गति प्रदान करना।

**1.2 सार्वजनिक व्यय के प्रकार :–** सार्वजनिक व्यय का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। सरकार का व्यय अर्थव्यवस्था कुल व्यय का एक बड़ा भाग होता है, और इसमें भाग में वृद्धि होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। सरकार अपने बजट को सुव्यवस्थित तरीके से तैयार करके कार्यान्वित करती है। इस प्रकार बजट को कई पगकार से वर्गीकृत करके विधियाँ भी निकाली गई है। इससे संबंधित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है। निम्नलिखित प्रकारों समझा जा सकता है–

**अ. लेखा स्तर पर वर्गीकरण (Accounting standard classification ):-**

सार्वजनिक व्यय का लेखा स्तर पर वर्गीकरण काफी अरसे से चला आ रहाहै। इसमें सरकार की प्राप्तियाँ तथा समवितरण की मदें होती है। सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य है कि सार्वजनिक व्यय पर प्रभावी नियंत्रण के माध्यम से राष्ट्र में घोटालो, अपव्ययों से बचाव करना तथा अनावश्यक मदों पर व्यय की जाने वाली राशियों को रोकना है। यह कार्य लेखा स्तर पर वर्गीकरण के द्वारा सार्वजनिक व्यय पर प्रभावी नियंत्रण कार्य सम्भव है। इसमें सरकारी व्यय को

निर्देशानुसार मदों तथा उपमदों में बांट दिया जाता है, और इस व्यय से संबंधित अधिनियम, परिनियमवल, शासनादेशों का निर्माण करके, एक सुव्यवस्थित प्रणाली जैसे लेखा परीक्षण बनाई जाती है। इस माध्यम से सरकारी कर्मचारियों व अधिकारियों के द्वारा व्यय को संबंधित अधिनियम, परिनियमों के अन्तर्गत किया गया है, या नहीं। इस प्रकार राष्ट्र में सार्वजनिक व्यय की मद्वार जानकारी हासिल करने का उचित एवं सशक्त माध्यम है। लेखा स्तर पर वर्गीकरण के बावजूद इसमें त्रुटियां होती है, तो अन्य वर्गीकरण की सहायता से दूर करने का प्रयास किया जाता है। इस लेखा स्तर के वर्गीकरण में मुख्य त्रुटियां यह है कि इसमें समाज तथा अर्थव्यवस्था पर सार्वजनिक व्यय द्वारा होने वाले प्रभावों का मूल्यांकन नहीं किया जा रसकता है। इस लेखा स्तर के वर्गीकरण की विधि से पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती है, जिससे एक सशक्त व्यय नीति की संरचना कर पाते।

**ब. हस्तान्तरण व्यय एवं अहस्तान्तरण व्यय (Transfer and Non Transfer Expenditure):-** इस वर्गीकरण में प्रो0 पीगू ने सार्वजनिक व्यय के दो भागों में विभक्त यिका है। प्रो0 पीगू का कथन है कि–हस्तान्तरित होने वाला व्यय वह है जो नागरिकों के लिए या तो निःशुल्क किया जाता है या उपस्थित सम्पत्ति अधिकारों को क्रय करने के लिए किया जाता है जैसे– बेरोजगारी लाभ, बीमारी सहायता आर्थिक सहायता, ब्याज, पेन्शन आदि। अहस्तान्तरित व्यय वह है, जो राष्ट्र के साधनों की वर्तमान सेवाओं को खरीदने के लिए किया जात है, जैसे–नागरिक प्रशासन पर यिका गया व्यय, सेना, जहाजी बेड़ा, वायु शक्ति, नागरिक शासन, जनोपयोगी सेवाएं आदि का व्यय सम्मिलित है।

**स. राजस्व एवं पूँजी व्यय (Revenue & Capital Expenditure):-** सरकार को व्यय करते समय ध्यान रखना चाएि कि प्रापत राजस्व प्राप्तियां के अनुकूल हो। इन दैनिक व्यय हेतु ऋण लेना ठीक नहीं है। दैनिक व्ययों के लिए सरकार उधार लेती है तो उसका कोई औचित्य बनता नहीं है। इस तरह सरकार ऋण लेकर, उसका उपयोग परिसंपत्तियों में वृद्धि तथा निवेश के वित्त पोषण हेतु किया जाए। पूँजी व्यय में वे मदें है, जैसे सरकार अपनी परिसंपत्तियों में वृद्धि अथवा देयताओं में कमी लाना। सरकार की निवेश राशियां ओर ऋणों का भुगतान, पूँजी व्यय के अन्तर्गत है। राजस्व व्यय में वे मदें है, जैसे सरकार का अपना रख–रखाव , कर्मियों के वेतन तथा भत्ते तथा भवनों की देखरेख आदि का कार्य चलता रहता है साथ्ज्ञ ऋणो, पर अदा यिका गया ब्याज, लाभ–आय औरा लाभांश का वितरण भी राजस्व व्यय में गिने जात है। सशस्त्र सेना पर किये गये व्यय, भवनों के निर्माण को छोड़कर समस्त राशियां को भ्झी राजस्व खते में रखा जाता है।

**द.उपभोग व्यय तथा पूँजी व्यय (Consumption Expenditure & Capital Expenditure):-** इसमें पूँजी निर्माण के आयाम पर विचार किया जाता है। सरकार प्रत्येक व्यय के लिए निर्णय लेती है इसका उद्देश्य उपभोग तथा पूँजी निर्माण में कौन सा है। सरकार के वित्त के लेखा नियमावली ऐसी होती है, जिनके अनुसार राजस्व व्यय की मदों को उपभोग व्यय न मानकर पूँजी व्यय की मदों का प्रतिफल पूँजी निर्माण होता है, और किन–किन मदों का उद्देश्य पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करना है। सरकार हस्तान्तरण राशि का उपयोग भी इस उद्देश्य से किया जाता है कि साधन प्राप्त करने वाली इकाई इस उपयोग पूँजी निर्माण में करेगी, तो सरकार के बजट में भी इसें पूँजी व्यय में रखा जाता है।

**1.3 सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण (Classification of public expenditure):-**

सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण में प्रमुख अर्थशास्त्रियों के विचार निम्नवत् हैं–

1. जर्मन अर्थशास्त्र कॉन एवं अमेरिकी अर्थशस्त्री प्लेहन का वर्गीकरण (Kahn & Plehn Clasification):- कॉन एवं प्लेहन ने लाभ के आधार पर सार्वजनिक व्यय को चार भागों में विभक्त किया गया है–

   क. विशेष वर्ग को :– यह व्यय किसी विशेष की आवश्यकताओं व समस्याओं पर किया जाता है। अल्पकाल में सरकार को लाभ नही होता है बल्कि दीर्घकाल में इस वर्ग पर किया गया व्यय से लाभ प्राप्त होता है। इससे उनकी स्थिति में सुधार हो जाता है। इस प्रकार के व्यय के अन्तर्गत बीमारी–बीमा, बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन तथा अपाहिजों व विकलांगो को दी जाने वाली सहायता आदि।

   ख. विशेष व्यक्ति को :– ऐसे व्यय जो कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को लाभ को प्रापत होता है। इसके साथ सम्पूण्र समाज को इसका लाभ प्रोप्त होता है, जैसे न्याय व्यवस्था पर व्यय, पुलिस पर किया जाना वाला व्यय आदि।

   ग.समाज पर :– ऐसे व्यय का लाभ सम्पूर्ण रूप से समाज को मिलता है, जैसे–स्वाथ्य कार्यों, शिक्षा, यातायात, सुरक्षा पर किया जाना बाला व्यय।

   घ. संस्था पर :– ऐसे व्यय जो खास संस्थाओं को ही लाभ प्राप्त होता है, जैसे–सार्वजनिक उद्योगों पर किया जाने वाले व्यय आदि।

2. **<u>प्रो0 एडमस का वर्गीकरण (Adam's Classification):-</u>** राज्य में व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर व्यय वर्गीकरण किया गया है–

**<u>क. व्यापार व वार्णिजय कार्यः–</u>** ऐसे व्यय जो व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के लिए किये जाते है , जैसे–सड़कें , डाक, रेल, अर्थात परिवहन व यातायात आदि।

**<u>ख. रक्षा संबंधी कार्य :–</u>** ऐसे व्यय, जो राष्ट्र की सुरक्षा एवं नागरिकों की सुरक्षा हेतु किये जाते है, जैसे–न्यायालय, जेल खाना, पागलखाना, सेना, पुलिस आदि।

**<u>ग. विकास कार्यो पर :–</u>** ऐसे व्यय, जो राष्ट्र के नागरिकों की जान माल की सुरक्षा एवं न्याय , व्यापार के विकास अर्थात यातायात, शिक्षा स्वास्थ्य व जन कल्याणकारी परियोजना पर किया जाने वाले व्यय आदि।

3. **<u>प्रो0 निकल्सन का वर्गीकरण (Nicholson's classification ):-</u>** सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण का आधार सरकार के व्यय के बदले प्राप्त आय के अनुसार किया गया है।

**<u>क.</u>** अतिरिक्त आयः– ऐसे व्यय से सरकार का व्यय पूर्ण होने के साथ–साथ अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है, जैसे–रेल, डाकखाने, एवं सड़कों पर किया गया व्यय।

**<u>ख.</u>** अप्रत्यक्ष लाभ :– ऐसे सार्वजनिक व्यय जो सरकार को अप्रत्यक्ष रूप व्यक्त्यिों की दक्षता एवं उत्पादन में वृद्धि से आय में वृद्धि होती है।

**<u>ग.</u>** अलाभकार व्यय :– ऐसे व्यय जो राज्य को किसी भी प्रकार से आय प्राप्त नहीं होती है, जैसे–युद्ध पर कियाजाने वाला व्यय तथा निर्धनों पर दी जाने वाली सहायता, एवं बेरोजगारी भत्ता आदि।

**<u>द.</u>** आंशिक प्रत्यक्ष लाभ :– ऐसे सार्वजनिक व्यय जिससे राज्य को आंशिक रूप से आय प्राप्त होती है, जैसे–न्यायालय पर व्यय तथा शुल्क सहित शिक्षा। इससे सरकारी व्यय अधिक होता है जबकि इन सेवाओं से सरकार को व्यय की अपेक्षा शुल्क कम मिलताहे।?

इसका उपयोग बजट बनाते समय वित्त मंत्री इस वर्गीकरण की सहायता से यह अनुमान लगा सकते है कि किन–किन मदों से कितनी आय प्राप्त हो सकती है।

**<u>1.4 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण (Reasons of increasing public expenditure):-</u>** प्रो0 डाल्टन के मतानुसार–''अन्य क्षेत्रों में आधुनिक विकास ने जनसत्ताओं को नये कार्य अपनाने को बाध्य कर दिया है, जो कि वास्तव में निजी साहसी द्वारा पूर्ण नहीं किये जा सकते थे।'' इस संबंध में वैगनर का मतह ै कि–'' विकाशील व्यक्तिओं के समाज में जिसेस हम संबंधित है, केन्द्रीय एवं स्थानीय दोनों ही सरकारों के कार्यों में नियमित वृद्धि होती रहती है।''

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणों को हम आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य कारण के रूप में विभाजित कर सकते है। आर्थिक कारणें मे जैसे– उद्योगों की स्थापना, अर्थव्यवस्था में स्थायित्व, आर्थिक सहायता, विकास परियोजनाएं, उत्पादको को सहायता, मूल्यों मे वृद्धि , व्यय क्षमता में वृद्धि आदि है। सामाजिक कारणों में जसै–सामाजिक सुरक्षा एवं सेवाओं व जनसंख्या में वृद्धि आदि है। राजनैतिक कारणें में जैसे सुरक्षा व्ययों में वृद्धि व प्रजातान्त्रिक आधार जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं सामाजिक कार्यों पर व्यय आदि है। अन्य कारणों में जैसे–स्थालीय समस्याएं, दोषपूर्ण व्यवस्था, मन्दीकाल, सामूहिक सन्तुष्टि, अन्य सम्मिलित उपयोग, विश्वसंघ आदि है, जो सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करते है। इस संबंध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वैगनर का मत है कि–''विभिन्न देशों व विभन्न समयों की विस्तृत तुलना करने पर लगता है कि विकासशील व्यक्तिओं के समाज में केवल जिससे हमारा संबंध हे, केन्द्रीय व स्थानीय दोनों ही सरकारों के कार्यो में नियमित वृद्धि होती रहती है। यह वृद्धि विस्तृत व गहन, दोनों ही प्रकार से होती है। केन्द्रीय व स्थानीय सरकारें निरन्तर नये कार्यों को अपने हाथ में लेती है, तथा पुराने व नयें दोनों ही कर्यों को वू पूर्ण रूप से तथा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा करती है।'' इससे स्पष्टहोता है कि नागरिक प्रशासन विकास एवं ऋण संबंधी सेवाओ, सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय हेतु व्यय दिन प्रतिदिन बढ़ताजाता है। इस संबंध में बढ़ते सुरक्षा व्यय पर मोन्अेसक्यू के विचार है कि–'' यूरोप में एक बीमारी फैल रही है जिससे प्रत्येक राजा प्रभावित है कि एक विशाल सेना रखी जाय। वास्तव में छूत की बीमारी है क्योंकि जब एक राजा अपनी सेना बड़ाता है तो दूसरा भी अपने सैनिकों में वृद्धि करता जिससे किसी का लाभ नहीं होता परन्तु सामान्य जनता नष्ट हो जाती है। प्रत्येक राजा यह समझता है कि इनती अधिक सेना न रखने से उसकी जनता समाप्त हो जायेगी, और इसी को शान्ति का नाम दिया जाता है।'' इससे स्पष्ट होता है कि पूर्व में, सुरक्षा व शान्ति के नाम पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है। इस संबंध में सुरक्षा के बढ़ते व्यय पर टेलर का मत है–कि'' सैनिक कला एवं विज्ञान की तीव्र प्रगति हुई है कि युद्ध के यन्त्रों का क्रय अत्यन्त महंगा हो गया है और उनके नष्ट होने की दर अत्यन्त ऊँची। सरकार द्वारा युद्ध पीड़ित व्यक्तिओं और उनके परिवारों की देखभाल करने का तथा उनके बोनस, शिक्षा और पुनर्वास, आदि का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लेने के कारण सरकार युद्ध संबंधी लागते बहुत अधिक बढ़ गयी है।'' इससे स्पष्ट होता है कि सरुक्षा एवं शान्ति पर अत्यधिक सार्वजनिक व्ययों में वृद्धि हुई है। भारत में भी रक्षा बजट में वृद्धि देखने को मिलती है, जो सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करती है।

**1.5 बजट का वर्गीकरण (Budget Classification):-** राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बजट की महत्ता के मदफदेनजर यह आवश्यक हो जाता है कि बजट संबंधी लोक व्यय एवं राजस्व के आंकड़ों को

ऐसे व्यवस्थित ढंग से रखा जाएं कि समस्त आर्थिक महत्व स्पष्ट हो जाए तथा विभिन्न आयामों को उभारा जा सके और उन्हे वेहतर बनाया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु बजट का वर्गीकरण की महती आवश्यकता हो जाती है। बजट का वर्गीकरण कई उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकारों में वर्गीकरण किया गया है–

1. क्रियात्मक वर्गीकरण (Functional Classification)
2. आर्थिक वर्गीकरण ( Economic Classification)
3. संगठनात्मक वर्गीकरण (Organizational Classification)
4. प्रोग्राम तथा निष्पादन वर्गीकरण (Programme & Performance Classification)
5. विषय संबंधी वर्गीकरण (Object Classification)

**1. क्रियात्मक वर्गीकरण (Functional Classification):-** बजट को पारित कराने के पूर्व यह जान लिया जाता है कि बजट सरकार की इच्छाओं के अनुरूप है। कर के भार के संबंध में सरकार का प्रयत्न रहता है कि वितरण सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप हो। बजट के ये उद्देश्य तभी पूरे हो सकते है जब सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण प्रदत्त सेवाओं के आधार पर किया जाए, जैसे– 1. सामान्य लोक सेवाएं अर्थात प्रतिरक्षा, न्याय पुलिस , समान्य प्रशासन 2. सामाजिक सेवाएं अर्थात चिकित्सा, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य 3. आर्थिक सेवाएं अर्थात कृषि , संचार, बिजली, खनन, परिवहन, निर्माण 4. सामुदायिक सेवाएं अर्थात सड़क, एवं पुल सफाई। सार्वजनिक व्यय के तरह राजस्व का भी वर्गीकरण यिका जाता है, जैसे– कर राजवस्व , आयकर, निगम कर, बिक्री कर आदि तथा गैर कर राजस्व। इस वर्गीकरण का उद्देश्य है कि सरकारी आय का वितरण अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किया गया हो। इस प्रकार कहा जाा सकता है कि क्रियात्मक वर्गीकरण सामान्य लेन–देन के उद्देश्य के आधार पर किया जााता है।

**2. आर्थिक वर्गीकर (Economic Classification):-** आर्थिक वर्गीकरण के अन्तर्गत सार्वजनिक व्यय तथा आय को आर्थिक वर्गो में बांटा जाता है। इसका उद्देश्य है कि अर्थव्यवस्था की गतिवधियां पर सरकारी लेन–देन के अल्पकालिक प्रभाव का विश्लेषण करना है। सरकारी लेन–देन के आंकड़े क्रियात्मक वर्गीकरण से प्रापत किये जाते ह। यह आंकड़े आर्थिक नीति निर्धारण के महत्वपूर्ण आधार होते है। राष्ट्रीय आय लेखा के संबंध में आर्थिक वर्गीकरण की महत्ता है साथ ही परियोजनाओं के निर्माण में इसकी सार्थक उपादेयता है। भारत सरकार के बजट के आर्थिक वर्गीकरण के निम्नवत् विवरण है कि–''वस्तुओं और सेवाअें का लेन–देन और अन्तरण–सरकारी प्रशासन का चालू खाता; विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का चालू

खात; सरकारी प्रशान और विभागीय प्रशासन और विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का चालू खात, सरकारी प्रशासन और सरकारी प्रशासन और विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का पूँजी खात एवं वित्तीय देयताओं में परिवर्तन – सरकारी प्रशासन और विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का रोकड़ और पूँजी समाधान खाता। यह वर्गीकरण सरकारी गतिविधियों को राष्ट्रीय आय और व्यय के प्रवाहों से जोड़ा जा सके अर्थात इन खातों की संरचना इनकी प्रयुक्तता को ध्यान में रखकर की गई। इन विवरणों से सरकार के बजट द्वारा प्रत्यक्षा उपभोग और पूँजी–निर्माण के अनुमान के अतिरिक्त शेष अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आंका जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इन विवरणों से केन्द्रीय सरकार कुल व्यय, अंतिक परिव्यय, पूंजी निर्माण के लिए वित्तीय सहायता; बजटीय संसाधनों से सकल पूँजी निर्माण ; बजटीय संसाधनो से निवल पूँजी निर्माण; बचते, बजटीय घाटे के विभिन्न अनुमान, आय का निर्माण, कुल वित्तीय वित्तीय आवश्यकता, कुल वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति के स्त्रोंत आदि के महत्वपूर्ण आर्थिक अनुमान लगाए जा सकते है।

**3.संगठनात्मक वर्गीकरण (Organisational Classification ):-** विभागीय मंत्रालय के अनुसार बजट को विभाजित किया जाता है। यह मंत्रालय ही सरकार की ''कार्य करने वाली इकाइयां' कहलाती ह। यह विभाग ही बजट कार्यक्रम की योजना बनाते हैं और उनहें कार्यान्वित भी करते है। भारत में अनुदान मांग को संसद के समक्ष मंत्रालय के अनुसार रखा जाता है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण आसान हो जाता है जबकि राजस्व पक्ष में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

**4.विषय संबंधी वर्गीकरण (Object Classification):-**सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण करने वाली एजेन्सियों के अनुसार भी हो सकता है, जिसे संगठनात्मक वर्गीकरण माना जाता है। इस वर्गीकरण के साथ विषय और जोड़ दिये जाते है। इस संबंध में बर्क हैड का कहना है कि ''विषयानुसार वर्गीकरण उस युग की देन है जब विद्यालयों तथा नागरिकों को प्रशासकों पर विश्वास की कमी थी।'' इस वर्गीकरण के द्वारा बजट व्यवस्था में लेखा विधि को सम्मिलित किया जाता है जिससे गवन पर अंकुश लग सकें। लोक व्यय के संबंध में इस वर्गीकरण का उदाहरण है कि–

| | |
|---|---|
| कार्मिक क्षतिपूर्ति | कार्मिक लाभ |
| पूर्णकालिक स्थायी स्थान | व्यक्तियों का यात्रा एवं परिवहन– |
| अन्य स्थान | वस्तुओं का परिवहन– |
| अन्य कार्मिक क्षतिपूर्ति | संचार, उपयोगिताएं तथा लगान– |
| | अन्य सेवाएं |

आपूर्ति एवं सामाग्री–

साज–सामान–

अनुदान, सब्सिडी तथा दान–

बीमा आदि

प्रतिपूर्ति मद्

कुल व्यय

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस वर्गीकरण में संगठनात्मक वर्गीकरण का उपयोग किया जाता है। विधायिका के प्रति वित्तीय दायित्व ही इस वर्गीकरण का उद्देश्य है।

**1.6 सारांश (Summary):-** भारत में धन के वितरण को समान बनाने हेतु सार्वजनिक व्यय का इतना महत्व नहीं है, लेकिन विगत वर्षों से जो परिवर्तन हो रह हैं उससे प्रदेश स्तर व क्षेत्रीय पुनर्वितरण में काफी प्रगति देखने को मिलती है। इससे पिछड़े क्षेत्रों को लाभ पहुंचने के साथ–साथ आय स्तर एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो रही हे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता इस बात की है कि सार्वजनिक व्यय मितव्ययिता पूर्ण होना चाहिएं सरकार का प्रयत्न रहता है कि अपव्यय को रोकरने एवं प्रशासन में कार्यकुशलता व मित्तव्ययिता लाने का पूर्ण प्रयास है। इन सबका लाभ तब दिखाई देगा जब कर्मचारियों में ईमानदारी एवं सत्य निष्ठा की भावना का संचार हो और उनमे राष्ट्र निर्माण की भावना उत्पन्न हों। बजट का वर्गीकरण का उद्देश्य साधनों का वितरण अधिकतम सामाजिक कल्याण सिद्धान्त एवं सामाजिक न्याय सिद्धान्त के अनुसार हो सकें। लेकिन बजट में अनेक तकनीकी का प्रयोग होने के बावजूद, जिसमें सुधार की गुंजाइश नबी रहती है। यथासम्भव प्रयत्न सरकार रहता है कि मापनीय और निगरानीय, लक्षित परिणाम आयें।

## 1.7 शब्दावली (Key words):-

1. सावर्जनिक व्यय (Public Expenditure)
2. समवितरण (Disbursment)
3. प्रकट अधिमान (Revealed Preference)
4. लेखा परीक्षण (Auditing)
5. हस्तान्तरण व अहस्तान्तरण व्यय (Transfer & Non Transfer expenditure)

6. राजस्व एवं पूँजी व्यय (revenue & Capital Expenditure)
7. उपभोग (Consumption)
8. नियोजित (Planed)
9. अनियोजित (Non-plan)
10. उत्पादक (Productive)
11. निवेश (Investment)
12. कार्यातमक वर्गीकरण (Functional Classification)
13. कार्यक्षमता (Efficiency)
14. गहनता (Intensity)
15. चरणबद्ध (Stepwise)
16. समायोजन (Adjustment)
17. मित्तव्ययिता (Economy)
18. लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee)
19. अनुमान समिति (Estimate Committe)
20. वित्तीय नियंत्रण (Financila Control)

## 1.8 सन्दर्भित पुस्तके (Reference Books):-


1. R.A Musgrave and P.B Samusgrave : Public Finance in Theory and Practive (1989) chapter 08
2. Musgrave and Peacock : Classics in the theory of public finance (1962) chapter 1
3. Alan Peacock : The Economic analysis of Govt. and other related Themes (1980) chapter 7
4. R.A Musgrave : Fiscal systems 1969

5. John C. Beyer : Budget Innovation in development countries: the Experiece of Napal Praeger- 1973

6. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

7. लोक अर्थशास्त्र डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन्स, आगरा

8. लोक वित्त : एच0एल0 भाटिया, विकास पब्लिसिंग हाऊस प्रा0 लि0 नोयडा भारत।

9. लोक वित्त : डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय, एस0बी0टी0पी0 पब्लिसिंग, हाऊस आगरा।

## 1.9 प्रश्न उत्तर (Question Answer):-

1. सार्वजनिक व्यय से क्या आश्या है।
2. सार्वजनिक व्यय मे वृद्धि के कारणों की व्याख्या कीजिए।
3. सार्वजनिक व्यय के प्रकार को बताइए।
4. सार्वजनिक व्यय के उद्देश्य क्या–क्या है।
5. सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरणों की व्याख्या कीजिए।
6. वैगनर का सिद्धान्त को समझाइये।
7. जैक वाईजमन – पीकॉक सिद्धान्त बताइए।
8. सार्वजनिक व्यय और निजी व्यय में अन्तर सपष्ट कीजिए।
9. सावर्जनिक व्यय के नियम की व्याख्या कीजिए।
10. सार्वजनिक व्यय क नियंत्रण की विधियां बताइए।
11. भारत में वित्तीय नियन्त्रण पर निबन्ध लिखिए।
12. सार्वजनिक व्यय और आर्थिक स्थिरता को समझाइए।
13. सावर्जनिक व्यय और उत्पादन पर प्रभाव बताइए।
14. सार्वजनिक व्यय और वितरण पर एक लघु नोट लिखिए।
15. सार्वजनिक व्यय और आर्थिक विकास की स्पष्ट कीजिए।

## 1.10 बहु–विकल्पीय प्रश्न उत्तर (Objective type question Answer):-

1. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कौन सा कारण है?

   क. बैकों की संख्या में वृद्धि  ख. आय व्य का समायोजन

ग. उद्योगों का राष्ट्रीयकरण घ. भूमि सुधर (उत्तर ग)

2. व्यय के वर्गीकरण का आधार आय को किस अर्थशास्त्री ने माना है।

क. काहन ख. निकल्सन ग. डाल्टन घ. एडम

(उत्तर ख)

3. सार्वजनिक व्यय का महत्व के आधार पर वर्गीकरण किन अर्थशास्त्री द्वारा किया गया है?

क. डाल्टन ख. प्रो0 शिराज ग. रोशर घ. श्रीमती हिक्स

(उत्तर ख)

4. कौन सा सार्वजनिक व्यय निर्धन वर्ग को लाभ पहुँचाता है।

क. आनुपातिक व्यय ख. प्रगतिशील व्यय ग.प्रतिगामी व्यय ध. इनमें से कोई नही

(उत्तर ख)

5. कार्य करने व बचत करने की योग्यता का मुख्य संबंध होता है–

क. रोजगार का स्तर ख. कार्यक्षमता ग. निवेश घ. सार्वजनिक व्यय

(उत्तर क)

6. मन्दी क समय सार्वजनिक व्यय की प्रकृति क्या होनी चाहिए।

क. दीर्घकालीन ख. अल्पकाली ग. मध्यकालीन घ. उपर्युक्त सभी

(उत्तर क)

7. विश्त में सर्वप्रथम आर्थिक मन्दी किस सन में आयी थी।

क. 1921 ख. 1932 ग. 1940 घ. 1930

(उत्तर घ)

8. भारत में वित्तीय नियंत्रण करता है।

क. राज्य सभा ख. लोकसभा ग. विधान सभा व संसद घ. स्थानीय निकाय

(उत्तर ग)

9. सार्वजनिक व्यय के आदर्श है।

क. अधिक रोजगार ख. अधिक आय ग. न्यूनतम व्यय

घ. अधिकतम सामाजिक लाभ (उत्तर घ)

10. वर्तमान व्यय करने से व्यक्तिओं की आय में–

क. कमी आती है ख. वृद्धि होती है ग. आय शून्य हो जाती है।

घ. उपर्युक्त सभी (उत्तर ख)

**खण्ड – 02**

**इकाई – 02**

## सार्वजनिक उपक्रम : मिश्रित अर्थव्यवस्था के विकास स्वरूप में भूमिका :

### 1.1 परिचय : Introduction :

भारत में स्वतंत्रता पूर्व कोई नियोजित आर्थिक नीति न होने के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् एक सुनियोजित आर्थिक नीति होना चाहिए पर विचार किया गया ताकि औद्योगिक क्रान्ति में सम्मिलित होकर भारत का औद्योगिक विकास पर ध्यान दिया जाये। भारत की अर्थव्यवस्था अव्यवस्थित थी। इसलिए एक सशक्त औद्योगिक नीति निर्धारित की जाने की आवश्यकता थी, जिससे भारत का बहु–आयामी आर्थिक विकास किया जा सके। इसलिये सार्वजनिक उपक्रमों को स्थापित किया जाए। ऐसे उद्योग जिन पर सरकार अथवा नगर पालिका, या निगम, अथवा सार्वजनिक संस्थाओं का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है। उनको सार्वजनक उद्यम (Public Enterprise) कहा गया। ऐसे उद्योग को सार्वजनक उद्यम माना जायेगा, जिन पर स्वामित्व सरकार का है, किन्तु उसका प्रबंध सरकार के द्वारा किसी निजी संगठन को दे दिया गया हो। ऐसा भी हो सकता है कि उद्यम पर निजी स्वामित्व हो किन्तु प्रबन्ध सरकार के हाथों में है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी हस्तक्षेप वाले उद्योगों का सार्वजनिक उद्यम माना जा सकता है। ऐसे उद्यम जिनका प्रबंधन प्रशासनिक विभागों के रूप में किया जाता है। जैसे–डाक विभाग व रेल परिवहन आदि को सार्वजनिक उद्यम माना जाता है। इन उद्यमों की प्रबंधन–नीति वाणिज्यिक था गैर–वाणिज्यिक भी हो सकती हैं, इन्हें विभागीय वाणिज्यिक उपक्रम (Department Commercial Enterprises) माना जा सकता है। लोक उद्यमों की मूल विशेषता यह है कि उनकी पूँजी पर सरकारी स्वामित्व होना है न कि उनके कार्यक्षेत्र, प्रबंधन और लक्ष्य नीतियों पर सार्वजनिक उद्यम माना जाए। भारत में सरकार राज्य–सर्वस्ववाद (Collectivism), मिश्रित अर्थव्यवस्था, विशिष्ट उद्देश्य से उद्योगों का राष्ट्रीयकरण या संचालन कर सकती है।

### 1.2 उद्देश्य : (Objectives) :

1. सभी सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्य एक से नहीं हो सकते हैं। कुछ उद्यमों उद्देश्य लाभ कमाना है तथा कुछ उद्यमों का उद्देश्य समाज–सेवा आदि करना है।
2. सरकार का उद्देश्य समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का हो।
3. सरकार का उद्देश्य निजीकरण हो।

4. सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करना।

5. क्षेत्रीय सन्तुलन बनाना।

6. आर्थिक असन्तुलन की रोकथाम करना।

7. आर्थिक गतिविधियों के केन्द्रीकरण तथा एकाधिकार पर नियंत्रण करना।

8. राष्ट्रीय क्षमता का उपयोग कर गुणवत्ता, उत्पादकता, को प्राप्त करना।

9. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

**स्रकारी उद्यमों के पक्ष में तर्क : Arguments In Favour of Government Exterprises :**

राष्ट्रों में सुरक्षा संबंधी उद्योगों का संचालन अधिकतर सरकार के हाथों में रहा है। राष्ट्र की गोपनीयता एवं सुरक्षा संबंधी उद्योगों का संचालन सरकारी क्षेत्र में आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र युद्ध सामग्री जैसे वायुयान, जलयान व अस्त्र–शस्त्र के लिये निजी उद्यमों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त देश में प्राकृतिक साधनों में जैसे वन–संपदा, खनिज का उपयोग निजी लोगों की अपेक्षा सरकारी नियन्त्रण में होना चाहिए। यदि प्राकृतिक संपदा पर निजी लोगों के हाथों में दे दिया जाए तो वह लाभ–भावना के आधार की कार्यों का संपादन करेंगे। ऐसे उद्योगों पर सरकार नियंत्रण होना चाहिए, जिनकी प्रवृत्ति एकाधिकार की है। एकाधिकारी शक्तियों से देश में आर्थिक बुराइयों के साथ सामाजिक बुराइयों का सामना करना पड़ेगा। एकाधिकारी का उद्देश्य हमेशा अधिकतम लाभ कमाने का होता है। अधिकतम लाभ के कारण वस्तुओं का अभाव पैदा करने की प्रबल स्थिति होती है। जनकल्याण की भावना सरकारी संस्थायें होती हैं न कि निजी उद्यम में। प्रत्येक देश में कोयला, बिजली, रेलवे, लौह–इस्पात व खाद के कारखानें अर्थव्यवस्था के मूल आधार होते हैं, जिनका संचालन सरकारी क्षेत्र में होन चाहिए। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूँजी कुछ गिने–चुने घरानों के हाथों में सीमित हो जाती है, जिसके कारण आर्थिक असमानता में वृद्धि होती है। पैसा वाला और पैसा वाला बनता जाता है और निर्धन और निर्धन होता चला जाता है। यदि उद्यमों का संचालन सरकार करें तो पूँजी का समान वितरण होने की संभावना होती है। जबकि निजी लोगों का धन के समान वितरण से कोई लेना–देना नहीं होता है। विकासशील देशों के विकास हेतु सरकारी उद्यमों की महत्पूर्ण भूमिका रहती है। इन देशों में आय, बचत तथ निवेश की मात्रा से संबंधित कार्यों का संचालन निजी लोगों के द्वारा संचालित नहीं हो सकता है, इसके लिए सरकार ही अच्छी तरह से संपादित कर सकती है। जैसे–यातायात, विद्युत तथा आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था करके आर्थिक विकास कर सकती है। पिछड़े देशों के लिए सरकारी उद्यम एक शक्तिशाली अस्त्र बन

सकता है। विकासशील देशों में कुशल साहसियों की कमी होने के कारण सरकारी उद्यम सफलतापूर्वक कार्य करके आर्थिक विकास में गति प्रदान करने में सहायक होते है।

## 1.4 सरकारी उद्यमों के विपक्ष में तर्क : Argument in Against Government Enterprises :

1. यह कि व्यक्ति निजी–हित (Self-interest) से कार्य करता है। इसीलिए आर्थिक साधनों का उपयोग सही ढ़ंग से करता है, जबकि सरकार इसमें विफल रहती है।
2. यह कि सरकार उद्योगों का संचालन कुशलता से नहीं कर पाती है जबकि निजी व्यक्ति उद्योगों का कार्य कुशलता से कर सकता है।
3. यह कि सरकारी उद्यमों में जोड़–तोड़ से नियुक्ति होती है और व्यावसायिक अनुभव भी नहीं होता है, जबकि निजी उद्यमों में नहीं।
4. यह कि सरकारी कार्यालयों की कार्यप्रणाली 'धीरे काम करो' एवं भ्रष्टाचार वाली हो सकती है, साथ तुरन्त निर्णय उच्चाधिकारियों पर छोड़ देते है। जबकि व्यावसायिक क्षेत्र में तुरन्त निर्णय व लालफीता शक्ति का परिणाम विलम्ब व अकुशलता तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाला होता है जबकि निजी क्षेत्र में ऐसी प्रवृत्ति कम देखने को मिलती है।
5. यह कि सेवायोजकों व श्रमिकों के झगड़ों को सरकार व्यक्तिगत उद्यमों में सुलझाती है। सरकारी उद्यमों में इसके विरूद्ध है। श्रमिकों के झगड़ों में सरकार स्वयं पार्टी होती है। इसलिए सरकारी उद्यमों में श्रमिकों की समस्याओं का निदान आसानी से नहीं होता है।
6. यह कि आर्थिक क्षेत्र में जितना सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता जाता है, उतना ही तानाशाही बढ़ने का खतरा बढ़ता जाता है। जबकि निजी क्षेत्र में ऐसा नहीं है।

## 1.5 भारत के विका में सरकारी उद्यम की भूमिका : Role of Public Enterprises in India's Development :

1. भारत में स्वतंत्रता से पूर्व आद्योगिकी नीति का अता–पता नहीं था जबकि रेलवे जैसा महत्वपूर्ण उद्यम का संचालन सरकार के द्वारा किया जा रहा था। इसके बाद देश में बढ़ती निर्धनता के मद्देनजर औद्योगीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया और 6 अप्रैल 1948 को औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। सरकार के द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था का अनुसरण किया गया। उद्योगों के सुनियोजित विकास एवं राष्ट्रीय कल्याण हेतु संचालित करने उत्तरादायित्व अपने ऊपर ले लिया। औद्योगिक नीति के अनुसार उद्यमों को तीन भागों में विभक्त किया गया, जैसे–सुरक्षित उोग व नये उद्योगों की स्थापना सरकारी क्षेत्र में तथा तीसरे वर्ग में 18 ऐसे उद्योगों को शामिल किया गया, जिनका

पूँजी के निवेश तथा तकनीकी कुशलता को दृष्टि से विशेष महत्व था जैसे–नमक, मोटर तथा ट्रेक्टर, विद्युत इंजीनियरिंग, यन्त्र व औज़ार, औषधियाँ, रासायनिक पदार्थ, सूती व ऊनी वस्त्र, सीमेन्ट, चीनी उद्योग आदि। इन उद्योगों को निजी क्षेत्र में खोले जा सकते है। लेकिन इन पर नियंत्रण सरकार का होगा, जो उपर्युक्त तीनों में शामिल नहीं है, उन्हें निजी व्यावसायिकों को पूर्ण स्वतंत्रता दी गई। निजी उद्यमों में किसी दशा में हस्तक्षेप कर सकती है। 1948 नीति मूल उद्देश्य था कि सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करना तथा लघु उद्योगों व सरकारी क्षेत्र को प्रोत्साहन, समाजवादी ढाँचा का निर्माण, क्षेत्रीय सन्तुल बनाना, आर्थिक असन्तुलन की रोकथाम, आर्थिक गतिविधियों के केन्द्रीकरण तथा एकाधिकार पर नियंत्रण आदि बनाना, आर्थिक असन्तुलन की रोकथाम, आर्थिक गतिविधियों के केन्द्रीकरण तथा एकाधिकार पर नियंत्रण आदि।

2. भारत में 30 अप्रैल 1956 को नई औद्योगिक नीति बनाई गई। इस नीति में भारत सरकार के द्वारा उद्योगों को तीन भागों विभक्त किया गया।

(अ) **<u>प्रथम वर्ग</u>** : प्रथम वर्ग यह उद्योग शामिल किये गये जिनका भावी विकास का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य का होगा। जैसे अस्त्र–शस्त्र, गोला–बारूद, अणु–शक्ति, लोहा तथा इस्पात रखे इससे संबंधित उद्योग, भारी विद्युत यन्त्र, कोयला तथा खनिज तेल, लोहा, खनिज, मैगनीज, क्रोमियम, गंधक, हीरा तथा सोना, ताँबा, शीशा, वायुयान, वायु परिवहन, रेल परिवहन, जलयान निर्माण, टेलीफोन, बिजली उत्पादन तथा वितरण आदि शामिल है। सरकार निजी उद्यमों का सहयोग प्राप्त करना चाहती है तो वह कर सकती है।

(ब) **<u>द्वितीय वर्ग</u>** : इसमें वे उद्योग किये जायेंगे जिन पर आगे चलकर राज्य का अधिकार हो जायेगा। इसके अतिरिक्त निजी उद्यम भी राज्य की सहायता कर सकेंगे। इस वर्ग सारे खनिज पदार्थ, एल्युमिनियम तथा लोहे के अतिरक्त समस्त धातु जो प्रथम वर्ग में शामिल नहीं है जैसे–मशीनों के औजार, लौह मिश्रित धातु तथा औज़ारों के लिए उपयोगी इस्पात, मूल व मध्यर्वता रासायनिक पदार्थ, जीवाणु–निरोधक तथा अन्य आवश्यक औषधियाँ रासायनिक खाद एवं रबर, रासायनिक लुग्दी, सड़क परिवहन, जहाजरानी आदि शामिल हैं।

(स) **<u>तृतीय वर्ग</u>** : इस वर्ग में शेष बचे उद्योग शामिल होंगे और उनके विकास व प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व निजी क्षेत्र का होगा, परन्तु सरकार चाहे तो इन उद्योगों पर भी संचालन कर सकती है। सरकार का प्रयत्नह॓ कि पंचवर्षीय योजनाओं में निर्मित कार्यक्रमों के अनुसार निजी क्षेत्र के उद्योगों के विकास हेतु

पर्याप्त प्रोत्साहन तथा सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। इस वर्ग में उद्योगों की 'अ' और 'ब' अनुसूची के रूप में विभक्त किया है जैसे –

**अनुसूची 'अ' Schedule 'A' –**

1. ''अस्त्र–शस्त्र व गोला–बारूद तथा प्रतिरक्षा से सम्बन्धित अन्य सामान''
2. ''अणु–शक्ति''
3. ''लोहा तथा इस्पात''
4. ''लोहा तथा इस्पात के भारी सामान की ढलाई तथा घड़ाई''
5. ''भारी यन्त्र व मशीनरी, जो लोहे तथा इस्पात के उत्पादन के लिए खानें खोदने के लिए मशीनों के औज़ार बनाने के लिए तथा ऐसे अन्य मूल उद्योगों के लिए आवश्यक हों जिनको केन्द्रीय सरकार निष्चित करें''
6. ''भारी विद्युत यन्त्र जिनमें जल–शक्ति और भाप से चलने वाले विशाल टबाईन इंजन भी सम्मिलित हैं''
7. ''कोयला तथा लिग्नाइट''
8. ''खनिज तेल''
9. ''खनिज लोहा, खनिज मैगनीज, क्रोमियम, जिप्सम, गंधक, हीरा तथा सोना''
10. .''ताँबा, शीशा, जस्ता, टिन, मौलिब्डेनम था वोलफ्राम''
11. ''वे खनिज जो 1953 के आणविक शक्ति आदेश की अनुसूची में दिये गये हैं''
12. ''वायुयान''
13. ''वायु–यातायात''
14. ''रेल यातायात''
15. ''जलयान–निर्माण''
16. ''टेलीफोन, टेलीफोन के तार एवं बेतार के तार संबंधी यन्त्र (रेडियो सैट को छोड़कर)''
17. ''बिजली का उत्पादन तथा वितरण''

**अनुसूची 'ब' Schedule 'B' –**

1. ''सारे खनिज–पदार्थ केवल उन गौष खनिज–पदार्थों को छोड़कर, जिनकी खनिज रियायत नियम, 1949 (Minerals Concession Rules, 1949) की धारा–3 में परिभाषा दी गयी है''

2. ''ऐल्युमिनियम तथा लोहे के अतिरिक्त अन्य धातुएँ जो अनुसूची 'अ' में शामिल नहीं की गयी है''

3. ''मशीनों के औजार''

4. ''लौह–मिश्रित धातु तथा औज़ारों के लिए उपयोगी इस्पात''

5. ''मूत्र तथा ऐसे मध्यवर्ती रासायनिक पदार्थ जिनका रासायनिक उद्योगों में, जैसे दवाइयों, रंगों और प्लास्टिक के निर्माण में उपयोग हो सके''

6. ''जीवाणु–निरोधक (Antibiotics) तथा अन्य आवश्यक औषधियाँ।''

7. ''रासायनिक खाद''

8. ''रासायनिक रबर''

9. ''कोयले का कोक बनाना''

10. ''रासायनिक लुग्दी''

11. ''सड़क यातायात''

12. ''जहाजरानी''

इस सम्बन्ध में देखते है कि 1948 की औद्योगिक नीति और 1956 की औद्योगिक नीति में यह समानता है, जैसे–1948 व 1956 की औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया एवं उद्योगों का श्रेणी विभाजन किया गया है। जबकि इस नीति में कुछ असमानतायें भी हैं, जैसे–1956 की औद्योगिक नीति में सरकारी क्षेत्र को व्यापकता प्रदान की गई है। साथ में निजी क्षेत्र को अधिक स्वतन्त्रता व आर्थिक सहायता तथा निजी उद्योग एवं सार्वजनिक उद्योग के बीच और अधिक सहयोग, सन्तुलित विकास, लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास, कर्मचारियों को प्रशिक्षण बल दिया गया है।

3. यह कि औद्योगिक लाइसेंस जाँच समिति व प्रशासनिक सुधार आयोग तथा योजना आयोग की सिफारिशों के अनुपालन में 19 फरवरी? 1970 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई थी। इस नीति के अन्तर्गत कुछ उद्योगों को लाइसेंस लेने में छूट दी गई तथा कुछ नये उद्योगों को लाइसेंस के अन्दर ले लिया गया। इस औद्योगिक नीति 1970 को तीन भागों विभक्त किया गया जैसे –

(अ) अनिवार्य उद्योग

(ब) लाइसेंस मूल उद्योग (लघु उद्योग सहित)

(स) मध्य–क्षेत्र आदि। अनिवार्य उद्योग के अन्तर्गत–उर्वरक नाइट्रोजन और फास्फेट–युक्त कीड़े मारने की दवाईयाँ, ट्रेक्टर और मशीनी हल, रॉक फॉस्फेट और पायराइट, लोहे खनिज, कच्चा लोहा और इस्पात, मिश्रित और विशेष इस्पात, तेल खोज और उत्पादन, पेट्रोल–शोधन, कुछ विशेष पेट्रोल–जन्य उद्योग आते है। लघु उद्योग के अन्तर्गत 7.5 लाख और 10 लाख रूपये की पूँजी की सीमा तय की गयी थी। जैसे–इस्पात फर्नीचर, साइकिल टायर और टयूब, मशीनों के खिलौने, ऐल्युमिनियम के बर्तन, फाउन्टेन पेन और बॉल पाइन्ट पेन, बिजली के हॉर्न, हाइड्रॉलिक जैक, तथा टूथपेस्ट और कृषि संबंधी उद्योग शामिल है। मध्य क्षेत्र के अर्न्गत एक करोड़ से पाँच करोड़ तक की पूँजी के बीच के होंगे जिनके लिए मुख्यतः लाइसेंस लेना जयरी होगा जबकि पूर्व में लाइसेंस छूट 25 लाख रूपये थी।

4. यह कि उद्योग मंत्री श्री जॉर्ज फर्नाण्डिज ने 23 दिसम्बर, 1977 को संसद में सरकार की नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति में कृषि व उद्योग के बीच परस्पर निर्भरता पर जोर दिया गया है। यह नीति मानव केन्द्रित है। इसकी नीति के प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं :–

**(अ) लघु इकाइयाँ :**

इस नीति के अन्तर्गत मार्च 1978 तक 807 मदें सम्मिलित की गयी। किस्म सुधार पर बल दिया गया था। लघु उद्योगों हेतु ''अति लघु क्षेत्र'' या ''नन्हा क्षेत्र (Tiny Sector)'' बनाये गये। जिसमें मशीनरी व उपकरण में निवेश एक लाख रूपये तक का होगा। इनके लिए मार्जिन मुद्रा की सहायता प्रदान की जायेगी। इस नीति के प्रमुख कार्य है कि लघु एवं कुटीर के विकास हेतु महानगरों व राज्यों की राजधानियों से हटाकर जिला स्तर पर स्थापित किये जायेंगे, जैसे–जिला उद्योग केन्द्र आदि। जिला उद्योग केन्द्र आदि। जिला उद्योग केन्द्र में कच्चे माल व अन्य साधनों की आर्थिक जाँच करेंगे तथा मशीनरी की सप्लाई, साख की पूर्ति, किस्म–नियन्त्रण, अनुसंधान तथा विस्तार से संबंधित आदि कार्य करेंगे।

**(ब) खादी व ग्रामोद्योग आयोग :**

नई खादी के कार्यक्रमों को वृद्धि की जायेगी और जूतों व साबुन उत्पाद बढ़ाने तथा 22 ग्रामोद्योगों में प्रबन्धकीय तकनीक के आधार विकास कार्यक्रम बनाया जायेगा।

**(स) हथकरघा उद्योग :**

हथकरघा उद्योग का विकास और हथकरघा उद्योग को मिल का सूत प्राथमिकता के आधार पर दिया जायेगा।

**(द) बृहद इकाइयाँ : इनके क्षेत्र का निर्धारण निम्नवत् होगा –**

(क) आधारभूत उद्योग, जैसे–इस्पात, अलौह धातु, सीमेण्ट, तेल रिफाइनरी।

(ख) पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग जो मशीनरी की आवश्यकता पूरी करेंगे।

(ग) ऊँची तकनीक वाले उद्योग, जैसे–उर्वरक, कीटनाशक दवाइयाँ, पेट्रोरसायन आदि।

(घ) वह उद्योग जो लघु उद्योगों की आरक्षित क्षेत्र में नहीं है, जैसे–मशीनी औजार, रसायन,

इसके अतिरिक्त इस नीति में MRTP Act के अनुसार चालू उपक्रमों का विस्तार व नये उपक्रमों की स्थापना की जायेगी और इसके लिए सरकार से स्वीकृति लेनी होगी। औद्योगिक घरानों को स्वयं के वित्तीय साधनों से नई परियोजना की स्थापना व प्रचलित परियोजनाओं का विस्तार करना होगा। लाइसेंस नीति के अनुसार उद्योगों पर नियंत्रण किया जायेगा। सरकार का प्रयत्न होगा कि व्यावसायिक समूह प्रभुता सम्पन्न या एकाधिकारी स्थिति प्राप्त न कर सके। सरकार का प्रयास होगा कि पेशेवर प्रबन्ध का इन्तजाम और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप कार्यों का सम्पादन हो। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयाँ पूँजी पर उचित प्रतिफल को दर प्राप्त कर सकें। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रबन्धकों की एक समिति होगी जो एक प्रगतिशील व कुशल प्रबन्ध के कार्यों को सम्पन्न करायेगी। विदेशी विनिमय अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act or FERA) की शर्तों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित कराया जायेगा। विदेशी कम्पनी द्वारा 40 प्रतिशत तक ही शेयर पूँजी ले सकेगी। विदेशी निवेश राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर किया जायेगा। विदेशी निवेशों के क्षेत्रामें में लाभ, रॉयल्टी, लाभांश व मूलधन आदि की बाहर भेजने की छूट होगी। शत्–प्रतिशत निर्यात करने के मामले में सरकार पूरे विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनी भी स्थापित कर सकेगी। देशी व विदेशी तथा स्थानीय लोगों के साथ मिलकर उद्योगों की स्थापना एवं प्रोत्साहन किया जायेगा। आयात प्रबंध में नरमी बरती

जायेगी। निर्यातों को प्रोत्साहन हेतु कस्टम/उत्पादन–शुल्कों पर छूट देने का विचार, यह उन उद्योगों के हित होगा, जो रोजगार उपलब्ध करा रहे हैं। केन्द्रीकरण के कारण प्रादेशिक असमानताएँ हो गई है, इसीलिए 10 लाख से ऊपर जनसंख्या वाले महानगरों में 5 लाख से अधिक जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में नई औद्योगिक इकाई हेतु लाइसेंस न दिये जायेंगे। सरकार उनकी सहायता करेगी जो पिछड़े इलाकों में इकाईयाँ स्थापित करेंगे। सरकार का प्रयास है कि अत्यधिक मुनाफों की इजाजत नहीं बल्कि नियंत्रित कीमत में पूँजी का पर्याप्त प्रतिफल जोड़ा जायेगा। श्रमिकों को अपने कारखानों में शेयर–पूँजी में हिस्सा लेने को प्रोत्साहित किया जावेगा। उद्योगों में बीमारी की समस्या पर ध्यान दिया जायेगा। सूती वस्त्र, पटसन व चीनी उद्योगों में सरकार को रोजगार की रक्षा हेतु कारखानों को अपने हाथों में लेना पड़ा है। सरकर के द्वारा पूँजी खर्च करने के बावजूद घाटा हो रहा। भविष्य में यह कार्य सोच–समझकर किया जायेगा। औद्योगिक बीमारी का शीघ्र पता लगने पर ही इलाज किया जायेगा। कुप्रबन्धक या वित्तीय व तकनीकी कमजोरी में सुधार हेतु उपाय किये जायेंगे।

5. यह कि औद्योगिक वकास अवरूद्ध होने के कारण अर्थव्यवस्थ अस्त–व्यस्त तथा छिन्न–भिन्न हो गई, जिसको पुनर्गठित तथा पुनर्जीवित किया जाये। इस बात का ध्यान रखते हुए, उद्योग मंत्री श्री चरण सिंह चानना ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा 23 जुलाई, 1980 को की थी। जिसकी मुख्य बातें निम्नवत् है :–

(1) यह कि उपलब्ध राष्ट्रीय क्षमता का अधिकतम उपयोग तथा अधिकतम उत्पादन व उच्चतर उत्पादकता को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किये गये।

(2) यह कि औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में विकास को बढ़ावा देना तथा क्षेत्रीय असन्तुलन का निराकरण करते हुये, रोजगार के अवसर को बढ़ाना आदि।

(3) यह कि कृषि का आधारभूत ढाँचा में सुधार करना और कृषि आधारित उद्योगों को प्राथमिकता, तथा अधिकतम अन्तर्क्षेत्रीय संबंधों को प्रोत्साहित करना।

(4) यह कि निर्यात करने वाले उद्योगों तथा आयात–प्रतिस्थपक उद्योगों का तीव्र गति से विकास करना।

(5) यह कि ऊँची कीमतों एवं घटिया किस्मों से उपभोक्ता को संरक्षण देना।

(6) यह कि सार्वजनिक क्षेत्र की विश्वसनीयता की पुर्नस्थापना करते हुये सभी क्षेत्रों में सहयोग से बहुआयामी गतिशील, आत्मनिर्भर तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था की दिशा में सतत् विकास करना।

(7) यह कि छोटे लघु उद्योगों में निवेश की सीमा एक लाख से वृद्धि रके दो लाख कर दी गई।

(8) यह कि लघु उद्योगों में निवेश की सीमा दस लाख से बढ़ाकर बीस लाख कर दी गई।

(9) यह कि सहायक उद्योगों की सीमा पन्द्रह लाख से बढ़ाकर पच्चीस लाख कर दी गई। इसके साथ ही लघु उद्योगों की उन्नति हेतु 'बफर स्टॉक' बनाने की योजना लागू की गई।

6. यह कि उद्योगमंत्री श्री अजीत सिंह ने 31 मई 1990 औद्योगिक नीति की घोषणा की। जिसमें निम्नवत् निर्णय लिये गये है :–

(1) यह कि 'नन्हा क्षेत्र (Tiny Sector) में निवेश की सीमा 2 लाख रूपये से बढ़कर 5 लाख रूपये तथ लघु स्तरीय उद्योगों

(2) यह कि लघु उद्योग के विकास हेतु तकनीकी केन्द्र, टूल कक्ष, उत्पाद विकास केन्द्र, परीक्षण केन्द्र आदि स्थापित किए जायेंगे।

(3) यह कि लघु स्तरीय उद्योगों की सहायता हेतु शिखर बैंक (Apex Bank) की स्थापना।

(4) यह कि खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग और खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्डों की गतिविधियों को गतिशीलता लाने हेतु प्रयत्न कीजिए जायेंगे।

(5) यह कि गैर–पिछड़े क्षेत्रों में 25 करोड़ रूपये तक अचल परिसम्पत्ति में विनियोग और सरकार के द्वारा अनुसूचित पिछड़े क्षेत्रों में 75 करोड़ रूपये तक विनियोग के लिए सभी इकाईयों को लाइसेंस प्राप्त करना या पंजीकरण करने में छूट होगी।

(6) यह कि किसी भी फर्म के वार्षिक उत्पादन मूल्य का 30 प्रतिशत कच्चे माल का आयात विदेशों से किया जा सकता है।

(7) यह कि उद्योग शत्–प्रतिशत उत्पाद का विदेशों को निर्यात करते हैं उन्हें 75 करोड़ रूपये की विनियोग सीमा तक लाइसेंस प्राप्त करने में छूट होगी। इस

नीति को अमल में नहीं लाया जा सका क्योंकि जनता दल की सरकार गिर गई।

7. यह कि नई औद्योगिक नीति 24 जुलाई 1991 से लागू की गई। प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राय सरकार ने औद्योगिक विकास हेतु मुक्त अर्थव्यवस्था के द्वारा खोल दिये गये। आर्थिक सुधारों के क्रम में अगस्त 3008 तक लाइसेंसिंग की आवश्यकता से युक्त उद्योगों की संख्या घटकर–05 रह गई। इस नीति के अन्तर्गत एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम में पूँजी सीमा समाप्त कर दी गई और पूँजी निवेश की सीमा को सरल बनाया गया है। विदेशी निवेश के मामलों में उच्च तकनीकी वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत तक विदेशी निवेश अर्थात् हिस्सा पूँजी लगा सकते हैं, साथ ही विदेशी कम्पनियों को प्रोत्साहित किया जायेगा। एक ऐसे बोर्ड का गठन कर, अधिकार सम्पनन बनाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ सम्पर्क करके, जानकारी हासिल कर स्वदेशी निवेश कया जा सकता है। विदेशी तकनीकी के सम्बन्ध में भारत की बड़ी–बड़ी कम्पनियों को अपने विदेशी सहयोगियों के साथ मिलकर तकनीकी हस्तान्तरण की शर्तें तय करने का अधिकार होगा। सार्वजनिक उद्योगों को स्थापित करने एवं पुनर्जीवित करने के लिए कार्य किया जायेगा। भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र की उन्नति हेतु प्राथमिक क्षेत्र होंगे :–

(1) तेल क्षेत्र की खोज एवं उसका दोहन, (2) ऐसे उद्योगों को प्रोत्साहित करना जो राष्ट्रीय महत्व के हैं तथा जिनका संचालन निजी क्षेत्र के द्वारा नहीं किया जा सकता है, (3) ऐसे सार्वजनिक उद्यम जो जीर्ण हो चुके हैं, वहाँ के कामगारों के हितों की रक्षा हेतु उन्हें आर्थिक सहायता दी जायेगी, (4) सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के बोर्डों को अधिक व्यावसायिक बनाया जायेगा, (5) सार्वजनिक उद्योगों के प्रबन्धकों को अधिक स्वायत्ता दी जायेगी, जिससे उद्योगों की प्रगति हो सके। नई औद्योगिक नीति 1991 के प्रस्ताव में आठ उद्योग आरक्षित कये गये थे लेकिन अब सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या–03 रह गई है, जैसे–परमाणु ऊर्जा, रेलवे परिवहन खनिज जो परमाणु ऊर्जा के काम में आते हैं। इसके बाद वर्ष 2007 में राष्ट्रीय डिजाइन नीति के अन्तर्गत उत्पादों व सेवाओं की गुणवत्ता सुधारने में डिजाइन के महत्व को देखते हुये इस नीति का मूर्त रूप दिया गया था।

**1.6 <u>निवेश सम्बन्धी नवीनतम संशोधन</u> :–**

(1) सिमल ब्रॉड खुदरा व्यापार में एफ.डी.आई. सम्बन्धी नीति का संशोधन।

(2) मल्टी ब्रॉड खुदरा व्यापार में एफ.डी.आई. को अनुमति देना।

(3) नागरिक उड्डयन क्षेत्र में एफ.डी.आई. सम्बन्धी नीति की समीक्षा।

(4) प्रसारण क्षेत्र में कार्यरत कम्पनियों में एफ.डी.आई. की नीति की समीक्षा।

(5) पावर एक्सचेंज में विदेशी निवेशक की नीति की समीक्षा।

(6) 50 मिलियन अमरीकी डॉलर के न्यूनतम पंजीकरण के साथ 75 प्रतिशत से अधिक 100 प्रतिशत से कम विदेशी निवेश वाली।

(7) एन.बी.एफ.सी. द्वारा स्टेप डाउन का (प्रयाचलरत) अनुषंगी कम्पनियों की स्थापना।

## 1.7 सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण एवं विनिवेश प्रक्रिया : Privatisation & Disinvestment Process in Public Enterprises :-

(1) निजी क्षेत्र की कुशल प्रबंधन क्षमता का सार्वजनिक उपक्रमों में प्रयोग।

(2) सार्वजनिक उपक्रमों का आधुनिकीकरण कर उत्पादकता और लाभ दरों में वृद्धि करना।

(3) सार्वजनिक क्षेत्र के बीमार उद्योगों का पुनरूद्धार करना।

(4) सार्वजनिक उपक्रमों की अल्प–शोषित और अशोषित उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करना।

(5) सार्वजनिक उपक्रमों में बढ़ती लालफीताशाही एवं सरकारी हस्तक्षेप को नियंत्रित करना।

(6) विनिवेश से प्राप्त धनराशि का उपयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में करना।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने गवर्नमेन्ट टू बिजनेस पोर्टल (G2B) की स्थापना की है। इस परियोजना से देश में व्यापार अनुकूल वातावरण बनाया जायेगा, जिसके लिए निवेशकों, उद्योगों और व्यापार अनुकूल वातावरण बनाया जायेगा, जिसके लिए निवेशकों, उद्योगों और व्यापार में कुशल, सुविधाजनक, पारदर्शी और समन्वित इलेक्ट्रॉनिक सेवा प्रदान की जायेगी। इस पोर्टल के माध्यम से व्यापार को उसके पंजीकरण से लेकर पूरे जीवन चक्र तक एक ही इलेक्ट्रॉनिक खिड़की से अनुमोदन, मंजूरी और अनुमति, रिपोर्टिंग, भुगतान आदि जैसी सुविधा प्रदान करना है।

## 1.8 सारांश : Summary

सरकार के द्वारा संचालित लघु–कुटीर उद्योग एवं वृहद उद्योगों के सम्बन्ध में कुछ न कुछ पक्ष में विपक्ष में बात की जा सकती है लेकिन इस वाद–विवाद से एक निष्कर्ष निकलता है कि ''समस्या के हल के लिए पूर्णतया सिद्धान्तवादी तथा कट्टरता पूर्ण रूख नहीं अपनाना चाहिए। जब किसी उद्योग का राष्ट्रीकरण होता है तो उत्पन्न परिस्थितियाँ जैसे–उत्पादकता, कार्यकुशलता, वित, तकनीकी, श्रमिक वर्ग तथा सामान्य सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित बातों का ध्यान देना आवश्यक होता है। भारत के विकास में सार्वजनिक उद्यम तथा निजी क्षेत्र के उद्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज औद्योगीकरण नीतियो के कारण देश का विकास तीव्र गति से हुआ है साथ उत्पादकता एवं गुणवत्ता सुधार तथा तकनीकी का भी हस्तान्तरण हुआ है।

## 1.9 <u>प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख सिफारिशें</u> :

**<u>Main Recommendation of Administrative Reforsm Commission</u> :**

(अ) यह कि परिवहन, जहाजरानी, होटल, लोहा व इस्पात आदि के लिए समूह बनाकर क्षेत्र निगम बनाये जाने चाहिए, जिन कार्य निम्नवत् होने चाहिए –

(1) सरकार को सलाह/परामर्श देना।

(2) उद्योगों का विकास करना तथा नये उद्योगों की स्थापना करना।

(3) कर्मचारियों के प्रशिक्षण, शोध एवं परामर्श सेवा, विक्रय–वर्धन व अन्य सामान्य सेवाओं के लिए व्यवस्था करना तथा उनका विकास एवं उनमें समन्वय स्थापित करना।

(4) निगम के कर्मचारियों के मजदूरी तथा वेतन से सम्बन्धित नीति का निर्धारण करना।

(5) कर्मचारियों की नियुक्ति करना जो बोर्ड–स्तर से नीचे हों।

(6) सरकार के परामर्श से प्रमुख कार्यकारिणी की नियुक्ति करना।

(7) सभी इकाइयों की कार्यकारिणी से सलाह करके उनमें विभागाध्यक्ष की नियुक्ति करना।

(8) सभी इकाइयों की समय–समय पर रिटर्न, लेखे तथा अन्य जानकारी प्राप्त करना।

(9) निगम के दायित्वों व कार्यों को उचित रूप से पूर्ण करने के लिए अधिकतम विकेन्द्रीकरण करना।

(ब) यह कि सरकारी उद्यमों के संगठन का वैधानिक निगम स्वरूप सामान्यतः औद्योगिक एवं निर्माण क्षेत्र के उद्यमों के लिए अपनाना चाहिए। जिन उद्यमों में निजी हितों का भाग हो, उनके लिए सरकारी प्रमण्डल स्थापित किये जाये। परिवर्तनीय एवं विकासशील संस्थाओं हेतु वैधानिक निगम अथवा विभागीय संगइन के रूप को अपनाना चाहिए तथा व्यापारिक उद्यमों को प्रमण्डल के रूप गठन करना चाहिए।

(स) यह कि क्षेत्र निगम की प्रबन्ध परिपदों का गहन मिश्रित आधार पर होना चाहिए। इस परिषद में निम्न पदाधिकारी होने चाहिए, जैसे–अध्यक्ष या प्रबन्ध संचालक, कार्यकारी संचालक, सरकारी प्रतिनिधि संख्या दो से अधिक न हों, दो या तीन गैर–सरकारी सदस्य होना चाहिए।

## 1.10 शब्दावली – Key Words :–

सार्वजनिक उपक्रम (Public Enterprises) विभागीय वाणिज्यिक उपक्रम (Department Commercial Enterprises), तर्क (Arguments), पक्ष (Favour), विरूद्ध (Against), व्यक्ति निजी हित (Self-Interest), खनिज रियायत नियम (Minerals Concession Rules), जीवाणु–निरोधक (Antibiotics), नन्हा उद्योग (Tiny Sector), विदेशी विनिमय अधिनियम (Foreign Exchange Regulations), शिखर बैंक (Apex Bank), विनिवेश (Disinvestment), निजीकरण (Privatisation), सिफारिशें (Reccommendation), प्रशासनिक (Administrative), आयोग (Commission), सर्वस्ववाद (Collectivism)

## 1.11 सन्दर्भित किताबें – Reference Books :-


(1) लोक वित्त – एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिसंग हाऊस प्रा0लि0 नोयडा, भारत।

(2) लोक अर्थशास्त्र – जे.सी. पन्त, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन, आगरा।

(3) लोक वित्त – डॉ. एस.के. सिंह, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

(4) लोक वित – डॉ. जे.सी. वार्ष्णेय, एस.बी.पी.डी. पब्लिसिंग हाऊस, आगरा।

(5) R.N. Tripathy : Public Finance in Under Developed Countries.

(6) W.A. Robson : Problems of Nationalised Industry.

(7) K.R. Gupta : Issues in Public Finance.

(8) Laxmi Narain : Principles and Practice of Public Enterprises Management.

(9) Margol's and Guitton : Public Economics

## 1.12 प्रश्नों का उत्तर दीजिए – (Answer the Question) :-

(1) सार्वजनिक उपक्रम क्या है।

(2) निजी उपक्रम का क्या आशय है।

(3) सार्वजनिक उपक्रम और निजी उपक्रम में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(4) सार्वजनिक उपक्रम के उद्देश्य बताइये।

(5) सार्वजनिक उपक्रम के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

(6) सरकारी उद्यमों के विपक्ष में तर्क दीजिए।

(7) भारत के विकास में सार्वजनिक उद्यमों की भूमिका?

(8) भारत की औद्योगिक नीति 1948 पर एक लघु निबन्ध लिखो।

(9) औद्योगिक नीति 1956 की विवेचना कीजिए।

(10) औद्योगिक नीति 1980 पर टिप्पणी कीजिए।

(11) औद्योगिक नीति 1991 का विश्लेषण कीजिए।

(12) सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण एवं विनिवेश प्रक्रिया पर एक लघु नोट लिखिए।

(13) प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख सिफारिशों की विवेचना कीजिए।

(14) सार्वजनिक उपक्रम की मूल नीति क्या होनी चाहिए?

## 1.3 बहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर – (Objectives Type Question – Answer ) :-

(1) आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में कौन–सा पक्ष प्रमुख है –

(अ) निर्यात वृद्धि (ब) लघु उद्योगों का संरक्षण

(स) सरकारी अधिकारों में वृद्धि (द) प्राकृतिक साधनों की सुरक्षा

**(उत्तर – द)**

(2) औद्योगिक नीति 1980 में लघु उद्योगों में निवेश की सीमा 10 लाख रूपये से बढ़ाकर कितने लाख रूपये की गई थी।

(अ) 20 लाख (ब) 15 लाख

(स) 19 लाख (द) 25 लाख

**(उत्तर – अ)**

(3) भारत में किस वर्ष में औद्योगिक नीति में मुक्त अर्थव्यवस्था को अपनाया गया था।

(अ) 1999 (ब) 1991

(स) 1981 (द) 2001

**(उत्तर – ब)**

(4) ऐसे कौन–से कारण हैं, जो सरकार को राष्ट्रीयकरण करने के लिये बाध्य करते हैं?

(अ) एकाधिकारी प्रवृत्ति (ब) कार्यकुशलता

(स) राज्य–सर्वस्यवाद (द) प्राकृतिक साधनों का दोहन

**(उत्तर – द)**

(5) औद्योगिक नीति 1990 में नन्हा उद्योग (Tiny Sector) में विनिवेश की सीमा 02 लाख रूपये से बढ़ाकर कितने लाख रूपये की गई थी।

(अ) 5 लाख (ब) 10 लाख

(स) 15 लाख (द) 8 लाख

**(उत्तर – अ)**

(6) औद्योगिक नीति 1990 में लघु स्तरीय उद्योगों (मशीनरी) आदि में विनियोग की सीमा 35 लाख रूपये से बढ़ाकर कितनी कर दी गई थी।

(अ) 50 लाख (ब) 75 लाख

(स) 85 लाख (द) 95 लाख

**(उत्तर – ब)**

(7) भारत में किस वर्ष में एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत पूँजी सीमा समाप्त कर दी गई थी।

(अ) 1990 (ब) 1980

(स) 1991 (द) 1970

**(उत्तर – स)**

(8) आर्थिक सुधारों के क्रम में अगस्त 2008 तक लाइसेंसिंग की आवश्यकता से युक्त उद्योगों की संख्या कितनी ह गई थी।

(अ) 10 (ब) 15

(स) 8 (द) 5

**(उत्तर – द)**

(9) भारत में उच्च तकनीकी वाले उद्योगों में कितने प्रतिशत एफ.डी.आई. की अनुमति दी गई थी?

(अ) 20% (ब) 33%

(स) 51% (द) 100%

**(उत्तर – स)**

(10) औद्योगिक नीति 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए कितने उद्योग आरक्षित किये गये थे ?

(अ) पाँच (ब) दो

(स) आठ (द) दस

**(उत्तर – स)**

(11) किस औद्योगिक नीति में लघु उद्योगों की उन्नति हेतु आधारभूत सामग्री का 'बफर स्टॉक' बनाने की योजना लागू की जाये?

(अ) औद्योगिक नीति 1980 (ब) औद्योगिक नीति 1991

(स) औद्योगिक नीति 1970 (द) औद्योगिक नीति 1956

**(उत्तर – अ)**

(12) भारत में किस औद्योगिक नीति में श्रमिकों को अपने कारखानों की शेयर पूँजी में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा ?

(अ) 1980 (ब) 1977

(स) 1990 (द) 1991

**(उत्तर – ब)**

(13) लघु स्तरीय उद्योगों की सहायता हेतु शिखर बैंक (Apex Bank) की स्थापना की घोषणा किस औद्योगिक नीति में की गई।

(अ) 1977 (ब) 1948

(स) 1956 (द) 1990

**(उत्तर – द)**

(14) राष्ट्रीय डिजाइन नीति को कब मूर्त रूप दिया गया था ?

(अ) 2007 (ब) 1991

(स) 2011 (द) 2021

**(उत्तर – अ)**

(15) औद्योगिक नीति 1956 को कितने भागों में विभक्त किया गया था?

(अ) 04 (ब) 03

(स) 05 (द) 02

**(उत्तर – ब)**

# खण्ड–02

# इकाई–03

# भारत में सार्वजनिक उपक्रमों में कीमत नीति प्रबन्धित कीमतें एवं आधिक्य सृजन

(Pricing Policy Managed Prices and Surplus Creation in Public Enterprises in India)

## 01. परिचय (**Introduction**)–

यह कि पारस्परिक निर्भरता के कारण विभिन्न उद्योग एक दूसरे के उत्पादन को खरीदते हैं तथा उनका उपयोग उपभोग वस्तुओं अथवा आगतो (INPUTS) के रूप में करते हैं। सरकार उन उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की इच्छुक होती है जो भारतीय अर्थव्यवस्था को विकास की ओर ले जा सके। इस उद्देश्य के कार्यान्वयन हेतु लोक उद्यमों की क्रय–विक्रय नीतियाँ तय की जाती हैं और समय–समय पर इन नीतियों में संशोधन किये जाते हैं। प्राकृतिक साधनों का समुचित दोहन का कार्य निजी क्षेत्र को देने में राष्ट्रीय हितों को नुकसान हो सकता है। जैसे–वन की कटाई में अथवा किसी खनिज सम्पदा के कार्य में एक निजी व्यक्ति की स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है कि पर्यावरण की दीर्घावधिक वहनता (Sustainability) की परवाह किये बगैर प्राकृतिक साधनों का अतिदोहन (over-

exploitaion) करता है साथ ही प्रशासनिक नीतियां भी प्राकृतिक साधनों के वहनीय दोहन के प्रति उदासीन होने के कारण व्यावहारिक स्तर पर इन नीतियों का पालन गलत सिद्ध हो जाता है, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र का अस्तित्व भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। उदाहरण के तौर पर विद्युत उत्पादन जैसी परियोजनायें काफी किफायती होती हैं, जिससे निजी क्षेत्र में रहने से गिने–चुने (उद्योगपतियों) के हाथों में केन्द्रित होने से उक्त कीमतें प्रभावित हो सकती हैं। इसीलिए समाजहित में सार्वजनिक क्षेत्र में रहना ज्यादा उचित है। कुछ परियोजनाएँ ऐसी हैं जो निजी क्षेत्र में रखने का प्रश्न ही नहीं उठता है, जैस–करेंसी, सिक्का निर्माण और टकसाल है। सामाजिक–राजनीतिक संरचना को ध्यान में रखते हुए कुछ रक्षा–सम्बन्धी उद्योगों तथा शोध और विकास संस्थाओं आदि का उचित प्रबन्धन सार्वजनिक क्षेत्र में ही होना चाहिए। उद्यमों में विविधता होने कारण कीमत–नीति का चयन किया जानपा एक जटिल प्रक्रिया का रूप धारण करती है। इस चयन प्रक्रिया में लोक उद्यम के अपने उद्देश्य–समूह के साथ अन्य कारक भी होते हैं जिनके अपने उद्देश्य होते हैं। जैसे–समूह में अधिकतम लाभ कमाना, आय और धन की विवरणीय असमानताओं में कमी लाने में सहयोग देना। उत्पादित सेवाओं के उपभोग को प्रोत्साहित करना, आवश्यक आगत के अभाव

को दूर करना आदि कारक सम्मिलित होते हैं। लोक उद्यमों की मूल्य नीति निजी उद्यमों की मूल्य नीति से अलग होती है। निजी उद्यमों द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत एक ओर सीमान्त क्रेता को वस्तु से प्राप्त उपयोगिता का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरी ओर वह उत्पानदकर्ता के लिए उत्पादन से प्राप्त लाभ तथा औसत लागत है। क्रेता को वस्तु की उपयोगिता खरीदने के लिए कहा जाता है। यदि कीमत उपयोगिता के अनुकूल नहीं है तो वह फिर नहीं खरीदेगा। इसके अतिरिक्त पूर्ति पक्ष की स्थिति अलग होती है। दीर्घकाल में निजी वस्तु की कीमत को कर–सहित कुल लागत के समान होना होगा; साथ ही इतना लाभ मिलना चाहिए कि जोखिम उठाने के लिए पूँजी उपलब्ध हो जाए। सरकार सामान्य कल्याण में वृद्धि करने के उद्‌देश्य से प्रेरित होती है। उत्पादित वस्तुओं की कीमत केवल वाणिज्य के सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित नहीं होती है। सरकार द्वारा निर्धारित कीमत प्रतिस्पर्धा निजी फर्म द्वारा निर्धारित कीमत से भिन्न हो सकती है। इसीलिए लोक उद्यमों की मूल्य नीति का विश्लेषण करना चाहिए। कीमत नीति के कार्यान्वयन में बाजार संरचना; उद्यम की अपनी कीमत नीति, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियाँ; लाभान्वित उपभोक्ताओं की पहचान, अनिवार्य अथवा स्वैच्छिक उपभोग के आधार पर निर्धारित होती है। लोक उद्यमों के पास कीमत नीति के निर्धारित

की कोई मानकीकृत विधि नहीं है। इस नीति के निर्माण में उद्यम के उद्देश्यों के अतिरिक्त बाजार व्यवस्था इसकी उत्पादन लागत एवं प्रबंधनीय क्षमता, उपभोक्ताओं की पहचान तथा विचाराधीन वस्तु के उपभोग के बारे में सरकार की नीति की भूमिका रहती है।

## 1.1 उद्देश्य (Objectives)–

(1) आय–धन के वितरणीय असमानताओं में कमी लाने में योगदान देना।

(2) उत्पादित सेवा के उपभोग को प्रोत्साहित करना।

(3) वस्तु के उपभोग से समाज कल्याण में वृद्धि होती है।

(4) लोक उद्यम का उद्देश्य समाज की सेवा करना है न कि अधिकतम लाभ कमाना है।

## 1.2 सीमान्त लागत पर आधारित कीमत नीति (Marginal Cost Pricing)–

उत्पादक साधनों के अनुकूलतम वितरण के लिए जरूरी है कि कीमत उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो। इस नियम की मान्यतायें हैं–

(1) मुद्रा के रूप में अनुमानित सीमान्त लागत में सभी सीमान्त सामाजिक लागत सम्मिलित होती है। इस प्रकार समाज को किसी अप्रत्यक्ष लागत को वहन नहीं करना पड़ता है।

(2) वस्तु से प्राप्त प्रत्यक्ष लाभ के अतिरिक्त अन्य कोई अप्रत्यक्ष लाभ क्रेता को प्राप्त नहीं होता है।

(3) अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में कीमत सीमान्त लागत के समान होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में यह शर्तें पूरी हो जाती हैं। 1930 में होटलिंग (Hotelling) के द्वारा इस नीति को मिश्रित अर्थव्यवस्था में लोक–उपयोगिताओं (Public Utilities) के सम्बन्ध में अपनाने की सिफारिश की थी। समाजवादी अर्थव्यवस्था में लर्नर (Lerner) ने इसे अपनाने की सलाह दी। यदि कोई लोक उद्योग ह्रयसमान लागत के नियम के अन्तर्गत उत्पादन करता है तो उसके समक्ष एक कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। कई लोक उद्यम एकाधिकार की स्थिति में होते हैं। वे ह्रयसमान लागत की स्थिति में उत्पादन कर सकते हैं। यदि कीमत सीमान्त लागत के बराबर हो तो ऐसे उद्योगों का नुकसान होगा। निजी फर्म इस नुकसान से बचने के लिए एकाधिकारी नीति का अनुसरण करती है। यदि सीमान्त लागत नीति का अनुसरण किया जाए तो घाटे से बचने का एक विधि हैः कर लगाना, लेकिन 'कर' नई समस्याओं को जन्म देता है। यदि एकमुश्त कर (Lump-sum tax) लगाया जाए तो यह समानता के सिद्धान्त के विरूद्ध होगा। यदि

आयकर लगाए जाए तो इसे दक्षता (Efficiency) की हानि कर सकता है।

13. <u>न लाभ न हानि का सिद्धान्त (**Principle of Break-even, that is, no profit, no loss**)</u>–

इस सिद्धान्त का विकास फेबियन समाजवादियों (Fabians) के द्वारा नगरपालिका व्यापार के सम्बन्ध में किया था। लोक उद्योगों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत का निर्धारण करते समय सरकार को न तो लाभ प्राप्त करना चाहिए और न ही हानि उठानी चाहिए। इस मूल्य नीति को दो नियमों के अन्तर्गत व्यक्त किया जा सकता है–

''(1) सभी पूँजीगत लागत (capital charges) को पूरा करने के बाद लोक उद्योगों को न तो लाभ प्राप्त करना चाहिए और न हानि उठानी चाहिए।''

''(2) विभिन्न सेवाओं के लिए ली जाने वाली कीमत को सापेक्ष लागत के अनुरूप होना चाहिए।''

यह कि लोक उद्यम अपनी सभी क्रियाओं पर कुल आय को कुल व्यय के बराबर करता है। इसे ही समानता बिन्दु (Break-even point) कहा जाता है। लोक उद्योगों को न तो लाभ प्राप्त करना चाहिए और न हानि ही उठानी चाहिए। यह कैसे सम्भव हो तो

इस कीमत का वास्तविक निर्धारण किस प्रकार से हो। कीमत का निर्धारण सीमान्त लागत सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए या औसत लागत के आधार पर? फिर प्रश्न उठता है कि कुल लागत में क्या–क्या शामिल करना चाहिए? उत्पादन के साधनों को दिए गए भुगतान के साथ–साथ केवल घिसावट (Depreciation) तथा पुनःस्थापन (Replacement) लागत को सम्मिलित करना चाहिए या उद्योग के विस्तार तथा आधुनिकीकरण की लागत के एक हिस्से को भी? इस प्रकार देखा जाए तो सीमान्त लागत सिद्धान्त एवं औसत लागत सिद्धान्त की कठिनाइयाँ भी है? न लाभ न हानि के परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार कुल लागत में सामान्य लागत तथा सामान्य घिसावट व्यय को सम्मिलित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में रॉबसन (Robson) कहते हैं कि– ''कोई कारण नहीं है कि राष्ट्रीयकृत उद्योग लाभ कमाने वाली व्यापारिक कम्पनियों की तहर आन्तरिक साधनों से विकास के लिए पूँजी प्राप्त करने में स्वतन्त्र क्यों न हों।'' इससे स्पष्ट है कि निजी उद्योगों में रख लिए गए लाभ (Retained Profits) विस्तार एवं विकास के लिए

वित्त का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। अतः इसी सिद्धान्त का अनुपालन लोक उद्योगों में भी होना चाहिए।

## 1.4 न लाभ न हानि के सिद्धान्त का औचित्य (**Rational of no Profit no Loss Principles**)–

यह कि लोक उद्योगों का उद्देश्य लोगों की सेवा करना है, न कि लाभ प्राप्त करना है। जबकि निजी उद्योगों से भिन्न है। लोक उद्यम का उद्देश्य समाज–कल्याण है तो निजी उद्यम का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। देखा जाए तो एक दूसरे के विरोधाभास हैं। न लाभ, न हानि के सिद्धान्त के अनुपालन से उत्पादक साधनों का आदर्श आवंटन होता है। इससे अधिकतम उत्पादन होता है और उपभोक्ता के अधिमान के अनुसार वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में लेविस (Lewis) का मत है कि– ''यह सिद्धानत मुद्रा–स्फीति एवं विस्फीति दोनों से बचने के लिए जरूरी है। जब लोक उद्योग साधनों को उनकी सेवाओं के लिए भुगतान करते हैं तो वे मुद्रा को चलन में रखते हैं। जब इन उद्योगों द्वारा प्रदत्त सेवाओं के लिए कीमत ली जाती है, मुद्रा चलन से बाहर हो जाती है। न लाभ न हानि सिद्धान्त को नहीं अपनाने का अर्थ होगा लाभ या हानि। हानि का तात्पर्य यह है

कि जितनी मुद्रा चलन में रखी जाती है उससे कम निकाली जाती है। अतः इससे मुद्रा स्फीति होगी। लाभ का अर्थ है कम मुद्रा को चलन में डालना। इससे कीमतें घटेंगी। इस सम्बन्ध में दूसरा तर्क लेविस देते हैं कि– ''इस सिद्धान्त के अनुपालन से उद्योग का न तो आवश्यकता से अधिक विस्तार होगा और न संकुचन ही। यदि कीमत कम रही तो उत्पादन का विस्तार होगा। यदि कीमत बहुत अधिक रहती है तो उत्पादन में कमी होगी। यह नियम का सभी उद्योगों में एक समान उपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि माँग की लोच में भिन्नता पायी जाती है। जिन उद्योगों की वस्तुओं की माँग की लोच अधिक है उन पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।'' लेविस का कहना है कि– ''यदि किसी कारण से ऊँची या नीची कीमत जरूरी समझी जाए तो अधिक अच्छा यह होगा कि कर या आर्थिक सहायता की नीति अपनायी जाए।'' लेविस का यह भी कथन है कि– ''यह आवश्यक नहीं है कि इस सिद्धान्त को लोक उद्योग की हर क्रिया पर लागू किया जाए। यदि लागत में समरूपता नहीं है तो कीमत का एक होना उचित नहीं होगा।''

1.5 <u>न लाभ न हानि सिद्धान्त से विचलन (**Deviations from the Break-even Principle**)</u>– इस सम्बन्ध में लेविस के विचार निम्नवत हैं–

(1) यह कि जिन उद्योगों में पूंजी बहुत अधिक लगी हुई है वहां हानि अनुचित नहीं होगी। मान लें कि सरकार रेलवे की ऐसी कीमत पर खरीद लेती है जो इसकी आय की तुलना में अधिक है। ऐसी स्थिति में खरीद में लगी पूंजी पर प्राप्त होने वाले ब्याज के बराबर कीमत निर्धारित करना उचित नहीं होगा। ऐसा करने पर रेलवे का विकास इसके स्थानापन्न परिवहन की तुलना में अवरूद्ध हो जाएगा। विपरीत परिस्थितियों में कीमत अधिक होनी चाहिए।

(2) यह कि स्टॉक को घटाने के उद्देश्य से लोक उद्योग लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यह वैसा ही होगा जैसा राष्ट्रीय ऋण के भुगतान के एिल कर लगाना होता है। यदि किसी कारण से कर लगाना उचित न समझा जाए तो लोक उद्योगों को लाभ प्राप्त करने की अनुमति मिलनी चाहिए।

(3) यह कि लोक उद्योगों को अपने पर लगी पूंजी के ब्याज से अधिक आय प्राप्त करने के लिए छोड़ देना चाहिए। यदि

इसका उपयोग इन उद्योगों के विस्तार एंव विकास पर किया जाता है और इसके फलस्वरूप बाजार से ऋण लेना नहीं पड़ता है। यह लाभ निजी उद्यमों के रख लिए गए लाभ (retained profits) के समान होगा।

(4) यह कि यदि किसी उद्योग की मांग घट रही है तो इसे हानि प्राप्त करके अर्थात् कीमत को कम करने की अनुमति मिलनी चाहिए। यदि उद्योग की मांग बढ़ रही हो तो लाभ उचित होगा।

(5) यह कि हानि उस समय भी उचित होगी जब इसके विकल्प अर्थात् मूल्य वृद्धि से मुद्रा–स्फीति को सृष्टि होती है। विस्फीति की स्थिति में भी यह नीति उचित होगी, लेकिन स्थायित्व के उपाय (stabilization measures) के रूप में लोक उद्योग की मूल्य नीतिका प्रयोग करना उचित नहीं होगा।

(6) यह कि उद्‌देश्य घरेलू उत्पादन के उपभोग को बढ़ाकर विदेशी विनिमय की बचत करना हो तो हानि को उचित ठहराया जा सकता है।

(7) यह कि पिछड़े क्षेत्रों के विकास तथा क्षेत्रीय विषमता को कम करने के लिए भी हानि को उचित ठहराया जा सकता है।

(8) यह कि वृद्धिमान उत्पत्ति वाले उद्योग को आर्थिक सहायता देना उचित है जैसा मार्शल ने बताया। यहां धारणा यह है कि कीमत औसत लागत से कम होगी, लेकिन लेविस इस तर्क को स्वीकार नहीं करते।

1.6 <u>औसत लागत पर आधारित कीमत नीति (**Average Cost of Princing**)</u>– औसत लागत के पक्ष में तर्क दिये जाते हैं, जो निम्नवत् हैं–

(1) यह कि लोक उद्यमों का प्रयत्न रहता है कि बिना लाभ प्राप्त किए अधिकतम मात्रा में सस्ती वस्तुओं का उत्पादन करना होता है।

(2) यह कि उपभोक्ता किसी वस्तु की इकाई की कुल औसत लागत का भुगतान करता है न कि इन इकाईयों के उत्पादन की सिर्फ अतिरिक्त लागत का।

(3) यह कि इस नीति में उपभोक्ता का शोषण नहीं होता है, क्योंकि वह उत्पादन की वास्तविक लागत का भुगतान करता है।

(4) यह कि इस नीति से उद्योगों के कुल खर्च को वसूल किया जा सकता है।

इस नीति के दोष निम्नवत् है–

(1) यह कि औसत लाभ का निर्धारण करना कठिन कार्य है।

(2) यह कि समयानुसार में घिसावट व्यय के उचित आवंटन को लेकर बहुत कठिनाई है। यह भी सम्भव है कि पुनः स्थान लागत का अनुमान मूल (original) या वर्तमान (present) आधार पर किया जाए?

(3) यह कि नीति से लोक उद्यमों में दक्षहीनता (Inefficiency) आ सकती है। क्योंकि कुल लागत की हमेशा वसूली हो जाती है और उत्पादन को कम करने का प्रयत्न कभी भी नहीं किया जाएगा।

**1.7 <u>लाभ प्राप्त करने का सिद्धान्त (Principle of Making Profits)</u>**– लाभ की नीति के विरूद्ध इसीलिए बोला जाता है कि उन उद्योगों का उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण है, न कि लाभ है। यह बोला जाना विकासशील देशों के अर्थशास्त्रियों को मान्य नहीं है। इनका कहना है कि न लाभ, न हानि के सिद्धान्त का सार्वजनिक लाभ एवं समाजवाद के साथ मेल नहीं है। लोग उद्योगों के लाभ का इस्तेमाल निजी फायदों के लिए नहीं बल्कि सार्वजनिक पूंजी संचय के लिए किया जाता है जिससे सम्पूर्ण

देश को लाभ हो। लेकिन लाभ के सिद्धान्त का उपयोग सभी परिस्थितियों में तथा सभी उद्योगों के लिए नहीं किया जा सकता है। सामाजिक सेवाओं से सम्बद्ध उद्योगों की स्थापना मजदूरों के सामाजिक कल्याण के लिए की जाती है। ऐसे उद्योगों का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता है, जैसे–गैस, जल आपूर्ति, बिजली, परिवहन, आधारभूत उद्योग। अगर आधारभूत उद्योगों की मूल्य नीति कई उद्देश्य होना चाहिए। यदि ये उद्योग न लाभ, न हानि के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो इन्हें घिसावट, पुनःस्थापन्न, विकास एवं विस्तार सम्बन्धी आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। विकास के शुरूआत में माँग में वृद्धि तथा बाजार के विस्तार के लिए कम कीमत ही रखनी चाहिए। दीर्घकाल में लाभ प्राप्त करने की इजाजत देनी चाहिए। बिजली, सड़क, सिंचाई, परिवहन तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में कर जाँच आयोग का कहना है कि– ''इन उद्योगों को ठोस वित्तीय आधार दिलाने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए ताकि ये हानि से बच सकें तथा शीघ्र ही उचित लाभ मिल सके।'' इस सम्बन्ध में आर0के0 दास गुप्ता का कहना है कि ''सरकार को ऐसी नीति का अनुसरण करना चाहिए ताकि विनियोग की गई पूँजी पर सामान्य ब्याज से अधिक लाभ मिले।'' इस सम्बन्ध में वी0के0आर0वी0 राव का कहना है कि– ''लोक उद्योगों की मूल्य नीति ऐसी होनी चाहिए ताकि राष्ट्रीय आय एवं इसके विकास

दर में वृद्धि हो। लोक उद्योगों का क्षेत्र जितना तस्तृत होगा यह आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। लोक उद्योगों का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा यह आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। यदि ऐसा नहीं होता है तो आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाएगा।'' अल्पविकसित देशों के लोक उद्योग विकसित देशों से भिन्न है। विकसित देशों में लोक उद्योग राष्ट्रीयकृत उद्योगों को चलाने के लिए स्थापित किए जाते हैं। यह उद्योग निजी क्षेत्रों से लिए गए हैं। यह उद्योग निजी क्षेत्रों से लिए गए हैं। इसीलिए लाभ पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इन देशों में आर्थिक विकास निजी क्षेत्रों के द्वारा होता है। जबकि विकासशील देशों की अलग बात है। विकासशील देशों में लोक उद्योग निजी क्षेत्र के राष्ट्रीयकृत प्रतिष्ठानों के लिए स्थापित नहीं है, बल्कि नये–नये क्षेत्रों में। ये परिवहन, शक्ति, सिंचाई आदि के रूप में आर्थिक विकास के आधारभूत ढांचे को प्रदान करते हैं। आर्थिक विकास में पूँजी और उत्पादकों की वस्तुओं की पूर्ति करते हैं। इनमें बड़े पैमाने पर पूँजी लगी है, और पुनर्विनियोग के लिए इनसे आय प्राप्त हो। अतः इन उद्योगों को लाभ प्राप्त करना चाहिए। इनके लिए केवल लोक उपयोगिताएं (Public Utilities) ही इसके अपवाद हो सकते हैं।

1.8 <u>प्रो0 डाल्टन का कीमत–नीति सिद्धान्त (**Prof. Dalton's Price-Policy Principles**)</u>– प्रो0 डाल्टन कीमत–नीति के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्तों पर जोर देते हैं– (1) सामान्य कराधान सिद्धान्त (2) अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त (3) ऐच्छिक कीमत सिद्धान्त।

(1) सामान्य कराधान सिद्धान्त (General Taxation Principle) :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जैसे जिन्हें उपभोक्ताओं को मुफ्त में दिया जाता है। जिन्हें शुद्ध सार्वजनिक अर्थात सामाजिक वस्तुयें कहा जाता है। इनकी आपूर्ति का वित्त–पोषण सरकार के बजट में किया जाता है। इनमें उन वस्तुओं को शामिल किया जाता है जिनमें सामाजिक वस्तुओं के गुणों का बाहुल्य होता है। उपभोक्ताओं की जानकारी होने पर इन वस्तुओं एवं सेवाओं को मुफ्त में मुहैया कराया जाता है, जैसे सरकार किसी सड़क के प्रयोग को इस आधार पर निःशुल्क रखने का निर्णय लेती है कि शुल्क की वसूली लागत काफी अधिक है और उपभोक्ताओं को अनावश्यक कष्ट होगा।

(2) अनिवार्य सेवा लागत सिद्धान्त (Compulsory Cost-of-Service Principle) :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जिनके उपभोग के लिए सरकार लोगों को अनिवार्य करने के साथ ही

उपभोक्ता उनकी लागत भी वहन करें। सरकार का यह मानना है कि वस्तु अथवा सेवा की लागत वसूल करना, भी उचित है, जेसे सरकार किसी आवासीय कालोनी के लिए सड़क की रोशनी मुहैया कराते हुए वहाँ के निवासियों से उसकी लागत वसूल करने का निर्णय ले सकती है। यह जरूरी नहीं है कि वसूली लागत के बराबर या कम अथवा ज्याा भी हो सकती है।

(3) ऐच्छिक कीमत सिद्धान्त (Voluntary Price Principle) :

यह सिद्धान्त पर काफी भिन्नता एवं वाद–विवाद का विषय रहा है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सार्वजनिक सेवा की कीमत निर्धारण करने के पश्चात् उपभोक्ताओं को खरीदने या न खरीदने की स्वतंत्रता रहती है। लेकिन कीमत का निर्धारण किस आधार पर कैसे किया जाए? कीमत का निर्धारण इस बात पर निर्भर करेगा कि लोक उद्यम के अवसर व उद्देश्य क्या है।

1. यह कि प्रतियोगता की स्थिति में लोक उद्यम के पास कीमत निर्धारण के अवसर कम हो जाते हैं जबकि एकाधिकारी होने की स्थिति में कीमत निर्धारण करने की पर्याप्त आसानी होती है साथ ही ऊँची कीमत के निर्धारण करने पर बाजार से बाहर होने का खतरा नहीं रहता है। पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादित वस्तु की कीमत बाजार में

उपलब्ध प्रतिस्थापन्न वस्तुओं की कीमतों और उनकी गुणवत्ता के बीच मेल–मिलाप में रहना जरूरी है।

2. यह कि वस्तु के उपभोग से सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है तो कीमत उपभोग को प्रोत्साहित हों, के आधार पर रखी जाती है। कीमत इसकी उत्पादन लागत से भी कम रखी जा सकती है। लेकिन ध्यान रखने वाली बात है कि लोचदार माँग वाली वस्तु की कीमत को बहुत कम नहीं करना चाहिए, इससे अपव्यय का भय उत्पन्न हो जाता है।

3. यह कि उपभोग को हतोत्साहित करने के लिए कीमत को ऊँचा रखना चाहिए। लेकिन माँग की लोच बहुत कम हो, तो केवल कीमत बढ़ाने से काम नहीं चलेगा। ऐसी स्थिति में राशनिंग जैसे अतिरिक्त कदम भी उठाने पड़ सकते हैं। ऐसी स्थिति में कभी–कभी ऊँचा कीमत करने से उपभोक्ताओं के लिए अति हानिकारक भी हो सकता है, जैसे अफीम अथवा शराब अर्थात नशीले वस्तुओं के सेवन करने वाले से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे केवल कीमत के अधिक होने पर इनका उपभोग कम कर देंगे। इनके सेवन से उन्हें चिकित्सा से ही छुटकारा दिलाया जा सकता है।

4. यह कि उपभोग को प्रभावित करने की आवश्यकता नहीं होती है और कीमत नीति में उपभोग को प्रभावित या नियन्त्रित करने का कोई लक्ष्य शामिल नहीं रहता है। कीमत का निर्धारण उत्पादन लागत को माना जाता है।

5. यह कि वस्तु की कीमत को कम करने पर उपभोग प्रभावित किया जा सकता है। लेकिन कीमत का निर्धारण करते समय अपव्यय का ध्यान रखना चाहिए। माँग की लोच कम होने पर वस्तु के उपभोग को केवल कीमत बढ़ाकर कम करना कठिन हो सकता है।

**1.9 <u>लोक उद्यमों के प्रकार (Types of Public Enterprises)</u>–**

लोक उद्यमों का संगठन संवैधानिक व्यवस्था, सरकार की संरचना, राजनीतिक परम्परा, सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं के आधार पर होता है। अलग–अलग देशों में अपने संगठन के स्वरूप अलग–अलग होते हैं, जैसे–

(1) विभागीय उद्यम (Departmetal Enterprises)–

विभागीय संगठन लोक उद्यमों का एक परम्परागत स्वरूप है। यह विधायिका के प्रत्यक्ष नियन्त्रण अर्थात् संचालन विशिष्ट एवं अपरिवर्तनशील नियमों के द्वारा होता है, जिसमें सार्वजनिक मुद्रा का नुकसान कम होता है। उद्यमों का कोई अलग से कानून नहीं है। बिना सरकार की

अनुमति के मुकदमा नहीं चल सकता है। विभागीय उद्योगों में सम्बद्ध विभाग का नियंत्रण रहता है और अन्तर्विभागीय समिति या बोर्ड के द्वारा भी संचालित होते हैं।

(2) लोक निगम (Public Corporation)–

लोक निगम एक वैधानिक निगम होती है। उस सम्बन्ध में रॉबसन का कहना है कि– ''सरकारी संस्थाओं के क्षेत्र में यह वर्तमान सदी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण आविष्कार है। लोक निगम में सार्वजनिक स्वामित्व, सार्वजनिक उत्तरदायित्व तथा लोक हितों के लिए व्यावसायिक प्रबन्ध सभी संयुक्त रूप से पाए जाते हैं। इस प्रकार यह एक ऐसा संगठन है जिसमें दिन प्रतिदिन के कार्य में स्वतंत्रता के साथ सरकारी नियन्त्रण का मिश्रण रहता है।'' इसका संचालन नियमों एवं अधिनियमों तथा शासनादेशों के माध्यम से होता है। लोक निगम में राज्य स्वामी होने के साथ इसकी कुल पूँजी के एक हिस्से के मालिक अर्थात निजी व्यक्ति भी हो सकते हैं। इस प्रकार इसमें कई हिस्सेदार एवं राज्य स्वामी हो सकता है। लोक निगम के कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते हैं। इसलिए इनकी सेवा शर्तें सरकारी नियमावली से निर्धारित नही होती है। लोक निगम का सृजन संसद द्वारा होता है, विशेष नियम के

द्वारा प्रबन्ध का स्वरूप व कार्यों तथा सरकार के साथ संबंधों का निर्धारण होता है। साथ ही वित्त के उपयोग में स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और सरकारी विभागों जैसे बजट, ऑडिट, लेखा नियम इस पर लागू नहीं होते हैं। इनका एक वैधानिक व्यक्तित्व है और कोर्ट में मुकदमा चल सकता व चलाया जा सकता है। यह करार कर सकती है तथा अपने नाम से सम्पत्ति खरीद सकती है।

(3) सरकारी कम्पनी (Government Company)–

इसमें अधिकांश पूँजी का धारक सरकार है। भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार ''सरकारी कम्पनी की प्रदत्त पूँजी के 51 प्रतिशत शेयर भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के पास संयुक्त रूप या पृथक–पृथक रहते हैं।'' सरकारी के दो रूप होते हैं एक प्राइवेट लिमिटेड दूसरी पब्लिक लिमिटेड। प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में हिस्सेदारों की संख्या 02 और अधिकतम 50 होती है जबकि पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में हिस्सेदारों की न्यूनतम संख्या 07 और अधिकतम की सीमा निश्चित नहीं है। सरकारी कम्पनी घरेलू या विदेशी निजी कम्पनी को भी सम्बद्ध कर सकती है। यही स्वरूप भारत में लोकप्रिय है।

1.10 <u>लोक उद्यमों की वित्त व्यवस्था (**Financing of PUblic Prises**)</u>– लोक उद्यम वित्तीय व्यवस्था हेतु प्रमुख स्त्रोत है, जैसे–सरकार से फण्ड प्राप्त करके; बैड तथा वित्तीय संस्थाओं से ऋण के द्वारा; आन्तरिक साधनों से; विदेशी विनियोग द्वारा; लोक जमा आदि। सरकार से प्राप्त फण्ड में हिस्सा तथा ऋण एवं अनुदान; सब्सिडी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। हिस्सा (Equity) ब्याज–मुक्त पूँजी है और हिस्सेदार का उद्यम पर नियन्त्रण रहता है। सार्वजनिक उद्यम के हिस्सा में आम लोग भी हिस्सा ले सकते हैं। ऋण लेते है और उसका ब्याज देना पड़ता है। ऋण की तुलना में हिस्सा उन उद्योगों के लिए बेहतर है जिनमें लाभ की मात्रा कम है तथा जिनके निर्माण में अधिक समय लगता है। लोक उद्यमों को हानि होने की स्थिति में सरकार अनुदानया सब्सिडी लेकर हानि की पूर्ति करती है। लोक उद्यमों के परिचालन में संकट में अतिरिक्त पूँजी की जरूरत पड़ने पर, वह सरकार से ऋण या अनुदान लेना या फिर वाणिज्यिक बैंकों, केन्द्रीय बैंक या विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के पास जाना पड़ता है जिसके सरकार से आज्ञा भी लेना पड़ती है। जबकि लोक निगमों को डिबेन्चर जारी करके जनता से ऋण लेने की अनुमति नहीं है। ऐसे ही प्रतिबन्ध कम्पनियों पर भी है। इसी वजह से आलोचना भी होती है। लेकिन तर्क अब दिये जाने लगे हैं कि लोक उद्यमों को बाजार से ऋण की अनुमति दी जाए

तो वे योग्य तथा कुशल होंगे, अर्थात् वह वित्तीय क्षेत्र साख को स्थापित कर सकते हैं। निजी क्षेत्र के लिए वित्त का स्त्रोत आन्तरिक बचत है। उद्यमों को न केवल लाभ प्राप्त है। बल्कि लाभ का एक हिस्सा भावी जरूरतों के लिए रख लिया जाता है, जिसे बचत कहा जाता है। सरकार लोक उद्यागों में विदेशी हिस्सा पूँजी की अनुमति नहीं देती है बल्कि कठिनाई परिस्थिति में पूँजी लेने की अनुमति मिल जाती है। निजी क्षेत्र के उद्योगों की तरह लोक उद्यमों को कभी–कभी जनता असुरक्षित (Unsecured) जाम स्वीकार करने की अनुमति दी जाती है।

1.11 <u>सारांश (**Summary**)</u>– सरकार द्वारा शुद्ध सार्वजनिक सेवाओं, जनहितकारी सेवाओं तथा अन्य आवश्यक सेवाओं/सुविधाओं के अतिरिक्त लोग उद्यमों द्वारा कई प्रकार की गतिविधियों को अपनाने हेतु कार्यकुशलता का एक सर्वमान्य स्तर सुनिश्चित हों। इसके लिए विभिन्न प्रकार की बाधाओं को दूर करने के प्रभावी समाधान की जरूरत है साथ ही लोक उद्यमों को उन क्षेत्रों से हटा लेना चाहिए जहाँ पर समाज का अहित होता हो। जिन क्षेत्रों में लोक उद्यमों की आवश्कयता है, वहाँ पर स्थापित करना चाहिए। लोक उद्यमों के लक्ष्य और उद्देश्य निजी स्तर पर निश्चित किये जाने चाहिए। श्रमिकों और प्रबंधनकर्ताओं को पूरी जानकारी के साथ प्रोत्साहन (Reward) एवं दण्ड

(Punishment) की एक प्रभावी नीति लागू की जानी चाहिए साथ ही कार्यकुशलता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। समय–समय कार्यकुशलता, दक्षता, उत्पादिकता पर मंथन होनाप चाहिए। समय रहते साख–सुविधाओं की प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। सभी वित्तीय नियंत्रण हेतु लेखा परीक्षण के साथ अन्य रीतियों का प्रयोग कर अपव्यय पर लगाम लगाने की जरूरत है। वस्तुओं और सेवाओं का कीमत का निर्धारण ऐसा होना चाहिए जिससे आम जनता को नुकसान न हो। अधिकतम सामाजिक कल्याण की भावना होना चाहिए साथ उद्यमों का भी प्रबंधन अच्छा रहे।

## 1.12 शब्दावली (**Keywords**)–

लोक उद्यम (Public enterprises); निगम (Corporations); कीमत नीति (Price Policy), आगतों (Inputs), बहनता (Sustainability), अतिदोहन (over-exploitation); आधिक्य (Surplus); सृजन (Creation); सीमान्त लागत कीमत नीति (Marginal cost Pricing); लोक उपयोगिताओं (Public Utilities); दक्षता (Efficiency); एकमुश्त कर (Lump-sum Tax); पूँजीगत लागत (Capital Charges); समानता बिन्दु (Break-even Point); घिसावट (Depreciation); पुनःस्थापन (Replacement); औचित्य (Rationale); विचलन

(Deviations); स्थायित्व (Stabilization), मूल (Original), दक्षहीनता (Inefficiency); कराधान सिद्धान्त (Taxation Principle); विभागीय उद्यम (Departmental Enterprises), हिस्सा (Equity), असुरक्षित (Unsecuracy)

## 1.13 सन्दर्भित पुस्तकें (**Reference Books**)–


(1) लोकवित्त, एच0एल0 भाटिया, विकास पब्लिसिंग हाऊस प्रा0लि0 नोयडा, भारत।

(2) लोक अर्थशास्त्र, जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायण पब्लिकेशन्स, आगरा।

(3) लोकवित्त, डॉ0 एस0के0 सिंह, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

(4) लोकवित्त, डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय, एस0बी0पी0डी0 पब्लिसंग हाऊस, आगरा।

(5) R.N Tripahty : Public Finance in Under Development Countries

(6) W.A. Robson : Problems of Naitionalised Industry.

(7) K.R. Gupta : Issues in Public Finance

(8) Laxmi Narayan : Principles and Practice of Public Enterprises Management.

(9) Margolis and Guiton : Public Economics.

## 1.14 प्रश्नों का उत्तर दीजिए (**Answer the Question**)–

(1) सीमान्त लागत पर आधारित कीमत नीति से आप क्या समझते हैं?

(2) न लाभ न हानि का सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

(3) न लाभ न हानि का सिद्धान्त का औचित्य क्या है?

(4) न लाभ न हानि का सिद्धान्त से विचलन पर एक लघु नोट लिखिए।

(5) औसत लागत पर आधारित कीमत नीति से आप क्या समझते हैं?

(6) लाभ प्राप्त करने का सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

(7) प्रो0 डाल्टन का कीमत नीति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(8) लोक उद्यमों के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

(9) लोक निगम की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

(10) लोक उद्यमों की वित्तीय व्यवस्था पर एक निबंध लिखिए।

## 1.15 बहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर (**Objective Type Question-Ansewr**)–

(1) लोक निगम का सृजन होता है–

(अ) संसद द्वारा (ब) न्यायालय द्वारा

(स) वाणिज्य विभाग द्वारा (द) विश्व बैंक द्वारा

(2) प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में हिस्सेदारों की न्यूनतम संख्या कितनी होती है?

(अ) 5 (ब) 2

(स) 7 (द) 10

(3) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में हिस्सेदारों की न्यूनतम संख्या कितनी होती है?

(अ) 10 (ब) 15

(स) 7 (द) 11

(4) प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में अधिकतम हिस्सेदारों की संख्या कितनी होती है?

(अ) 40 (ब) 100

(स) 200 (द) 50

(5) लोक उद्योग कितने प्रकार के होते हैं?

(अ) 3 (ब) 5

(स) 7 (द) 4

(6) न लाभ न हानि के सिद्धान्त का औचित्य है–

(अ) लोगों की सेवा करना, लाभ प्राप्त करना नहीं।

(ब) लोगों की सेवा न करना, लाभ प्राप्त करना।

(स) अ तथा ब दोनों सही।

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

(7) लोक उद्यमों की पूँजी का प्रमुख स्त्रोत है–

(अ) बैंक (ब) आन्तरिक साधन

(स) विदेशी विनियोग (द) सरकार

(8) ब्याज मुक्त चिरस्थायी पूँजी है–

(अ) ऋण (ब) हिस्सा

(स) अनुदान (द) सहायता

(9) निजी क्षेत्र में व्यवसाय के लिए वित्त का प्रधान स्त्रोत है–

(अ) बैंक (ब) डाकघर

(स) बचत (द) भारतीय जीवन बीमा निगम

(10) लोक उद्योगों की मूल्य नीति होना चाहिए–

(अ) राष्ट्रीय आय व विकास दर में वृद्धि हो।

(ब) राष्ट्रीय आय व विकास दर में अवनति हो।

(स) उपर्युक्त अ तथा ब दोनों

(द) इनमें से कोई नहीं।

**खण्ड – 02**

**इकाई 04**

## सैद्धान्तिक पहलू और कल्याणकारी प्रभाव :

### 1.1 परिचय : Introduction :

सरकार के द्वारा किन सार्वजनिक वस्तुओं को प्रदान किया जाए तथा कितनी मात्रा में किया जाए। देश में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग कितना किया जाए और समस्त व्यय में सरकार का कितना हिस्सा होना चाहिए। इस सम्बन्ध में रेखाचित्र से समझ सकते हैं :–

अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति है तथा जहाँ टेक्नोलॉजी दी हुई है, सामाजिक एवं निजी वस्तुओं की उत्पत्ति भिन्न–भिन्न अनुपात में सम्भव है। सभी अधिकतम उत्पत्ति संयोगों को रेखाचित्र में दिखाया गया है। 'अ' अक्ष पर सामाजिक वस्तु तथा 'ब' अक्ष पर निजी वस्तु को मापा जाता है। ल, म इन दोनों वस्तुओं का रूपान्तरण वक्र (Transformation Curve) है इस वक्र पर क तथा ख दो बिन्दु हैं, जिन पर इन दोनों वस्तुओं का उत्पादन विभिन्न संयोगों में होता है। अब प्रश्न उठता है कि सरकार कितना खर्च करे। 'क' बिन्दु पर सामाजिक वस्तु की मात्रा कम है या निजी वस्तु की मात्रा अधिक है ? 'ख' बिन्दु पर सामाजिक वस्तु की मात्रा अधिक है तो निजी वस्तु की मात्रा कम है? दूसरे शब्दों में, सामाजिक वस्तु अर्थात् लोक व्यय का उच्चतम स्तर (Optimum Level) क्या है ? O घ या O च? लोक व्यय का सिद्धान्त (सामाजिक या सार्वजनिक वस्तु का सिद्धान्त) इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करता है। लोक व्यय या सामाजिक वस्तु का आधुनिक सिद्धान्त जून 1954 से प्रारम्भ होता है। एडम स्थिम 1776, पीगू 1928 तथा सैक्स एवं मैजोला (Sax तथा Mazzola, 1880 का दशक) तथा विकसेल 1896, एवं िलण्डल 1919 के नाम प्रमुख है। इससे आगे समग्रेव के सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त को समझने का प्रयास किया जाये।

### 1.1 उद्देश्य : (Objectives) :

(1) समाज को सर्वाधिक लाभ पहुँचे।

(2) सामाजिक आवश्यकताओं के मध्य आदर्श आवंटन।

(3) सार्वजनिक व्यय का न्याय संगत निर्धारण की विवेचना।

(4) राष्ट्रीय संसाधनों का उचित आवंटन हो।

## 1.2 ब्रिटिश प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (British Classical Econimists) :-

एडम स्मिथ का कहना है कि ''सरकार के तीन कर्त्तव्य हैं – 1. प्रतिरक्षा–बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा, 2. आन्तरिक कानून व्यवस्था, 3. लोक संस्थाओं का प्रबंध तथा वैसे सार्वजनिक कार्यों की व्यवस्था जो समाज के लिए अत्यधिक कल्याणकारी है, किन्तु यदि व्यक्ति द्वारा उन्हें प्रदान किया जाए तो इतने लाभ नहीं मिलेंगे कि लागत को वसूल किया जा सके और इसीलिए व्यक्ति उन्हें प्रदान करने के लिए तैयार नहीं होंगे।'' इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ क्षेत्रों में बाजार यन्त्र कारगर नहीं होता है। इसीलिए सरकार को सेवाएँ प्रदान करने की जरूरत है। जबकि एडम स्मिथ सामाजिक वस्तुओं की प्रकृति पर ज्यादा कार्य न करने में असफल रहे। इसके डेविड रिकार्डो ने भी सार्वजनिक व्यय के विश्लेषण में निराश ही किया। इस सम्बन्ध में जे.बी.से. का कथन है कि ''लोक वित की सर्वोत्तम व्यवस्था वह है जिसमें सरकारी व्यय न्यूनतम हो तथा सर्वोत्तम कर प्रणाली वह है जिसका भार न्यूनतम होता है'' के आगे कुछ विवेचना नहीं कर सके। लेकिन जे.एस. मिल पर समाजवादियों का प्रभाव होने के कारण एडम स्मिथ की तरह ही स्वीकार किया कि ''हस्तक्षेप नहीं करने की नीति (Policy of Non-intervention, Laissez-Faire) तथा कुछ क्षेत्रों में हस्तक्षेप की जरूरत बताई जैसे– ''कुछ ऐसी सेवाएं हैं जिनकी उपयोगिता को समझने में व्यक्ति असमर्थ रहता है, जैसे बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा का महत्व, सभी पहलुओं को ठीक तरह से नहीं समझने के कारण व्यक्ति ऐसे करार कर सकते हैं जिनसे उन्हें रोकने की जरूरत है, जैसे–बन्धुआ मजदूरों द्वारा किया गया करा, वहाँ भी नियंत्रण की जरूरत है जहाँ लोग निर्णय लेने का अधिकार प्रबन्धकों पर सौंप देते हैं, किन्तु इन प्रबन्धकों के हित अन्य लोगों से भिन्न हो सकते हैं।'' इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिरक्षा, कानून व्यवस्था में सरकारी नियमन हो। मिल ने समानता पर आधारित कर संरचना पर विशेष ध्यान दिया है जबकि लोक व्यय विश्लेषण पर नहीं बराबर। इस सम्बन्ध में मसग्रेत कहते हैं कि – ''प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक वस्तु की आर्थिक प्रकृति की जाँच नहीं की।''

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सरकार की भूमिका को न्यूनतम तथा बजट की लागत का वितरण किस प्रकार करदाताओं को लोक व्यय से मिलने वाले लाभ के रूप

में किया जाए। इस सम्बन्ध में लॉक ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सामाजिक करार के सिद्धान्त (Social Contract Theory) को प्रतिपादित किया और कहा कि – ''राज्य के संरक्षण की अधिक आवश्यकता है तो, कर प्रणाली प्रतिगामी (Regressive) हो जाएगी। यह समानता के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। इसीलिए उन्होंने लाभ के सिद्धान्त को त्याग दिया। करदान योग्यता के सिद्धान्त (Ability to pay theory) के प्रतिपादकों ने लोक व्यय की पूर्णतः उपेक्षा कर दी। कर के बोझ के समान वितरण पर भी ध्यान नहीं दिया और कर से प्राप्त राजस्व को सरकार किस प्रकार खर्च करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एडम स्मिथ से लेकर मिल तक ने लोक व्यय के सम्बन्ध में विचारों को इस सन्दर्भ में व्यक्त नहीं किया।

## 1.3 गैर–ब्रिटिश अर्थशास्त्री (Non British Economists) :

ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों ने बाजार को ही विधान (Rule) माना और सार्वजनिक क्षेत्र को अपवाद स्वरूप माना। लेकिन जहाँ बाजार यन्त्र असफल हो जाता है तो सरकार का आगमन होना चाहिए। लेकिन यूरोप, जर्मनी के अर्थशास्त्रियों ने द्वैत (Dual) के रूप में अर्थव्यवस्था को माना। इस प्रकार उन्होंने निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र को महत्व दिया। साथ सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण के विकास ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला और लोक वित्त के विभिन्न पक्षों में समान्त उपयोगिता विश्लेषण का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार कहा जाने लगा कि – ''निजी वस्तुओं की तरह ही सार्वजनिक वस्तुओं का मूल्यांकन भी उपभोक्ताओं को इनसे प्राप्त उपयोगिता के रूप में होना चाहिए।'' इस तरह से सार्वजनिक वस्तुओं के आधुनिक सिद्धान्त की नींव पड़ी। आर्थिक विश्लेषण जिसका सम्बन्ध साधनों के कुशल (Efficient) उपयोग से है का उपयोग गैर–बाजार क्षेत्र में भी होने लगा। कर–व्यय योजना को आर्थिक मूल्य की समस्या के रूप में पैण्टेलियोनी ने 1883 में अपने लेख में किया। इसके बाद 1887 में सैक्स (Sax) ने सार्वजनिक वस्तु के क्षेत्र में सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण का उपयोग किया। सैक्स ने सामूहिक वस्तुओं को दो भागों में विभक्त किया जैसे –

(अ) वे जिनके लाभ को पृथक – प्रथम जाना जा सकता है।

(ब) वे जिनके लाभ सामूहिक होते है।

इस प्रकार सैक्स कहते हैं कि सामूहिक वस्तु की समस्या का केन्द्र है। इस सम्बन्ध में सैक्स का कथन है कि – ''सामूहिक वस्तुओं की कुल लागत का भुगतान करदाताओं द्वारा इस प्रकार होना चाहिए कि प्रत्येक करदाता के द्वारा कर का भुगतान इन वस्तुओं से प्राप्त लाभ के अनुरूप हो।'' 1890 में मैजोला (Mazzola) के द्वारा

सर्वप्रथम सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित कया गया। मैजोला का कहना था कि – ''इन वस्तुओं को निजी वस्तुओं से पृथक करने वाली विशेषता उनकी अविभाज्यता (Indivisibility) है। सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग का विभाजन नहीं हो सकता, सभी उपभोक्ताओं द्वारा इनका उपभोग समान मात्रा में होता है। इसलिए उपभोक्ताओं की आय एवं रूचि में अन्तर होते है।'' इससे स्पष्ट है कि सार्वजनिक वस्तुओं की अविभाज्यता वह तकनीकी कारण को बताती है जिससे सभी उपभोक्ताओं से समान कीमत नहीं ली जा सकती है। सभी से एक ही कीमत ली जाये तो कुछ उपभोक्ताओं को वस्तुओं की कीमत सीमान्त उपयोगिता से कम या अधिक होगी। अब यहाँ दो प्रश्न उठते हैं कि –

''अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि कीमत सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो। एक ही कीमत पर यह शर्त लागू नहीं होती है।''

''निजी वस्तुओं के लिए उपभोक्ता बाजार कीमत नहीं दे सकते, इनका उपभोग भी नहीं कर सकते। सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं के लिए कीमत सीमान्त उपयोगिता से अधिक है तो कीमत चुकाने में असमर्थ होंगे और उपभोग नहीं कर सकते है। इसलिए सार्वजनिक वस्तुओं के लिए एक ही कीमत (Uniform Price) की जगह पर बहुत कीमतें (Multiple Price) ली जाती है। ताकि वस्तुओं की प्रत्येक उपभोक्ता अपने मूल्यांकन के अनुसार कीमत अदा करें।'' मैजोला स्वीकार करते हैं कि सार्वजनिक वस्तु के लाभ बाजार प्रक्रिया में सम्भव नहीं है। यह कार्य सरकार को ही करना होगा। यदि सरकार किसी दल विशेष के कब्जे में है जो इसी दल के कल्याण में कार्य करती है, तो अधिकतम कल्याण न होकर असन्तोष की उत्पत्ति होगी। यह बात स्पष्ट हो गई थी कि सामाजिक वस्तुओं के आधुनिक सिद्धान्त के सभी तथ्यों की विवेचना सैक्स और मैजोला द्वारा की गई। 1896 में विकसेल ने मैजोला के सिद्धान्त की प्रमुख बात–सार्वजनिक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत की समानता को कार्यक्षमता के नियम के रूप में स्वीकार किया। विकसेल का कथन है कि यह समानता उस समय प्राप्त होती है जब प्रत्येक करवाता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है।

विकसेल का कहना है कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी आय निजी और सामाजिक वस्तुओं पर व्यय नहीं करेगा। एक व्यक्ति सामाजिक वस्तुओं पर कितना खर्चा करेगा इसका प्रभाव वस्तुओं की मात्रा पर इतना कम पड़ता है कि वह इस पर ध्यान नहीं देता है। यह 'मुफ्तखोरी' (Freerider) की समस्या है। विकसेल कहते हैं कि अगर सभी व्यक्तियों का ऐसा ही आचरण हो जाए तो शीघ्र ही राज्य के सभी कार्य

बन्द हो जायेंगे। इससे स्पष्ट होता जाता है कि सामाजिक वस्तुओं से किसी व्यक्ति को कितनी उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता मिलती है, इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता है, बल्कि लोग इनके लिए कितना भुगतान करने के लिए तैयार हैं। यदि व्यक्ति को अपनी इच्छा पर छोड़ दिया जाये तो वह सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति पर कुछ नहीं देना पसन्द करेगा, क्योंकि ऐसी वस्तु की कुल आपूर्ति उसके योगदान से अप्रभावित है। सामाजिक वस्तु से किसी व्यक्ति को जो उपयोगिता मिलती है वह उसके योगदान पर निर्भर नहीं करती है बल्कि अन्य लोगों पर। इससे स्पष्ट है कि सन्तुष्टि को अधिकतम करने का कार्य व्यक्तिगत करदाताओं द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता है।

विकसेल ने यह जानने की प्रयास किया, एक ज्ञान सम्पन्न एवं परोपकारी शासक अधिकतम सामाजिक कल्याण की व्यवस्था कर सकता है ? विकसेल का कहना है कि ''बजट नीति सम्बन्धी अधिकांश विषयों का निर्धारण इस प्रकार सम्भव नहीं है।'' विकसेल का कहना है कि प्रत्येक सामाजिक वस्तु के सम्बन्ध में मत इस वस्तु की लागत के वितरण के साथ लेना चाहिए साथ ही लागत के वितरण की विधियाँ है जैसे – आयकर के आधार पर, उत्पाद–कर के आधार पर आदि। इस प्रकार सामाजिक वस्तु पर व्यय तथा व्यय की वित्त व्यवस्था के विभिन्न उपायों के आधार पर अनेक विकल्प मतदाताओं के समझ रखे जायेंगे। इन विकल्पों में से उसी को चुनना चाहिए जिसके पक्ष में मतदाता स्वेच्छा से तथा एकमत होकर (Unanimously) मत देते हैं। इसे ही विकसेल ने एकमत का सिद्धान्त (Principle of Unanimity) कहा है। एकमत की व्यावहारिक कठिनाई के लिए विकसेल ने कहा कि 'लगभग एकमत' (Approximate Unanimity) कमाना जाए। इस सिद्धान्त के द्वारा उन मतदाताओं को संरक्षण मिला जो सामूहिक कार्यों के लिए कर देने के इच्छुक नहीं थे। विकसेल का कहना है कि करारोपण में न्याय के लिए आय एवं सम्पत्ति के विभाजन में समानता की आवश्यकता है। यदि विभाजन न्यायपूर्ण नहीं है तो समानता लेने के लिए उनकी सहमति प्राप्त नहीं की जा सकती है जिन्हें हानि हो सकती है।

यदि राजनीतिक शक्ति धनिकों के हाथ में केन्द्रित है, फिर भी उन्होंने समानता से होने वाले नुकसान के प्रति सावधान किया है। विकसेल ने न्यायपूर्ण कर प्रणाली को दो भागों में बाँट दिया। 'एक ओर न्यायपूर्ण विवरण की समस्या है अर्थात् करके माध्यम से आय का न्यायपूर्ण वितरण किया जा सकता है। दूसरी ओर सामाजिक वस्तुओं की न्यायपूर्ण वित्त व्यवस्था है अर्थात् न्यायपूर्ण वितरण की स्थिति में सार्वजनिक सेवाओं की लागत का न्यायपूर्ण विभाजन कहने का अर्थ है कि सामाजिक वस्तुओं की न्यायपूर्ण

वित्त व्यवस्था के पूर्व आय के न्यायपूर्ण वितरण की आवश्यकता है तथा ये कर के दोनों पृथक–पृथक कार्य हैं।''

यह कि 1919 में एरिक लिण्डल (Erik Lindahl) ने सामाजिक वस्तुओं के विकास के क्रम में सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बाद में स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त (Voluntary Exchange Theory) कहलाया। लिण्डल का विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि केवल दो करदाता तथा एक सामाजिक वस्तु है। यदि करदाताओं तथा सामाजिक वस्तुओं की संख्या में वृद्धि कर दी जाए तो मूल तर्क में कोई फर्क नहीं पड़ेगा केवल लोक व्यय तथा कर के हिस्से के निर्धारण की कठिनाइयाँ बढ़ जायेंगे। जाँच एवं भूल के आधार पर बाजार में करार (Contract) में बराबर परिवर्तन उस समय तक होंगे जब तक सन्तुलन की स्थापना नहीं हो जाती है। अतः ऐसा प्रत्येक बजट में करने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक नये बजट में केवल सीमान्त समायोजन की जरूरत पड़ेगी क्योंकि सामाजिक वस्तु के चयन एवं वित्त व्यवस्था की प्रक्रिया तो स्थिर (Constant) है। लिण्डल ने सामाजिक वस्तु के मूल्य निर्धारण की जिस प्रक्रिया का विश्लेषण किया है जो मैजोला के सिद्धान्त से काफी मिलता है और विकसेल ने भी स्वीकार किया है। जबकि लिण्डल और विकसेल में अन्तर है कि लिण्डल की मान्यता है कि कीमत का निर्धारण करदाताओं के आपसी स्वैच्छिक मोलभाव के द्वारा होता है और यदि सम्पत्ति के मौजूदा स्वामित्व के अनुसार राजनीतिक शक्ति का समान वितरण होता है तो सर्वोत्तम समाधान (Optimal Solution) सम्भव है। लेकिन यदि राजनीतिक शक्ति का बंटवारा असमान है तो ऐसा समाधान निकलेगा, जिसमें एक वर्ग को दूसरे की तुलना में अधिक लाभ होगा।

विकसेल की तरह ही लिण्डल की मान्यता है कि स्वैच्छिक विनिमय द्वारा समाधान निकलेगा। वह सम्पत्ति के वितरण को प्रतिबिम्बित करेगा। लिण्डल का कहना है कि ''न्यायपूर्ण समाधान के लिए जरूरी है कि सम्पत्ति का बंटवारा भी न्यायपूर्ण हो।'' लिण्डल के सिद्धान्त की आलोचना की गई, जैसे–सामाजिक वस्तुओं की अविभाज्यता एक महत्वपूर्ण गुण है। इसिलए इनसे करदाताओं को अलग–अलग कितना लाभ मिलता है, जाना नहीं जा सकता है तथा सभी करदाताओं की मोलभाव करने की शक्ति समान नहीं होती है। दूसरी बात है कि करदाताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। इन कारणों से प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया को लागू नहीं किया जा सकता है। इससे लिण्डल के सिद्धान्त का काफी महत्व घट जाता है क्योंकि अनेक करदाताओं की स्थिति में अधिमान प्रकट नहीं किये जाते हैं।

## 1.4 सैम्युएलसन का सिद्धान्त (Theory of Samuelson) :-

लोकव्यय के आधुनिक सिद्धान्त का प्रारम्भ 1954 से माना जाता है, जब सैम्युएलसन ने अपना लेख "The Pure Theory of Public Expenditure" प्रकाशित किया। यह लेख लोक व्यय के सिद्धान्त को गणितीय रूप में प्रस्तुत किया। एक वर्ष पश्चात् 1955 में इसे ज्यामिति की सहायता से प्रस्तुत किया। सैम्युएलसन का कहना है कि सैक्स, विकसेल, लिण्डल, मसग्रेव तथा बोवेन को छोड़कर अन्य अर्थशास्त्रियों ने अधिकतम लोक व्यय के सिद्धान्त की उपेक्षा की है। अपना अधिकतम समय करारोपण के सिद्धान्त में लगाया था। सैम्युलसन कहते है कि इटली, ऑस्ट्रिया तथा स्वीडेन के अर्थशास्त्रियों ने 1880 तथा 1920 के मध्य लोक व्यय के सिद्धान्तों का विकास किया। सैम्युएलसन का लोक व्यय का सिद्धान्त पैरेटो के अधिकतम कल्याण की शर्तों के विकास के रूप में प्रस्तुत किया बल्कि बजट नीति के निर्धारण की प्रक्रिया में सुधार के रूप में नहीं किया गया था। बजट नीति के सम्बन्ध में सैम्युएलसन ने कार्यक्षमता (Efficiency) की शर्तों को अलग ही रखा। सैम्युएलसन का कहना है कि – ''अर्थ व्यवस्था में साधनों का आदर्श आवंटन किस प्रकार होता है जहाँ निजी वस्तुओं के साथ–साथ सार्वजनिक वस्तुओं का भी उत्पादन होता है। निजी वस्तुएँ वे हैं जिनका उपभोग अलग–अलग मात्रा में विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा होता है तथा सभी उपभोक्ताओं के अलग–अलग उपभोग का कुल योग ही इन वस्तुओं की कुल उत्पत्ति होती है। सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग सभी उपभोक्ता समान मात्रा में करते है।'' इससे स्पष्ट होता है कि विभिन्न उपभोक्ताओं के अलग–अलग उपभोग को जोड़कर इन वस्तुओं के कुल उत्पादन को प्राप्त नहीं किया जाता है। माना कि उत्पत्ति सम्भावना सीमा तथा उपभोक्ता अधिमान दोनों प्रकार की वस्तुओं के लिए दिए हुए है। इस स्थिति में अधिकतम कल्याण सम्बन्धी पैरेटो द्वारा दी गई कार्यक्षमता की शर्तों को यहाँ लागू किया जा सकता है। लेकिन, निजी वस्तुओं की शर्तों से भिन्न है। निजी वस्तुओं के अधिकतम उत्पादन के लिए आवश्यक है कि उत्पादन में रूपान्तर की सीमान्त दर सभी उपभोक्ताओं के लिए समान नहीं होती है, बल्कि अलग–अलग इन शर्तों के आधार पर कोई एक अधिकतम समाधान नहीं मिलता है बल्कि कई सामाजिक कल्याण फलन के प्रयोग से सर्वोत्तम समाधान (The Optimum of Optima) प्राप्त होता है, जिसे सैम्युएलसन ने सुखद बिन्दु (Bliss Point) कहा है।

## 1.5 <u>सैम्युएलसन के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Samuelson's Theory)</u> :-

(अ) सैम्युएलसन की प्रमुख मान्यताएँ है कि उन्होंने ध्रुवीय स्थितियों (Polar Cases) को लिया है। निजी उपभोग वस्तु, जैसे–रोटी, एक ऐसी वस्तु है, जिसका विभाजन दो या अधिक उपभोक्ताओं में सम्भव है। माना कि किसी निजी वस्तु

की कुल उत्पत्ति 'क' है, जिसका विभाजन दो उपभोक्ताओं 'अ' तथा 'ब' में इस प्रकार होता है कि 'अ' इसका उपभोक्त $क_{अ}$ मात्रा में तथा ब का उपभोग $क_{ब}$ मात्रा में होता है तथा $क_{अ} + क_{ब} = क$, सार्वजनिक उपभोग वस्तु के सम्बन्ध में सैम्युएलसन की मान्यता यह है कि यह ऐसी वस्तु है जिसकी कुल उत्पत्ति का उपभोग सभी उपभोक्ता समान मात्रा में करते है। माना कि सार्वजनिक वस्तु का कुल उत्पादन 'ग' है तथा अ एवं ब के द्वारा इसका उपभोग $ग_{अ}$ तथा $ग_{ब}$ मात्रा में इस प्रकार होता है कि $ग_{अ} = ग_{ब} = ग$। इससे स्पष्ट है कि निजी वस्तु की तरह सार्वजनिक वस्तु की कुल उत्पत्ति को व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के व्यक्तिगत उपभोग को जोड़कर प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

(ब) यह कि निजी वस्तुओं की मांग के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं के अधिमान की जानकारी बाजार द्वारा प्राप्त की जाती है जहाँ वे अपने अधिमान को व्यक्त करते हैं। सार्वजनिक वस्तुओं का अधिमान इस प्रकार व्यक्त नहीं किया जाता क्योंकि ऐसी वस्तु के प्रत्येक उपभोक्ता के हित में यह होगा कि वह गलत संकेत दे तथा बहाना करें कि उसे इस वस्तु की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए सैम्युएलसन ने मान लिया कि एक सर्वज्ञ मशीन (Omniscient Calculation Machine) है जिसे सार्वजनिक वस्तु की व्यक्तिगत मांग (Individual Demand) की जानकारी है।

## 1.6 आंशिक साम्य विश्लेषण (Partial Equilibrium Analysis) :-

यह कि सामाजिक वस्तु के साम्य उत्पादन तथा कीमत निर्धारण की प्रक्रिया वही है जिसका उपयोग निजी वस्तु के लिए किया जाता है। इस समानता के बावजूद भी एक अन्तर है, कार्यकुशलता और कार्यकुशलता के लिए आवश्यक है कि निजी वस्तु की स्थिति में इससे प्रत्येक उपभोक्ता को प्राप्त सीमान्त लाभ (Marginal Benefit, एम.बी.) इसकी सीमान्त लागत के बराबर हो, अर्थात् $एमबी_{अ} = एमबी_{ब} = एमसी$। सामाजिक वस्तु की स्थिति में इस वस्तु से प्राप्त सीमान्त लाभ प्रत्येक उपभोक्ता के लिए भिन्न–भिन्न होता है। इससे स्पष्ट है कि सभी उपभोक्ताओं को प्राप्त सीमान्त लाभ का योग सीमान्त लागत के बराबर होता है। अर्थात् $एमबी_{अ} + एमबी_{ब} = एमसी$। इससे स्पष्ट होता है कि एक ही बाजार यन्त्र के उपयोग के बावजूद परिणाम पृथक–पृथक होते हैं। प्रत्येक उपभोक्ता सामाजिक वस्तु को समान मात्रा में खरीदता है, किन्तु अलग–अलग नीयत देता है। प्रत्येक उपभोक्ता निजी वस्तु को भिन्न–भिन्न मात्रा में खरीदता है लेकिन कीमत एक ही देता है।

## 1.7 सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis) :-

यह कि निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग में परस्पर निर्भरता की विवेचना करने के लिए सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए यह हम मान लेते हैं कि आय का वितरण दिया हुआ है। निजी एवं सामाजिक दोनों प्रकार की वस्तुओं के मध्य साधनों का आदर्श आवंटन किस प्रकार होता है। यह विश्लेषण पैरेटो के अधिकतम कल्याण (Pareto Optimum Welfare) की शर्तों के रूप में किया जाता है। निजी वस्तुओं के उच्चतम उत्पादन एवं उपभोग की स्थिति उस समय प्राप्त होती है, जब तीन शर्तें पूरी हों। इन तीनों शर्तों की व्याख्या यह मानकर की गई है कि निजी वस्तु 'क' तथा 'ख' हे एवं दो ही उपभोक्ता 'अ' तथा 'ब' है।

(अ) यह कि उत्पादन तकनीक दी गई है। इस स्थिति में 'क' दी हुई मात्रा के साथ 'ख' की अधिकतम सम्भव उत्पत्ति होनी चाहिए।

(ब) यह कि 'क' तथा 'ख' के उपभोग में प्रतिस्थापना की सीमान्त दर दोनों उपभोक्ता 'अ' तथा 'ब' के लिए समान होनी चाहिए।

(स) उपभोग में 'क' तथा 'ख' के मध्य प्रति स्थापन की सीमान्त दर ($एमआरएस_{कख}$) तथा उत्पादन में 'क' तथा 'ख' के मध्य रूपान्तर की सीमान्त दर ($एमआरटी_{कख}$) बराबर होनी चाहिए अर्थात् $एमआरएस_{कख} = एमआरडी_{कख}$ सैम्युएलसन मानते हैं कि एक ही निजी वस्तु 'क' तथा एक ही सामाजिक वस्तु 'ग' है। माना कि एक ऐसा सर्वज्ञ आयोजक (Omniscient Planner) है जिसे कार्यकुशल समाधान (Efficient Solution) के लिए जरूरी सभी जानकारी है। इन मान्यताओं के आधार पर अधिकतम लोक व्यय के निर्माण के सम्बनध में जिस समाधान को सैम्युएलसन ने प्रस्तुत किया वह निजी वस्तु के सिलसिले में ऊपर दिये गये समाधान के ही समान है, फिर कुछ अन्तर है। इस अन्तर का कारण है कि सामाजिक वस्तुओं का उपभोग सभी करदाता समान मात्रा में करते हैं। परिामस्वरूप पैरेटो अधिकतम कल्याण के लिए आवश्यक जिन तीन शर्तों की चर्चा की गई, उनमें प्रथम शर्तें में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं हैं। लेकिन शेष दो में कुछ परिवर्तन करने होंगे। शर्त दूसरी अर्थात् 'ब' को लीजिए। सभी उपभोक्ता सामाजिक वस्तु का समान मात्रा में उपभोग कर रहे हैं, इसलिए निजी वस्तु तथा सामाजिक वस्तु के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक नहीं होगी। शर्त तीसरी अर्थात् (स) में भी परिवर्तन होगा। एमआरएस तथा एमआरसी बराबर नहीं होंगे बल्कि उत्पादन में रूपान्तर की सीमान्त पर

एमआरटी उपयोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एमआरएस के योग के बराबर होगी।

## 1.8 जोहानसन का सिद्धान्त (Johansen's Theory) :-

सैम्युएलसन के द्वारा समाधान मिलता है कि कुल उत्पत्ति का निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के मध्य विभिन्न प्रकार से वितरण तथा दो उपभोक्ता 'क' तथा 'ख' के मध्य निजी वस्तु का विभिन्न प्रकार से वितरण। ये सभी समाधान पैरेटो अधिकतम कल्याण है। फिर सामाजिक उपयोगिता फलन के आधार पर सर्वोत्तम अधिकतम (The Optimum of the Optima) का चुनाव होता है। इस प्रकार सामाजिक वस्तु की समस्या का समाधान अधिकतम कल्याण सामान्य समस्या के अंग के रूप में होता है। यह समाधान सैद्धान्तिक कठोरता एवं पूर्ण रूप से परिवकृत है। इसे लोक वित्त के क्षेत्र में आर्थिक कल्याण के सिद्धान्त की महान देन माना है। लेकिन वे लोक वित्तीय सैद्धान्तिक असन्तुष्ट रह जाते हैं जो लोकवित्त का सीमित उपयोग करना चाहते हैं। सैम्युएलसन का सिद्धान्त लोक वित्तीय समस्या के समाधान में उपयोग में लाना कठिन है। इस प्रकार जोहानसन का सिद्धान्त अधिक आकृष्ट करता है जिन्होंने लिण्डल के सिद्धान्त को ही संशोधित किया है। जबकि विकसेल का कहा था कि ''कर के करभार का उचित वितरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक यह न मान लिया जाये कि आय का उचित वितरण विद्यमान है।'' ऐसे वितरण को मानते हुए जोहानसन ने इस विषय पर ध्यान दिया कि किस प्रकार कर एवं व्यय का निर्धारण होता है। लिण्डल का कथन है कि – ''लोक व्यय का निर्धारण उससे सम्बन्धत करके भार के वितरण के साथ होता है। कर के बोझ के वितरण के अनुपात की वही भूमिका है जो साधारण बाजार में मांग एवं पूर्ति के मध्य समायोजन के लिए कीमत की होती है।'' जोहानसन का विश्लेषण साधनों की उपलब्ध मात्रा के अनुरूप ही आय का वितरण होता है। माना कि समाज में दो व्यक्ति 'अ' तथा 'ब' हैं, तथा कुल आय 'र' है। कुल आय में 'अ' का हिस्सा $र_{अ}$ तथा ब का $र_{ब}$ है। अर्थात् $र_{अ} + र_{ब} = र$, अब मान लें कि ह वह अनुपात है, जिसके अनुरूप अ एवं ब के माध्य सामाजिक वस्तु 'ग' की लागत का वितरण होता है। अर्थात् $ह_{अ}$ का अर्थ होगा अ द्वारा लागत का वहन तथा $ह_{ब}$ का अर्थ है 'ब' द्वारा लागत का वहन। ऐसे भी कहा जा सकता है कि सामाजिक वस्तु 'ग' के उत्पादन के लिए कुल जितने कर का भुगतान होता है उसमें $ह_{अ}$ का अ द्वारा तथा $ह_{ब}$ का ब द्वारा भुगतान किया जाता है, अर्थात् $ह_{अ} + ह_{ब} = 1$ या $ह_{ब} = 1 - ह_{अ}$।

## 1.9 सैम्युएलसन तथा मसग्रेव में अन्तर – Difference between Samnelson and Musgrane :-

यह कि सामाजिक वस्तु की विशेषताओं का कल्याण के अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के सामान्य सन्तुलन मॉडल के साथ एकीकरण हो जाता है। जबकि सैम्युएलसन यह बताने में असफल रहे कि समाधान को कैसे लागू किया जाए ? वास्तविक अर्थव्यवस्था में सर्वज्ञ आयोजक नहीं होता, जो हमारी समस्याओं का समाधान करें। सामाजिक वस्तुओं के क्षेत्र में पैरेटो की आर्थिक कुशलता के नियमों को लागू कर सैम्युएलसन ने मूलभूत समाधान प्रस्तुत किया। मसग्रेव का कहना है कि सैम्युएलसन से उनका मतभेद इसी बात को लेकर है कि सामाजिक वस्तु के व्यक्तिगत अधिमान की जानकारी नहीं है। विकसेल का कहना है कि – ''राजनीतिक प्रक्रिया तथा मतदान के द्वारा ही सामाजिक वस्तुओं के लिए प्रति व्यक्ति अधिमान को जाना जा सकता है।'' अधिमान को प्रकट करने की समस्या को टालकर सैम्युएलसन ने आय कर या लोक व्यय के वितरण की समस्या पर विचार ही नहीं किया। सिर्फ निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिकतम कल्याण के सि(ान्त का उपयोग किया है। अतः उन्हें उपर्युक्त समस्याओं को टालने में सफलता मिली। इसी कारण कार्यान्वयन (Implementation) को उन्होंने दृष्टतम करने (Optimisation) की समस्या से अलग रखा। इसी कारण विकसेल के इस विचार से सहमत नहीं थे कि न्यायपूर्ण कर प्रणाली की स्थापना के पूर्व आय के न्यायपूर्ण वितरण की आवश्यकता होती है। समग्रेन का मत है कि सैम्युएलसन तथा विकसेल ने पृथक–पृथक समस्याओं के समाधान की ओर ध्यान दिया। यह मानते हुये कि सामाजिक वस्तुओं के प्रति लोगों के अधिमान की जानकारी है। सैम्युएलसन ने आर्थिक कुशलता की शर्तों को बताने का प्रयास किया। विकसेल ने ऐसा जानने का प्रयास किया कि सामाजिक वस्तुओं के लिए करदाताओं के अधिमान को जाना जाए क्योंकि इसकी जानकारी नहीं है। इसी अधिमान को जानने के लिये विकसेल ने मतदान प्रणाली की सहायता ली। मतदान द्वारा आदर्श एवं आर्थिक दृष्टि से कुशल (Optimal as well as efficient) समाधान तब तक नहीं मिल सकता जब तक आय का वितरण न्यायपूर्ण न हो। मसग्रेव ने अपनी कृति "The theory of public finance" में विचार व्यक्त किये है। मसग्रेव का कथन है कि ''ऐसी तकनीक को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि व्यक्ति सामाजिक वस्तुओं के प्रति अपने अधिमान की व्यक्त कर सकें और पैरेटो के अर्थ में आदर्श समाधान को प्राप्त किया जा सके। इस समस्या का समाधान बाजार प्रणाली द्वारा सम्भव नहीं है। अतः निर्णय लेने की राजनीतिक प्रक्रिया की ओर ध्यान देना होगा। यह शुद्ध आर्थिक समस्या नहीं है। बल्कि राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त का अभिन्न अंग है।'' अर्थात् राजनीतिक प्रक्रिया ही बजट विश्लेषण का हृदय है। इसलिए राजकोषीय सिद्धान्त अर्थशास्त्र की पारम्परिक सीमा को लांघकर राजनीति

शास्त्र के सिद्धान्तों के क्षेत्र में प्रवेश करता है। मसग्रेव के द्वारा कई तरह की मतदान प्रक्रिया की व्याख्या की है।

## 1.10 पैरेटो के कल्याण का अर्थशास्त्र (Pareto's Welfare Economics) :-

पैरेटो ने मुख्य रूप इस बात पर जोर दिया है कि उपभोक्ता, उत्पादनकर्ता तथा विनिमयकर्ता किस प्रकार साधनों का आवंटन करते है। पैरेटो का कथन है कि ''समाज का अधिकतम आर्थिक कल्याण उस समय अधिकतम होता है, जब उपभोग, उत्पादन तथा विनिमय में साधनों का आदर्श आवंटन होता है।'' पैरेटो का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :–

(अ) यह कि समाज के सभी व्यक्तिओं के कल्याण से है।

(ब) यह कि व्यक्तिगत कल्याण को प्रभावित करने वाले सभी गैर आर्थिक कारणों के प्रभाव को भुला दिया जाता है।

(स) यह कि आर्थिक कल्याण का सर्वोत्तम निर्णायक व्यक्ति स्वयं ही है। इस प्रकार पैरेटो उपभोक्ता एवं उत्पादक की सार्वभौमिकता को स्वीकार करते हैं।

(द) यह कि पैरेटो ने पूर्ण प्रतियोगिता को स्वीकार किया। इसलिए कोई एक उपभोक्ता या उत्पादनकर्ता कीमत को प्रभावित करने में सक्षम नहीं होता है।

इन मान्यताओं के आधार पर पैरेटो के द्वारा अधिकतम सामाजिक कल्याण हेतु दो मुख्य बातों पर जोर देते हैं :–

(1) यह कि वितरण दिया हुआ रहे तो आदर्श आर्थिक संगठन वह स्थिति है जिसमें परिवर्तन करके किसी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को तब तक अच्छा नहीं किया जा सकता है, जब तक किसी अन्य की स्थिति पहले की अपेक्षा बुरी न हो जाए।

(2) यह कि ऐसा परिवर्तन जिससे किसी को नुकसान नहीं पहुँचता है, लेकिन कुछ की हालत में सुधार आ जाता है, तो इसे उन्नत स्थिति माना जाएगा।

इस प्रकार पैरेटो ने अन्तवैयक्तिक तुलना (Interpersonal Comparison) की कठिनाई को टाल दिया। पैरेटो का कथन है कि – ''अधिकतम सामाजिक कल्याण तभी प्राप्त होता है जब एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि उस समय हो सकती है जब किसी अन्य के कल्याण में कमी की जाये।'' इस आधार पर पैरेटो ने बताया कि यदि आर्थिक परिवर्तन से किसी को नुकसान न हो तथा कुछ भी हालत सुधर जाये तो ऐसे परिवर्तन को सुधार समझना चाहिए। इस प्रकार किसी को कोई विरोध नहीं हो सकता।

लेकिन ऐसा परिवर्तन भी तो होता है जिसके द्वारा कुछ की हालत सुधर जाती है तथा कुछ की खराब हो जाती है। इस प्रकार के परिवर्तन पर पैरेटो ने ध्यान नहीं दिया और इसलिए अन्तवैयक्तिक तुलना की समस्या से अपने को अलग रखा। इस प्रकार उपर्युक्त स्थितियों को समझने हेतु रेखाचित्र निम्नवत् है :–

माना कि समाज में दो ही व्यक्ति 'क' तथा 'ख' है। रेखाचित्र में 'क' की उपयोगिता को क–अक्ष तथा ख की उपयोगिता को ख–अक्ष पर माना गया है। पैरेटो के सिद्धान्त के अनुसार यदि हम 'अ' बिन्दु से प्रारम्भ करें तो वैसे आर्थिक परिवर्तन जो हमें 'ब', 'स' या 'द' बिन्दु पर ले आते हैं, निश्चित रूप से सामाजिक कल्याण में वृद्धि करते हैं। कारण यह है कि 'ब' बिन्दु पर 'अ' की तुलना में 'क' को अधिक उपयोगिता मिलती है, लेकिन 'ख' की उपयोगिता में कोई कमी नहीं होती है। 'स' बिन्दु पर 'अ' की तुलना में 'क' की उपयोगिता समान रहती है। लेकिन 'ख' को अधिक उपयोगिता मिलती है। 'द' बिन्दु पर दोनों व्यक्तियों को अधिक उपयोगिता मिलती है। 'ध' बिन्दु के विषय में पैरेटो के सिद्धान्त के अनुसार कुछ कहना मुश्किल है, क्योंकि इस पर 'ख' को अधिक उपयोगिता मिलती है लेकिन 'क' को कम। ऐसे परिवर्तनों पर पैरेटो ने विचार नहीं किया। पैरेटो का अधिकतम सामाजिक कल्याण, जिसकी परिभाषा पर दी गई, तभी प्राप्त हो सकता है जब कुछ आवश्यक शर्तें पूरी हों। इन्हें अधिकतम कल्याण की सीमान्त शर्तें कहा जाता है। इस प्रकार की शर्तें निम्नवत् हैं :–

**(क) <u>विनिमय की अनुकूलतम शर्त – Optimum Terms of Exchange</u> :-**

यह कि विनिमय की अनुकूलतम शर्त को वस्तुओं के आदर्श आवंटन की शर्त भी माना जाता है। माना कि एक से अधिक वस्तु का उत्पादन होता है तथा एक से अधिक उपभोक्ता उनका उपभोग करते हैं। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि किन्हीं दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक व्यक्ति के लिए जितनी हो उतनी ही दूसरे व्यक्ति के लिए जब ऐसा मान लिया जाता है कि दोनों व्यक्ति इन दोनों वस्तुओं का उपभोग करते हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विनिमय के माध्यम से एक व्यक्ति के संतोष में वृद्धि दूसरे व्यक्ति के संतोष में कमी किये बिना ही की जा सकती है।

(ख) **अनुकूलतम विशिष्टीकरण की शर्त अथवा उत्पादन का पुनः आवंटन – (Optimal Specification Terms or Reallocation of Production :-**

इस सम्बन्ध में कहना है कि किन्हीं दो उत्पादनकर्ता के लिए जो दो वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, दोनों वस्तुओं के रूपान्तर की सीमान्त दर (एमआरटी) एक समान होनी चाहिए। एमआरटी से आशय यह है कि समान मात्रा में साधनों का प्रयोग करते हुए एक वस्तु की एक अधिक इकाई के उत्पादन के लिए दूसरी वस्तु के उत्पादन में कितनी कमी की जाये। यदि दोनों वस्तुओं की उत्पत्ति बढ़ायी जा सकती है या एक का अधिक उत्पादन करने पर दूसरे के उत्पादन में कमी नहीं करनी पड़ेगी।

(ग) **साधनों के अनुकूलतम उपयोग की शर्त – Terms of Optimal Use of the Resources :-**

यह कि उत्पादन के लिए दो साधनों के बीच की तकनीकी स्थानापन्न की सीमान्त दर (एमआरटीएस) दो उत्पादकों के लिए समान होनी चाहिए। इस समानता की अनुपस्थिति में एक उत्पादनकर्ता से दूसरे के पास साधनों के हस्तान्तरण से कुल उत्पत्ति में वृद्धि होगी।

(घ) **उत्पादन में अनुकूलतम नियन्त्रण की शर्त – Terms of Optimal Control in Production :-**

इससे आशय है कि किन्हीं दो वस्तुओं के बीच का एमआरटी दो उत्पादनकर्ताओं के लिए जितना होगा उतना ही दो वस्तुओं के बीच एमआरएस दो उपभोक्ताओं के लिए होना चाहिए। यह शर्त अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका सम्बन्ध आदर्श आवंटन की मूल समस्या से है।

$\text{एमआरएस}_{\text{अब}}$ = एमआरटीअब

जहाँ एमआरएस = स्थानापन्न की सीमान्त दर,

एमआरटी = रूपान्तरण की सीमान्त दर

तथा 'अ' एवं 'ब' = दो वस्तुएँ।

उपर्युक्त चित्र में क क' रूपान्तरण वक्र तथा ख ख' तटस्थता वक्र है। दोनों वक्रम 'प' बिन्दु पर स्पर्श करते हैं। इस बिन्दु पर स्थानापन्न की सीमान्त दर (एमआरएस) रूपान्तरण की सीमान्त दर (एमआरटी) के बराबर है। यह समानता दोनों उपभोक्ताओं के लिए होनी चाहिए।

**(च) <u>किसी साधन के समय का अनुकूलतम आवंटन – Optimal Allocation of a Resource's Time</u> :-**

यह कि प्रत्येक श्रमिक के लिए श्रम से प्राप्त आय तथा अवकाश के मध्य के स्थानापन्न की सीमान्त दर वही होनी चाहिए, जो सम्पूर्ण समाज के लिए श्रम एवं वस्तु के बीच रूपान्तर की सीमान्त दर होती है।

**(छ) <u>सम्पत्ति के अन्तः कालीन अनुकूलतम वितरण की शर्त – Terms for Optimal Inter-term Distribution of Assets</u> :-**

इसका आशय है कि ऋण लेने तथा ऋण देने से है। किन्हीं दो व्यक्तियों के लिए किन्हीं दो समय में सम्पत्ति के बीच स्थानापन्न की सीमान्त दर समान होनी चाहिए। अर्थात् सभी व्यक्तियों के बीच समय अधिमान की सीमान्त दर (Marginal Rate of Time Preference) समान होनी चाहिए।

**<u>द्वितीय श्रेणी की शर्तें – (Second Order Condition)</u> :-**

अनुकूलतम की सीमान्त शर्तों को प्रथम श्रेणी की शर्तें कहा जाता है लेकिन अधिकतम कल्याण के लिए सिर्फ ये शर्तें ही पर्याप्त नहीं है। इन शर्तों के पूरा होने पर भी सम्भव है कि कल्याण की न्यूनतम स्थिति ही प्राप्त हो।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'क' बिन्दु पर न्यूनतम स्थिति प्राप्त होती है। 'अ ब' एक उपयोगिता सम्भावना वक्र है। उच्चतम चोटी पर पहुँचने के लिए द्वितीय श्रेणी की शर्तों को पूरा करना भी जरूरी है। इस सम्बनध में हिक्स का कथन है कि उच्चतम कल्याण के लिए सफल शर्तों (Total Conditions) की प्राप्ति आवश्यक है। अर्थात् सीमान्त एवं द्वितीय श्रेणी दोनों प्रकार की शर्तों की।

इस रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि 'स' बिन्दु पर ही उच्चतम शिखर की प्राप्ति होती है।

रेखाचित्र में अ, ब, स, द आदि सभी सन्तुलन बिन्दु है, अर्थात् सभी अनुकूलतम बिन्दु है। लेकिन में सिर्फ 'स' ही उच्चतम शिखर है। अन्य बिन्दु जैसे अ, ब, द आदि स्थानीय सर्वोत्तम कह जाते है। 'स' को उच्चतम या विश्वव्यापी सर्वोत्तम कहा जा सकता है।

अन्त में पैरेटो के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें धन तथा आय के वितरण पर विचार नहीं किया जाता है। साथ ही उस स्थिति की व्यवस्था नहीं हो सकती है, जब एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और दूसरे व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पहले की तुलना में खराब हो जाती है। ऐसी स्थिति की व्याख्या के लिए ही कॉल्डर–हिक्स क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

## 1.11 सारांश – Summary :-

लोक व्यय के सिद्धान्त का सारभाग है कि सरकार के द्वारा किन सार्वजनिक सेवाओं को प्रदान किया जाए और कितनी मात्रा में किया जाए, जिससे समाज को अधिकतम कल्याण हो सके। इस प्रकार निजी वस्तु एवं सामाजिक वस्तु का उच्चतम स्तर क्या होना चाहिए। इसके लिए सैम्युएलसन, एडम स्मिथ, पीगू, सैक्स, मैजोला, विकसेल, लिण्डल, पैरेटो, मसग्रेव के द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है। इसके अन्तर्गत, उत्पादन विनिमय, वितरण पर मुख्य रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है। पैरेटो के द्वारा उत्पादन, विनिमय वितरण में साधनों के आदर्श आवंटन को समाज का अधिकतम कल्याण माना है।

## 1.12 शब्दावली – Key Words :-

रूपान्तरण वक्र (Transformation Curve), उच्चतम स्तर (Optimum Level), हस्तक्षेप न करने की नीति (Policy of Non-Intervention or Laissez-Faire), लाभ के सिद्धान्त (Benefit Theory), करदान दान योग्यता के सिद्धान्त (Ability to Pay Theory),

सामाजिक करार का सिद्धान्त (Social Contract Theory), प्रतिगामी (Regressive), द्वैत (Dual), कुशल (Efficient), अविभाज्यता (Indivisibility), बहुल कीमते (Multiple Price), कुशल कीमत (Efficient Tax Price), मुफ्तखोरी (Freerider), एकमत का सिद्धान्त (Principle of Unanimity), लगभग एकमात्र (Approximate Unanimity), स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त (Voluntary Exchange Theory), स्थिर (Constant), सर्वोत्तम समाधान (Optimal Solution0, एक सर्वज्ञ मशीन (Omniscient Calculation Machine), आंशिक साम्य विश्लेषण (Partial Equilibrium Analysis), सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis), अधिकतम कल्याण (Optimum Welfare), परमानन्द बिन्दु (Bliss Point), सर्वोत्तम अधिकतम (The Optimum of the Optima), कार्यान्वयन (Implementation), इष्टतम (Optimisation), समय अधिमान की सीमान्त दर (Marginal rate of time preference).

## 1.13 सन्दर्भित किताबें — Reference Books :-


(1) R.A. Musgrave : (i) Theory of Public Finance
(ii) Public Finance in a Democractic Society, Vol-01,

(2) R.A. Musgrane : & P.B. Musgrane — Public Finance in Theory and Practice (1989)

(3) David, N. Hyman : Public Finance : A Contemporary Application of Theory to Policy.

(4) J. Richard Aronson : Public Finance

(5) Leif Johnson : Public Finance

(6) Musgrane & Peacock : Classics in the Theory of Public Finance

(7) लोकवित्त, डॉ. एस.के. सिंह, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

(8) लोक अर्थशास्त्र, जे.सी. पन्त, लक्ष्मी नारायण अमुकाल, आगरा।

(9) लोकवित्त, एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिसिंग हाऊस प्रा0लि0 नई दिल्ली।


## 1.4 प्रश्न–उत्तर : Question-Answer :-

(1) लिण्डल के स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

(2) सैम्युएलसन के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(3) सैम्युएलसन तथा मसग्रेव के सिद्धान्त में क्या अन्तर है।

(4) जोहानसन धारणा की विवेचना कीजिए।

(5) सामाजिक वस्तु के सिद्धान्त के विकास पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

(6) सैक्स के सिद्धान्त को बताइये।

(7) मैजोला के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(8) विकसेल के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(9) पैरेटो के कल्याण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(10) पैरेटो का अधिकतम सामाजिक कल्याण की शर्तें की विवेचना कीजिए।

**<u>बहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर – (Objective Type Question-Answer)</u> :-**

(1) आंशिक साम्य विश्लेषण है –

(अ) निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के कुशलता प्रावधान

(ब) निजी एवं सामाजिक वस्तु के उत्पादन एवं उपभोग

(स) उपर्युक्त दोनों अ तथा ब

(द) इनमें से कोई नहीं

**(उत्तर – अ)**

(2) सामान्य सन्तुलन विशलेषण है –

(अ) निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के मध्य आदर्श आवंटन

(ब) निजी एवं सामाजिक वस्तुओं के बीच में अन्तर

(स) उपर्युक्त दोनों 'अ' तथा 'ब'

(द) इनमें से कोई नहीं

**(उत्तर – अ)**

(3) लोक व्यय के आधुनिक सिद्धान्त का प्रारम्भ किस वर्ष से माना जाता है –

(अ) 1880 (ब) 1954

(स) 1920 (द) 1776

**(उत्तर – ब)**

(4) सैक्स (Sax) ने सामूहिक वस्तुओं को कितने भागों में बांटा है –

(अ) चार (ब) छैः

(स) दो (द) तीन

**(उत्तर – स)**

(5) मैजोला ने सर्वप्रथम सार्वजनिक वस्तुओं की आधुनिक परिभाषा किस वर्ष में दी–

(अ) 1920 (ब) 1921

(स) 1880 (द) 1890

**(उत्तर – द)**

(6) एकमत का सिद्धान्त के प्रतिपादन कौन है –

(अ) पैरेटो (ब) विकसेल

(स) मैजोला (द) पीमू

**(उत्तर – ब)**

(7) लिण्डल का सिद्धान्त आगे चलकर क्या कहलाया है –

(अ) स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त (ब) कल्याण का सिद्धान्त

(स) उपयोगिता का सिद्धान्त (द) इनमें से कोई नहीं

**(उत्तर – अ)**

(8) The Pure Theory of Public Expenditure लेख किसका है –

(अ) पैरेटो (ब) पीगू

(स) एडम स्थिम (द) सैम्युएलसन

**(उत्तर – द)**

(9) कल्याण के नये अर्थशास्त्र के जन्मदाता किसे माना जाता है –

(अ) पीगू (ब) पैरेटो

(स) सैम्युएलसन (द) कॉलडार–हिक्स

**(उत्तर – ब)**

(10) पैरेटो का अधिकतम सामाजिक कल्याण की सीमान्त शर्तें है –

(अ) विनिमय की अनुकूलतम शर्त

(ब) साधनों की अनुकूलतम उपयोग की शर्त

(स) उत्पादन में अनुकूलतम नियन्त्रण की शर्त

(द) उपर्युक्त सभी

**(उत्तर – द)**

(11) पैरेटो के उत्पादन में अनुकूलतम नियन्त्रण की शर्त में –

(अ) $\text{एम.आर.एस.}_{\text{अब}} = \text{एम.आर.टी.}_{\text{अब}}$

(ब) $\text{एम.आर.एस.}_{\text{अब}} > \text{एम.आर.टी.}_{\text{अब}}$

(स) $\text{एम.आर.एस} < \text{एम.आर.टी.}_{\text{अब}}$

(द) इनमें से कोई नहीं

**(उत्तर – अ)**

(12) ''आर्थिक कल्याण का सर्वोत्तम निर्णायक व्यक्ति स्वयं ही है'' यह कथन किसका है –

(अ) पीमू (ब) एडम स्मिथ

(स) अमर्त्य सेन (द) पैरेटो

**(उत्तर – द)**

(13) समाज का आर्थिक कल्याण कब होता है, जब –

(अ) उपभोग, उत्पादन व विनिमय में साधनों का आदर्श आवंटन होता है

(ब) आय के वितरण में साधनों का आदर्श आवंटन होता है

(स) उपर्युक्त दोनों

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

**(उत्तर – अ)**

# खण्ड – 03

## इकाई– 01

## करारोपण के सिद्वान्त (Principle of Taxation)

### 1.1 परिचय : Introduction :

करारोपण के सिध्दान्त से आशय है कि कर की संरचना (Structure) के विकास के लिए उचित कसौटी (Criteria) का निर्धारण करना है। प्राचीनकाल में करो का राजकीय व्यवस्था में कोई स्थान न होने के कारण, इसीलिए सन् 1500 तक तो इसके बारे ान भी नहीं था। सन् 1500 के बाद जर्मनी के द्वारा करों से आय प्राप्त करने की शुरूआत की थी। वर्तमान में कर राज्य की आय प्राप्ति के प्रमुख साधन है। आज कर साधन में इतनी प्रगति हो गई है जिससे अब बिना कर के सरकार का अस्तित्व ही सम्भव नहीं हैं। यह भी सत्य है कि अब नागीकभी स्वेच्छा से करों का भुगतान करने लगे है जबकि प्राचीनकाल में कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से कर नहीं देता था। कर की राशि निर्धारित करते समय, कर भार के विवरण के आधार का अध्ययन करना जरूरी है। यह भी सत्य है कि करों का एचित एवं न्यायपूर्ण विवरण है। अब प्रश्न है कि कर का उचित एवं न्यायपूर्ण विवरण किस ढंग से होना चाहिए। इस संबंध में कर के नियम (Canons of taxation) के विकास पूर्व वणिकवादियों (Mercantilist) एवं प्रकृतिवादियों (Physiocrats) में कर के सिद्वान्त पर विचार दिये थे। एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक Wealth of Nation में करारोपण के सिद्वान्त की व्यावया के बाद पीगू तथा डाल्टन ने इस विष्य पर अपने विचार व्यक्त किए। इस संबंन्ध में जे0एफ0डयू (J.F. Due) का कहना है कि करारोपण के सिद्वान्त का विकास मुख्य रू‍प से कल्याण के सिद्वान्त का क्रियान्वयन ही है। अतः इस स में आगे विकास कत्प्याण के सिद्वान्त के विकास पर निर्भर करेगा। कत्प्याण के सिद्वान्त की वर्तमान स्थिति ऐसी है कि वह करारोपण के सिद्वान्तों को मोटे रूप में विकसित करने के अतिक्ति और कोई सहायता नहीं पहुॅचा सकता है। इस संबंध में श्रीमती उर्सला हिक्स का कथन है कि वित मंत्री को अपने बजट में नयें करों के प्रस्ताव को प्रस्तुत करते समय कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए। प्रथम, आय का उध्देश्य सामाजिक सेवाओं के व्ययों को पूर्ण करना होना चाहिए। इसमें वही सेवाएॅ हो जो अव्यधिक कुशल एवं लाभप्रद हों। इतना होने पर भी कुछ गौण मदों पर कुछ विशेष परिस्थितियों में व्यय करना वांछनीय है जैसे विपरीत भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए और अवांछनीय वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगाने के लिए। दूसरा, नागारिकों पर कर उनकी कर देने की सामर्थ्य के ही आधार पर लगाना जाना चाहिए।

सामर्थ्य के आधार पर कर लगाते समय लोगों की सम्पति एवं पारिवारिक प्रष्टभूमि को ध्यान मे रखना आवश्यक है। तीसरे कर विश्वव्यापी होने चाहिए। ये समान आय समूह के लोगों पर समान रूप से लगाये जाने चाहिए। उत्पादन में वृद्वि का आदर्श तभी प्राप्त हो सकता है जब अत्यधिक करों का निर्धारण किया जाए। दूसरी बात है कि कुशल सिद्वान्त सामाजिक न्याय की है तो इसका संबंध उपयोगित के आधार से भी है। सामार्थ्य की विवेचना करने के लिए अनेक मतभेद है। सामर्थ्य के प्रश्न पर कर हेतु विवेचना नीति के आधार पर करनी पड़ेगी। व्यक्तिओं के कल्याण एवं उच्चतम जीवन–सतर की प्राप्ति और समाज द्वारा स्वीकृत आय का विवरण के आधार करारोपण के सिद्वान्त का उदया हुआ।

## 1.1 उद्वेश्य : Objects :

(अ) व्यक्तिओं के कल्याण को ध्यान में रखकर चयन (choice) की अधिकतम स्वतंत्रता।

(ब) उपभोक्ता एवं उप्तादक साधनों के अधिमान को ध्यान में रखकर उपलब्ध साधनों तथा तकनीक के आधार पर उच्चतम जीवन स्तर की प्राप्ति।

(स) समाज द्वारा स्वीकृत आय का वितरण।

(द) सामाजिक कल्याण

(ई) परिप्याग की समान्ता

## 1.2 समानता का सिद्वान्त (Principle of Equity) :-

समानता के संबंध में एडम स्मिथ का कथन है कि प्रत्येक राज्य की प्रजा को सरकार के लालन–पालन के लिए, जहॉ तक सम्भव हो, अपना अंशदान अपनी –अपनी योग्यता के अनुसार देना चाहिए, अथति उस आय के अनुपात मे जिसका आनन्द वे राजय की संरक्षता में प्राप्त करते है। इससे तात्पर्य है कि व्यक्तियों को अपनी योग्यतानुसार सरकार को कर देना चाहिए, या व्यक्तियों पर जो कर लगाये जाते हैं उनका आधार व्यक्तिओं की कर देने की योग्यता होना चाहिए, तभी लोगों के साथ न्याय हो सकता है। एडम स्मिथ का कहता है कि निर्धन व्यक्ति की अपेक्षा धनी व्यक्ति से अधिक कर लेना चाहिए। इस संबंध में मिल का कथन है कि यह नियम कराधान का महानतम का महानतम नियम है समता अथति साधनों के अनुपात में कराधान। समानता का सिद्वान्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है, इसलिए कि इसमें नैतिकता के दृष्टिमोठा से इंकार नहीं किया जा सकता हैं। कहना चाहिए कि कर को समान होना चाहिए। यह सैध्दान्तिक पस माना जा सकता है जबकि व्यावहाकि पक्ष में

यह जरूरी है कि कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो करदाता को स्वीकार्य हों। करभार के समान वितरण को ही समानता कहा जाता है। सार्वजनिक कार्य के लिए किये गये व्यय को पूरा करने में सभी करदाताओं को उचित हिस्सा क्हना करना चाहिए। लेकिन ऐसा कहना आसान है, पर निर्धारण करना बहुत कठिन कार्य है। इसका उचित हिस्सा क्या होगा। समानता को साधारणतः क्षैतिज एवं ऊर्ध्व समानता (Horizontal and vertical) में विभक्त किया जा सकता है। क्षैतिज समानता से आशय है कि समान परिस्थिति वाले करदाताओं के साथ समान समान आचारण। ऊर्ध्व समानता का आशय है कि असमान पारिस्थिति वाले करदाताओं के साथ असमान व्यवहार दोनों प्रकार की समानता एक–एक ही सिद्वान्त अथति समान आवरण के अंग है। करभार के समान विवरण के संबंध में दो सिद्वान्तों का अधिकतर उल्लेख होता है। एक, लाभ का सिद्वान्त (Benefit Principle) और दूसरा, करदान योग्यता का सिद्वान्त (Ability to Pay Principle) । एडम स्मिथ का कहना है कि आय के अनुपात में कर देना चाहिए। आय (Revenue) का संबंध उस आय (Income) से है जो किसी भी व्यक्ति को राज्य के सरक्षण में प्राप्ह होती है। इस तरह से एडम स्मिथ करारोपण की समानुपातिक दर का पक्ष लेते नजर आते है। लेकिन वर्तमान में अर्थशस्त्री एडम स्मिथ के विचार से सहमत नहीं है। क्योंकि समानुपातिक दर न्यायपूर्ण क्योंकि मुद्रा का सीमान्त तुष्तिगण घटता जाता है, ज्यों–ज्यों इसका स्टाक बढ़ता जाता है। अतः अमीर व्यक्ति को निर्धन की अपेक्षा एक दर पर कर देने में कम व्याग या अनुपयोगिता महसूस होती है। अतः करारोपण में प्रगकतशील करों के पक्ष में दलील दी जाती है। वर्तमान में प्रगतिशील करों के लगाने का अर्थशास्त्रियों आथिक सलाहकारों के द्वारा पक्ष लिया जाता है।

### 1.3 <u>निश्चितता का सिद्वान्त (Principle of Certainty)</u> :-

निश्चितता (Certainty) से तात्पर्य है कि कर देने व कर लेने वाले व्यक्तियों को इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए। यह भी निश्चित होना चाहिए कि उसे कब और कितना कर देना या लेना है। कर लेने वाली सरकार को जानना चाहिए कि किस साधन से कितनी आय लोगों को प्राप्त ही रही है। यदि सही तथ्य एवं जानकारी सरकार ने जुटा ली तो वह अपने उदेहश्य में कामयाब हो सकती है। अन्यथा को स्थिति में असफल। करदाता को करों के भुगतान के समय, भुगतान के तरीके एवं राशि की पूर्ण सूचना होनी चाहिए, जिससे करदाता को किसी प्रकार की अनिश्चितता एवं परेशानी का सामना न करना पड़े। अगर करों का संकलनकर्ता निर्धारित समय की अपेक्षा जब इच्छा हो तब करने लगे तो करदाताओं को अत्यधिक परेशानियों का सामना करनी पड़ सकती है। सदि करदाता को कर कर की दर एवंधनराशि का ान न होतो

इस बात के काफी अवसर पैदा हो सकते है कि करों को एकता करने वाला चालाकी करें। अगर वह उचित दर से भी कर एकत्र करें तो भुगतानकर्ता को यह भ्रम हो सकता है कि वह उगा जा रहा है। इसीलिए करों का भुगतान हेतु तरीके एवं राशि की निश्चितता समय का निर्धारण अवश्य निश्चित होना चाहिए। जिससे व्यक्ति को कर भुगतान कर में परेशानी न हो। यदि कर प्रणाली में उन बातों का अभाव होने की स्थिति में करदाता को परेशानी के साथ भ्रम आदि का सामना करना पड़ सकता है। इस संबंध में एडम स्थिति का कथन है कि– प्रतयेक कर जिसे हर व्यक्ति को कानून प्रदान करना है, निश्चित होना चाहिए। कर के भुगतान का समय भुगतान को रीति, भुगतान को जाने वाली राशि का प्रत्येक व्यक्ति एवं करदाता को श्रेष्ट ान होना चाहिए। करों की अनिश्चिर्तता बेईमानी को प्रोप्साहन देती है और अव्यक्तिओं को भ्रष्टाचार करने के लिए उत्साह प्रदान करती है जो स्वभावतः बेईमान होते हैः यहॉ तक कि उन व्यक्तिओं को भी बेईमानी के दायरें में खीच लाती हैं, जो बेईमान नहीं होते है। उस प्रकार एडम स्मिथ का कहना कि प्रतयेक कम अंश वाली अनिश्चितता बड़े अंश की करारोपण की असमानता की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। निश्चितता का सिद्वान्त के संबंध में एडम स्मिथ का मानना है कि – सरकार को भी इस बात को निश्चितता होनी चाहिए कि उसे करों के द्वारा कितनी आमदनी होगी। इसमें सार्वजनिक व्यय भी योजना के निर्माण संबंधी पूर्वानुमान में सालता होगी। निश्चितता का सिद्वान्त की मुख्य बाते है।

1. भार की निश्चितता (Certainty of incidence)
2. दायित्व की निश्चितता (Certainty of Liability)
3. अपवंचन अनुपात (Evasion Ration)
4. राजकोषीप निशानेबाजी (Fiscal Markmanship)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर के भार की अनिश्चिता होने के कारण सरकार किसी भी वित्रीप प्रकिया के प्रभाव का आंकलन नहीं कर सकती है। दायित्व की निश्चिता होने से कर दायित्व का अनुमान आसानी से लगाना जा सकता है। अयवंचन की मात्रा का पता चल जाने पर राजस्व का ान हो जनता है। आयकर ही सर्वाहित अयवंचन का क्षेत्र प्रदान करता है। राजकोषीष निशानेवाजी से सरकार को पता चल सकता है कि राजस्व की प्राप्ति हो सकती है।

## 1.4 <u>सुविधा का सिद्वान्त (Principle of Convenience)</u> :-

यह कि करों का संकलन ऐसे समय व तरीके से होना चाहिए, कि जो अत्यधिक सुविधाजनक हों। ऐसे कर जिनके भुगतान के समय एवं तरीके के संबंध में

निश्चित जानकारी होती है और जो ऐसे समय पर एकत्र किये जाते है, जब कि लोगों के पास मुद्रा होती है, लोगों को बहुत कम खटकते है। इसीलिए करदाता को कर देते समय कोई मानसिक कष्ट या असुविधा नहीं होनी चाहिए, जैसे–कृषक से लगाने फसल कटने पर, वेतन भोगी से कर की क्सूली वेतन मिलने पर तथा बिक्री कर की वसूली वेतन प्राप्त पर को जानी चाहिए। अप्रत्यक्ष कर इतने सुविधाजनक होते हैं कि अगर कोई व्यक्ति करों के भुगतान की तुलना में वस्तुओं की कीमत देने में अधिक असुविधा महसूस करता है ते। यह उसकी अपनी गलती है। एडम स्मिथ का कथन है कि प्रत्येक कर ऐसे समय और इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि वह_भुगतान करने वाले के लिए अत्यधिक सुविधाजनक हो। भूमि या मकान का लगान जो एक तरीके के भुगतान के योग्य हैं ऐसे समय पर जमा किये जाते हैं जो करदाता के लिए अत्यधिक सुविधाजनक हो या जब करदाता के पास पर्याप्त राशि भुगतान करने के लिये होती है। उपभोग की वस्तुओं एवं क्लिासिता की वस्तुओं पर लगाये जाने वाले करों का भुगतान अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं द्वारा होता है, ऐसे तरीके से जो उनके लिए अत्यधिक सुविधाजनक होता है। सुविधाजनक भुगतान__के प्रमुख उदाहरण है, जैसे– आय कर का भुगतान आय प्राप्त करते समय और बिक्री–कर का भुगतान वस्तु को क्रय करते समय होना चाहिए। इससे करदाता को न तो असुविधा होती है और न हो वह करों का भाग महसूस करता है।

## 1.5 मितव्ययिता का सिद्वान्त (Principle of Economy) :-

यह सिद्वान्त की मुख्य बात यह है कि करों के संकलन एवं शासन के संबंध में किसी प्रकार की फिजूलखर्चा नहीं होनी चाहिए। जनता की जेब से प्राप्त होने वाली मुद्रा एवं सरकारी कोष में जमा होने वाली मुद्रा में बहुत कम अन्तर होना चाहिए। एडम स्मिथ का विचार था कि यदि राज्य को करों से होने वाली आय की तुलना में उनके संग्रह पर व्यय अधिक होता है, तो इससे राजकीय आय में कमी होगी। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति से कर के रूप में 100 रूपया वसूल करना है और जो व्यवस्था वसूल करती है, उस पर 100 रूपया व्यय करना पड़े, तो यह प्रकिया उपर्युक्त नहीं होगी। करारोपण एक प्रकार का उत्पादिक कार्य है, इसीलिए इसमें जितनी ज्यादा भितत्यायिता होगी उससे करदाताओं को उतना ही अधिक लाभ होगा। इस संबंध में एडम स्मिथ का कथन है कि प्रत्येक कर की रचना इस प्रकार की जानी चाहिए कि सरकारी खजाने में जो राशि प्राप्त हो उसके अतिरिक्त व्यक्तियों को अपनी जेबों में रखने एवं निकालने की राशि कम से कम हो। करारोपण को उत्पादन कार्य मजा गया है। हॉब्सन, विकस्टैंड, वैगनर एवं रॉबर्ट जोन्स के अनुसार नितव्ययिता का सिद्वान्त एक

को एक उचित बताया था। इस संबंध में डाल्टन का कथन है कि – वह कर पद्वति सर्वात्रित है, जिसमें कर वसूल करने की लामत, संग्रह की जाने वाली राशि के अनुपात में कम हो। यह भी तथ्य है कि करारोपण को उत्पादन कार्यों से संबंधित किया गया है। इस संबंध में प्रो.जे.के. मेहता का कथन है कि करारोपण उत्पादन की एक क्रिया है, अतः प्रत्येक को उत्पादन में यथासम्भव मितव्ययिता प्राप्त करनी चाहिए। इस संबंध में शिराज का कथन है कि जितनी सफलता एडम स्मिथ को कर के सिद्वान्तों को सूक्षम करके सरल व स्पष्ट रूप में रखने में मिलती है, उतनी सफलता अन्य किसी सिद्वान्त को प्राप्त नहीं हुई है। वर्तमान में स्मिथ के कर सिद्वान्त कित्र के अध्ययन का एक आवश्यक अंग माने जाते है। यदि कर वसूलने में फिजूलखर्ची होगी, तो उसका अधिकांश भाग सरकारी खजाने में नहीं जायेगा तथा सरकार भी जन–समाज पर कम धन व्यय करेगी।'' वर्तमान में समय में करों को संग्रह करना बहुत खर्चीला हो गया है जिनके कारण निम्नवत् है :–

(अ) यह कि कर–व्यवस्था में संलग्न व्यक्तिओं की संख्या अधिक होने के कारण उनके वेतन, भत्ता, टी.ए., डी.ए. आदि में अधिक व्यय हो जाता है।

(ब) यह कि कर–व्यवस्था इतनी जटिल है कि वह करदाता को समझ से परे होने के कारण, वकीलों व कर विशेषज्ञों, सी.ए. आदि का सहारा लेना पड़ता है, जिसका भुगतान करना पड़ता है। इस प्रकार करदाता को हानि होती है।

(स) यह कि कभी–कभी प्रगतिशील करों के द्वारा पूँजी के निर्माण में कमी आ जाती है। पूँजी में कमी के परिणाम स्वरूप उत्पादन व रोजगार में कमी होती है, जिससे देश को नुकसान उठाना पड़ता है।

(द) यह कि करारोपण लोगों को ऐसा विनियोग करने के लिए भी प्रोत्साहित करता है, जिससे भविष्य में व्यक्ति को लाभ न मिल पाता हो।

इसके बावजूद आधुनिक अर्थशास्त्री मितव्ययिता का अथ व्यापक दृष्टिकोण से लगाते हैं। उनका मत है कि यदि कर देश के व्यापार, उद्योग तथा आर्थिक स्थिति पर कुप्रभाव पड़ता है तो उसे मितव्ययी नहीं कहा जा सकता है। अतः मितव्ययी का अर्थ है कि कर को प्राप्त करने में कम से कम व्यय होना चाहिए और इससे लोगों के धन बचत करने की इच्छा तथा समाज के उत्पादन पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक "Wealth of Nations" में समानता का सिद्धान्त, निश्चितता का सिद्धान्त, सुविधा

का सिद्धान्त, मितव्यायता का सिद्धान्त के बतायें है। इनके अतिरिक्त अन्य सिद्धान्त भी अर्थशास्त्रियों के द्वारा बताये गये हैं जो निम्नवत् है :–

### 1.6 उत्पादकता का सिद्धान्त Canon of Productivity :-

इस सिद्धान्त को बेस्टेबिल ने बताया है। उत्पादकता का अभिप्राय है कि एक कर ऐसा होना चाहिए जिससे सरकार को पर्याप्त आय हो अर्थात् कर से वसूली अधिक हो और खर्च कम हो। दूसरा, कर इस प्रकार लगाये जाने चाहिए कि इनके द्वारा उद्योगों के संचालन में किसी प्रकार की बाधा नहीं होना चाहिए। सरल शब्दों में, करों के लगने से करदाताओं की काम करने व बचत करने की इच्छा व योग्यता पर बुरा प्रभाव न पड़े, अर्थात् करारोपण से वितरण एवं रोजगार प्रोत्साहित होता रहे।

### 1.7 लोच का सिद्धान्त Canon of Elasticity :-

वर्तमान समय में लोच का सिद्धान्त का विशेष महत्व है। लोच के सिद्धान्त का अभिप्राय है कि करों से होने वाली आय जरूरत के अनुसार घटाया व बढ़ाया जाना ही लोच मानी जाती है। समाज की उन्नति के साथ–साथ सार्वजनिक व्यय भी बढ़ता जाता है। इस प्रकार कर की एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि उससे आय में जरूरत के अनुसार वृद्धि की जा सके। कर में लोच होने से परिस्थितियों के अनुसार उसे घटाया व बढ़ाया जा सके, जैसे आय कर लोच का एक उत्तम उदाहरण है क्योंकि कर की थोड़ी–सी दर घटाकर सरकार की आय पर्याप्त घटायी जा सकती है और इसी प्रकार कर की थोड़ी दर को बढ़ाकर, आय में वृद्धि की जा सकती है। एक लोचदार कर व्यवस्था जनता तथा सरकार दोनों के लिए न्यूनतम कष्टदायक होती है।

### 1.8 सरलता का सिद्धान्त (Cannon of Simplicity) :-

कर इतना सरल हो ताकि इसके निर्धारण का उद्देश्य, प्रभाव आदि आसानी से समझा जा सके और उसे समझने के लिए करदाता को विशेषज्ञों की सहायता ने लेनी पड़े। यदि कर–प्रणाली सरल न होने के कारण करदाता ठगे जा सकते हैं। वर्तमान में भारत की कर प्रणाली इतनी जटिल व पेचीदा हे कि वह आसानी से समझ में नहीं आती है। इस कारण करदाता कर–विशेषज्ञों एवं वकीलों व सी.ए. के चक्कर काटते रहते हैं, जिससे करदाता में असन्तोष बढ़ने लगता है। इसीलिए कर–प्रणाली सरल, सहज होनी चाहिए जिससे करदाताओं को कोई कठिनाई न हो।

### 1.9 वाँछनीयता का सिद्धान्त (Canon of Expediency) :-

प्रत्येक कर ऐसे आधार पर लगाया जाना चाहिए कि उसका औचिव्य होना चाहिए। प्रजातांत्रिक देशों में इसका विशेष महत्व होता है। कर ऐसे लगाना चाहिए कि

करदाताओं को उनके औचिव्य के विषय में किसी प्रकार का सन्देह न हो। बिना किसी कारण के लगाये जाने वाले कर उत्रेजनात्मक हो। सकते है, जो प्रतिकूल परिणाम उस सकते है। करदाता को इस बात का विश्वास दिलाना जरूरी होता है कि उस पर लगाया जाने वाली कर सर्वमान्य एवं उचित तथा जनहित में है।

### 1.10 विविधता का सिद्धान्त (Canon of Diversity) :-

कर प्रणाली में विविधता का होना जरूरी है। इसका अभिप्राय है कि कर अनेकप्रकार के होने चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति से अंशदान प्राप्त किये जा सकें। इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का इस तरह से विभाजन होने चाहिए कि प्रत्येक्ष व्यक्ति कर का उचित तरीके से भुगतान कर सके साथ ही वांछनीय बिन्दुओ तक लाना उचित माना जा सकता है। इस विविधता से कर–भार भी कम रहता है तथा सभी वस्तुओ की मॉग बनी रहती है। लेकिन इनमें करों की संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए। करों की संख्या बढ़ाने से एकत्रीकरण का व्यय भी बढ़ जायेगा और यह सिद्धान्त मितर्व्यायता एवं उतपादिकता के सिद्धान्त के विपरीत होगा। अतः विविधता के सिद्धान्त का प्रयोग समिति मात्रा में ही किया जाना चाहिए।

### 1.11 एकरूपता का सिद्धान्त (Canon of Uniformity) :-

नित्री एवं कोनार्ड (Nitty and Conard) का विचार है कि करारोपण में एकरूपता आना आवश्यक है। समस्त करों को लगाने की विधि समान होनी चाहिए तथा उन सभी करों का निर्धारण सामान्य उदेश्य से किया जाना चाहिए। कर प्रणाली में समानता का मुण होना चाहिए, जिससे हिसाब–किताब संबंधी जटिलताऍ समाप्त हो सकें। एकरूपता होने से प्रशासनिक कठिनाइयॉ कम हो जाती है। एकरूपता के कारण को किसी भी कर के बारे में कोई समस्या नहीं रहती है।

### 1.12 समन्वय का सिद्धान्त (Canon of Co-ordination) :-

देश की कर प्रणाली का संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि करों में अधिक से अधिक समन्वय स्थपित किया जा सकें तथा करों के द्वारा उप्पन होने वाली कठिनाइयों को सरलता से दूर किया जा सकें। विभिन करों को एकत्र करने में किसी प्रकार की कठिनाइयों या सीमाओं का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। कर को इकट्ठा करने के लिए कर्मचारी एक–दूसरे के क्षेत्र में उल्लेघन न करें। इससे करों के सग्रह में प्रशासनिक कठिनाइयों उप्पन हो सकती है। उदाहरण के तौर पर, जैसे बिक्री कर को पहले एक राज्य से बाद में दूसरे राज्य से वसूल किया जाये तो वह उचित प्रतीत नहीं

होता है। इसके आवश्यक है कि विभिन राज्यों एवं स्थानीय निकायों की कर नीति में समन्वय स्थापित किया जाए।

### 1.13 कोमलता एवं प्याप्तिता का सिद्धान्त (Canon of flexibility and Sufficiency) :-

इस सिद्धान्त श्रेय फिण्डले शिराज को जाता है। फिण्डले शिराज का कहना है कि करों की प्रकृति कोमल होनी चाहिए। कोमलता के सिद्धान्त का आशय कर–प्रणाली की ऐसी व्यवस्था से है कि उसमें नवीन करों को बढ़ाकर पुराने करों को सरलाता से निकाला जा सकें। प्र्याप्तता का सिद्धान्त आवश्यकताओं से संबंधित है। राज्य की आवश्यकताओं पर ही आय की प्र्याप्तता निर्भर करती है। राज्य के कार्य क्षेत्र में वृद्धि होने से उसकी आय की प्र्याप्तता भी बढ़ती जा रही है। मूल्य में वृद्धि होने से आवश्याकताएँ समान रहने पर भी राजकीय व्यय में वृद्धि हो जाती है और गत वर्ष की प्र्याप्त आय इस वर्ष अपर्याप्त मानी जा सकती है। इसलिए प्र्याप्त एक निरपेक्ष शब्द नहीं हैं। यह गुण उस समय तक व्यर्थ माना जाता है, जब तक कि उन परिस्थितियों का वणनि न किया जाए जिन पर कि यह निर्भर है।

### 1.14 प्रशासकीय कुशलता का सिद्धान्त (Principle of Administrative Efficiency) :-

इस सिद्धान्त का सीधा संबंध कर वसूली की लागत से है। यह भी सामान्य बात है कि लागत सामान्यतः अधिक नहीं होती है, लेकिन वसूली की लागत में सिर्फ कर प्रशासन के कर्मचारियों पर किया गया खर्च ही शामिल नहीं करना चाहिए, बल्कि करदाता द्वारा कर भुगतान करने में खर्च किया गया समय तथा कर, वकीलो एवं लेखाकारों पर व्यय को भी शामिल करना चाहिए। इन सभी मदों को जोड़ने पर एक वसूली की लागत कुी ज्यादा हो सकती है।

### 1.15 श्रीमती हिक्स का सिद्धान्त (Canon of Misflicks) :-

श्रीमती हिक्स का विचार है कि एक–सी आर्थिक स्थिति रखने के लिए व्यक्ति से समान आधार पर कर लेना चाहिए साथ विभेदात्मक नीति का पालन नहीं करना चाहिए। साथ ही करारोपण का उपयोग लोकोपयोगी सेवाओं को विकसित करने में किया जाना चाहिए तथा कर का उपयोग सदैव आम जनता की भलाई में किया जाना उन्नति माना जाता है। इसके अतिरिक्त हिक्स का कहना है कि साधारणतः करारोपण करदान सामर्थ्य के आधार पर किया जाना चाहिए, जिससे अधिक आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से अधिक मात्रा में कर वसूल किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में लुट्ज का कथन है कि – ''न तो कोई कर पूर्ण है और न ही कोई पूर्णतयाः खराब ही है।'' श्रीमती हिक्स का कहना है कि – ''प्रत्येक कर पृथक–पृथक न लेकर सम्पूर्ण प्रणाली

पर ही ध्यान देना चाहिए।'' इससे स्पष्ट होता है कि जनता को अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो सके, इसलिए कर–प्रणाली में सभी करों का समावेश होना चाहिए।

## 1.16 सिसमाण्डी का सिद्धान्त (Canon of Sismondi) :-

सिसमाण्डी का नाम आर्थिक विचारों के इतिहास में महत्वपूर्ण है। सिसमाण्डी का विचार है कि जीवन से सम्बन्धित आवश्यक आय एवं उपभोग पर कर नहीं लगाना चाहिए, जिससे गरीब वर्ग पर कर का भार अधिक पड़ेगा, जो कि हानिप्रद होता है। साथ ही कर की राशि इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि जिस धन पर वह लगायी जाये, उसको किसी अन्य क्षेत्र में जाने की प्रेरणा न मिले। कर इस ढ़ंग से लगाये जाए कि उनका भुगतान पूँजी के स्थान पर आय में से किया जाना चाहिए।

## 1.17 न्यूनतम समग्र त्याग का सिद्धान्त (Least Aggregate Sacrifice Principle of Taxation):-

मिल ने लाभ के सिद्धान्त का परित्याग करके कर देय योग्यता को करारोपण का सही सिद्धान्त समानता के दृष्टिकोण से माना और कहा कि समानता पर आधारित करारोपण का अर्थ है कर के भुगतान में त्याग की समानता (Principle of equity) की व्याख्या करते हुए कहा कि इसका यह अर्थ है कि ''समान तथा समान परिस्थिति के व्यक्तियों के साथ समान आचरण होना चाहिए।'' (Similar and similarly situated persons ought to be treated similarly).

पीगू का कहना है कि समान तथा समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों की कर के भुगतान में समान त्याग एक बात है, किन्तु यह कहना कि कर के भुगतान में सभी व्यक्तियों को समान त्याग करना चाहिए दूसरी बात है। कारण यह है कि जब सभी व्यक्तियों की बात उठती है तब हम उनकी बात करते हैं जो समान आर्थिक परिस्थिति में हैं तथा उनकी भी जो समान आर्थिक सिीति में नहीं हैं – उनकी जिनकी आय बराबर है और उनकी भी जिनकी आय में अन्तर है (कम तथा अधिक है)। पीगू पूछते हैं कि ''क्या इस विस्तृत अर्थ में समान त्याग करारोपण का चरम सिद्धान्त है?'' ऐसा मान लेने पर गम्भीर कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। समानता के सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कर के भुगतान में सभी को समान त्याग करना चाहिए, किन्तु इस सिद्धान्त से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि कर के नियमों को व्यक्तियों के बीच इस अर्थ में निष्पक्ष होना चाहिए कि कर के भुगतान के बाद सभी करदाताओं को समान निवल संतुष्टि (Equal net satisfaction) मिले। यदि इस निष्कर्ष को स्वीकार किया जाता है तो 'समान त्याग' को करारोपण के चरम सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन के आधापर पीगू ने कहा करारोपण का चरम सिद्धान्त 'न्यूनतम समय त्याग' (Least Aggregate Sacrifice) है, न कि समाज त्याग। पीगू के न्यूनतम त्याग के सिद्धान्त के विश्लेषण के पूर्व इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है।

मिल ने समान त्याग की वकालत अवश्य की, किन्तु वे 'समान' की ठीक–ठीक व्याख्या नहीं कर सके। समान त्याग सिद्धान्त के आधार पर कर के वितरण की समस्या का समाधान करते समय कई बातों का ख्याल रखना होता है। (क) कर देय योग्यता की माप के लिए वस्तुनिष्ठ सूचकांक के विषय में निर्णय लेना होता है कि आय, व्यय तथा सम्पत्ति में से किसे आधार बनाया जाये। (ख) समान त्याग सिद्धान्त में 'समान' की स्पष्ट परिभाषा करने की जरूरत है। (ग) आय–उपयोगिता वक्र (Income-utility curve) की ढलान (Slope) के सम्बन्ध में मान्यता ताकि व्यक्तिगत न्याय की माप की जा सके तथा सुस्पष्ट कर प्रणाली (प्रगतिशील, आनुपातिक या प्रतिगामी) का निर्माण किया जा सके।

कोहेन–स्टुअर्ट (Cohen-Stuart) तथा एजवर्थ (Edgeworth) ने पिछली सदी के अन्तिम चरण में समान त्याग की तीन अवधारणाओं का विकास किया। वे हैं निरपेक्ष समान (equal absolute), आनुपातिक समान (equal proportional) तथा समान सीमान्त (equal marginal)। समान सीमान्त त्याग ही न्यूनतम त्याग है। मिल कर की आनुपातिक दर (Proportional rate) के पक्ष में थे, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने समान त्याग की व्याख्या समान आनुपातिक त्याग के रूप में की। कोहेन–स्टुअर्ट समान आनुपातिक त्याग के समर्थक थे, क्योंकि उनके अनुसार ऐसी कर व्यवस्था से कुल उपयोगिता के अर्थ में करदाताओं की सापेक्ष स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। सिजविक तथा मार्शल ने समान निरपेक्ष त्याग का समर्थन किया। कार्वर (Carver) ने समान त्याग की व्याख्या समान सीमान्त त्याग के अर्थ में की। एजवर्थ तथा पीगू के अनुसार, समान त्याग की समान निरपेक्ष तथा समान आनुपातिक त्याग के मध्य चयन करने का कोई तार्किक आधार नहीं है। कल्याण के आधार पर तर्क प्रस्तुत करते हुए उन दोनों ने कहा कि समान सीमान्त त्याग ही एक मात्र उचित नियम है, समानता (Equity) के आधार पर नहीं, बल्कि इसलिए कि यह कल्याण के उद्देश्यों को पूरा करता है।

पीगू का कहना है कि किसी भी कर व्यवस्था में कर के प्रावधान के कारण प्रत्येक करदाता पर त्याग के रूप में कुछ भार पड़ता है। इसलिए समान राजस्व प्रदान करने वाली विभिन्न कर प्रणालियों की तुलना करते समय दो महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान

देना जरूरी हो जाता है। एक है समग्र त्याग का आकार (Size) तथा दूसरा विभिन्न मद जिन्हें मिलाकर यह समग्र बनता है उनके मध्य आपसी सम्बन्ध की प्रकृति। त्याग (sacrifice) का अर्थ है संतुष्टि की हानि (Loss of satisfaction)

समग्र संतुष्टि या त्याग की बात करते हुए एक आधारभूत कठिनाई सामने आ जाती है। समग्र संतुष्टि या त्याग व्यक्तिगत संतुष्टियों या त्यागों का योग (Summation) है। इस योग के प्रति एक आपत्ति यह उठाई जाती है कि संतुष्टि या त्याग मन की दशा (state of mind) है, इसकी प्रकृति ही ऐसी है इसकी परिमाणात्मक माप (Quantitative measurement) नहीं हो सकती है। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक मन एक–दूसरे से भिन्न होता है। इसलिए विभिन्न व्यक्तियों की मानसिक दशा की न तो तुलना की जा सकती है और न ही उन्हें जोड़ा जा सकता है।

पीगू का कहना है कि पहली आपत्ति में विशेष दम नहीं है। सभी जानते हैं कि हम एक समय में दूसरे समय की तुलना में अधिक सुख का अनुभव करते हैं। इसका यह अर्थ है कि हमें अधिक संतुष्टि मिलती है। हम यह भी जानते हैं कि किसी समय हम अधिक दुखी होते हैं। अर्थात् हमें अधिक त्याग करना पड़ रहा है। इसमें संदेह है कि हम ऐसा कह सकेंगे कि हम दूना सुखी हैं या दूना दुखी हैं, किन्तु इस जानकारी की आवश्यकता ही नहीं है। इतना ही काफी है कि संतुष्टि या त्याग की तुलना संभव है।

इसमें संदेह नहीं कि विभिन्न व्यक्तियों की प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है : जातीय गुण, प्रशिक्षण, आदि में अन्तर के कारण मानसिक दशा में अन्तर होता है। फिर भी ऐसा मान लेना अनुचित नहीं होगा कि समान परिस्थितियों में समान व्यक्तियों की मनोदशा पर समान ढ़ंग से प्रभाव पड़ेगा।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि न्यूनतम समग्र त्याग करारोपण का चरम सिद्धान्त (ultimate principle) है। राजनीतिक सिद्धान्त का सम्बन्ध अधिकतम समग्र कल्याण से है जिसे सरकार का सही लक्ष्य माना जाता है। करारोपण के क्षेत्र में अधिकतम समग्र कल्याण का सिद्धान्त न्यूनतम लागत के सिद्धान्त का समरूप (identical) है।

न्यूनतम समग्र त्याग के सिद्धान्त का सम्बन्ध किसी विशेष कर से नहीं है, बल्कि करारोपण की सम्पूर्ण व्यवस्था से। सभी व्यक्तियों के समान त्याग द्वारा समग्र त्याग को न्यूनतम नहीं किया जा सकता है। न्यूनतम समग्र लाभ के लिए जरूरी है कि कर के भुगतान के लिए दी गई मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता सभी करदाताओं के लिए

समान हो। इस प्रकार पीगू समान त्याग की उस धारणा के समर्थक दिखते हैं जिसमें इसका अर्थ समान सीमान्त त्याग (equal-marginal sacrifice) से लगाया जाता है। व्यवहार में इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी आय को एक न्यूनतम सीमा से ऊपर काट दिया जाता है तथा कर के भुगतान के प्श्चात् की सभी आय को बराबर कर दिया जाता है। (Lopping off the tops of all incomes above the minimum income and leaving everybody, after taxation, with equal income)

अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते समय पीगू ने पूँजी संचय पर भी विचार किया है। यदि उपरोक्त कर प्रणाली के अन्तर्गत नयी पूँजी का समजन रूक जाये तो धनी व्यक्तियों को कुछ छूट देने की जरूरत है। कारण यह है कि केवल धनी व्यक्ति ही बचत कर सकते हैं जिसका उपयोग पूँजी संचय में होता है। ऐसी स्थिति में मध्यवर्ती आय वर्ग पर कर का अधिक बोझ पड़ेगा।

## 1.18. सारांश (Summary) :-

अल्पविकसित देशों में प्रमुख समस्या उत्पादन के निम्न स्तर तथा घोर निर्धनता के कुचक्र को तोड़ने की है, जिससे प्रभावी माँग के स्तर को तथा उत्पादन, रोजगार तथा आय के स्तरों को ऊपर उठाया जा सके। वर्तमान समय में यह स्वीकार कर लिया गया है कि आर्थिक असमानता के कारण आर्थिक कल्याण में कमी होती है। इसीलिए कराधान प्रणाली के माध्यम से पूँजी–निर्माण की दरो को ऊँचा उठाकर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है तथा साधनों का कुशलतम विरण करके आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। इसीलिए कर–प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जो सभी क्षेत्रों में प्रभाव डाल सके। एक अच्छी कर–पद्धति की कसौटी यह है कि उसमें इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए ि कवह सरकार के राजकोषीय आधार में ऐसा विश्वास उत्पन्न कर सके जो जनता के नैतिक स्तर को बनाये रखे तथा उत्पादकीय प्रयत्नों व आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहन दे। इसके लिए करारोपण के सिद्धान्त की महती आवश्यकता है। एक अच्छी कर प्रणाली के लिए करारोपण के सिद्धान्त जैसे–उत्पादकता का सिद्धान्त, लोचता का सिद्धान्त, सरलता का सिद्धान्त, समानता का सिद्धान्त, निश्चितता का सिद्धान्त, सुविधा का सिद्धान्त, मितव्ययिता, समन्वय का सिद्धान्त, न्यूनतम समग्र त्याग का सिद्धान्त, श्रीमती हिक्स एवं सिसमाण्डी के आर्थिक विचारों को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए।

## 1.19 शब्दावली (Key Words) :-

संरचना (Structure), कसौटी (Criteria), वणिकवादियों (Mercantilist), प्रकृतिवादियों (Physiocrats), चयन (Choice), क्षेतिज एवं ऊर्ध्व समानता (Horizontal and Vertical Equity), लाभ (Benefit), योग्यता (Ability), आय (Revenue), निश्चितता (Certainty), भार की निश्चितता (Certainty of incidence), दायित्व (Liability), अपवचन अनुपात (Evasion Markmanship), सुविधा (Convenience), मितव्यचिता (Economy), उत्पादकता (Productivity), लोच (Elasticity), सरलता (Simplicity), वाँछनीयता (Expediency), पर्याप्तता (Sufficiency), विविधता (Diversity), एकरूपता (Uniformity), कोमलता (Flexibility).

## 1.20 प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the Questions) :-

(1) करारोपण के सिद्धान्त का सामान्य परिचय बताइये।

(2) करारोपण के उद्देश्य बताइये।

(3) समानता का सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(4) निश्चितता के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(5) मितव्ययिता का सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(6) सुविधा के सिद्धान्त को आप क्या समझते है ?

(7) उत्पादकता एवं लोच का सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

(8) सरलता एवं वांछनीयता के सिद्धान्त समझाइये।

(9) विविधता व एकरूपता के सिद्धान्त को कैसे लागू कर सकते हैं।

(10) समन्वय का सिद्धान्त से आप क्या समझते है।

(11) प्रशासकीय कुशलता का सिद्धान्त के बारे में बताइये।

(12) कोमलता एवं पर्याप्तता का सिद्धान्त कहाँ तक सम्भव है।

**<u>बहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर – (Objective Type Question-Answer)</u> :-**

(1) उत्पादकता के सिद्धान्त को किसने बताया ?

(अ) बेस्टेबिल (ब) एडम स्मिथ

(स) श्रीमती हिक्स (द) सिसमाण्डी

**(उत्तर – अ)**

(2) एडम स्मिथ के द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धान्त है –

(अ) समानता का सिद्धान्त (ब) निश्चियतत का सिद्धान्त

(स) मितायियता का सिद्धान्त (द) उपर्युक्त सभी

**(उत्तर – द)**

(3) लोच का सिद्धान्त का सबसे लोकप्रिय उदाहरण कौन सा कर है –

(अ) निगम कर (ब) आयकर

(स) चुंगी कर (द) गृहकर

**(उत्तर – ब)**

(4) करारोपण में एकरूपता का विचार किसने दिये है –

(अ) प्रो0 मार्शल (ब) प्रो0 पीमू

(स) नित्ती और कोनार्ड (द) डाल्टन

**(उत्तर – स)**

(5) कोमलता एवं पर्याप्तता का सिद्धान्त का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री के द्वारा दिया गया है –

(अ) फिण्डले शिराज (ब) डाल्टन

(स) वैगनर (द) श्रीमती हिक्स

**(उत्तर – अ)**

(6) ''न तो कोई कर पूर्ण है और न ही कोई पूर्णतया खराब ही है।'' इस कथन की रचनाकार का नाम बताइए।

(अ) हिक्स (ब) लुट्ज

(स) डाल्टन (द) बेस्टेबिल

**(उत्तर – ब)**

(7) ''प्रत्येक कर पृथक–पृथक न लेकर सम्पूर्ण प्रणाली पर ही ध्यान देना चाहिए।'' यह कथन किसने दिया है –

(अ) लुट्ज (ब) पीगू

(स) एडम स्मिथ (द) श्रीमती हिक्स

**(उत्तर – द)**

## खण्ड–03

## इकाई–02

# करारोपण में न्याय (Justice in Taxation)

1.0 **परिचय** :– प्राचीन काल के अर्थशास्त्रियों का मत था कि करोपण का एकमात्र उद्देश्य आय प्राप्त करना है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार करों को ऐसे लगाया जाना चाहिए जिससे सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त होती रहे साथ ही करदाता को कम से कम त्याग करना पड़े। इस सन्दर्भ में फ्रान्सीसी वित्त–मन्त्री कोलबर्ट ने कहा है कि ''बत्तख के पर इस प्रकार नोंचो कि वह कम से कम चिल्लाये और अधिक से अधिक पर निकल आये।'' इस सिद्धान्त के अनुसार समस्या कर–भार के वितरण की नहीं, बल्कि समस्या है कि करों से कैसे अधिकाधिक आय प्राप्त की जाय और लोग इस कर–भार का विरोध भी न करें।

यह सिद्धान्त वर्तमान समय की प्रजातान्त्रिक शासन–व्यवस्था वाले देशों में सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि इस सिद्धान्त से लोगों का बहुत अधिक अहित होगा। इस प्रकार का वित्तीय सिद्धान्त करारोपण में न्याय की समस्या का समाधान खोजने में असमर्थ है। करों का निर्धारण समानता व करदान–योग्यता के आधार पर होना चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि किसी व्यक्ति की कर देने की योग्यता को कैसे मापा जाय। जब तक हमें इस बात की सही जानकारी नहीं होती है तब तक कोई भी कर न्यायसंगत नहीं होगा। न्यायसंगत करारोपण नहीं होने से आर्थिक एवं राजनीतिक संकट पैदा हो जाता है। इस सन्दर्भ में श्रीमती हिक्स के विचार उल्लेखनीय हैं। उनका कहना है कि ''रोमन साम्राज्य के पतन का कारण त्रुटिपूर्ण ढंग से संगठित और विस्तृत कर प्रणाली थी। इस प्रकार फ्रान्स की क्रान्ति का मुख्य कारण भी अन्यायपूर्ण कर प्रणाली ही था जिसमें निर्धन वर्ग की अपेक्षा धनिकों पर कर का भार कम था।'' अतः कर लगाते समय इस बात का ध्यान ा जाना चाहिए कि करदाताओं के साथ न्याय किया जाय।

## उद्देश्य (Objects) :-

1. सामाजिक कल्याण
2. सामाजिक न्याय
3. परित्याग की समानता
4. उत्पादन के संसाधनों का इष्टतम आवंटन

## 1.1 सेवा–लागत सिद्धान्त (Cost of Service Theory):-

राज्य के द्वारा व्यक्तियों को दी जाने वाली सेवा के बदले में सेवा की लागत के अनुसार कर दिये जाने चाहिए। प्रो0 ब्यूहलर के अनुसार,'' अनेक लेखकों का सुझाव है कि करों को सरकार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं की लागत के आधार पर ही लोगों पर कर लगाया जाना चाहिए वह भी शायद इस आधार पर कि नागरिकों को सरकारी सेवाओं को चुनने या रद्द करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।'' इस सम्बन्ध में डाल्टन ने कहा है कि ''सेवा लागत का सिान्त डाक सेवाओं, विद्युतधारा आदि की पूर्ति पर लागू किया जा सकता है। इन सेवाओं की कीमत इस सिद्धान्त के आधार पर निर्धारित की जा सकती है।'' सेवा की लागत का सिद्धान्त सैद्धान्तिक रूप से उपयुक्त है परन्तु इस सिद्धान्त में व्यावहारिकता तो है ही नहीं। लाभ सिद्धान्त का विरीत दिशा से निरीक्षण करने में वही सिान्त सेवा की लागत का सिद्धान्त बन जाता हे। लाभ का सिद्धान्त यह बतलाता है कि सरकार को उतनी मात्रा में कर लेना चाहिए जितना करों से लोगों को सामूहिक रूप से लाभ से प्राप्त होता है जबकि सेवा की लागत का सिद्धान्त यह बतलाता है कि लोगों को लाभ या सेवा प्रदान करने में सरकार का जो व्यय होता है या जो लागत इसे सेवा के बदले प्रदान करनी पड़ती है, उसके अनुसार ही कर की दर निश्चित होनी चाहिये। कर सरकार को उसकी सेवाओं की लागत के रूप में दिये जाने चाहिये। सरकार को कर भार का विरण इस प्रकार करना चाहिए कि विभिन्न व्यक्तिओं या समूहों से उनको प्रदान किए गए लाभ की लागत प्राप्त हो जाय।

### सेवा लागत सिद्धान्त की मुख्य बातें :–

1. राज्य और समाज के सदस्यों में वाणिज्यिक संबंधों की स्वीकार्यता;
2. समाज के किसी सदस्य का भी राज्य–सेवाओं से हित–प्राप्ति का अधिकारी न होना तथा सार्वजनिक बजट को संतुलित रखते हुए सरकार को अपनी सेवाओं की पूरी लागत वसूल करने का अधिकर होना;
3. सरकार का वितरीणय असमातनाओं को घटाने जैसे कल्याणकारी गतिविधियों के दायित्व से मुक्त होना;
4. सरकार की कर–नीति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति उदासीनता को उचित ठहराना;
5. उन सब राजस्व–स्त्रोतों को अनदेखा करना जिनके द्वारा राज्य सेवाओं की लागत वसूल न की जा रही हो, जैसे कि पूँजी–लाभ कर, अकस्मात्– आय कर, अनर्जित–आय कर, उत्तरोधिकार कर, उपहार कर, धन कर, व्यय कर, उत्पादन शुल्क, बिक्रकी कर आदि।

## 1.2 सेवा लागत सिद्धान्त की आलोचना (Critism of the Cost of Service Theory):-

1. यह कि सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है। इस सन्दर्भ में टेलर का कहना है कि ''यह अवश्य है कि जब राज्य कुछ विशेष सेवाएँ प्रदान करता है तब इस सिद्धान्त का उपयोग किया जा सकता ; जैसे डाक–महसूल निश्चित करने में अथवा रेलों का किराया निश्चित करने में इस सिद्धान्त का पालन किया जा सकता है, परन्तु अधिकांश करों में इस सिद्धान्त से काम नहीं लिया जा सकता है।''
2. यह कि कल्याणकारी राज्यों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, वृावस्था–पेन्शन, आदि। इन सेवाओं के बदले में सरकार को प्रत्यक्ष में कुछ नहीं मिलता है। अतः सरकार की सेवा की लागत के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर करों का निर्धारण नहीं करना होता है। यदि निर्धन वर्ग को दी जाने वाली सेवाओं के बदले उनसे कर वसूल किये जाने लगें तो सिद्धान्त दोषयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में डाल्टन का कहना है कि ''सेवा की लागत का सिद्धान्त कितना ही न्यायपूर्ण क्यों न हो, परन्तु यह व्यावहारिक नहीं है।
3. इस सिद्धान्त को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है। सरकार के अधिकांश व्यय किसी एक नागरिक या नागरिकों के किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं किए जाते। सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएँ सामूहिक रूप से सामान्य जनता के लिए होती है। अतः यह मालूम करना असम्भव है कि सरकार ने किसी विशेष व्यक्ति के लिए सफाई, स्वास्थ्य, सड़क आदि की व्यवस्था पर कितना व्यय किया।
4. विभिन्न सेवाओं की लागत को मापने का कोई सही एवं उचित मापदण्ड उपलब्ध नहीं है। लड़ाई लड़े जाने की लागत का कौन–सा भाग किसी व्यक्ति के हिस्से पड़ना चाहिए? दिल्ली–नैनीताल–लखनऊ वायु सेवा के चालू होने की लागत का कितना हिस्सा किस व्यक्ति के हिस्से में आना चाहिए? इन सेवाओं की लागतों का निर्धारण किसी भी दशा में नहीं हो सकता हे।
5. यह सिद्धान्त भी सरकार के कार्यों के पैमाने को सीमित कर देता है। इसके अनुसार सरकार नजता को वही सेवाएँ प्रदान कर सकती है जिनकी लागत का निर्धारण हो सके। गरीबों एवं असहायों को सहायता देने का काम सरकार नहीं कर सकती क्योकिं इसकी लागत उसे प्राप्त नहीं होती है।
6. यह कि सरकार निर्धनों को लाभ पहुँचाने के लिए कार्य करती है ठीक उसी प्रकार उसे देश में शान्ति तथा सुरक्षा के लिए भी कार्य करने होते हैं। परन्तु व्यवहार में इस सेवा से किसे कितना लाभ पहुँच रहा है, इसकी जानकारी नहीं हो पाती है। यदि इन सेवाओं की लागत को सरकार वसूल करने लगे तो इससे अधिकांश लोगों का अहित होगा, क्योंकि शान्ति और सुरक्षा पर किये जाने वाले व्यय से सभी व्यक्तिओं को लाभ नहीं मिल पाता है।

अन्त में कहना है कि कुछ दशाओं में लागत को सही रूप में मापा जा सकता है। सरकार द्वारा बिजली की सुविधा प्रदान करना इसका उदाहरण है। यहाँ पर फिर भी यूनिट लागत को सही

मापा जा सकता है परन्तु यह भुगतान वास्तव में कर नहीं हे। वे सेवाओं के बदले दी जाने वाली कीमतें हैं। अतः यह सिद्धान्त भी कर के भार के वितरण का आधार नहीं हो सकता है।

## 1.3 लाभ का सिद्धान्त (Principle of Benefit):-

यह कि सरकार इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को जनता से कर के रूप में उतनी राशि लेनी चाहिए जितनी राशि के मूल्य का वह जनता को लाभ प्रदान करती हे। दूसरे शब्दों में उतना ही कर लिया जना वांछनीय है जितना लाभ जनता की कर राशि व्यय करके उपलब्ध की गई सेवाओं से प्राप्त होता है। कर के भार का विवरण सरकार की ओर से मिलने वाले लाभ्ज्ञ के अनुपात में ही किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि जनता सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभ के बदले कर देती है। स्वभवतः यह सिद्धान्त न्यायपूर्ण मांग करता है कि ''उससे अधिक मत लो जितना तुम देते हो।'' इसका तात्पर्य यह है कि सामूहि रूप में जनता द्वारा करों का भुगतान उतनी ही मात्रा में किया जाना चाहिये जितना सरकार उनको लाभ प्रदान करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि करों के रूप में सरकार जनता से राशि प्राप्त करती है उनका व्यय इन्हें बहुत–सी सुविधाएँ प्रदान करने में करती है। कर सामूहिक सिद्धान्त का अर्थ यह लगाएँ कि प्रत्येक व्यक्ति उतना ही कर प्रदान करे जितना व्यक्तिगत लाभ उसे प्राप्त हो रहा है तो हम सिद्धान्त के उद्देश्य को गलत समझते है। यह तो करों की परिभाषा से ही स्पष्ट है कि व्यक्तिगत करदाता एवं सरकार के बीच कोई जैसे को तैसा सम्बन्ध नहीं है। अतः करदाता यह आशा नहीं कर सकता कि उसे उतना ही लाभ प्राप्त होगा जितना वह कर प्रदान करता है। सिद्धान्त की सत्यता सामूहिक रूप में निहित है। करों द्वारा प्रदान किया जाने वाल कुछ लाभ करों के देने के कुल त्याग के बराबर होना चाहिए। प्रो0 व्यूहलर के अनुसार ''लाभ का सिद्धान्त करारोपण के आधार के रूप में कितना ही असंतोषजनक क्यों न हो, लेकिन करारोपण में यह महत्वपूर्ण स्थान रखता है।'' सैलिगमैन का मत है कि–''सरकार कोई भी काम किसी व्यक्ति विशेष के लाभार्थ नहीं करती, बल्कि व्यक्ति को समाज का एक अंश मानकर करती है। इस प्रकार विशेष लाभ, सामान्य लाभ में विलीन हो जाता है।''

## लाभ के सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Critism of the Benefit Principle):-

1. यह ज्ञात करना असम्भव है किसरकार अपने कार्यों से सम्पूर्ण समुदाय को जो कुछ लाभ पहुँचाती है उस कुछ लाभ में और प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होने वाले पृथक–पृथक लाभ में क्या अनुपात है?
2. लेगों को प्रदान किये जाने वाले लाभ का कोई सही मापदण्ड नहीं है। एटोमिक एनर्जी केन्द्र एवं सूचना केन्द्र, पुलिस, सेना तथा सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक एवं अन्य सेवाओं से प्राप्त होने वाले लाभ को कैसे मापा जा सकता है?

3. यह सिद्धान्त राज्य के कार्य के पैमाने को अनावश्यक रूप से सीमित कर देता है। जब कभी सरकार कोई नई योजना का निर्माण करती है तो उसे यह ध्यान में रखना आवश्यक होगा कि इससे प्राप्त होने वाला लाभ करो की क्षतिपूर्ति कर सकेगा या नहीं। यह कार्य यदि असम्भव नही तो अत्यधिक कठिन अवश्य है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार , आय के न्यायोचित वितरण तथा अर्थव्यवस्था के स्वायित्व की समस्या को हल नहीं किया जा सकता। यदि प्राप्त होने वाले लाभ के अनुसार कर लगाया जाय तो आय की असमानता को कम नहीं किया जा सकता।
5. यह कि वितरण में समानता नहीं लायी जा सकती है, जबकि करों का एक उद्देश्य वितरण की असमानता को दूर करना भी है।
6. यह कि करदाताओं को बिना किसी लाभ की आशा के करों का भुगतान करना होता है।
7. सार्वजनिक व्यय करते समय इस बात की जानकारी नहीं की जा सकती है कि इसका लाभ किस को कितना मिल रहा है। इसलिए व्यक्तिगत लाभ की सही जानकारी न होने से करों का निर्धारण करना कठिन हे।
8. सरकार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में जो भी कार्य करती है उन कार्यों का उद्देश्य निर्धनों को सहायता पहुँचाना है। अब यदि लाभ के सिद्धान्त के अनुसार सरकार गरीबों, निर्धनों, अपाहिजों व वृद्धों पर लाभ के आधार पर कर लगाये तो इससे ''एक हाथ से देने और दूसरे हाथ से लेने'' वाली बात हो जायेगी
9. इस सिद्धान्त का उपयोग सामाजिक सेवा में नहीं किया जा सकता है , क्योंकि सामाजिक सेवा के लिए मूल्य लिया जाना न्यायसंगत नहीं है।

अन्त में कहना है कि लाभ का सिद्धान्त भले ही कितना ही अव्यावहारिक क्यों न हो, फिर भी सिद्धान्त की उपयोगिता है। अनेक कर–विशेषज्ञ आज भी स्थानीय करों–जैसे, जल, कल, गैस, आदि – के लिए इसी सिद्धान्त की सहायता लेते है। इस सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार करते हुए ब्यूहलर ने लिखा है कि ''यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लाभ का सिद्धान्त करों का निर्धारण करने में भले ही एक असन्तोषजनक सिद्धान्त हो, फिर भी करारोपण पर यह एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।'' लाभ के सिद्धान्त का समर्थन लिण्डाल तथा मेजोला जैस अर्थशास्त्रियों ने भी किया है।

## लिण्डल मॉडल (Lindahl Model , 1919) :-

यह कि कर में न्याय को प्राप्त करने के लिए लिण्डल ने समस्या को दो वर्गों में विभाजित किया है, एक, सामाजिक –राजनीतिक समस्या– इसके अन्तर्गत आय के उचित वितरण की समस्या का समाधान खोजा जाता है। दूसरी, पूर्णतः रोजकोषीय (Purely Fiscal) समस्या – आय के वर्तमान वितरण में परिवर्तन किये बिना ही सार्वजनिक आवश्यकता की सन्तुष्टि के प्रबन्ध की समस्या। उपभोक्ता के अधिमान के आधार पर इस समस्या के समाधान के लिए निम्न तीन प्रक्रियाओं की जरूरत है–

क. लोक व्यय एवं कर की कुल मात्रा का निर्धारण।

ख. सार्वजनिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के बीच कुछ लोक व्यय का आवंटन।

ग. व्यक्तियों के बीच कुल करों का आबंटन।

इस सम्बन्ध में लिण्डल का कहना है कि जिस प्रकार बाजार में संयुक्त उत्पत्ति की वस्तुओं का मूल्य निर्धारण होता है उसी प्रकार उपरोक्त समस्या का समाधान हो सकता है। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में मार्शल ने दर्शाया कि इनका मूल्य लागत के अनुसार तय नहीं होता, बल्कि मांग के अनुसार। मान लें सिर्फ एक ही प्रकार की सार्वजनिक वस्तु का उत्पादन होता है।

## <u>लाभ के सिद्धान्त का उपयोग (Application of the Benefit Principle):-</u>

1. लोग हमेशा सार्वजनिक वस्तुओं के लिए अपने अधिमान को सही–सही व्यक्त नहीं करते। उपभोक्तओं की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ यह कठिनाई बढ़ती जाती है।
2. सार्वजनिक सेवा के लाभ के प्रति अनभिज्ञ होने के कारण उपभोक्ता अपने अधिमान को व्यक्त करने में अक्षम हो सकते हैं। बाह्यताएं के कारण यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।
3. अर्थशास्त्री एरो का कहना है कि उपभोक्ताओं के स्वतन्त्र चयन के आधार पर सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करने मे संक्रमकता आवश्यक है, लेकिन वास्तविक विश्व में असंक्रमकता की सम्भावना अधिक रहती है। विभिन्न व्यक्ति अपनी पसन्द को विभिन्न रूप में व्यक्त करते है।
4. यदि यह स्वीकार किया जाय कि सरकार को निर्धनों की सहायता करनी चाहिए, तो करारोपण के सामान्य सिद्धान्त का निरूपण लाभ के सिद्धान्त के अनुसार नहीं किया जा सकता। अर्थात वितरण की समस्या का समाधान इस सिद्धान्त द्वारा नहीं हो सकता है। धनी लोगों पर कर लगाकर निर्धनों में बोट देने की क्रिया का समर्थन यह सिद्धान्त नहीं कर सकता। करदान योग्यता सिद्धान्त भी यहां लागू हो सकता है।

5. आजकल वित्तीय नीति के क्षेत्र में स्थिरता एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हो गया है, लेकिन स्थिरता की समस्या के सन्दर्भ में लाभ का सिद्धान्त पूर्णतः अनुपयुक्त है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए लोक व्यय का राजस्व से अधिक होना आवश्यक है ताकि प्रभावी मांग मे वृद्धि की जा सके। प्रभावी मांग के सिलसिले में लाभ का सिद्धान्त बेकार है।

## डि मार्को का आय का सिद्धान्त (De Marco's Income Theory) :-

इटली के अर्थशास्त्री डि मार्को ने इस सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर बनाया है। उनके अनुसार, राज्य का नागरिकों के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध होता हे। इस सम्बन्ध को उन्होंने ''विनिमय सम्बन्ध कहा है जिसमें राज्य नागरिकों के लिए सेवाएं उपलब्ध कराता है, या सेवाओं की पूर्ति करता हे। दूसरी ओर, इन सेवाओं को क्रय करने वाले क्रेता नागरिक होते हैं, जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवाओं व वस्तुओं को क्रय करते है। इस प्रकार राज्य की सेवाओं से व्यक्तियों द्वारा वस्तुओं के उत्पादन में सहायता मिलती है अर्थात उत्पादन बढ़ता है। राजकीय सेवाओं से प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में लाभ मिलता ही है। इस बात को स्पष्ट करने के बाद डि मार्को ने बताया कि ''जिस व्यक्ति की आय जितनी ही अधिक होगी वह व्यक्ति राज्य को उतना ही अधिक कर देगा; क्योंकि अधिक आय वाले व्यक्ति द्वारा सरकारी सेवाओं व सुविधाओं का अधिक उपयोग किया जाता है। इस प्रकार करों का निर्धारण आय के अनुपात में होना चाहिए।''

## डि मार्को के आय सिद्धान्त की आलोचनाएँ :–

1. डि मार्को का यह सिद्धान्त लाभ के सिद्धान्त का ही एक रूप है। भले ही उन्होंने इस सिद्धान्त में सरकार को सेवाओं का पूर्तिकर्ता तथा जनता को सेवाओं का मांगकर्ता बता कर सरकार व जनता के बीच के सम्बन्ध को 'विनिमय' से जोड़ दिया है, फिर भी उनका निष्कर्ष लाभ के सिद्धान्त से मिलता है। उदाहरण के लिए, जो व्यक्ति राजकीय सेवाओं से जितना अधिक लाभ लेता है उसे राज्य को उतना ही अधिक अंशदान देना चाहिए। इसलिए यह कहा जाता है कि सिद्धान्त में वे सब दोष है जो लाभ के सिद्धान्त में है।
2. यह है कि करों का निर्धारण आय के अनुपात में होना चाहिए। यह बात न्याय संगत लगती है परन्तु व्यवहार में आय के अनुपात को ज्ञात करना सम्भव नहीं है। एक पान बेचने वाले व्यक्ति की आय चाय बेचने वाले व्यक्ति की आय से कम है या अधिक, इस बात की जानकारी नहीं हो पाती है।

3. यदि डि मार्को के सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि इसमें आनुपातिक कर प्रणाली के गुण है। इसलिए इस सिद्धान्त में आनुपातिक करों के दोष भी है।

**<u>करदेय–योग्यता का सिद्धान्त (Ability to Pay Theory) :-</u>**

लोगों में करों के भार का वितरण उनकी अदा करने की सामर्थ्य के अनुसार ही किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त न्याय के आदर्श के अनुरूप है। इसके अनुसार अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों को कर का अधिक भार वहन करना चाहिये। प्रो0 एडम स्मिथ ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार–'प्रत्येक राष्ट्र के सदस्यों को सरकार की सहायता के लिए यथासम्भव अपनी सामर्थ्य के अनुपात में धन देना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्या उत्पन्न होती है कि अदा करने की योग्यता को कैसे मापा जाये? इस समस्या के हल के लिए दो दृष्टिकोण हो सकते है।

1. **<u>व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण (Subjective Approach):-</u>** करों की अदायगी के परिणामस्वरूप करदाताओं को कुछ भार सहन करना होता है अर्थात कुछ त्याग करना पड़ता है। यदि हम करों को अदा करने की सामर्थ्य को नापने के लिए व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते है तो करदाता को करों के अदा करने में जो भार अनुभव होता है। अथवा उसको जो त्याग करनप पड़ता है उस पर विचार किया जाता है। इस प्रकार व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण करदाताओं की मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। इस सन्दर्भ में समान त्याग के तीन विभिन्न दृष्टिकोण है–

   1. Equal Absolute  2. Equal Proportional  3. Equal Marginal

      "Equal Absolute Sacrifice Theory" के सिद्धान्त के अनुसार करों का द्रव्य सम्बन्धी भार विभिन्न वर्गों पर या व्यक्तियों पर इस प्रकार से वितरित करना चाहिये कि उनका वास्तविक प्रत्यक्षक भार सभी करदाताओं पर समान पड़े।

      "Equal Proportional Sacrifice Theory" के अनुसार करदाताअें पर कर का भार समान नहीं रहता वरन उसकी आर्थिक शक्ति के अनुपात में निश्चित होता है अर्थात कर की दर आय के घटने–बढ़ने के साथ–साथ घटती–बढ़ती है। इस पद्धति के अनुसार करारोपण न्यायसंगत करों के लिए प्रगतिशील होना चाहिये।

      "Equal Marginal Sacrifice Theory" के अनुसार कर निर्धारण इस प्रकार होना चाहिये कि सब करदाताओं द्वारा जो कुछ त्याग किया जायउसकी मात्रा कम से कम हो तथा सामाजिक लाभ भी अधिकतम हो।

## गणितीय रूप में शर्तें (Conition in Mathematical From):-

प्रो0 मसग्रेव ने तीनों पहलुओं को गणितीय रूप प्रदान करने हेतु निम्न सूत्र प्रयोग किये हैं–

1. समान पूर्ण त्याग–

   UY-Y (Y-T)

2. समान अनुपातिक व्यय–

   $\frac{U(Y)-U(Y-T)}{U(Y)}$

3. समान सीमान्त व्यय–

   $\frac{DU(Y-T)}{D(Y-T)}$

   यहाँ पर–

   Y = आय;

   T = कर की राशि

   U = कुल उपयोगिता;

   U (Y) = कर के पूर्ण आय से प्राप्त कुल उपयोगिता

   U (Y-T) = कर भुगतान पश्चात् प्रयोज्य आय की उपयोगिता

एडम स्मिथ का कथन है कि–'प्रत्ये को अपनी योग्यता के अनुपात में कर देना चाहिये। इस सन्दर्भ की पूर्ण व्याख्या नहीं करना हैं। अनुपात में का अर्थ यह हो सकता है कि सबको अपनी आय के हिसाब से चुकाना चाहिये या इसकी हम इस प्रकार से भी व्याख्या कर सकते है कि सभी को अपनी आय से समान अंश देना चाहिये । वास्तव में कुछ शर्तों के अन्तर्गत आनुपातिक ढांचा के साथ होता है और कुछ शर्तों के अन्तर्गत यह के साथ। इसके अलाहवा में और भी सन्दर्भ हैं जो कि आनुपातिक दर अनुसूची के स्थान पर प्रणामी कर अनुसूची को प्राथमिकता देते है।

इसी प्रकार जे.एस. मिल. , जो कि समान त्याग के प्रतिपादक थे, equality परिभाषित करने में असफल हो गये। यद्यपि वे कर के समानुपातिक दर केपूर्ण समर्थक थे, फिर भी यह स्पष्ट नहीं होता है ि कवे समानता को समान समानुपातिक त्याग के रूप में परिभाषित करना चाहते थे। कुछ शर्तों के अन्तर्गत समानुपातिक कराधान समान पूर्ण त्याग के सिद्धान्त के समान हो जाता है।

समान त्याग के तीनोंविचारों को परिभाषित करने के पश्चात् भी इनके चुनाव की समस्या में बहुत भ्रक हो जाता है। इसके साथ ही दूसरी समस्या यह उत्पन्न होती है कि चुने हुए सिद्धान्त में कौन सी दर अनुसूची होनी चाहिये। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि विभिन्न विचारों को कैसे विभिन्न विचारों की भिन्नता को कैसे सुलझया जाया प्रो0 कोहेन–स्टुअर्ट यह तर्क देते है कि Equal Proportional Sacrifice " को स्पष्ट प्राथमिकता होनी चाहिये क्योंकि यह कुल उपयोगिता के रूप में सापेक्षित स्थिति को अपरिवर्तित छोड़ेगी। प्रो0 सिजविक और मार्शल Equal absolute Sacrifice का पक्ष लेते हैं जबकि कार्वर समान की Equal Marginal Sacrifice के रूप में व्याख्या करते हैं। प्रो0 एल्सवर्थ और उसके पश्चात पीगू ने यह माना कि Equal Absolute और Equal Proportional Sacrifice क बीच कोई न्यायिक चुनाव नहीं है । कल्याण पर बल देते हुए उन्होंने यह तर्क दिया कि Equal Marginal Sacrifice का सिद्धान्त न केवल न्याय के रूप में सही है बल्कि यह न्यूनतम कुछ त्याग के कल्याण के उद्देश्य से मेल खाता है।

**<u>वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण (Objective Approach) :-</u>** चूँकि त्याग के व्यक्तिनिष्ठ सिद्धान्त को लागू करने में अनेक गम्भीर कठिनाइयाँ सामने आती है। अतः कुछ लेखकों ने विशेषकर अमेरिका में, कर अदा करने की सामर्थ्य को जांचने के लिए वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण का आश्रय लिया है। प्रो. सैलिगमैन ने वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के अर्थ में सामर्थय को प्रकट करने के लिए उत्पादन शक्ति शब्द का प्रयोग किया है। यह उत्पादन शक्ति का सिद्धान्त करदाता की भावनाओं की अपेक्षा उनकी करदान क्षमता के द्रव्यिक मूल्य पर विचार करता है। प्रो0 सैलिगमैन के शब्दों में त्याग के सिद्धान्त तो वास्तव में उपभोग के सिद्धान्त हैं जो िकइस विचार पर आधारित है कि पृथक व्यक्ति पर कर का कितना भार पड़ता है और उसकी कितनी सम्पत्ति या आय उसके अपने उपभोग के लिए शेष बचती है। किन्तु उत्पादन शक्ति का सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ बातों पर ध्यान देता है जिसमें कि करदाता की आय तथा सम्पत्ति आदि सम्मिलित है। साथ्ज्ञ ही, यह इस बात पर भी विचार करता है कि रदाता ने यह आय कैसे कमायी और यह सम्पत्ति कैसे प्राप्त की। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति आय का उपार्जन अपने निजी परिश्रम से करता है जब कि एक दूसरा व्यक्ति सम्पत्ति के स्वामित्व से अपनी आय कमाता है। आय उपार्जन की इन विभिन्नताओं पर अवश्य ध्यान देनाचा हिए ओर तद्नुसार ही करों के ढांचे में भी आवश्यक हेर–फेर करना चाहिए। उत्पादन शक्ति का सिद्धान्त समस्या पर उत्पादन के दृष्टिकोण से विचार करता है। उत्पादन शक्ति की व्याख्या स्वयं उत्पादन की स्वाभावित अथवा प्राप्त शक्ति के अर्थ में की गई है। किसी भी व्यक्ति की उत्पादन शक्ति मुख्यतः समाज के आर्थिक ढांचे पर और उन विशेष सुविधाओं पर निर्भर होती है जो उसे समाज के सदस्यों के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त त्याग के सिद्धान्त की अपेक्षा सामाजिक तत्व को अधिक महत्व देता है जबकि त्याग का सिद्धान्त व्यक्ति पर अधिक जोर देता है। किन्तु इस सबके बावजूद उत्पादन शक्ति के सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक

महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि कराधान को कर अदा करने की सामर्थ्य के अनुरूप बनने की कोई उपयुक्त रीति वह सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करती। न्यूनतम त्याग का सिद्धान्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक उपाय या रीति प्रस्तुत तो करता है, चाहे वह रीति कितनी ही सैद्धान्तिक या काल्पनिक क्यों न हो।

**विचारणीय बातें :–** Ability to pay theory में दो बातों काध्यान रखना आवश्यक है–

1. प्रथम बात तो यह है कि किसी भी कर पर पृथक रूप में विचार नही गरना चाहिए। बल्कि कर पद्धति के भार पर सम्पूर्ण रूप में ही विचार करना चाहिए।
2. दूसरी विचारणीय बात यह है कि कर भारत के वितरण का निश्च उस समय तक नहीं किया जा सकता जब तक कि सरकारी व्ययों से होने वाले लाभ पर भ्झी विचार न किया जाये। पृथक रूप से लगाया गया कोई कर सम्भव है कि अन्यायपूर्ण दिखाई दे, परन्तु यरि सरकार के व्ययों के लाभों पर भी विचार किया जाये तो वह कर पूर्णतः न्यायोचित प्रतीत हो सकता है। इस दृष्टिकोण से करारोपण का सिद्धान्त बजट का सिद्धान्त बन जाता है और नये सिद्धान्त का ध्येय सामाजिक कल्याण को भी अधिकतम करना है।

## आर्थिक तटस्थता का सिद्धान्त (Principle of Economic Naturality) :-

इस सिद्धान्त की व्याख्या अनेक प्रकार से हुई है। 1. कर इस प्रकार लगाना चाहिए, ताकि करदाताओं पर न्यूनतम भार पड़े। दूसरे शब्दों में, कर का ऐसा कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ना चाहिए जिसे टाला जा सकता है। 2. करारोपण द्वारा उच्चतम जीवन–स्तर को हासिल करने में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि व्यक्तियों के स्वतन्त्र चयन को अन्य प्रकार से प्रभावित न किया जाय। इसका यह अर्थ है कि बाजार यन्त्र की क्रिया में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इस धारणा की पृष्ठभूमि में यह मान्यता रही है कि जब व्यक्तिगत अधिमान के आधार पर बाजार यन्त्र उन्मुक्त रूप से कार्य करता है साधनों का आदर्श आवंटन होता है। इसलिए बाजार यन्त्र की क्रिया में सीप्रकार के हस्तक्षेप से साधना का आवंटन निम्न कोटि का होगा, आदर्श अर्थात् सर्वोत्तम नहीं रह जायेगा।

तटस्थता की धारणा के सम्बन्ध में कुछ गलत ख्याल भी हैं। तटस्थ्ता काअर्थ यह नहीं होता है कि करारोपण का कोई प्रभाव व्यक्तिगत आचरण पर नहीं पड़ता है। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सरकार की अनुपस्थिति में व्यक्तिगत आचरण जिस रूप में होता है उससे भिन्न आचरण उस समाज में होगा जहां सरकार विद्यमान रहती हे। उदाहरण के लिए, सरकार विहीन समाज में लोग अपनी सुरक्षा काप्रबन्ध स्वयं करेंगे तथा इसके लिए चौकीदारों की नियुक्ति कर सकते हैं। सरकार की स्थापना के बाद यह कार्य पुलिस द्वारा किया जाता है और पुलिस एक सार्वजनिक वस्तु है। इसलिए बुखानन का

कहना है कि ''आर्थिक तटस्थता को इस रूप में धारण नहीं किया जा सकता है कि निजी चयन पर प्रभाव अनुपस्थित रहेगा।''

उपभोक्ता एवं उत्पादक साधनों के अधिमान के आधार पर बाजार यन्त्र की क्रिया द्वारा अधिकतम उत्पत्ति प्राप्त होती है। अतः तटस्थ कर व्यवस्था वह है जो ऐसे अधिमान में कोई परिवर्तन नहीं लाती है। यदि ऐसा होता है तो अधिकतम उत्पत्ति प्राप्त होनी होगी। फलतः जीवन–स्तर भी उच्चतम स्तर पर नहीं रह सकेगा। दूसरी ओर, यदि अधिकतम उत्पत्ति प्राप्त नहीं हो रही हो तो करों केउचित चयन द्वारा अधिकतम को उपलब्ध किया जा सकता है। एक उदाहरण लें–माना लें कि अधिकतम मात्रा से भी अधिक परिमाण में शराब का उपभोग किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि शराब के उत्पादनकर्ता मद्यपान की वास्तविक सामाजिक लागत को वहन नहीं करता है। इसलिए कीमत स लागत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। ऐसी वस्तु पर उपभोग कर लगाना उचित होगा ताकि इसका उत्पादन एवं उपभोग अधिकतम से ज्यादा न हो।

अनेक प्रकार से करों के प्रभाव ऐसे हो सकते हैं जिन्हें तटस्थ नहीं कहा जा सकता है। किसी एक वस्तु के उत्पादन या उपभोग पर मान लें, कर लगाया जाता है, लेकिन अन्य वस्तुओं पर नहीं। इस स्थिति में इस कर के कारण उपभोक्ता का चयन या काम करने की इच्छा प्रभावित हो सकती है याउत्पादन–विधि में परिवर्तन हो सकता है। इसी कारण पारम्परिक धारणा बन गयी कि परोक्ष करों की अपेक्षा प्रत्यक्ष कर श्रेष्ठ होते हैं।

## अधिकतम कल्याण का सिद्धान्त (Maximum welfare Principle) :-

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने कर–भार के उचित वितरण के लिए 'न्याय–सिद्धान्त' के स्थान पर 'कल्याण–सिद्धान्त' को प्राथमिकता दी है। एजवर्थ तथा पीगू ने भी इस सिद्धान्त को महत्व दिया है। सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तियों की रूचि के अनुरूप विभिन्न वस्तुओं पर उपभोग–व्यय का वितरण इस प्रकार से होना चाहिए कि उनका अधिकमि कल्याण हो। ज्यों–ज्यों व्यक्ति की आय में वृद्धि होती है, त्यों–त्यों अतिरिक्त आय सेमिलने वाली उपयोगिता घटते हुए क्रम में होती है। ऐसी दशा में करों की दर बढ़ायी ज सकती है। जब व्यक्तियों की आय समान होती है, तो इससे कल्याण में भी वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में एजवर्थ का कहना है कि 'करारोपण की नीति को समान सीमान्त त्याग पर आधारित करने के उपरान्त ही समाज को अधिकतम कल्याण प्राप्त हो सकता है।'' एजवर्थ के इस कथन की तुलना में पीगू ने इस सिद्धान्त को दूसरी तरह से सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। पीगू के अनुसार ,''सभी इस बात से सहमत

हैं कि सरकार की क्रियाओं का नियमन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसके नागरिकों का कल्याण अधिकतम हो। यही सरकार कीसम्पूर्ण कानूनी प्रक्रिया की कसौटी है और करारोपण के क्षेत्र में यही न्यूनतम त्याग सिद्धान्त हैं।'' पीगू के कहने का तात्पर्य यह है कि कर–प्रणाली हमेशा न्यूनतम त्याग पर आधारित होनी चाहिए। परन्तु मार्शल व सिजविक इस बात से सहमत नहीं थे। वे समान त्याग के आधार को सबसे उपयुक्त आधार मानते थे। परन्तु पीगू ने इस बात को काटते हुए लिखा है कि ''समान तथा समान स्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों कासमान त्याग उस स्थिति में भिन्न है जिसमें सभी व्यक्तियों को समान त्याग करना पड़ता है।'' पीगू यह मानते थे कि हमें समान त्याग की जानकारी सही रूप में प्राप्त नहीं हो सकती है, इसलिए मार्शल व सिजविक कासमान त्याग का आधार गलत है।

पीगू अनुसार –''न्यूनतम त्याग के लिए यह आवश्यक है कि करदाताओं द्वारा भुगतान की गयी द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होनी चाहिए। इसलिए सरकार सबसे पहले ऊँची आय वालों पर कर लगाये, मध्यम आय वालों पर उससे कम और न्यून आय वालों पर कर न लगे।''

## डॉ0 मसग्रेव का मत (Views of Musgrave) :-

डाल्टन तथा मसग्रव ने कर–भार औरउसके न्यायपूर्ण वितरण की समस्या को बजट नीति निर्धारण सिद्धान्त के अनुसार हल करने का प्रयास किया है। इस विधि में उन्होंने करारोपण और सरकारी व्यय दोनों को सम्मिलित किया है। उनके अनुसार अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए दो मार्गदर्शक हो सकते हैं–1. सरकार को अपनी आय विभिन्न मदों में इस प्रकार से व्यय करनी चाहिए कि प्रत्येक मद पर व्यय की गयी राशि से प्राप्त सीमान्त कल्याण लगभग बराबर रहे, तथा 2. सार्वजनिक व्यय उस सीमता तक किया जाय, जहां व्यय की सीमान्त इकाई का सीमान्त सामाजिक लाभ करों के रूपमें वसूल किये गये सीमान्त आगत के सीमान्त त्याग के बराबर रहे।

**सारांश (Summary):-** कर प्रणाली की रचना सभी देशों में तथा सभी समय में किसी एक ही सिद्धान्त पर आधारित होना आज के युग में सम्भव नहीं है। यह सत्य है कि व्यवस्था का निर्धारण करते समय व्यक्ति के साथ न्याय होनी चाहिए। व्यावहारिक रूप में किस प्रकार न्यायपूर्ण कर व्यवस्था की स्थापना हो सकती है, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति कर का भुगतान सहर्ष स्वीकार नहीं करना चाहता है। इसके बावजूद कर लगाये जाते है। सरकार के सामाजिक–आर्थिक कार्यों की पूर्ति के लिए करारोपण को महत्वपूर्ण माना जाता है। कर किस पर लगाया जाए, यह करारोपण में न्याय की समस्या को जन्म देता है। इस संबंध में श्रीमती हिक्स का कथन है कि–'' रोमन साम्राज्य का पतन और फ्रांस की दुःखद क्रान्ति का एकमात्र कारण, वहां की कर–प्रणाली का दोषपूर्ण होना था। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण कर

व्यवस्था थी, जिसमें धनी लोगों की अपेक्षा निर्धन लोगों पर कर का भार अधिक था।'' इससे स्पष्ट होता है कि कर व्यवस्था न्यायसंगत होना अति आवश्यक है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने न्याय के स्थान पर कल्याण को प्राथमिकता प्रदान की है। किसी भी देश की कर प्रणाली वर्णित सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन नहीं कर सकती है। अतः वह प्रणाली सबसे उत्तम समझाी जायेगी, जिसमें इनमे से अधिकाधिक सिद्धान्तों को सम्मिलित किये जाने चाहिए।

शब्दावली (Keywords):-

1. अतिरिक्त भारत (Excess Burden)
2. आर्थिक तटस्थता (Economic Neutrality)
3. पूर्णत : रोजकोषीय (Purly Fiscal)
4. सामाजिक करार (Social Contract)
5. बाहयताये (Externalitics)
6. सामाजिक कल्याण फलन (Social welfare function)
7. संक्रमणता (Transitivity)
8. असंक्रमकता (Intransitivity)
9. स्थिरता (Stabilization)
10. जैसे को तैसा सिद्धान्त (Principle of quid proque)
11. दृष्टिकोण (Concept)
12. अनुपात (Ratio)
13. व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण (Subjective Approach)
14. वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण (Objective approach)
15. समान त्याग (Equal Sacrifice)
16. निरपेक्ष समान (Equal absolut)
17. अनुपातिक समान (Equal Proportional)
18. समान सीमान्त (Equal Marginal)
19. दर (Rate)
20. ढलान (Slope)

21. न्यूनतम समय त्याग (Least Aggregate Sacrifice)

## सन्दर्भित ग्रन्थ (Reference Books):-


1. Musgrane, R.A : The Theory of Public finance
2. Taylor, P.E : The economics of public finance
3. U.K Hicks : Public finance
4. Charles M. Allan : The theory of taxation
5. A.P Larner : Economics of control
6. A.C Pigou : A study of public finance


## प्रश्न उत्तर (Question Answer):-

1. सेवा लागत सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. लाभ का सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. डि–मार्को का आय का सिद्धान्त को समझाइये?
4. करदेय–योग्यता का सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
5. करदेय–योग्यता का सिद्धान्त के भावनात्मक दृष्टिकोण को समझाइये?
6. करदेय–योग्यता का सिद्धान्त के वस्तुगत द्रष्टिकोण पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
7. आर्थिक तटस्थता का सिद्धान्त को समझाइये?
8. अधिकतम कल्याण का सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
9. डॉ0 मसग्रेव का मत को समझाइये?
10. लिण्डल मॉडल ओर बोवेन मॉडल की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
11. लाभ के सिद्धान्त के उपयोग पर एक लघु नोट लिखिए।

## बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तन (Objective type question answer):-

1. कर में न्याय को प्राप्त करने के लिए लिण्डल ने किन समरूाओं को बताया हैः
   क. आय के उचित विरण ख. पूर्णतः राजाकोषीय समस्या ग. दोनो (क तथा ख)
   घ. इनमें से कोई नहीं (उत्तर ग)

2. करदान योग्यता के सिद्धान्त किसका समाधान प्रस्तुत करता हैः

   क. वितरण  ख. आवंटन  ग. स्थितरता  घ. उपर्युकत तीनों

   (उत्तर घ)

3. लाभ के सिद्धान्त के अनुसार करदाता एवं सरकार के बीच कैसा संबंध होता हैः

   क. जैसे को तैसा  ख. एक तरफ  ग. दोनों तरफ  घ. इनमें से कोई नहीं

   (उत्तर क)

4. ''प्रत्येक राज्य की प्रजा को लोक व्यय के लिए जहां तक सम्भव हो अपनी योग्यता के अनुसार कर देना चाहिए यानि राज्य के संरक्षण में प्राप्त सुरक्षा के अनुसार कर देना चाहिए।'' यह कथन किसका है?

   क. मसग्रेव  ख. एडम स्मिथ  ग. पीगू  घ. पैरेटा

   (उत्तर ख)

5. कोहेन स्टुअर्ट तथा एजवर्थ ने समान त्याग की अवधारणाओं का विकास किया है–

   क. निरपेक्ष समान  ख. आनुपातिक समान  ग. सामान सीमान्त  घ. उपर्युक्त सभी

   (उत्तर घ)

6. डि–मार्को का आय का सिद्धान्त किस कारक पर आधारित है–

   क. राजनीतिक  ख. सामाजिक  ग. मनोवैज्ञानिक  घ. इनमें से कोई नहीं

   (उत्तर ग.)

7. 'वत्तख के पर इस प्रकार नोंचो कि वह कम से कम चिल्लायें और अधिक से अधिक पर निकल आये।'' यह कथन किसका है।

   क. एडम स्मिथ  ख. कोलबर्ट  ग हिक्स  घ. डाल्टन

   (उत्तर ख)

8. ''सेवा की लागत का सिद्धान्त कितना ही न्यायपूर्ण क्यों न हो, परन्तु यह व्यावहारिक नहीं है'' यह कथन किसका है।

   क. डाल्टन  ख. श्रीमती हिक्स  ग. ब्यूहलर  घ. पीगू

   (उत्तर क)

9. डाल्टन तथा मसग्रव ने कर–भार और उसके न्यायपूर्ण वितरण की समस्या को किस नीति निर्धारण सिद्धान्त से हल करने का प्रयास किया हैः

   क. राजकोषीय  ख. मौद्रिक नीति  ग. बजट नीति  घ. इनमें से कोई नहीं

   (उत्तर ग)

10. न्यूनतम त्याग के सिद्धान्त को सर्वप्रथम किस अर्थशास्त्री ने दिया था?

क. डाल्टन ख. एजवर्थ ग. कोलबर्ट घ. हिक्स

(उत्तर ख)

## खण्ड – 03

## इकाई – 03

## आवंटन कुशलता

1.0 परिचय :–

कर के आर्थिक प्रभाव से तात्पर्य आय में हुए उन परिवर्तनों से है जो समायोजन प्रक्रिया के परिणाम होते है। ये प्रभाव कर भार में भिन्न हे। अतः मसग्रेव ने इस अवशिष्ट की संज्ञा दी हे। इनके अन्तर्गत उत्पत्ति एवं वितरण सम्बन्धी परिवर्तन भी शामिल किए जाते है, लेकिन याद ररखना चाहिए कि जहां वितरण का प्रश्न है केवल वे ही परिवर्तन शामिल किए जा सकते है, जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष मौद्रिक प्रभाव से नहीं है। मुख्य रूप से निम्न तीन आर्थिक प्रभावों की चर्चा की जाती हे।

1. मौजूदा साधनों के आवंटन पर प्रभाव (Effects on allocation of Existing Resources)
2. साधनो की पूर्ति (Effects on supply of resources)
3. आय के वितरण पर प्रभाव (Effects on Income Distribution)

करारोपण के प्रभाव सम्बन्ध ये तीनों आर्थिक प्रभाव वस्तुतः निम्नलिखित तीन समस्याओं से जुड़े है

क. करारोपण एवं कार्यकुशलता (Taxation and effeciency)
ख. मौजूदा साधनों के आवंटन पर प्रभाव (Effects on allocation of Existing Resources)
ग. करारोपण एवं समानता (Taxation and Equality)

**उद्देश्य :–**

1. सामाजिक कल्याण का कार्य का अनुकूलन।
2. उपयोगिता अधिकतमनीकरण ।
3. कुशल बाजार परिकल्पना आदर्श वितरणात्मक आवंटन।

- **वर्तमान साधनों के आवंटन पर प्रभाव : करारोपण एवं कार्यकुशलता :–**

इसके अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों के विभिन्न उपयोगों पर विभिन्न करों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है निजी क्षेत्र में साधनों का आदर्श वितरण उस समय होता है जब पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान रहती है। एवं वस्तु की कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है (P=MC) , साधन की सीमान्त शुद्ध उत्पत्ति इसकों कीमत के बराबर होती है तथा निजी एवं सामाजिक लाभ एवं लागत समान होते है।

**अतिरिक्त भार का सिद्धान्त :–**

ऐसा अवसर कहा जाता है कि परोक्ष करों का प्रभाव उत्पादन के साधनों के आवंटन पर प्रत्यक्ष करों की तुलना में निम्न होता है। इसका अध्ययन अक्सर परोक्ष करों के अतिरिक्त भार के अन्तर्गत किया जाता है। अतिरिक्त भार का सिद्धान्त काफी विवाद का विषर्य हे। यह एक ऐसा विवाद है जिस पर समय खर्च करने से कोई लाभ्ज्ञ नहीं क्योंकि कुछ भी निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता है। इसीलिए लिट्ल ने इसे फलहीन या व्यर्थ का विवाद कहा है।

इस विवाद की शुरूआत मार्शल क`लेखन से होती है। मार्शल तथा अगे चलकर होटेलिंग (Hotelling ) , ने मार्शल की विधि का प्रयोग करके इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् जोसेफ , हिक्स, वाल्ड , हेण्डरसन, लिट्ल, राल्फ, ब्रेक फ्रीडमैन, मसग्रेव, आदि ने तटस्था वक्रों की सहायता से इसका विश्लेषण प्रत्यक्ष करों के पक्ष में तथा परोक्ष करों के विरूद्ध पारस्परिक तर्क यह दिया जाता है कि परोक्ष कर विभिन्न वस्तुओं के मध्य उपभोक्ताओं के भवन को विकृत करते है और इस प्रकार व्यक्तिगत करदाता एवं समाज पर एक अतिरिक भार पड़ता है जबकि परोक्ष कर का आय प्रभाव के अतिरिक्त स्थानापन्न प्रभ्ज्ञाव भी पड़ता है। इस स्थानपन्न प्रभाव का कारण यह है कि परोक्ष कर के कारण सापेक्ष कीमतें में परिवर्तन होता है। यही परिवर्तन उपभोक्ता को चयन में विकृति पैदा कर देता हे। विकृति से तात्पर्य यह है कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं को कर है पहले जिस अनुपात खरीदता था वह अब कर के कारण बदल जाता है जो उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे परिवर्तन के पूर्व उपयभोक्ता साम्य स्थिति में था। इस प्रकार का कोई परिवर्तन प्रत्यक्ष कर के कारण नहीं होता है, क्योंकि यह कर सापेक्ष कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं लाता है।

**अतिरिक्त भार के सम्बन्ध में मर्शल का विश्लेषण :–**

मार्शल ने परिमाणात्मक उपयोगिता (Cardinal Unlity) की सहायता से अतिरिक्त भार का सरलतम विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके लिए इस चित्र में वस्तु के बाजार को दिया गया है। कर की अनुपस्थिति में बाजार है E बिन्दु पर सन्तुलन में रहता है, क्योंकि इसी बिन्दु पर वस्तु का मांग वक्र D तथा पूर्ति वक्र D तथा पूर्ति वक्र S एक दूसरे को अन्तछेंदन करते है। वस्तु की OG मात्रा का उत्पादन किया जाता है, जिसे OB प्रति इकाई कीमत पर बेचा जाता है। अब मान ले कि इस वस्तु पर FR प्रति इकाई के हिसाई से परोक्ष कर लगाया जाता है। कर को शामिल करने पर पूर्ति वक्र S+T हो जाता है तथा सन्तुलन F बिन्दु पर स्थापित होता हे। उत्पत्ति OH तथा कीमत बढ़कर OA हो जाती है। कर से प्राप्त राजस्व AFRC है। कर के कारण उपभोक्त के अतिरेक में ABEF के बराबर हानि होती है। उत्पादनकर्ता के अतिरेक की हानि BCRE के बराबर है। इस प्रकार बचत की कुल हानि AFBRC (=ABEF+BCRE) के बराबर है और यह कर राजस्व (ACRF) से FER मात्रा में अधिक है। यही क्षेत्र FER परोक्ष कर का अतिरिक्त भार हे। करदाताओं की यह भार कर के रूप में भुगतान की गयी रकम के अतिरिक्त सहना पड़ता हे। इस भार की खोज सर्वप्रथम डयूपिट ने की थी। इस भार का कारण है कर युक्त वस्तु तथा अन्य वस्तुओं के बीच उपभोक्ताओं के चयन की विकृति।

**जोसेफ हिक्स अतिरक्त भार :–**

गुणात्मक उपयोगिता के आधार पर जोसेफ तथा हिक्स ने परोक्ष करों के ऊपर प्रत्यक्ष करों की श्रेष्ठता को सिद्ध करता है। उन्होंने यह प्रदर्शित किया है कि आयकर जैसा प्रत्यक्ष कर उत्पाद कर जैसे परोक्ष से श्रेष्ठ है, क्योकि यह विभिन्न वस्तुओं के मध्य उपभोक्ता के चयन को विकृत नहीं करता। इसे समझने के लिए की मदरद ली गयी हे। मानले कि एक उपभोक्त अपनी कुल आय को X तथा Y वस्तुओं पर खर्च करता है। इन वस्तुओं के परिमाण को X अक्षांश तथा Y अक्षांश पर मापा जाता है। AB कीमत रेखा तथा उपभोक्ताओं का सन्तुलन प्रारम्भ $P_1$ पर स्थापित होता है।

अब मान लें कि X की कीमत इस पर लगे उत्पाद शुल्क के कारण बढ़ जाती है। अतः कीमत रेखा AC हो जाती है तथा उपभोक्ता निम्न तटस्थ वक्र 1 पर $P_3$ बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में होता है। मानलें कि उत्पाद शुल्क के विकल्प के रूप में समान राजस्व वाला आयकर लगाया जाता है। चूंकि इस कर के कारण X तथा Y की सापेक्षिक कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता हे, अतः नयी कीमत रेखा A'B पहली कीमत रेखा AB के सामान्तर होगी। यह रेखा $P_3$ बिन्दु से होकर गुजरती है क्योंकि दोनों करो के समान राजस्व मिलने के कारण इस बिन्दु पर बने X तथा Y के संयोग आयकर की स्थिति में भी उपभोक्ताओं को उपलब्ध होगा, लेकिन उपभोक्ता $P_3$ को नहीं चुनकर $P_2$ को चुनता है जिसे स्पर्श करने वाला तटस्थता वक्र II कीमत रेखा AC को स्पर्श करने वाले तटस्थता वक्र I से ऊंचा है। अतः निष्कर्ष पर निकलता है कि $P_2$ बिन्दु $P_3$ बिन्दु श्रेष्ठ है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऊंचे तटस्थता वक्र पर होने के कारण आयकर की स्थिति में उपभोक्ता को अधिक कल्याण प्राप्त होता है। अतः आयकर श्रेष्ठ है।

अतिरिक्त भार सिद्धान्त का मुख्य तत्व यही है कि परोक्ष कर के कारण साधनों का जो फिर से आवण्टन होता है यह उपभोक्ता के दृष्टिकोण से हीन है। यह निष्कर्ष दो मान्यताओं पर आधारित है, यथा

क. श्रम की बेलोचदार पूर्ति, और

ख. प्रारम्भिक आदर्श स्थिति।

इन दोनों मान्यताओं की जांच आवश्यक है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अतिरिक्त भार की समस्या सिर्फ परोक्ष करों के सम्बन्ध में ही नही उठती। आयकर भी तटस्थ नहीं होता, क्योंकि यह श्रम तथा अवकाश के मध्य चयन को प्रभ्ज्ञावित करता हे। वालड ने इसकी जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परोक्ष करों के विषय में अतिरिक्त भार की जो बात कही जाती है उसका प्रमाण नहीं मिलता। उन्होंने बताया कि आयकर

भी आवकाश की कीमत को घटाकर तथा श्रम की लागत में वृद्धि करके साधनों के आवण्टन को प्रभावित करता हे। हेण्डरसन ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया। इनका निष्कर्ष यह है कि जोसेफ हिक्स सिद्धान्त सही है।

हेण्डरसन के निष्कर्ष को तभी स्वकार किया जा सकता है जब यह मान लिया जाए कि श्रम की पूर्ति स्थिर रहती है। ऐसा मान लेना अनुचित है। वाल्ड तथा हेण्डरसन इस बात को अच्छी तरह समझ नहीं सके कि एक ओर आयकर तथा वस्तु की मांग तथा दूसरी ओर वस्तुओं की कीमत एवं अवकाश की मांग में घनिष्ट सम्बन्ध है। लिट्ल ने इस सम्बन्ध की पहली बार स्पष्ट जांच की। हम मानलें कि उपभोक्ता तीन वस्तुओं के मध्य चयन करने में स्वतन्त्र है। ये वस्तुएं है– X, Y तथा L जहां अवकाश। मानलें कि आयकर L की विक्री पर परोक्ष कर है। यदि उपभोक्ता चाहे तो वह L को घटकर X और Y की अधि ममात्रा प्राप्त कर सकता है। या वह Y की मात्रा कम करके X तथा L की अधिक मात्रा प्राप्त कर सकता है, आदि आदि। व्यक्त्ति की स्थिति में उपभोक्ता के चयन पर सिर्फ आय प्रभाव का प्रभाव पड़ेगा। मूलरूप से दोनों ही करों द्वारा दो प्रकार की विकृति होती है जिन्हें लिट्ल ने निम्न प्रकार व्यक्त किया है–

पहली स्थिति : अवकाश को छोड़कर किसी अन्य वसतु पर परोक्षा कर : मानलें X पर कर लगाया जाता है।

Y, L जोड़े के लिए, S = T

X, Y जोड़े के लिए, S = T

X, L जोड़े के लिए, S = T

दूसरी स्थिति : आयकर अर्थात L पर कर

X, Y जोड़े के लिए, S = T

X, L जोड़े के लिए, S = T

Y, L जोड़े के लिए, S = T

जहां S = प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, T = रूपान्तर की सीमान्त दर।

इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से परोक्ष एवं प्रत्यक्ष कर बिल्कुल एक ही तरह है। अतः लिट्ल कहते है कि परोक्ष करों के विरूद्ध शुद्ध सैद्धान्तिकर धारणा एक भ्रम है।

**प्रत्यक्ष कर एवं साधनों का पुनर्वितरण :–**

साधनों के पुनर्वितरण पर कर के क्या प्रभाव पड़ते है इसके कुछ अन्य पहलुओं पर भी विचार करना आवश्यक है। इसके लिए हम यह मानकर चलें कि कर के पूर्व व्यक्ति एवं समाज दोनों के दृष्टिकोण में साधनों ा आदर्श आवण्टन विद्यमान है।

आयकर जिसक विषय में ऐसा समझा जात है कि यह साधनों के वितरण के सम्बन्ध्ध में तटस्थ रहता है, वस्तुतः काल्पनिक जगत का दोषरहित आयकर है। वास्तविक आयकर में अनेक खामियां पायी जाती है, अतः ऐसा आयकर तटस्थ नहीं हो सकता। आयकर में अपूर्णताएं निम्न प्रकार से आ सकती है।

(क) आयकर ऐसा नहीं भी हो सकता है जो सभी प्रकार की आय पर लगाया जाता है। विकासशील देशों में ऐसा विशेषकर होता है। फिर यह कर कुछ प्रकार की आय पर दो बार लगाया जा सकता है। विदेशों में प्राप्त आय पर स्वदेश और विदेश दोनों स्थानों पर कर लगाया जा सकता है।

(ख) मानलें कि कर दो बार नहीं लगाया जाता है। फिर भी कुछ आय पर दूसरे की अपेक्ष अधिक दर पर लगाया जा सकता है। अर्जित आय पर पृथक दर पर कर लगाया जाता है। प्रगतिशील आय कर विभेद का दूसरा उदाहरण है।

आयकर की इन अपूर्णताओं के कारण उपभोक्ताओं की मांग की संरचना में परिवर्तन होता है जिससे साधनों का पुनर्वितरण होगा। मानलें कि सरकार को यह निर्णय लेना है कि अतिरिक व्यय के लिए वित्त प्रगतिशील आयकर को प्राप्त किया जाएगा। जिसका भार मुख्य रूप से धनी वर्ग पर पड़ता है या वस्तु कर से जिसका भार गरीबों पर अधिक पड़ता है। इन वगो। के व्यक्तियों के उपभोग क रचना एक तरह की नहीं है। अतः दोनों करों से उपभोक्ता की आय के वितरण पर प्रभाव एक समान नहीं पड़ेगे। आनुपातिक आयकर, प्रगतिशील आयकर तथा व्यक्ति कर साधनों की पूर्ति पर अलग अलग प्रभाव डालते हे। अतः इनका साधनों क वितरण पर भी पृथक प्रभाव पड़ेगा। इस सम्बन्ध में प्रेस्ट का कहना है कि कुछ आयकरों के कारण साधनों का और इस तरह उत्पत्ति का अनुकूलतम स्थिति में स्थानान्तरण होता है।

**परोक्ष कर तथा साधनों का पुनर्वितरण :–**

यहां भी हम मानकर चलें कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टिकोण से साधनों का वर्तमान आवण्टन सर्वोत्तम है। कई प्रकार के परोक्ष कर लगाए जा सकते है और कई ढंग से।

चूंकि हम यह मान लेते है किर के पूर्व आदर्श स्थिति मौजूद रहती है, अतः परोक्ष करों को हम ढंग से चुनना चाहिए कि वे इस स्थिति में हेर फेर न लगाएं या न्यूनतम परिवर्तनलाएं ऐसा तथी होगा जब परोक्ष कर के कारण उपभोग में न्यूनतम परिवर्तन हो। इस ख्याल से परोक्ष करो को उन वस्तुओं पर लगाना चाहिए जिनकी मांग या तो पूरी तरह वेलोच है या अध्का से अधिक बेलोच है, लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं हो जाता है। मानलें कि चार वस्तुएं है जिनकी मांग की कीमच लोच 0,1,0.2,0.3 तथा 04 है। यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या परोक्ष कर सिर्फ प्रथम वस्तु पर लगाया जाए तथा बाकी तीन पर कुछ भी नहीं। यदि यही समाधान नहीं है तो इन चारों वस्तुओं पर कर किस प्रकार तथा किस अनुपात में लगाया जाए। इस समस्या के समाधान की अनेक कोशिशें हुई है, लेकिन वे व्यावहारिक महत्व की नहीं हे। पूर्ति लोच के सम्बन्ध में इसी प्रकार के प्रश्न उठ सकते है। मानलें कि सभी वस्तुओं मांग लोच एक सी है, लेकिन पूर्ति लोच भिन्न–भिन्न है। उपरोक तर्क के आधार पर हम यही कहेंगे कि कर वेलोच पूर्ति की वस्तु पर लगाना

चाहिए। इसका कारण यह है कि पूर्ति जितनी अधिक वेलोचदार होगी उत्पादन के साधनों का उतना ही कम स्थानान्तरण एक उद्योग से दूसरे उद्योग में होगा।

उपरोक्त तर्क को मार्शल के उपभोक्ता अतिरेक एवं उत्पादनकर्ता अतिरेक की हानि के रूप में व्यक्त किया जात है। इसमें ष्दो प्रकार के मांग वक्रों को प्रस्तुत किया गया है। $D_1$ की तुलना में $D_2$ अकि लोचदार मांग चक्र है। SS कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है तथा मांग वक्रो की सिति में वस्तु कर से सरकार को SABS के बराबर राजस्व प्राप्त होता है। $D_1$ मांग वक्र की स्थिति में कर के कारण उपभोक्ता के अतिरके की हानि SABS+ABC के बराबर है जबकि $D_2$ मांग चक्र के रहने पर यह हानि SABS+ABD के बराबर है। इससे एक सामान्य निष्कर्ष निकलता है कि जिस वस्तु की मांग अधिक लोचदार होती है उस पर कर लगाने से उपभोक्ता के अतिरेक की अधिक हानि होती हे। अतः कम लोचदार वस्तु पर ही परोक्ष कर लगाना उचित होगा।

**बचत की पूति पर प्रभाव :–**

विभिन्न करों के प्रभाव बचत एं पूंजी संचय पर क्या पड़ते है, इसकी विवेचना व्यय करों के बच पर सापेक्ष प्रभाव के अन्तर्गत अवसर की जाती है। अतीत में अर्थशास्त्रियों ने ''बचत पर दुहरे करारोपण'' के विषय में बहुत लिखा । बचत पर उस समय आयकर का भुगतान किया जाता है जब लोग आय का एक हिस्सा खर्च नहीं करते तथा उसके बाद अगले वर्षों में बचत से प्राप्त आय पर भी इस कर का भुगतान करना होता है। ऐसा विचार व्यक्ति किया जाता है कि यह अन्याय है, क्योंकि आय के एक ही स्त्रोत पर दो बार कर लगता है। साथ ही, इस बात की भी समीावना है कि ऐसे करारोण के कारण बचत की दर उस दर से कम हो जाए ऐसे कर की अनुपस्थित में प्राप्त होती । अतः यह आदर्श स्थिति से विचलन है।

प्रेस्ट का तर्क है कि ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है कि व्ययकर के कारण जोखिम पूर्ण निवेदन अधिक होंगे। वजह यह है कि बचत में वृद्धि होने पर, समान राजस्व प्राप्त करने के लिए आयकर की तुलना में व्ययकर की दर अकि होगी। इस स्थिति में श्रमिकों की पूर्ति में वृद्धि नहीं होगी यदि अवकाश की मांग वर्तमान उपभोग की मांग का पूरक हो तथा भावी उपभोग की मांग कर स्थानापत्र हों ऐसी हालत में आयरर ककी तुलना में व्ययकर के अन्तर्गत ही कुल बचत के कम होने की सम्भावना है।

**आय का पुनर्वितरण : करारोपण एवं समानत :–**

दुर्लभ साधनों के सर्वात्कृष्ट उपयोग की विवेचना में दो मूल समस्याएं है। एक का सम्बन्ध कार्यकुशला से है और दूसरे का आय के उचित वितरण से। इन दोनों विषयों के मध्य संघर्ष हो सकता है। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लें। मानलें भारत सरकार 5,000 करोड़ रूप्ये के कर राजस्व को वसूल करती है। इस राजस्व को वसूल करने में, मानलें 200 करोड़ रूए का अतिरिक्त भार, 30 करोड़ रूपए की प्रशासनिक लागत त्था 70 करोड़ रूपए की अनुपालन लागत का वहन करना पड़ता है। इस प्रकार राजस्व वसूल की कुल लागत 300 करोड़ रूपये होती है जो कर राजस्व का 6 प्रतिशत होती है। यदि इस राजस्व को व्यक्ति कर लगाकर वसूल किया जाए, तो वसूली की लागत सिर्फ 3 करोड़ रूपये होगी। कार्यकुशलता के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि

5,000 करोड़ रूपए के संपूर्ण राजस्व को व्यक्ति कर लगाकर वसूल किया जाए, लेकिन सरकार ऐसा नहीं करती है। इसके विपरीत, प्रगतिशील आयकर और वस्तु कर लगारकर इस राजस्व को वसूल किा जाता है। ऐसा इसलिए किा जाता है, क्योंकि इस लागत के वहन करने से अधिक समान एवं न्यायपूर्ण कर व्यवस्थसा को लागू करना सम्भव होता है।

**आदर्श करारोपण :–**

आदर्श कर व्यवस्था वह है जिसके अन्तर्गत कर प्रशासन अपव्ययी न हो तथा करदाता के लिए अनुपालन लागत आवश्यकता से अधिक न हो, लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आदर्श कर व्यवस्था में 'अतिरिक्त भार' न्यूनतम रहता है। इस तुलना के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकलते हैः:

1. पूंजी से प्राप्त आय पर लगे आंशिक कर विनियोगों के मध्य चयन में विकृति पैदा करता है।
2. आयकर वर्तमान उपभोग एवं बचत के ध्मय चयन में दखल देता है। सामान्य उत्पद कर के साथ ऐसी समस्या नहीं है।
3. आयकर एवं सामन्य उत्पाद कर दोनों ही वस्तुओं तथा अवकाश के मध्य चयन में दखल देते है।
4. आंशिक उत्पाद कर विभिन्न वस्तुओं के मध्य चयन में हस्तक्षेप करता है। सामान्य उत्पाद कर के साथ यह प्रश्न नहीं उठता।

उपरोक्त निष्कषों के आधार पर वस्तु करों के ऐसे उत्कृष्ट सेट खोज निकालना है जो अतिरिक्त भार को न्यूतम करें। इसी सन्दर्भ में 1927 में The Economic Journal में प्रकाशित अपने विष्चात लेख में रैंमजे ने इस मस्या पर विचार किया। 1970 के दशक में सर्वोत्कृष्ट विख्यात लेख में रैंमजें ने इस समस्या पर विचार किया। वस्तु करों के सम्बन्ध में करारोपण के सिलसिले में कई लेखकों ने इस प्रश्न पर फिर से विचार किा। वस्तु करों के सम्बन्ध में सर्वोत्कृष्ट करारोपण का जो समाधान खोजा गया उसे आयकर पर भी लागू करने का प्रयास किया गया है। यदि यह मानकर चला जए कि करेल गने के पूर्व साधनों का आदर्श आवंटन या तो वस्तु करों का सर्वोत्तम मिश्रण यह है जो इस आवंटन में न्यूनतम परवर्तन लात है। यह तभी होगा जब इन करों के कारण उपभोग में न्यूनतम परिवर्तन होत है। इस ख्याल से उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना जाना चाहिए। जिनकी मांग नहीं हो जाता। सार्वजनिक राजस्व प्रापत करने के लए सर्वोत्तम कर व्यवस्था का निर्धारण आर्थिक सैद्धान्तिकों के लिए मोहक चुनौती रही है। इस व्यवस्था का किस प्रकार निर्माण होगा किन्तु उपरोक्त व्यवस्था को लागू करने में निम्न कठिनाइयां है :

(क) उपरोक्त समाधान के अन्तर्गत वसतु करों की केवल सापेक्ष दरों पर विचार किया जाता है, किन्तु वस्तु कर तथा एकमुश्त कर, जैसे व्यक्ति कर के गुण–दोषों का कोई तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जाता। साथ्ज्ञ ही यह विवेचना की जाती है केवल मौजूदा साधनों आवंटन तथा साधनों की आपूर्ति के सन्दर्भ में, किन्तु इस पर समानता के सन्दर्भ्ज्ञ मे भी विचार किया जा सकता है।

(ख)रैमजे के प्रस्तवों में एक दोष यह भी है कि इसमें इस वषिय पर विचार नहीं किा गया कि संकीर्ण आधर वाले करों से विस्तृत आधर वाले कर श्रेष्ठ है। जब निम्न दरों पर लगाए गए करों की बात की जाती है तब संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की बाढ़ आ जाती है।

**कार्यकुशलता एवं समानता का संयोग :–**

कार्यकुशलता एवं समानता के संयुक्त सन्दर्भ में आयकर के गुणों का गहन परीक्षण किया गया है जिसके कुछ महत्वपूर्ण परिणाम इस प्रकार है–

1. आयकर की सीमान्त दरों में वृद्धि उपयुक्त नहीं,
2. आयकर की स्थिर सीमान्त दर के साथ आय की एक न्यूनतम सीमा को कर से छूट मिलनी चाहिए,
3. इस न्यूनतम सीमा के नीचे ऋणात्मक आयकर लगाना चाहिए, आदि।

अमरेश वागदी का कहना है कि ऐसी कर व्यवस्था की खोज जारी है जो समानता पर आधारित होने के साथ कार्यकुशल भी हो। इस खोज में आदर्श करारोपण की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। आदर्श करारोपण के सिद्धान्त के हाल के साहित्य में निम्नलिखित पथ प्रर्दशन सिद्धान्त निकले है।

1. आदर्श रूप में, एक मुश्त कर तथा हस्तान्तरण श्रेष्ठ है, क्योंकि वे आर्थिक साधनों की निर्णय प्रक्रिया में न्यूनतम हस्तक्षेप करते है। साझि ही कर लगन पर उपभोक्ता तथा उत्पादनकर्ता जो समायोजन करते है। उस प्रक्रिया में उपरोक्त करों की लागत न्यूनतम रहती हे।
2. कार्यकुशलता के ख्याल से 'प्रयास' सर्वोत्तम सर्वोत्तम कर सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से स्वीकार्य नहीं हो सकते। 'दूसरा' सर्वोत्तम कर आय करों तथा परोक्ष करों का संयोग है।
3. मध्यवर्ती वस्तुओं को आयात शुल्क से छूट मिलनी चाहिए तथा इस शुल्क को अन्तिम वस्तुओं पर लग घरेलू करों के साथ जोड़ देना चाहिए।
4. प्रत्यक्ष करों की स्थिति में, आदर्श करारोपण सिद्धान्त के अनुसार उपभोग पर कर लगाना चाहिए, न कि आय या योग्यता पर। यदि आय को आधार मानकर कर लगाया जाए तो कर की दर को साधारण होना चाहिए।

आदर्श करारोपण के सन्दर्भ में गोविन्द राव का कहना है कि निकट भविष्य में कर सुधार के लिए सर्वोत्तम रास्ता यही होगा कि कर आधार को विस्तृत किया जाए, कर की दर में कमी की जाए, एक ही दर पर कर लगाया जाए तथा उत्पादन के साधनें पर कर लगाने से बचा जाए। साथ ही कार्यकुशलता तथा समानता के दृष्टिकोण से अभी ओश्र शोध करने की आवश्यकता है।

## सारांश (Summary):-

1. आवंटन कुशलता तब हासिल की जाती है जब किसी अर्थव्यवस्था में सभी उपलब्ध संसाधनों को इस तरह से आवंटित किया जाता है कि यह सभी बाजार सहभागियों को अधिकतम संभव लाभ प्रदान करता है।

2. आवंटन संबंधी दक्षता बनाए रखने के लिए, बाजार को ऐसे तरीके संचालित होना चाहिए जो सूचनात्मक और लेन–देन कुशल हो।
3. वास्तविक दुनिया में, लेनदेन लागत और सूचना विषमता के कारण आवंटन कुशलता आम तौर पर लागू नहीं होती है।
4. उपभोक्ता अधिशेष और उत्पादक अधिेश का एहसास आवंटन कुशलता बाजारों मे होता है जहां सीमान्त उपयोगिता सीमांत लागत के बराबर नहीं होती है, जिससे कुछ बाजार खिलाड़ियों को दूसरों की कीमत पर लाभ मिलता है।

**शब्दावली (Key words):-**

1. समायोजन प्रक्रिया (Adjusment Process)
2. कर भार (Tax Incidence)
3. अवशिष्ट (Residual)
4. करारोपण एवं कार्यकुशलता (Taxation and Efficiency)
5. प्रेरणाएं (Incentives)
6. समानता (Equality)
7. अतिरिक्त भार (Excess Burden)
8. व्यर्थ का विवाद (Sterile Controversy)
9. विकृत (Distrot)
10. व्यक्ति कर (Poll Tax)

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books):-**


1. लोक अर्थशास्त्र, जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
2. मुद्रा, बैकिंग एवम लोक वित्त, डॉ0 टी0टी0सेठी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
3. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
4. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
5. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
6. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
7. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021
8. लोकवित्त डॉ0 एस0 कें0 सिंह साहित्य भवन पब्लिकेशन , आगरा।
9. पब्लिक फाइनेंस एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र डॉ0 जी0डी0 अवस्थी भारत बुक सेन्टर, लखनऊ।

**प्रश्न उत्तर (Question Answer):-**

1. साधनों के आवंटन के प्रभाव को समझाइए।
2. अतिरिक्त भार के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. अतिरिक्त भार के सम्बन्ध में मार्शल के विश्लेषण की व्याख्या कीजिए।
4. जोसेफ हिक्स के विचारों को समझाइए।
5. प्रत्यक्ष कर एवं साधनों के पुर्नवितरण की विवेचना कीजिए।
6. परोक्ष कर तथा साधनों के पुनववितर्तरण की व्याख्या कीजिए।
7. प्रशासनिक एवं अनुपालन की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
8. आय का पुनर्वितरण और करारोपण एवं समानता की व्याख्या कीजिए।
9. आदर्श करारोपण का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
10. कार्यकुशलता एवं समानता का संयोग को स्पष्ट कीजिए।

## खण्ड – 03

## इकाई – 04

## करापात

# Incidence of Taxation

**1.0 परिचय :–**

न्यामूर्ति होम्स के मतानुसार 'कर सभ्यता का मूल्य' है, परन्तु कर का भुगतान स्वैच्छिक न होकर अनिवार्य होता है, जिसे अनिधियम के अनुसार करना होता है। जब ये अधिनियम विधान सभा यासंसद द्वारा पारित हो जाते है, तब उनका पालन करना अनिवार्य हो जाता है। जब सरकार किसी व्यक्ति पर कर लगाती है तो यह उस कर को टालने का प्रयास करता है, जिससे उसे कर का भार स्वयं न सहना पड़े। कोई भी व्यक्ति आसानी से कर के भार को सहन करना नहीं चाहता है, वह उसे दूसरे व्यक्ति पर टालने का प्रयास करता है। कभी तो वह ऐसा करने में सफल तो कभी असफल हो जाता है। व्यावहारिक रूप से सरकार को यह ज्ञात करना अनिवार्य हा जाता है। कि कर का अन्तिम भार किस व्यक्ति पर पड़ा है। जब तक कर भार की सही जानकारी प्राप्त नहीं हो जाती तब तक करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण करना समव नहीं हो पाता जो एक कल्याणकारी राज्य के लिए आवश्यक होता है। अतः यह जानना आवश्यक होता है कि कौन व्यक्ति उस कर के भार को सहन कर रहा है। डॉ0 डाल्टन के अनुसार, 'किसी कर के भार की समस्या का अध्ययन करना प्रायः इस बात की जानकारी करना हे कि उस कर को कौन देता है।''

**1.1 उदेश्य :–**

1. किसी वर्ग विशेष पर कर लगाना।
2. व्यक्तियों पर पड़ने वाली कर के प्रभाव की जांच।
3. प्रत्यक्ष करों के भार की जानकारी।

**1.2 करापात का अर्थ :–**

कर भार या करापात से आशय अन्तिम रूप से कर के भार को वहन करने से है। डॉ0 डाल्टर के अनुसार जो व्यक्ति कर का भुगतान करे उस कर का दबाव पड़ता है और जो व्यक्ति अन्ति रूप से कर का भार सहन करें उसे कर भार या करापात कहा जाता है।

इस प्रकार कर भार सैद्धान्तिक रूप से उस व्यक्ति पर पड़ा माना जाता है जो अन्तिम रूप से उसका मौद्रिक भार सहन करता हो। डाल्टन का कथन है कि –'' कर के भार की समस्या इस बात से सम्बन्धित रहती ळै कि कौन उसका भुगतान करता है।''जो व्यक्ति कर का भार वहन करता है उसे उसी मात्रा में त्याग करना पड़ता है तथा उपभोग की मात्रा भी उसी अनुपात कम हो जाती है। प्रो0 मुसग्रव का कथन है कि ''कर भार शब्द जिसका साधारणतः प्रयोग होता है, कर के अन्तिम या प्रत्यक्ष मौद्रिक भार के स्थान से सम्बन्धित होता है।'' अतः राजस्व दृष्टि से प्रत्यक्ष द्राव्यिक भार को ही करापात कहते है। प्रो0 मेहता एवं अग्रवाल का कथन है कि – '' कर काभार एक कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।'' करापात में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है– क. भार द्राव्यिक होना चाहिए , ख. भार प्रत्यक्ष होना चाहिए , ग. कर भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जिससे वह वसूल किया जाता है।

श्रीमती उर्सुला हिक्स ने प्रभ्भावपूर्ण कर भार एवं औपचारिक कर भार मे भेद किया है। करों में व्यापक प्रभावों को ही प्रभावपूर्ण कर भार कहा गया है। कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार को औपचारिक कर भार कहा गया है। औपचारिक कर भार के आधार पर करदाता की मानसिक प्रतिक्रिया का अभास न होने के कारण प्रभावपूर्ण कर भार का अध्ययन किया जाता है। वान मेंरिंग के अनुसार ,'' कर भार वह बिन्दु है जहां पर कर का अन्तिम भार पड़ता है। किसी भी व्यक्ति समूह पर कर के अन्तिम भार के जो भावी प्रभाव होते है, उन्हें कर विवर्तन के सिद्धान्त का भाग नहीं माना जा सकता।''

श्रीमती उर्सुल हिक्स ने प्रभावपूर्ण कर भार एवं औपचारिक कर भार में भेद करते हुए कहा है कि ''अर्थशास्- में हम कर भार के सम्बन्ध में दो धारणाओं से सम्बन्ध रखते है। सर्वप्रथम किस निश्चित (प्रायः एक वर्ष) में किसी कर विशेष से प्राप्त होने वाली राशि की सांख्यिकी गणना की विधि, या विक्लप स्वरूप जनता की आय का अनुपात जा अन्य लोगों की आय का साधन बनती है, जिसका भुगतान प्रबन्धकर्ता को सामूहिक सन्तुष्टि की वित्त व्यवस्था हेतु किया जाता है।''

### 1.3 करापात का कराघात में अन्तर

कर– भार एवं कराघात दोनों एक से प्रतीत होते है, परन्तु कर–भार एवं कराघात में निम्न अन्तर पाये जाते हैः–

1. कराघात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो कि कर राशि का भुगतान करे और कर भार उस व्यक्ति पर होत है जो अन्तिम रूप से उस भार को वहन करे।

2. यदि कर भार को अन्य व्यक्तियों पर टाल दिया जाये तो कर का दबाव व कर भार पृथक–पृथक व्यक्तियों पर पड़ेगा।
3. कर भार कर का प्रारम्भिक भार है, जबकि कराघात उसका अन्तिम भार है।
4. कराघात से बचना कानून की अवहेलना करना है, जबकि कर भार से बचने हेतु प्रयास करना सर्वथा वैधानिक है।
5. कराघात से आशय सरकार को किये गये कर राशि के मौद्रिक भुगतान से है, जबकि कर भार से आशय कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से है।
6. जिस व्यक्ति पर कर लागाया जाये, करापात सदैव उस व्यक्ति पर हाता है, परन्तु कर भार उस पर न पड़ सके , इसके लिए कर का विवर्तन होना जरूरी है।

**1.4 करापात निर्धारित करने वाले तत्व :–**

**1. वस्तु की मांग और पूर्ति की लोच :–**

किसी वस्तु के ऊपर निर्धारित किये गये कर का भार उस वस्तु की मांग की लोच पर निर्भर होता है। यदि वस्तु की मांग लोचदार है, तो कर का भार उत्पादक तथा विक्रेता के ऊपर पड़ेगा क्योंकि ऐसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि करने पर वस्तु की मांग कम हो जायेगी और उसे लाभ्ज्ञ की कम प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में उत्पादक वस्तु का मूल्य बढ़ाना उचित न समझेगा और कर भार को स्व्यं सहन करेगा। इसके विपरी जब वस्तु की मांग बेलोचदार होती है, तब कर की पूर्ण मात्रा के बराबर मूल्य बढ़ जाने पर भी उपभोक्ताओं की मांग कम न होगी। अतः इस परिस्थिति में कर का भार उपभोक्त पर पड़ता है।

**2. स्थानापन्न वस्तु की उपलब्धि :–**

किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध होने पर, उसकी मांग बहुत लोचदार रहती है। ऐसी परिस्थिति में, कर का भार उत्पादक या विक्रेता पर ही पड़ता है। उदाहरणार्थ , यदि चाय पर कर लगा दिया जाय परन्तु उसकी स्थानापन्न वस्तु 'कॉफी' पर कर न लगाया जाय तो उत्पादक अथवा विक्रेता चाय के मूल्य में अधिक वृद्धि नहीं कर सकेगा, क्योंकि चाय के मूल्य में वृद्धि होने पर उपभोक्ता कॉफी का प्रयोग करने लगेंगे।

**3. कर की प्रकृति :–**

सामान्यतया प्रत्यक्ष करों का भार अधिक होता है क्योंकि करदाता कर का भार किसी दूसरे पर डाल नहीं सकता है, परनतु इसके विपरीत करों का भार कम होत है, क्योंकि करदाता कर का भार दूसरों पर डाल सकता है।

**4. कर की राशि :–**

कर की राशि कम होने पर उत्पादक या विक्रेता उसे स्वयं सहन करता है, क्योंकि कोई भी उत्पादक या विक्रेता वस्तु का मूल्य बढ़ाकर उनकी मांग घटाने का प्रयत्न नहीं करता है।

5. समय का तत्व :–

जब कर कम समय के लिए लगाया जाता है जो इस प्रकार के कर उत्पादक या विक्रेता स्वयं सहन करते है ताकि उनकी वस्तु की मांग पर कोई प्रभाव न पड़े। इसके विपरीत, जब किसी वस्तु पर कर अधिक समय के लिए लगाया जाता है तो उत्पादक या विक्रेता वस्तु का मूल्य बड़ा देते है और उस कर का भार उपभोक्ताओं पर पड़ने लगता है।

**6. करापता तथा उत्पत्ति के नियम :–**

उत्पत्ति के नियमों का कर भार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कर भार उत्पत्ति के नियम के अनुसार, कर की रकम के बराबर उससे अधिक या कम हो सकता है। करापात पर उत्पत्ति के नियमों का क्या प्रभव पड़ता है इसके बारे में हम आगे चलकर पूर्ण प्रतियोगिता में कर भार का निर्धारण के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा करेंगे।

**7. श्रम और पूँजी की गतिशीलता :–**

स्माज में श्रम और पूँजी की पूर्ण गतिशीलता होने पर उत्पादक कर के भार को उपभोक्ता पर डाल सकता है। इसके विपरी, यदि उत्पादक ने किसी उद्योग में बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी का विनियोग किया है जिसे वह सरलता से निकाल नहीं सकता है, तो ऐसी स्थिति में उत्पादक को कर का भार स्वयं सहन करना होगा।

**1.4 करापात : आधुनिक विचार (प्रो0 मसग्रेव) :–**

डाल्टन एवं अन्य परम्परागत अर्थशास्त्रियों ने करापात की समस्या का 'आंशिक संतुलन' के अन्तर्गत विवेचन यिा है, परन्तु आधुनिक विचार परम्परागत विचारों से एकदम भिन्न

है। उर्सला हिक्स, प्रो0 मसग्रे व कुछ अन्य लेखकों ने स्वीडन के अर्थशास्त्रियों विशेषकर विकसेल का अनुकरण करते हुए करापात की समस्या का विवेचन 'सामान्य संतुलन' के अन्तर्ग किया है। जब तक हमने देखा कि करापात का अर्थ 'प्रत्यक्ष मौद्रिक भार' से यिा गया है अर्थात अन्तिम रूप से जिस करदाता की जेब से इस प्रकार का पैसा निकलता है उसी पर कर का भार पड़ता है। परन्तु आधुनिक विचारधारा में प्रत्यक्ष मौद्रिक भार एवमफ अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार जैसे कर की मान्यता यह है कि कर भार के अध्ययन के लिए कर के प्रभावों से सम्बन्धित सभी तथ्वों का ज्ञान होना आवश्यक है। हमारे लिये यह ज्ञान करना जरूरी है कि करारोपण से मजदूरी वेतन, लाभ, ब्याज आदि पर क्या प्रभाव पड़ सकते है। करारोपण के बाद वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में क्या परिवर्तन हो सकते है? ये परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से होते है अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ? ये परिवर्तन व्यक्तियों की आय की दिशा में होते है अथवा व्यय की दिशा में।

प्राचीन लेखक उक्त बातों की जानकारी के सम्बन्ध में प्रायः स्पष्ट नही है। िकवे कर भार विवर्तन का मुख्यतः उसी धारा पर आधारित करते है कि प्रत्येक कर का अन्तिम भार होता है, जबकि व्यवहारतः कर भार का पता तभी लगाया जा सकता है जब कर लगने से साधनों का हस्तान्तरण व्यक्तिगत उपयोग से सार्वजनिक या राजकीय उपयोग में होता हो। अतएव पिछले अर्थशास्त्रियों की यह भी धारणा है कि करारोपण से किसी न किसी व्यक्ति को हानि होती ही है जबकि वस्तुतः ऐसा होना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त हानि का पता लगाने के लिए भी करो के साथ–साथ राजकीय व्यय का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। एकांकी रूप हानि के अध्ययन की बात उपयुक्त तर्क सम्मत नहीं है। करारोपण से यदि किसी को हानि होती है तो राजकीय व्यय किसी को लाभ भी होता है।

परम्परागत मत के इन दोषों के कारण ही आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने करभार का विस्तृत विवेचन किया है। आधुनिक विचारों का उद्देश्य मुख्यतः स्वीडन के अर्थ शास्त्रियों , विशेषकर विकसेल से हुआहै और पिछले वर्षो में श्रीमती हिक्स, मसग्रव आदि लेखकों ने इस नवीन विचारों का और भी विकास किया है। प्रो0 मसग्रव ने बताया है कि कर भार का अभिप्राय आय के वितरण में पैदा होने वाल उन परिवर्तनों से है जो करारोपण एवम् सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते है। प्रायः यह माना गया है कि आय–व्यय के बजट में तीन प्रकार के परिवर्तन या प्रभाव होते है–

1. साधनों के निजी उपयोग से राजकीय उपयोगों के लिए स्थानान्तरण,

2. उत्पादन सम्बन्धी परिवर्तन, तथा
3. आय के वितरण सम्बन्धी परिवर्तन।

**(क) कर भार :–**

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के इन विचारों को विस्तार से समझने पर ही उपर्युक्त स्पष्ट हो सकेगी। इसके लिये सर्वप्रथम हम उन स्थितियों को लेते है जिनमे यह मान लेते है कि बजट की कर नीति में परिवर्तन कर दिये गये है पर सार्वजनिक व्यय नीति यथापूर्व है। कर नीति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वितरण में जो परिवर्तन होते है, उन्हें अर्थशास्त्रियों ने विशेष कर भार कहा है। ये परिवर्तन इस उदाहरण से समझे जा सकते है कि यदि पूर्ण रोजगार की स्थिति में आय कर की दर कम कर दी जायेगी तो लोगों के पस वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय करने के लिये पर्याप्त आय बची रहेगी। जिससे अनेक मूल्यों में वृद्धि होगी और क्रय स्तर को पूर्ववत् बनाये रखने के लिये लोगों को अधिक व्यय करना पड़ेगा यानी मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा हो जायेगी। इसी तरह आयकर की दर में वृद्धि करने से मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो जायेगी। ये दोनों ही दशाएं आय के वितरण को प्रभावित करेंगी।

उक्त विवरण से प्रकट है कि कर–नीति सम्बन्धी परिवर्तनों के दो प्रकार के भार होते है–

1. किसी विशेष कर नीति सम्बन्धी परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले भार, तथा
2. मुद्रा स्फीति तथा मुद्रा संकुचन के कारण उत्पन्न होने वाले भार का प्रभाव।

ये दोनों ही प्रभाव एक दूसरे को इस प्रकार प्रभावित करते है कि स्थिति प्रायः बड़ी जटिल हो जाती हे। इसीलिये विशेष करो के भार का अध्ययन करना बड़ा कठिन और पेचीदा हो जाता है।

कभी – कभी सरकार इस उद्देश्य से कि उसकी आय मे कोई परिवर्तन न हो पोय, एक कर के स्थान पर दूसरा कर आरोपित करती है। ऐसा करने से उस कर के कारण आय के वितरण में जो परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हे। 'विभोदात्मक कर भ्ज्ञार' कहा जाता है। सरकार द्वारा इस प्रकार के करारोपण पर सरकारी व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होता और वस्तुओं और सेवाओं की मांग भी पहले जैसी ही बनी रहती है, पर चूंकि अलग–अलग प्रकार के कर व्यक्तिगत मांग को अलग–अलग ढंग स प्रभावित करते है, अतः मूल्य स्तर पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। इसका अभ्रिप्राय यह है कि व्यक्ति को अपने व्यय की स्थिति को यथापूर्व कायम रखने के लिये अपने वास्तविक व्यय में परिवर्तन करने

पड़ने है। परिणामस्वरूप करों के परिवर्तन के साथ–साथ सरकार की मौद्रिक आय समान हनीं रह पाती जिससे विभोदात्मक कर भार का ठीक–ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। विभेदात्मक कर भार के समुचित अध्ययन के लिये यह आवश्क है कि ऊपर बताये गये दोनों ही प्रकार के करो के वितरणात्मक परिणामों की जानकारी प्राप्त की जाय। इसके लिये हमे दोनों प्रकार के करों के समय बाजार विशेष कर भार के अध्ययन की तुलना में निश्चित रूप से अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें मुद्रास्फीति मुद्रा संकुचन के प्रभावों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहेगी।

**(ख) व्यय भार :–**

अभी तक हमने बजट सम्बन्धी नीतियों के परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले वितरणात्मक परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले वितरणात्मक परिवर्तनों की समस्या का विश्लेषण यह मानते हुए किया है कि यदि सार्वजनिक व्यय यथा पूर्व बना रहे और कर नीति सम्बन्धी परिवर्तन कर दिया जाये तो अर्थ व्यवस्था मे होने वाले परिवर्तना का अध्ययन कैसे यिका जाना चाहिये। अब हम यह मानकर आगे बढ़ते है। कि सरकार की कर नीति में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। किन्तु लोक व्यय में परिवर्तन किया गया हे तो ऐसी स्थिति में आय के वितरणात्मक परिवर्तनों का अध्ययन किस प्रकार किया जाना चाहिये। लोक व्यय अथवा सार्वजनिक व्यय के इन प्रभावों को 'सार्वजनिक व्यय सम्ब्न्धी भार' कहा जा सकता है। ये भार भी दो प्रकार के होते है।

1. विशेष सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी भार, तथा
2. विभोदात्मक सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी भार।

सार्वजनिक व्यय के परिणामस्वरूप व्यक्ति की आय मे होने वाले परिवर्तनों को विशेष सार्वजनिक व्यय भार कहा जाता है। जबकि सार्वजनिक व्यय के वितरणात्मक प्रभावों को विभोदात्मक सार्वजनिक व्यय भार कहते है। इन दोनों ही का विश्लेषण किया जाना उपयुक्त है।

जब सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की जाती है तो व्यक्तिओं की आय में भी बढ़ोतरी होती है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य बढ़ जाते है। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय में कमी करने से व्यक्तिओं की आय भी कम हो जाती है और वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य भी घट जाते है। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार के अघ्ययन मे दो तरह के परिवर्तनों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

1. प्रथम, उन परिवर्तनों का जो सार्वजनिक व्यय के कारण उत्पन्न होते है,
2. द्वितीय उन परिवर्तनों का जो मुद्रा संकुचन के कारण पैदा हो जाते है।

दोनों अध्ययन भी उतना ही कठिन और जटिल है जितना विशेष आयकर में वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाले दोनों प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन। अतः इस कठिनाई अथवा जटिलता से बचने के लिए यह उचित है कि सार्वजनिक व्यय के परिवर्तनों का अध्ययन हम बजट नीति को ध्यान में रखकर करे। प्रो0 मसग्रव की मान्यता है कि सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी भार का अध्ययन इतना उपयोगी नहीं होता जितना विभोदात्मक कर भार का होता है। इसका कारण यह है कि कर नीति के परितर्वन अधिक उत्सुकता पैदा करने वाले होते है तथा सार्वजनिक सेवाओं से प्राप्त होने वाले लाभों का वितरणात्मक महत्व अवश्य होता है। लेकिन ये लाभ भार का एक अंश नहीं कहे जा सकते।

**(ग) . संतुलित बजट भार :–**

अब तक हमने अलग–अलग कर नीति के परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले और व्यय नीति से उत्पन्न होने वाले वितरणात्मक परिवर्तनों की चर्चा की है। अब हम दोनों एक साथ अध्ययन करेंगे। कर नीति और व्यय नीति दोनों ही के परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले वितरणात्मक परिवर्तनों को संतुलित बजट भार कहा जा सकताहै। अतः संतुलित बजट भार का विचार शीघ्रता से उपयोग किया जा सकता है, जहां पर कुछ सार्वजनिक सेवाएं वास्तव में जोड़ो या घटायी जाती है जो कि विशिष्ट करों में परिवर्तन के कारण होती है। यदि इसके साथ–साथ कर नीति में भी परिवर्तन कर दिये जाते है तो उससे सरकार की आवश्यक कोष भी प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार का अध्ययन अर्थशास्त्रियों की दृष्टि से सबसे उपयुक्त है।

**1.5 कर का पूँजीकरण :–**

कर का पूँजीकरण सम्पत्ति के हस्तान्तरण के समय किया जात है। जैसा कि हमें ज्ञात है, सम्पत्ति का धारक पूँजी पर लगाये गये गरों का विवर्तन आगे की ओर न करके पीछे की ओर इस प्रकार से करता है कि भविष्य में लगाये जाने वाले करों की पूर्ति हो सके। इसमें करों का विवर्तन प्रतिगामी रूप में किया जाता है। क्रेता सम्पत्ति को क्रय करते समय इसलिए सम्पत्ति का कम मूल्य देता कि उसे भविष्य में इस सम्पत्ति पर करों का भुगतान करना होता है। इस प्रकार

पीछे की ओर किये जाने वाले कर विवर्तन को 'कर पूँजीकरण' के नाम से जाना जाता है। ब्यूहलर ने पूँजीकरण में वार्षिक आय के पूँजीगत मूल्य की गणना की है। इसको हम वार्षिक आय में प्रतिशत दर का भाग देकर ज्ञात कर लेते है। उदाहरण के लिए व्यक्ति एक मकान खरीदना चाहता है। इस मकान पर वह जितनी पूँजी विनियोग करेगा उस पर 5 प्रतिशत वार्षिक आय प्राप्त करेगा। उदाहरण द्वारा ही ठीक ढंग से समझा जा सकता है। मान ले कि एक एकड़ भूमि से साल में 5,000 रूपये की आय प्राप्त होती है। 5 प्रतिशत ब्याज की दर पर भ्ज्ञूमि का पूँजी मूल्य 1,00,000 रूप्ये होगा। अब मान ले कि इस भूमि पर साल मे 1,000 रूपये की दर पर कर का भुगतान करना पड़ता है। अतः कर को घटाने के पश्चात् इस भूखण्ड की शुद्ध आय 4,000 रूपये हुई। इस स्थिति में 5 प्रतिशत ब्याज पर इसका पूँजी मूल्य 80,000 रूपये हुआ। भूमि का क्रेता विक्रेता को सिफ 80,000 रूपये दता है तथा 20,000 रूप्यें कीमत में काट लेता है। इसे ही कर पूंजीकरण कहा जाता है। भूमि का क्रेता भविष्य में भुगतान किये जाने वाले सभी कर के भार से बच जाता है।

कुछ लेखकों ने कर पूंजीकरण को पीछे की और विवर्तन माना है क्योंकि क्रेता कर भार को विक्रेता पर टाल देता है, लेकिन सेलिगमैन इस विचार से सहमत नहीं। यह विवर्तन एवं पूजींकरण में अन्तर कते है। उनका कहना है कि विवर्ततन का समबन्ध सिर्फ एक कर से है। कर के बोझ से बचने की अन्य प्रक्रिया को समझ लिया जाय। यदि उत्पादनकर्ता को यह भय हो कि कर के कारण कीमत वृद्धि की वजह से मांग में काफी कमी हो जायेगी तो यह दूसरा रास्ता अपना सकता है तथा उत्पादन प्रक्रिया में सुधार द्वारा उत्पादन की लागत में कमी करने का प्रयास कर सकता है। सेलिगमैन का कहन है कि ''विवर्तन का उपयोग सबसे अधिक होता है, पूंजीकरण का कम तथा रूप परिवर्तन का सबसे कम।''

**अपवंचन :–**

अपवंयन की स्थिति में करदाता कर के बोझ जाता है तथा सरकार को कर राजस्व से हाथ धोना पड़ता है। अवैधानिक अपवंचन के अन्तर्गत करदात कानूनी प्रावधानों के अनुसार काय्र नहीं करता है। तरकरी, कर की चोरी, आदि इस तरह है अपवंचन हे। कर लगने के कारण वस्तु के गुण में हृास करके भी कर के बोझ से बचा जा सकता है, लेकिन ऐसा करना वैधानिक नहीं है क्योंकि गुणमें हृास होने पर भी कीमत में कमी नहीं की जाती है। यदि उपभोक्ता इनका उपभोग करना छोड़ दे तो वे इन करों के भार से बच सकते है। इससे कानून का उल्लंघन भी नहीं होता तथा सरकार आय से वंचित रह जाती है। यदि सरकार चाहती है कि लोग शराब छोड़ दे ंतो

ऐसे अपवंचन को वांछित कहा जायेगा, लेकिन यदि सरकार की ऐसी इच्छा नहीं है तो यह अवांछित अपवंचन कहलायेगा।

## सारांश (Summary):-

प्राचीनकाल की अपेक्षा वर्तमान समय में करो का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। आजकल कराधान का उद्देश्य केवल राजकीय कर्तव्य की पूर्ति हेतु धन इकट्ठा करना ही नहीं, वरन् समाज में धन का समान वितरण करना है तथा उत्पत्ति पर पड़ने वाले बुरे प्रभावों को रोकना है। इस दृष्टिकोण से वर्तमान समय में कर भार के अध्ययन का महत्व बढ़ गया है। करारोपण द्वारा समाज के धन के वितरण में समानता लाने के प्रास किए जाते है। करारोपण को उस समय तक न्यायसंगत नहीं बनाया जा सकता है जब तक कि हमें यह जानकारी न हो कि विभिन्न करों का भार किस रूप में और कहां पड़ रहा है। करारोपण के वास्तविक उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए तथा समाज में धन के वितरण की असमानता को समान करते हेतु कर भार का न्यायपूर्ण ढंग से वितरण होना आवश्यक है। समाज में करारोकपण द्वारा धन के वितरण की असमानता को केवल तभी दूर किया जा सकता है, जबकि कर भार का वितरण न्यायपूण्र हो। एक सफल करारोपण नीति वही मानी जाती है, जिसके अन्तर्गत कर का भार केवल उन्हीं लोगों पर पड़े जिन पर वास्तव में सरकार कर लगाना चाहती है। डाल्टन का मत है कि ''प्रत्येक कर अनेक प्रकार के आर्थिक प्रभाव डालता है और यह प्रश्न किया जाता है। कि क्या हम करापात की विशेष समस्या को प्रभाव की अधिक सामान्य समस्या से पृथक कर सकते है।''

## शब्दावली (Key words):-

1. कर दवाब (Impact)
2. कर भार (Incidence)
3. कर विवर्तन (hifting)
4. वास्तविक भार (Real Burden)
5. कर का पूँजीकरण (Tax capitalization)
6. अपवंचन (Exasion)

## प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the Question):-

1. करापात क्या है?
2. करापात का अर्थ बताइऐ?
3. करापात एवं कराघात में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
4. करापात को निर्धारित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।
5. करापात पर आधुनिक विचारों की विवेचना कीजिए।
6. कर का पूँजीकरण का मूल्यांकन कीजिए।
7. अपवंचन की अवधारणा को समझाइए।

## खण्ड 03

## इकाई 05

# कर–विवर्तन के सिद्धांत

### (Theories of Tax Shifting)

1.0 परिचय (Introduction) :-

कर विवर्तन से आशय है कि करदाता के द्वारा कर के भार को दूसरे पर टाल देना ह। साधारणतः कर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर टाला जाता है। कर विवर्तन का कर भार से संबंध है। कर भार से बचने के लिए कर विवर्तन करना आवश्यक है। कर विवर्तन के सिद्धान्तों रचना समय–समय पर होती रही है। इस संबंध में कर भार के सिद्धान्त प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों की देन है, जिससे 'केन्द्रीयकरण सिद्धान्त' तथा फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियों के द्वारा 'प्रसार का सिद्धान्त' नये सिद्धान्त के रूप में आया है साथ ही कर–वहन के सिद्धान्तों में मांग – पूर्ति का सिद्धान्त सबसे अधिक मान्य और तर्क संगत है। इसका अनेक प्रकार की स्थितियों और समस्याओं के सन्दर्भ में प्रयोग किया जा सकता है।

### 1.1 उद्देश्य (Objective ) :-

1. वर के बोझ का स्थानान्तरण
2. सरकार को करों के आयतन आवंटन और प्रभावों की जानकारी।
3. अर्थव्यवसाी पर पड़न वाली संसाधन लागत की जानकारी।
4. केन्द्र सरकार व राज्य सरकार दोहरा कर की समस्या को सुधारने हेतु जाकारी प्राप्त करना।

इस प्रश्न के उत्तर देने हेतु कि करों का अंतिम आपतन किस प्रकार निर्धारित होता है, कई सिद्धांतों की संरचना की गई है। हम इनमें से तीन मुख्य सिद्धांतों पर विचार करेंगे। इन सिद्धांतों के नाम क्रमशः **केन्द्रीकरण सिद्धांत (Concentration Theory)**, **प्रसारण सिद्धांत (Diffusion Theory), तथा माँग और पूर्ति सिद्धांत (Demand and Supply Theory)** है।

### 1. <u>केन्द्रीकरण सिद्धांत (Concentration Theory)</u>

इस सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रांस देश के भौतिकवादियों (Physiocrats) ने तथा शास्त्रीय (क्लासिकी) (Classical) अर्थशास्त्रियों ने किया था। उनके तर्कानुसार यदि किसी संसाधन के द्वारा उत्पादित मूल्य से उस संसाधन की अपनी उत्पादन लागत (अथवा रख–रखाव की लागत) को घटा दिया जाए तो इस अंतर को विचाराधीन

संसाधन की **अतिरेक आय अथवा उसका निवल उत्पाद/मूल्य** (suplus value/net product/net value) कहा जाता है। इस अवधारणा को ध्यान में रखते हुए इन लोगों ने यह मत अपनाया कि करों का आरोपण कहीं भी किया जाए, उनकी वसूली का अंतिम स्त्रोत तो केवल **अतिरेक आय** ही हो सकता है। अर्थात् सभी करों के आपतन का केन्द्रीकरण संसाधनों की अतिरेक आय पर होना पूर्वनिश्चित रहता है। इस कथन की व्याख्या हेतु उनका कहना था कि किसानों को छोड़कर अन्य सभी वर्ग (जिनमें कारीगर, सरकारी कर्मचारी, पादरी, अध्यापक आदि शामिल हैं) 'अनुत्पादक' होते हैं। अर्थात् उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य में उतनी ही वृद्धि होती है जितनी इन उत्पादकों की अपनी 'उत्पादन लागत' होती है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इन 'अनुत्पादक' वर्गों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि सदैव उनके अपने रख–रखाव पर व्ययित साधनों के बराबर ही होती है। अतः इन लोगों को आय भी उनके अपने रख–रखाव के बराबर ही मिलती है तथा उसमें 'अतिरेक आय' का ऐसा कोई अंश नहीं है। खेती के इस ''निवल उत्पाद'' को ज़मींदार हड़प लेते हैं तथा किसानों के पास केवल उनके अपने रख–रखाव के बराबर ही आय बचती है। ज़मींदारों द्वारा खेती से ली हुई यह आय (जिसे भूमि का लगान कहते हैं) ज़मींदारों के अतिरिक्त अन्य प्राश्रयी (Parasite) वर्गों (जैसे–पादरी, संगीतदार, कवि, शिक्षक आदि जो 'वास्तव' में कुछ निवल मूल्य पैदा नहीं करते) में बंट जाती है। इस प्रकार जब कर समाज के किसी वर्ग अथवा किसी वस्तु पर लगाया जाए, **तो वहाँ पर निवल उत्पाद के अभाव के कारण उसका अंतरण खेती से मिलने वाली लगान आय पर हो जाना पूर्वनिश्चित है।** इसलिए प्रशासन के लिए अच्छा यही रहता है कि किसी अन्य आय अथवा वस्तु आदि पर कर लगाने के स्थान पर केवल भूमि के लगान को ही करोरोपित करें। किसी भी अन्य स्थान, वर्ग, वस्तु तथा गतिविधि आदि पर कर लगाने पर भी वह अंततः भूमि लगान पर ही अंतरित (केन्द्रित) हो जाएगा।

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत का विस्तार करते हुआ यह दावा किया कि अर्थव्यवस्था में निवल उत्पाद के दो स्त्रोत है, अर्थात् भूमि लगान और लाभ आया। अतः प्रत्येक कर का आपतन अंततः इन दो आय स्त्रोतों पा केन्द्रित होता है। उदाहरणार्थ यदि कर कृषि के उत्पादन पर लगाया जाए तो इसकी सीमांत उत्पादन लागत बढ़ जाएगी जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन की कीमतों और श्रमिकों की मजदूरी की दरें बढ़ेंगी और कर का अंतिम आपतन लाभ आय वहन करेगी। इसके विपरीत यदि कर भूमि के लगान पर लगाया जाए, तो इसका आपतन भूमिदारों पर ही केन्द्रित रह जाएगा क्योंकि उन्हें इसके आवर्तन का कोई मार्ग उपलब्ध नहीं होगा।

इसी प्रकार यदि श्रमिकों की मजदूरी आय पर कर लगाया जाए तो उनकी मौद्रिक मजदूरी की दरें को बढ़ाना पड़ेगा क्योंकि क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार उन्हें केवल 'निवार्ह–वेतन ही मिलता है। परिणामस्वरूप लाभ आय पाने वाले इस कर के आपतन को किसी और पर विवर्तित नहीं कर पाएँगे। इस प्रकार इस सिद्धांत में क्लासिकी विस्तारण द्वारा यह परिणाम निकलता है कि सभी करों का अंतिम आपतन लाभ आय पर होता है।

2. **<u>प्रसारण सिद्धांत (Diffusion Theory)</u>**

इस सिद्धांत के अनुसार करें का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था की गतिविधियों, वस्तुओं तथा आय–मदों आदि पर फैल जाता है। इस मतानुसार आय अधिशेष (अथवा निवल उत्पाद) का अस्तित्व केवल खेती में न होकर विविध प्रकार से अर्जित की गई अन्य आय मदों में भी होता है। इस कारण कर–आपतन का केन्द्रीकरण अनिवार्य नहीं है। इसके विपरीत विभिन्न वर्गों की आर्थिक गतिविधियों में परस्पर निर्भरता के फलस्वरूप कीमतों में परिवर्तन द्वारा कर–आपतन की अंतरण प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया द्वारा कर–आपतन पूरी अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार फैल जाता है कि इसकी अंतिम रूप–रेखा की ठीक–ठीक जानकारी नहीं मिल सकती।

इस सिद्धांत की एक निहित मान्यतायह है कि अर्थव्यवस्था में एक ऐसी बाजार व्यवस्था है जो पर्याप्त हद तक स्पर्धायुक्त (Competitive) है और इस कारण इसके उत्पादन साधन सुगमता और शीध्रता से एक रोजगार प्रयुक्ति (employment use) से दूसरी रोजगार प्रयुक्ति में जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में इस बात से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता कि करों का प्राथमिक आघात कहाँ होता है, अर्थात् सरकार इन्हें कहाँ लगाती है। इनका आपतन तो हर दशा में सारी अर्थव्यवस्था पर फैल जाता है।

### 1.3 <u>त्रुटियाँ (Limitations)</u> :-

परन्तु इस सिद्धांत पर ध्यान से विचार करने पर इसकी कई त्रुटियाँ सामने आती हैं:–

- यदि यह मान भी लिया जाए कि करों का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था में बिखर जाता है, तो भी इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सरकार को कर लगाते समय इस बात पर विचार नहीं करना चाहिए कि वह इन्हें कहाँ लगा रही है। इसका कारण यह है कि **करों के व्यापक प्रभाव उनके अंतिम आपतन के अतिरिक्त भी कई रूप लेते हैं** और इन प्रभावों की रूपरेखा काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती

है कि करों को कब, कहाँ तक, तथा किस प्रकार लगाया गया है, उनकी दरें तथा अन्य संबंधित विशेषताएँ क्या हैं, आदि।

- यह सिद्धांत अयथार्थ मान्यताओं पर आधारित है। बाज़ार व्यवस्था में भी पूर्ण स्पर्धा देखने को नहीं मिलती। वर्तमान काल में तो एकाधिकारक तत्वों की गिनती इसकी मुख्य विशेषताओं में की जाने लगी है। इसलिए निश्चितता पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक कर का आपतन आवश्यमय बिखर जाता है। वास्तविकता यह है कि कई करों के आघात और आपतन के एक स्थान पर ही टिके रहने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है।
- प्रो0 डाल्टन (Pofessor Dalton) का कहना है कि इस सिद्धांत से मिलने वाले निष्कर्ष हमें करों कि अंतिम आपतन के आवंटन की जानकारी प्राप्त करने तथा एक उपयुक्त कर–नीति का निर्माण करने में हतोत्साहित करते हैं। परन्तु कर–नीति की संरचना एक ऐसा कार्य है जो सब प्रकार की रूकावटों के बावजूद यथासंभव सुचारू रूप से किया जाना चाहिए।

### 1.4 मांग और पूर्ति सिद्धांत (Demand and Supply Theory) :-

कर–आपतन के अंतरण का यह सर्वाधिक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, एक करारोपित इकाई अपनी कदेयता को किसी अन्य इकाई पर तभी अंतरित कर सकती है जब वह किसी खरीदी जाने वाली वस्तु की कीमत में कमी अथवा किसी बेचे जाने वाली वस्तु की कीमत में बढ़ोतरी करने में सफल हो जाए। परंतु बाज़ार में किसी वस्तु विशेष की कीमत करदाता की इच्छा के स्थान पर उस वस्तु की मांग और पूर्ति की क्रिया–प्रक्रिया द्वारा निर्धारित होती है।

कर–आपतन का अंतरण मांग अथवा पूर्ति फलन (अथवा दोनों) में परिवर्तन के बिना संभव नहीं है। रेखाचित्र में यह परिवर्तन मांग वक्र, पूर्ति वक्र अथवा दोनों के स्थानांतरण के रूप में दृष्टिगोचर होता है। मांग में कमज़ोरी आने पर मांग–वक्र दक्षिण–पश्चिम की ओर सरकता है, तथा कर–आपतन में विक्रेताओं का अनुपात बढ़ जाता है। इसी प्रकार मांग में वृद्धि होने पर मांग–वक्र पूर्व–उत्तर की ओर खिसकता है तथा कर–आपतन में क्रेताओं का भाग बढ़ जाता है। इसी प्रकार पूर्ति–वक्र के खिसकने का प्रभाव भी स्वस्पष्ट है।

ध्यानयोग्य है कि क्रेताओं और विक्रेताओं में कर–आपतन का आनुपातिक आवंटन करारोपित वस्तु/सेवा की पूर्ति तथा मांग की लोचों के अनुपात के बराबर होता है।

## 1.5 कुछ विशेष करों का आपतन आवंटन (Incidence of Some Particular Taxes)

### एकाधिकार पर कर (A Tax on Monopoly)

**(क) लाभ पर कर (Tax on Monopoly Profit) –**

एकाधिकार में कीमत और उत्पादन निर्धारण दोनों एकाधिकारी के हाथ में होते हैं जिन्हें वह अपनी लाभ आय को अधिकतम बनाने के आशय से उस स्तर पर तय करता है जहाँ उसकी सीमांत लागत और सीमांत आगम बराबर हो (MC = MR) । यदि सरकार एकाधिकारी की लाभ आय पर कर लगाए तो उससे न तो एकाधिकारी की सीमांत लागत में परिवर्तन आता है, न उसके सीमांत आगम में। इस कारण वह कीमत अथवा उत्पादन की मात्रा में संशोधन द्वारा अपनी लाभ आय में वृद्धि नहीं कर सकता। यदि उसके लिए कर पूर्व लाभ आय में वृद्धि करना सम्भव होता तो वह कर लगने से पहले ही ऐसा कर लेता। अतः उसके द्वारा कर–पूर्व लाभ–आय को अधिकतम करने के पश्चात् उस पर चाहे किसी प्रकार का भी कर आरोपा जाए, एकाधिकारी कीमत में परिवर्तन करके उसका आपतन क्रेताओं पर हस्तांतरित करने में अक्षम होता है।

**(ख) उत्पादन अथवा बिक्री कर (Excise Duty or Sales Tax) –**

परन्तु यदि एकाधिकार पर कर उसकी लाभ–आय के स्थान पर उसके उत्पादन अथवा उसकी बिक्री पर लगाया जाए, तो उसकी माँग–पूर्ति स्थिति में एक बुनियादी परिवर्तन आ जाता है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के कर से माँग अथवा पूर्ति वक्र प्रभावित होकर स्थानान्तरित हो जाता है तथा वस्तु की सर्वाधिक लाभ वाली कीमत बदल जाती है। इस बात से क्रियात्मक रूप से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कर वस्तुपरक है अथवा मूल्यपरक। यदि कराघात क्रेताओं पर हो, तो माँग वक्र के स्थानान्तरित होने के साथ सीमांत आगम (MR) वक्र भी स्थानान्तरित हो जाता है तथा यदि कराघात एकाधिकारी पर हो तो लागत में परिवर्तन के कारण सीमांत लागत (MC) वक्र स्थानान्तरित हो जाता है। इसके फलस्वरूप एकाधिकारी की अधिकतम लाभ–आय की संतुलन स्थिति तथा उत्पादन और कीमत सभी एक साथ बदल जाते हैं।

परन्तु ध्यान रहे कि कुछ असाधारण स्थितियों में पूरा कर–आपतन केवल क्रेताओं अथवा केवल एकाधिकारी पर भी केन्द्रित हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि माँग वक्र X-अक्ष के समानांतर हो, तो सीमांत आगम में परिवर्तन नहीं हो सकता, तथा कर का पूरा आपतन एकाधिकारी को ही वहन

करना पड़ता है। इसी प्रकार यदि पूर्ति वक्र X-अक्ष के समानांतर हो तो समस्त कर–आपतन क्रेताओं को वहन करना पड़ता है।

**2. <u>अल्पाधिकार पर कर (A Tax on Oligopoly)</u> :-**

अल्पाधिकार मे बाज़ार की प्रचलित संतुलन कीमत पर माँग वक्र में एक कोण होता है। कीमत के प्रचलित स्तर से अधिक होने पर माँग काफी लोचदार होती है, क्योंकि अल्पाधिकारी द्वारा कीमत में बढ़ोत्तरी करने पर अन्य विक्रेता कीमत नहीं बढ़ाते जिससे क्रेता उनकी ओर चले जाते हैं। इसके विपरीत यदि वह कीमत घटा दे, तो अन्य विक्रेता भी अपनी कीमतें घटा देते हैं जिससे उसकी उत्पादित वस्तु की माँग में केवल थोड़ी–सी वृद्धि हो पाती है। इससे अल्पाधिकारी की वस्तु की माँग वक्र में एक कोण बन जाता है, और सीमांत आगत वक्र में भी एक ऊर्ध्वाधर उछाल (Vertical Jump) आता है।

मान लीजिए कि अल्पाधिकारी की संतुलन उत्पादन मात्रा OM के बराबर है, तो इस तथ्य को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि इस उत्पादन मात्रा को घटाने अथवा बढ़ाने पर दो भिन्न–भिन्न असमान सीमांत आगतें प्राप्त होती हैं, तथा इनमें से उत्पदन घटाने वाली सीमांत आगत उत्पादन बढ़ाने वाली सीमांत लागत से अधिक होती हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादन लागत में वृद्धि अथवा करारोपण के कारण सीमांत लागत वक्र ऊपर की ओर स्थानान्तरित होता है। परन्तु जब तक यह सीमांत आगत के ऊर्ध्वाधर उछाल के दो छोरों के बीच से निकलता है, वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं आता। अर्थात् यदि सरकार द्वारा लगाए गए कर (चाहे वे वस्तुपरक हों, चाहे मूल्यपरक) के कारण सीमांत लागत के ऊपर को खिसकने पर भी सीमांत आगत के ऊर्ध्वाधर उछाल के भाग से बाहर न निकले तब तक कर का समस्त आपतन विक्रेताओं पर ही रहता है। यह स्थिति ठीक वैसे ही है जैसे माँग की लोच अपरिमित हो। परन्तु यदि कर इतना अधिक हो कि सीमांत लागत वक्र के ऊर्ध्वाधर भाग के ऊपरी छोर से बाहर निकल जाए तो इसके प्रभावस्वरूप कीमत बढ़ जाएगी और कर का एक भाग क्रेताओं को भी वहन करना पड़ेगा।

इसके विपरीत यदि अल्पाधिकारक पर एक–मुश्त कर (lump sum tax) लगाया जाए तो माँग और पूर्ति वक्र स्थानांतरित नहीं होते, इसलिए कर का सारा आपतन विक्रेता को ही वहन करना पड़ता है।

**3. <u>सीमा शुल्क (Customs Duties)</u> :-**

**(क) माँग और पूर्ति लोच (Demand and Supply Elasticities)**

ये शुल्क वस्तु करों के प्रकार के हैं। यहाँ भी मूल नियम यही है कि किसी वस्तु पर आरोपित कर का विक्रेताओं और क्रेताओं में आवंटन उसकी माँग–लोच और पूर्ति–लोच के अनुपात में होता है। अतः यदि विदेशी व्यापार स्पर्धायुक्त हो तो सीमा शुल्क का आयातकों (Importers) और निर्यातकों (Exporters) में बँटवारा, निर्यात की माँग और पूर्ति की लोचों द्वारा निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए आयातित वस्तुओं की माँग लोच कम हो अथवा निर्यातित वस्तुओं की पूर्ति लोच कम हो तो सीमा शुल्क देश के व्यापारियों को ही वहन करना पड़ता है।

### (ख) अंतर्राष्ट्रीय मंडी में हिस्सा (Share in International Market)

किसी आयात अथवा निर्यात शुल्क के आपतन में करारोपित वस्तु के बाज़ार के विस्तार की भी भूमिका रहती है। यदि किसी आयातित वस्तु की विश्व–माँग में आयात करने वाले देश का भाग काफी कम हो, तो इसका माँग में कमी होने से वस्तु की विश्व–माँग तथा कीमत में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ सकता। इस दशा में आयात शुल्क लगाने पर उसका बोझ देश के आयातकों पर ही सीमित रह जाता है। इसके विपरीत यदि आयातक देश का विश्व–माँग में भाग काफी अधिक हो तो वह आयात शुल्क को आंशिक (अथवा पूरा) विक्रेता देशों पर अंतरित कर सकता है। इसी प्रकार के विश्लेषणात्मक निष्कर्ष निर्यातित वस्तुओं पर भी लागू होते हैं। यदि विचाराधीन वस्तु क्रेताओं के लिए अति–आवश्यक हो (अर्थात् इसकी माँग की लोच शून्य अथवा अति कम हो), तो निर्यातक देश क्रेताओं पर निर्यात शुल्क का बोझ डाल सकता है। परंतु निर्यात में थोड़ा–सा भाग होने पर अथवा वस्तु के अनावश्यक होने पर किसी देश के लिए ऐसा करना संभव नहीं होता।

### (ग) स्पर्धा–स्थिति (State of Competition)

उपर्युक्त विश्लेषण एक स्पर्धायुक्त व्यापार ढाँचे पर आधारित है। यदि इस स्पर्धा में किसी प्रकार की रूकावट हो तो विदेशी व्यापार की मंडी विखंडित हो जाती है। यह रूकावट सरकारी नीतियों का परिणाम भी हो सकता है और निजी क्षेत्र की अपनी देन भी हो सकता है। उदाहरणार्थ इस व्यापार व्यवस्था में कोटा, लाइसेन्स आदि की नीतियों तथा एकाधिकारक तत्वों के कारण स्पर्धा में कमी आ सकती है। ऐसी स्थिति में सीमा शुल्क के आपतन आवंटन का पूर्वनिश्चित उत्तर पाना संभव नहीं होता। इसके लिए मंडी के विखंडित भागों के संदर्भ में विचार करना ही उचित रहता है।

**4. लाभ–आय पर कर (A Tax on Profits) :-**

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से सभी लाभ–आयों को समान दरों पर करोरापित किया जा सकता है। ऐसी दशा में कोई उद्यमकर्ता अपना धंधा बदलकर इस कर से नहीं बच सकता। परन्तु फिर भी विभिन्न वस्तुओं की माँग–लोच में असमानता होना एक निश्चित–सी बात है और जिन वस्तुओं की माँग लोच कम हो उनके उत्पादक कर आपतन के एक अंश को विक्रेताओं पर हस्तांतरित करने में सफल हो सकते हैं। ऐसा होने पर इन वस्तुओं के उत्पादन में लाभ की करोपरांत दर अन्य लाभ आयों की तुलना में अधिक हो जाएगी, जिससे दीर्घकाल में उत्पादन साधन अन्य रोज़गारों से निकलकर इन वस्तुओं के उत्पादन में आने लगेंगे। इस प्रक्रिया से दूसरी वस्तुओं की पूर्ति घटेगी, उनकी कीमतें बढ़ेंगी तथा उनका उत्पादन भी अधिक लाभयुक्त हो जाएगा। इसी प्रक्रिया द्वारा पूर्व–वर्णित वस्तुओं में लाभ की दर घटेगी। यह प्रक्रिया सभी ओर लाभ की दर के समान हो जाने तक चलती रहेगी। इस प्रकार दीर्घकाल में कर–आपतन का कुछ अंश क्रेताओं पर अंतरित हो जाएगा। यह भी संभव है कि करोपरांत लाभ की औसत दर घटने से बचत और निवेश भी घट जाएँ। परन्तु यदि ऐसा हो तो इनकी गिनती कर के आपतन नहीं, प्रत्युत कर के प्रभावों में की जायेगी।

सामान्य वास्तविकता यह है कि सभी लाभ–आयों पर एक ही दर से कर लगाना लगभग असंभव होता है। इस कार्य में सरकार की प्रत्यक्ष नीति (जैसे कि लघु उद्योगों को बढ़ावा देना अथवा पिछड़े इलाकों में निवेश को प्रोत्साहित करना आदि) के अतिरिक्त व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी आती हैं। उदाहरणार्थ सभी लाभ आयों की समुचित पहचान करना तथा उनको ठीक–ठीक अनुमानित करना संभव नहीं होता। अतः वास्तविकता यह रहती है कि कुछ स्त्रोतों से होने वाली लाभ–आय कर–मुक्त रह जाती है तथा कुछ स्त्रोतों से होने वाली लाभ आय पर कर की आंशिक अथवा पूरी चोरी हो जाती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि अल्पकाल में करारोपित लाभ–आयों की समुचित पहचान करना तथा उनको ठीक–ठीक अनुमानित करना संभव नहीं होता। अतः वास्तविकता यह रहती है कि कुछ स्त्रोतों से होने वाली लाभ–आय कर–मुक्त रह जाती है, तथा कुछ स्त्रोतों से होने वाली लाभ आय पर कर की आंशिक अथवा पूरी चोरी हो जाती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि अल्पकाल में करोरापित लाभ–आयों में कर–मुक्त लाभ–आयों की तुलना में कमी आती है, परन्तु दीर्घकाल में सबकी करोपरांत दर एक समान होने की प्रवृत्ति काम करती है तथा जहाँ तक करदाताओं द्वारा लाभ–आय पर लगे कर को अंतरित करने का प्रश्न है, यह दो चीज़ों पर निर्भर करता है।

(क) उन वस्तुओं और सेवाओं की माँग तथा पूर्ति लोचों पर जिनके माध्यम से लाभ–आय अर्जित की जा रही है, तथा

(ख) उन वस्तुओं और सेवाओं में प्रयुक्त होने वाले आगतों की माँग और पूर्ति लोचों पर।

**5. <u>सम्पत्ति पर कर (Taxes on Property)</u> :-**

सम्पत्ति के कई प्रकार हो सकते हैं तथा एक सम्पत्ति को कई प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है। इस कारण सम्पत्ति पर आरोपित कर के आपतन सम्बन्धी भी कई परिणाम हो सकते हैं। सर्वप्रथम स्थायी उपयोग वस्तुओं को लीजिए। इनमें मकान (जो किराए पर न दिए गए हों), वाहन, गहने आदि शामिल हैं। यदि इन वस्तुओं पर कर उनके वर्तमान स्वामियों से वसूला जाए, तो वह तभी अंतरित हो सकता है जब उनका क्रय–विक्रय हो (जिसकी संभावना कम रहती है)। इन वस्तुओं के स्वामी यदि इन्हें कीमत घटाए बिना बेच सकें, तो कर का भार नए स्वामियों पर हस्तांतरित कर सकते हैं। वर्तमान वस्तु–स्वामियों के दृष्टिकोण से यह अग्रवर्ती विवर्तन (Forward shifting) कहलाएगा। परन्तु एक तो इन वस्तुओं को सामान्य परिस्थितियों में बेचने की प्रथा नहीं है। दूसरे इन वस्तुओं के नए क्रेता यह जानते हैं कि उन्हें इन वस्तुओं पर कर भी अदा करना पड़ेगा। अतः वे इनका क्रय मूल्य घटाकर इस कर से छुटकारा पाना चाहेंगे। यदि वे इन वस्तुओं को घटे दामों पर क्रय करते हैं तो उनकी दृष्टि से यह पश्चगामी विवर्तन होगा। अतः यह जानने के लिए कि कर का कितना भाग नए क्रेताओं तथा कितना वर्तमान स्वामियों को वहन करना पड़ता है, हर विचाराधीन वस्तु की वैयक्तिक माँग और पूर्ति लोचों की तुलना की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ यदि विचाराधीन करोरापित वस्तु अनावश्यक है और इसकी प्रतिस्थापी वस्तुएँ उपलब्ध हैं, तो अधिक संभावना यही है कि इसकी करोपरांत कीमत गिर जाएगी तथा उस हद तक कर का आपतन वर्तमान स्वामियों को वहन करना पड़ेगा।

पूँजी–वस्तुओं के रूप में सम्पत्ति का मामला थोड़ा कम जटिल है। इस प्रकार की सम्पत्ति के दो भाग हैं, वित्तीय परिसम्पत्तियाँ तथा भौतिक/स्पृश्य सम्पत्तियाँ। वित्तीय परिसंपत्तियों से होने वाली आय ऋणी इकाइयों से प्राप्त होती है (यहाँ पर वित्तीय परिसम्पत्तियों के स्वामी ऋणदाता हैं, तथा इन परिसम्पत्तियों के जारी करने वाले ऋणी है)। यदि सभी वित्तीय परिसम्पत्तियों पर कर लगाया जाए, तो ऋणदाताओं की करोपरांत आय घट जाती है। इस क्षति की पूर्ति वित्तीय परिसंपत्तियों से मिलने वाली ब्याज आय के बढ़ने से हो सकती है, और यह परिवर्तन वित्त की पूर्ति और माँग की लोचों पर निर्भर करता है। इसके विपरीत यदि कर केवल कुछ वित्तीय

परिसम्पत्तियों पर लगाया जाए तो ऋणदाता उपलब्धित वित्त को करारोपित परिसम्पत्तियों से हटा कर कर–मुक्त परिसम्पत्तियों में हस्तांतरित करने की चेष्टा करेंगे। इसके फलस्वरूप वित्तीय परिसम्पत्तियों पर मिलने वाली कर–पूर्व आय में औसत बढ़ोतरी कुछ धीमी दर से होगी। इसके अतिरिक्त इस वृद्धि दर को वित्त की माँग और पूर्ति के लोच मूल्य भी प्रभावित करेंगे।

**स्पृश्य (tangible) पूँजी वस्तुओं (Capital goods)** के रूप में सम्पत्ति (जैसे कि मशीनरी आदि) पर लगे कर के संभव विवर्तन की व्याख्या उपर्युक्त वस्तु–कर जैसी ही है। परन्तु इन वस्तुओं के कर–विवर्तन पर विचार करते समय हमें इनसे सम्बद्ध दो बातों पर ध्यान देना चाहिए –

(क) एक यह कि एक पूँजी वस्तु की माँग में इस तथ्य का योगदान रहता है कि वह किन अन्य वस्तुओं के निर्माण में काम आती है, अर्थात् वह किन वस्तुओं के उत्पादन हेतु आगत (input) की भूमिका निभाती है। अतः एक स्पृश्य पूँजी वस्तु पर आरोपित कर का अग्रवर्ती विवर्तन (अर्थात् उसकी कीमत में बढ़ोत्तरी) निम्नलिखित कारकों के निवल प्रभाव पर निर्भर करेगा –

(i) इस पूँजी वस्तु द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमतों में बढ़ोतरी हो सकती है कि नहीं, और यदि हो सकती है तो कितनी।

(ii) इस पूँजी वस्तु द्वारा उत्पादित वस्तुओं में प्रयुक्त अन्य आगतों (inputs) की कीमतों को किस हद तक घटाया जा सकता है।

(iii) विचाराधीन पूँजी वस्तु के आगत रूपी उपयोग में कितनी कमी करना संभव है। स्वयं इन तीनों प्रश्नों के उत्तर सम्बद्ध माँग और पूर्ति लोचों पर आधारित है।

(ख) इसी प्रकार एक करारोपित पूँजी वस्तु के पश्चगामी कर–विवतन के लिए इसके उत्पादन में प्रयुक्त आगतों की माँग और पूर्ति लोचों पर विचार करना पड़ता है। यदि करारोपण के फलस्वरूप उनकी कीमतें घट सकती हों, तो विचाराधीन पूँजी वस्तु पर आरोपित कर का पश्चगामी विवर्तन भी संभव होगा, अन्यथा नहीं।

## 6. मकानों/मकानों के किरायों पर कर (A Tax on Houses/House Rents) :-

स्मरणीय है कि निम्नलिखित विवेचन अमरीका जैसी उस स्पर्धायुक्त अर्थव्यवस्था की स्थिति को दर्शाता है जिसमें सामान्यतः मकानों को व्यवसायिक दृष्टि से बनाने, बेचने और किराए पर लेने–देने का चलन हो। ऐसी अर्थव्यवस्था में यदि मकानों पर

कर लगाया जाए तो क्रेता इनकी क्रेय कीमत में कमी द्वारा क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं। यह पश्चगामी विवर्तन हैं। परन्तु मकान बहुधा किराए पर भी उठाए जाते हैं जिससे किरायों में वृद्धि द्वारा भी अग्रवर्ती कर विवर्तन हो सकता है। अल्पकाल में मकानों की पूर्ति में कमी नहीं की जा सकती। उनकी पूर्ति लोच अति कम रहती है। इस कारण कर–आपतन मकानों के वर्तमान स्वामियों द्वारा वहन किए जाने की संभावना अधिक रहती है। परन्तु यदि मकानों की माँग भी लोचहीन हो तो किराया बढ़ने की सक्षम प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार अल्पकाल में कर–आपतन के विभाजन का निवल परिणाम दोनों अल्पकालीन लोचों पर निर्भर करेगा।

इसके विपरीत दीर्घकाल में यदि मकानों में निवेश की लाभदायिकता घट जाए तो नए मकानों का निर्माण घट जाएगा तथा कर–आपतन किराएदारों पर पड़ेगा।

यदि मकानों के स्थान पर करारोपण मकानों के किरायों पर हो, तो माँग और पूर्ति लोचों का सामान्य विश्लेषण यहाँ पर भी लागू होगा और यदि कर–आपतन मकान मालिकों पर पड़े तो दीर्घकालीन में उनकी पूर्ति घट जाएगी और किराएदारों को किराए की बढ़ोत्तरी के रूप में फिर से कर वहन करना पड़ेगा।

परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारत जैसे देश में जहाँ आवासों का निर्माण और उनका किराए पर उठाना सामान्य व्यवसायिक गतिविधियाँ नहीं है तथा जहाँ किराएदारों को कई प्रकार के कानूनी अधिकार प्राप्त हैं, उपरोक्त विवेचन पूरी तरह लागू नहीं होता।

**7. <u>उत्तराधिकार कर तथा उपहार/दान कर (Inheritance and Gift Taxes)</u> :-**

उत्तराधिकार पर लगे कर के आपतन के बारे में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण मिलते हैं। कुछ लोगों का यह मत है कि इस कर का आपतन वसीयतकर्ता पर पड़ता है। इस मत के अनुसार किसी सम्पत्ति पर सीधे करारोपण और उत्तराधिकार पर करारोपण में अंतर केवल इतना है कि पश्चायुक्त मामले में करारोपित सम्पत्ति के स्वामी की मृत्यु के पश्चात् होता है। यहाँ पर यह तर्क भी दिया जाता है कि हो सकता है, वसीयतकर्ता ने अपनी बचत में इसलिए बढ़ोतरी करने का निर्णय लिया हो कि उसके उत्तराधिकारियों को ज्यादा सम्पत्ति मिले। यदि ऐसा हो तो कर का आपतन वसीयतकर्ता पर पड़ेगा।

परन्तु यह तर्क त्रुटिपूर्ण और भ्रामक है। बुनियादी तथ्य तो यह है कि एक मृतक कभी किसी कर की अदायगी नहीं कर सकता। इस कारण उत्तराधिकार कर का आपतन वसीयतकर्ता पर पड़ना असंभव है। इसके अतिरिक्त कर–देयता में इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वसीयतकर्ता के बचत–निर्णय में इस विचार का योगदान था

या नहीं कि उत्तराधिकारियों के लिए कितनी सम्पत्ति छोड़ी जाए। दूसरी बात यह है कि उत्तराधिकार कर की देय–राशि मृतक द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति के मूल्य पर नहीं, प्रत्युत उत्तराधिकारी को मिलने वाली सम्पत्ति और उसकी अनय कसौटियों पर अनुमपनित कर–देय क्षमता पर निर्धारित की जाती है। वास्तविकता यह है कि उत्तराधिकार–कर उत्तराधिकारी ही वहन करता है। इस कथन की यथार्थता इस बात से भी जानी जा सकती है कि यदि उत्तराधिकारिता सम्पत्ति कर–मुक्त हो तो उत्तराधिकारी को मिलने वाली सम्पत्ति का मूल्य भी अधिक रहता है, जब कि करारोपण की स्थिति में उसको मिलने वाली सम्पत्ति भी घट जाती है। यदि वसीयतकर्ता संभावित कर के कारण अपनी बचत में कमी करे, तो यह उस कर के प्रभावों में गिना जाएगा, उसके आपतन में नहीं।

**उपहार/दान** कर के आपतन का विश्लेषण भी उपर्युक्त ढ़ंग से किया जा सकता है।

प्रथम, उस स्थिति पर विचार करें जिसमें **कर उपहार पाने वाले से वसूल किया जाता हो।** उपहार पाने वाले को मिलने वाले कर–मुक्त तथा करोपरांत मूल्यों की तुलना करने से साफ पता चलता है कि इस कर का आपतन उपहार प्राप्त करने वाले पर होता है, उपहार देने वाले पर नहीं। इस तर्क को सक्षम बनाने के लिए यह भी कहा जा सकता है कि इस दशा में उपहार पाने वाले की कर–देयता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उपहारदाता ने कुल मिलाकर कितने उपहार दिए, प्रत्युत यह कर–देयता इस बात पर निर्भर करती है कि विचाराधीन उपहार का क्या मूल्य है, तथा उपहार पाने वाले की आर्थिक स्थिति के अन्य घटक कौन से हैं। यदि उपहार दाता कर के कारण उपहार के मूल्य में परिवर्तन करता है तो इसे कर के आपतन में नहीं प्रत्युत उसके प्रभावों में गिना जाएगा।

अतः हम यह कह सकते हैं िकइस कर का आपतन उसी आर्थिक इकाई पर होता है जिस पर इसे आरोपा जाए।

**8. <u>निवल आय पर कर (Tax on Net Income)</u> :-**

यहाँ पर निवल आय का अर्थ किसी व्यक्ति एवं कुटुम्ब की उस आय से है जो उसे सकल प्राप्त आय में से आय–अर्जन के लिए किए गए व्यय को घटाने के पश्चात् प्राप्त होती है। आय कर के दो मुख्य रूप हो सकते हैं। यह हर स्त्रोत से प्राप्त आय पर लगाया जा सकता है अथवा केवल कुछ विशेष स्त्रोतों से प्राप्त आय पर ही देय हो सकता है।

यदि आय कर कुछ विशेष स्त्रोतों से प्राप्त आय पर ही लगाया जाए तो करदाताओं में करारोपित रोजगार–आयों को छोड़कर कर–मुक्त स्त्रोतों में रोजगार पाने की प्रवृत्ति दिखाई देगी। जो लोग करोरापित खं डमें रह जाएंगे, वे यह चेष्टा करेंगे कि उनके आय–स्तर में वृद्धि द्वारा उन पर आने वाला कर आपतन हस्तांतरित हो जाए। परन्तु यदि श्रम तथा अन्य साधनों की गतिशीलता कम हो तो कर–आपतन का वहन उसी हद तक करारोपित आय वर्गों पर पड़ेगा। ऐसे करदाताओं की करोपरांत आय घट जाएगी।

बहुअधा किसी स्त्रोत विशेष से प्राप्त की गई आय कर–मुक्त नहीं होती (जैसा कि भारत में कृषि आय के साथ है), केवल आय की राशि के आधार पर कर–मुक्त आय की प्रथम राशि तथा आय–कर दरों में परिवर्तन आ जाता है। इन परिस्थितियों में कर से बचने का एक ही मार्ग बचता है, और वह यह कि आय का अर्जन कर–मुक्त सीमाओं के अंदर किया जाए अथवा बिल्कुल न किया जाए। इसी प्रकार यदि कर–प्रणाली में अर्जित तथा गैर–अर्जित आय की अवधारणाएँ अपनाई गई हों, तो करदाता कर से बचने के लिए आय के वर्गीकरण में संशोधन नहीं कर सकता तथा न ही इस मार्ग से अपनी कर–देयता कम कर सकता है।

परन्तु ध्यान रहे कि उपर्युक्त निष्कर्ष इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार का कर–प्रशासन अति कार्य–कुशल एंव दक्ष है जिससे करों की चोरी असंभव है। यदि ऐसा न हो तो कुछ करदाता कर की अदायगी से बच जाते हैं और स्थिति करारोपण में विभेदीकरण की हो जाती है।

### 1.6 दुहरे कर की समस्या (Problem of Double Taxation)

एक ही कराधार पर एक से अधिक बार कर का वसूल किया जाना ''दुहरा कर'' कहलाता है। स्पष्ट है कि करदाताओं के दृष्टिकोण से यह एक अति अनुपयुक्त स्थिति होती है, और वे चाहते हैं ि कइस समस्या का कोई समुचित समाधान खोजा जाए। दुहरे कर के कई रूप हो सकते हैं।

1. दुहरे कर का एक रूप वह है जिसमें किसी एक कराधार पर दो या दो से अधिक सरकारें करारोपण कर रही हों। यहाँ पर हम पहले उस स्थिति को लेंगे जिसमें कर लगाने वाली सभी सरकारें अपने देश की हों, जैसे कि देश की केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें आदि। GST के लागू होने से पूर्व (जुलाई 2017 तक) भारत के संविधान में किसी कराधार पर एक से अधिक स्तर की सरकारों द्वारा कर नहीं लगाया जा सकता था। केवल इतना हो सकता था कि कई राज्य सरकारें अथवा

कई स्थानीय सरकारें एक ही कराधार पर अपने–अपने भौगोलिक क्षेत्र के अंदर कर लगाएँ। हमारे देश में कराधारों की पहचान और वर्गीकरण का काम बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है तथा यही बात कराधारों के विभिन्न सरकारी स्तरों में बाँटने पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए कृषि आय पर केवल राज्य सरकारें कर लगा सकती हैं जबकि कृषि–भिन्न आय पर केवल केन्द्रीय सरकार को कर लगाने का अधिकार है। GST के लागू होने के पश्चात् बहुत से परोक्ष करों को केन्द्र और राज्य एक साथ लगा रहे हैं।

2. दुहरे कर का एक अन्य स्वरूप वह है जिस में एक ही कराधार पर दो या दो से अधिक बार कर लगाया जाए। इस संदर्भ में भारतीय कर–प्रणाली काफी दोषयुक्त रही है, इसके मुख्य उदाहरण उत्पादन शुल्क और बिक्री कर हैं। अब इस दोष का निवारण हो गया है। ऐसे सभी कर मूल्यवर्धन आधारित हो गए हैं और अधिकतर GST में समाहित कर दिए गए हैं।

प्रत्यक्ष करों में भी कई प्रकार का दुहरापन देखने को मिलता है चाहे सैद्धांतिक रूप से कर का आधार बदलता जाता हो। इस तथ्य के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। एक आय अर्जित करने वाला व्यक्ति उस आय पर कर चुकाने के पश्चात् भी कई प्रकार से कर–देयी बनता है। उस आय को व्यय करने पर उसे व्यय–कर (Expenditure tax) तथा न करने पर धन–कर (Wealth tax) देना पड़ सकता है। इसी प्रकार बचाई गई आय को किसी को उपहार के रूप में देने पर उस पर उपहार कर (Gift tax) लगाया जा सकता है तथा यदि संपति का स्वामी उसे छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो उस पर मृत्यु कर अथवा/तथा उत्तराधिकार कर (Estate duty and/or inheritance tax) वसूले जा सकते हैं।

3. दुहरे कर का एक बहुचर्चित रूप वह है जिसमें एक ही आय पर दो देशों की सरकारें कर लगा रही हों। इस समस्या का मूल कारण सरकारों द्वारा यथा–संभव हर प्रकार से अपने कर–राजस्व को बढ़ाने की प्रवृत्ति है। साथ ही उनकी यह इच्छा भी रहती है कि सारी व्यवस्था इस प्रकार से हो जिससे आवश्यकता पड़ने पर कर–राजस्व को उचित स्तर तक बढ़ाया जा सके। इसके अतिरिक्त, कम से कम सैद्धांतिक स्तर पर, हर सरकार का यह अधिकार है कि वह देश के सभी साधनों पर कर के रूप में अपनी प्रभुसत्ता दर्शा सके। इन सब बातों का परिणाम कई बार यह निकलता है कि यदि कानून की अनुमति हो तो एक ही कर–आधार पर दो या दो से अधिक देशों की सरकारें कर लगा देती हैं। इस प्रकार के दुहरे कर की समस्या अधिकतर आय के मामले में देखने में आती है। हर सरकार यह चाहती है कि उसके देश के भीतर सकल

अर्जित आय पर कर लगाने का अधिकार उसे ही हो तथा यदि उसके नागरिक एवं व्यावसायिक इकाईयाँ अन्य देशों में जाकर अथवा वहाँ से आय अर्जित करें, तो उस पर भी कर वसूल करने का अधिकार उसी का हो। इस कारण एक इकाई विशेष जब पराए देश से आय अर्जित करती है तो इसे उस देश में आय कर देना पड़ता है तथा साथ ही उस पर अपने देश में भी कर–देयता का बोझ सहना पड़ता है।

इस दुहरे कर की समस्या का समाधान विभिन्न देशों की सरकारों में आपसी समझौतों से निकाला जा सकता है, जिसके अन्तर्गत सरकारें आय पर लगने वाले कर तथा उसकी वसूली आदि के सभी आयामों पर एकमत हो सकती हैं। परन्तु इस प्रकार के समझौते केवल कुछ गिनी–चुनी सरकारों में ही सम्भव हो सकते हैं। बाकी मामलों में हर सरकार अपनी नागरिक आर्थिक इकाईयों को विदेश में भुगतान किए गए आय कर के बदले कुछ राहत प्रदान करती है। इस राहत के कई रूप हो सकते हैं जैसे कि कर–माँग को विदेश में अदा किए गए कर की राशि के बराबर घटा देना, अथवा करदाता–इकाई पर रियायती दर से कर लगाना आदि।

## 1.7 सारांश (Summary) :-

कर विवर्तन  में संबध में करो का अंतिम आपतन किस प्रकार निर्धारित होता है। इस संबंध में केनद्रीकरण सिद्धान्त, प्रसारण सिद्धान्त तथा मांग पूर्ति सिद्धान्त है। भौतिकवादियों द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीकरण सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक कर का अंतिम आपतन शुद्ध उत्पाद पर ही टिक सकता है। यह शुद्ध उत्पाद के कृषि क्षेत्र में ही होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार शुद्ध उत्पाद के दो रूप होते है, अर्थात भूमि लगान ओर लाभ्ज्ञ आय तथा प्रत्येक कर का आपतन इन दो पर ही होात है। भूमि लगान पर लगाया गरा कर का अंतिम आपतन भूमिदर वहन करते हे। कृषि उत्पाद पर लगाए गए कर तथा अन्य सभी करों का आपतन लाभ्ज्ञ आय पर पड़ता है। प्रसारण सिद्धान्त के अनुसार शुद्ध मूल्य की उपज केवल खेती में न होकर अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में होती है। उन सब क्रय–विक्रय और लेनदेन की गतिविधियों के माध्यम से परस्पर निर्मरता होती है। कर वहन सिद्धान्तों में मांग पूर्ति का सिद्धान्त सबसे अधिक मान्य एवं तर्क संमत है साथ कर विवर्तन का जैसे–वस्तु कर, सीमा शुल्क, सम्पत्ति कर, मकानों के किरायो पर, उत्तराधिकार कर, उपहार कर में देखने को मिलत है। दुहरे कर की समस्या पर सकरार विशेष ध्यान रहता है।

## 1.8 शब्दावली (Key words)

1. कर का आघात (Impact of a tax)

2. कर वहन / आपतन (Indicence of a tax)
3. कर प्रभाव (effects of a tax)
4. कर का आघात (Impact of a tax)
5. अग्रवर्ती विवर्तन ( forward shifting)
6. बिक्री कर (Sales tax)
7. संपत्ति कर (Property tax)

**1.9 सन्दर्भित ग्रन्थ सूची (Reference Books) :-**


1. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
2. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
3. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
4. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021
6. लोक वित्त एस0के0सिंह साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।


1.9 प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the Question):-

1. कर विवर्तन का क्या अर्थ है? इसके लिए किन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है।
2. दोहरा कर की समस्या की विवेचना कीजिए।
3. कर विवर्तन के केन्द्रीकरण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. मांग और पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए?
5. सीमा शुल्क पर कर विवर्तन पर लघु नोट लिखिए।?
6. सम्पत्ति पर कर विवर्तन को समझाइये?
7. मकानो के किरायों पर करों के विवर्तन की व्याख्या कीजिए?

8. उत्तराधिकार कर तथा उपहार कर विवर्तन पर लघु नोट कीजिए?

## 1.10 बहुविकल्पीय प्रश्न (objective type question) :-

1. कर विवर्तन के प्रमुख सिद्धान्त है
   क. केन्द्रीकरण सिद्धान्त　　ख. प्रसारण सिद्धान्त
   ग. मांग और पूर्ति सिद्धान्त　　घ. उपर्युक्त सभी
   (उत्तर घ)
2. कर विवर्तन के प्रमुख सिद्धान्त है
   क. केन्द्रीकरण सिद्धान्त　　ख. प्रसारण सिद्धान्त
   ग. मांग और पूर्ति सिद्धान्त　　घ. इनमें से कोई नहीं
   (उत्तर ग)
3. एक ही कर को एक से अधिक बार कर वसूल किया जाना को क्या कहते हैः
   क. प्रत्यक्ष कर　　ख. अप्रत्यक्ष कर
   ग. समानुपातिक कर　　घ. दोहरा कर
   (उत्तर घ)
4. भारत में कौन सा कर, जो संविधान में वर्जित है–
   क. बाहय कर　　ख. आन्तरिक कर
   ग. दोहरा कर　　घ. इनमें से कोई नहीं
   (उत्तर ग)

## खण्ड–03

## इकाई–06

# राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

**परिचय :–** 1920 तथा 1930 के दशकों में सरकार की कुल आय एवं व्यय काफी थे। द्वितीय विश्वयुद्ध में दोनों मे काफी वृद्धि हुई, विशेषकर प्रतिरक्षा व्यय में ; थिमैरूया का कहना है कि 1925 तथा 1950 के मध्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समक्ष कई कठिनाइयां आयी जैसे दो विश्वयुद्धों के मध्य मुद्रा–स्फीति, 1930 की भयानक आर्थिक, मन्दी, युद्धकालीन एवं युद्धोत्तर मुद्रा–स्फीति, लेकिन राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार ने इन समस्याओं के समाधान की कोई कोशिश नहीं की, क्योंकि सरकार की भूमिका ''पुलिस राज्य'' तथा ''न्यूनतम कल्याणकारी राज्य'' तक ही सीमिति थी। यह भी ध्यान देने योग्य है कि आर्थिक स्थिरता कायम करने के यन्त्र के रूप में राजकोषीय नीति का विकास उस समय तक नहीं हो पाया था। 1950 के दशक से ही उपरोक्त अर्थ में इस नीति का उपयोग शुरू हुआ । इसलिए बीसवीं सदी के तृतीय क्वाटर (1950–1975) को केन्सव का युग कहा जाता है।

भारत में 1950 के दशक के प्रारम्भ में ही आयोजन को अपनाया गया तथा राजकोषीय नीति को वित्तीय साधन जुटाने, साधनों के आवंटन, आर्थिक स्थिरता तथा सामाजिक न्याय को प्राप्त करने का प्रमुख साधन माना गया। परम्परावाली अर्थशास्त्रियों ने बचत के बजटों को उचित ठहराया था। उस समय स्वतन्त्र अर्थव्यवसाी का विशेष महत्व था और सरकारी हस्तक्षेप को अस्वीकार कर दिया गया था। उस समय राजकोषीय नीति स्वतन्त्र रूप में कार्य करती थी।

वर्तमान में आर्थिक समस्याएँ जटिल होती जा रही हैं। सरकारों का ध्यान राजकोषीय नीति की ओर जाने लगा है। इस नीति का सहारा लेकर ही अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में श्रीमती हिक्स का कहना है कि ''राजकोषीय नीति का सम्बन्ध उस पद्धति से है जिसमें लोक–वित्त के विभिन्न अंग अपने प्राथमिक कर्तव्यों को पूरा करने हेतु सामूहिक रूप से आर्थिक नीति के उद्देश्यों को आगे बढऋाने के लिए प्रयोग में प्रबन्ध आदि की समुचित व्यवस्था करती है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जैसे–आर्थिक विकास, कीमत में स्थिरता, पूर्ण–रोजगार, करारोपण, सार्वजनिक आय–वयय, सार्वजनिक ऋण आदि सब की सुचारू व्यवस्था राजकोषीय नीति में की जाती है। राजकोषीय नीति के आधार पर सरकार करारोपण करती हे। देश में लोगों की करदान–क्षमता बढऋ रही है अथवा घट रही है। इन सब बातों का अनुमान लगाकर ही सरकार करों का निर्धारण करती है। सरकार की ऋण प्रबन्ध नीति का सम्बन्ध ब्याज

चुकाने, ऋणों का भुगतान करने आदि से होता है। राजकोषीय नीति आय, व्यय व ऋण के द्वारा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती है।

## उद्देश्य (Objective)

1. वित्तीय संसाधनों का संग्रह (Mobilisation financial resources )
2. बचत को प्रोत्साहित करना (Promotion of savings )
3. मुद्रा–स्फीति पर नियंत्रण (Control of Inflation )
4. सामाजिक न्याय (Social Justice )
5. आर्थिक विकास (Economic development )

## राजकोषीय नीति का अर्थ (Meaning of Fiscal Policy):-

प्रो0 कीन्स ने राजकोषीय नीति का प्रयोग आधुनिक अर्थ में है जबकि उन्होंने इसकी कोई औपचारिक परिभाषा नहीं दी है। प्रो0 कीन्स ने राजकोषीय शबद का प्रयोग उस समय किया जब िकवे करारोपण व बचत के प्रभ्झाव को एवं जनता से लिये गये द्धण द्वारा किये गये सरकारी विनियोग के व्यय को संदर्भित करते है। प्रो0 कीन्स ने राजकोषीय नीति को उपभोग के रूझान और विनियोग की प्रेरणा के बीच समायोजन करने वाला सन्तुलन तत्व बताया है। अतः कीन्स के विचार को स्ख्ट करने के लिए हम कह सकते हैं–'' राजकोषीय नीति एक ऐसी नीति है जो अर्थ व्यवस्था के विकास में सन्तुलनकारी तत्व के रूप में सार्वजनिक वित्त का प्रयोग करती है।''

राजकोषीय नीति का तात्पर्य वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सार्वजनिक आय तथा व्यय में परिवर्तनों से है। अतः इस प्रकार सरकारी कर तथा सरकारी व्यय राजकोषीय नीति के दो प्रमुख अंग है। प्रो0 आर्थर स्मिथीज के अनुसार – ''राजकोषीय नीति वह नीति है जिसमें सरकार अपने व्यय तथा आगत के कार्यक्रम को राष्ट्रीय आय उत्पादन तथा रोजगार पर इच्छित प्रभाव डालने तथा अनांछित प्रभावों को रोकने के लिए प्रयुक्त करती है।'' परन्तु आधुनिक काव्य में सार्वजनिक ऋण को भी राजकोषीय नीति का तीसरा महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है। व्यय, करारोपण, ऋण व वजट निर्माण में सम्बन्धित सरकारी क्रियाओं को राजकोषीय क्रियाएँ कहा जाता है और जब इन क्रियाओं का उद्देश्य पूर्ण उपयोग, आर्थिक स्थायित्व द्रुतगामी आर्थिक विकास और पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए किया जाता है तो उसे राजकोषीय नीति कहते है।

प्रो0 सेम्युलसन के शब्दों में एक सकारात्मक राजकोषीय नीति से हमारा आशय निम्नवत् है–

''कराधान और सार्वजनिक व्यय को ऐसा रूप देने की प्रक्रिया से है जो व्यापार चक्र की लहरों को दबाने में सहायता कर सके तथा एक उदित होती हुई उच्च रोजगार वाली अर्थव्यवस्था को अतिशय मुद्रास्फीति और मुद्रा संकुचन से स्वतंत्र बनाये रख सके।'' यह तथ्य स्पष्ट है कि बजटीय गतिविधियों का अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभ्ज्ञाव पड़ता है। राजकोषीय नीति का अर्थ्ज्ञ वे सभी प्रभाव है। जिन्हें सरकार राजकोषीय गतिविधियों द्वारा प्राप्त करने की चेष्ट करती है। ये नीति–उद्देश्य अति सीमित एवं सरल भी हो सकते हैं तथा अति कठिन और जटिल भी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु तजट के विभिन्न घटकों का प्रयोग किया जा सकता है। स्पष्ट है कि बजटीय नीति के निर्धारण में कई बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जैसे कि अर्थव्यवस्था की संरचना एवं प्रकृति तथा सरकार की अपनी प्रशासनिक क्षमता आदि। अर्थशास्त्रियों के एक वर्ग में यह आम धारणा रही है कि आय, उत्पादन तथा रोजगार संबंधी ध्येयों की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक कराधान और व्यय नीतियों का ही सामूहिक नाम राजकोषीय नीति है। दूसरे, राजकोषीय नीति का क्षेत्र केवल व्यय और राजस्व की समग्र राशियों तक ही सीमित नहीं है। इसमें उनकी मदां और उपमद्रों का विस्तृत ब्यौरा भी शामिल होता है। एक उचित और प्रभ्ज्ञावी राजकोषी नीति में राजकोषीय गतिविधियों के सभी अंगों और आयामों का यथोचित समावेश रहता है, तथ्ज्ञा इन सबका ऐसा संतुलित औश्र समन्वित प्रयोग किया जाता है कि उनसे इच्छित आर्थिक ध्येयों की ईष्टतम पूर्ति की जा सके।

## राजकोषीय नीति तथा आर्थिक स्थिरता (Fiscal Policy and Economic Stability):-

वर्तमान संदर्भ में स्थिरता का अर्थ अर्थव्यवस्था को व्यापार चक्रों से मुक्ति दिलाना है। बाजार संचालित अर्थव्यवस्था को लगातार और क्रमवार व्यापारिक उतार–चढ़ावों का सामना करना पड़ता है और इस प्रक्रिया में विदेशी व्यापार एवं पूँजी की अंतराष्ट्रीय गतिशीलता का भी योगदान रहता है।

अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक स्थिरता और कीमत स्थिरता के कई अर्थ सुझाए हैं, जिनमें से एक यह भी है कि कीमतों का धीरे–धीरे बढ़ना अथवा घटना भी कीमत स्थिरता का ही एक रूप है। इस विचारानुसार समस्या केवल तब पैदा होती है जब कीमतें 'तेजी' से बढ़ने अथवा घटने लगें।

प्रो0 कीन्स और उनके अनुयायियों के मतानुसार बाजार संचालित अर्थव्यवस्थ की मूल समस्या कीमतों को घटना–बढ़ना न होकर, इसकी प्रभावी मांग की अपर्याप्तता की मूल वृत्ति है, जिसके कारण कीमतों की प्रवृत्ति सदैव घटने की रहती है। अतः राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य प्रभावी मांग की इस कमी को दूर करना होना चाहिए।

प्रो0 लर्नर ने कीन्स द्वारा प्रतिपादित राजकोषीय नीति का एक संशोधित रूप सुझाया जिसे 'कार्यात्मक वित्त के नाम से जाना जाता है। घाटे का बजट की प्रभाविता बढ़ाने के लए सरकार के बजटीय

घाटे का बजट अपनाना चाहिए। परन्तु अपितु केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर अथवा अतिरिक्त करेंसी सृजन द्वारा करना चाहिए। वैसे बाजार उधार द्वारा पोषित घाटे का बजट भी निजी निवेश को प्रोत्साहित करता है, क्योंकि सार्वजनिक व्यय में बढ़ोत्तरी से निजी निवेशकर्ता आशा करने लगते हैं कि वे निवेश द्वारा अधिक लाभ अर्जित कर पाऐंगे। ऐसा करने से प्रभावी मांग में बढ़ोत्तरी प्रोत्साहित होती हे। बजट को संतुलित रखते हुए केवल इसके आकर मु वृद्धि से भी मंदी पर काबू पाने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार यदि सरकार व्यय से लाभांवित लोग कम आय वाले हों तो, उनकी सीमांत उपभोग वृत्ति अधिक होने के कारण, आय गुणक का मूल्य बढ़ जाता है जिससे मंदी का दूर करने में सरकारी व्यय अधिक प्रभ्ज्ञावी सिद्ध होता है। इस तथ्य से यह नीति निष्कर्ष निकलता है कि सरकार को मंदी को दूर करने के लिए सार्वजनिक कल्याण, सुरक्षा तथा इसी प्रकार की अन्य मदों को प्राथमिकता देनी चाहिए। ऐसी व्यय मदों से अल्पकाल मे उपभोग व्यय तो एकदम बढ़ता है, परंतु उत्पादन क्षमता में उसी तीव्रता से वृद्धि नहीं हो पाती; परिणामस्वरूप मांग के अभाव और पूर्ति के अधिशेष की समस्या का तुरंत समाधान हो जाता है। राजकोषीय नीति में कराधान की भूमिका भी रहती है। कर प्रणाली में यथोचित संशोधन से निजी निवेश और उपभोग व्यय को प्रभावित कियाजा सकता है। सामान्य स्थितियों में कुछ करों को हटा देने अथवा दरों में कमी करने से यह व्यय प्रोत्साहित होता है। करदेयाता में कमी का अर्थ लाभ–आय में बढ़ोतरी तथा पूर्ति लागत से कमी है। कीमतों में कमी होने पर वस्तुओं की मांग ढ़ती है जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में उत्पादन औररोजगार व वृद्धि होती हे। लगभग यही प्रक्रिया सीमा शुल्क की दरों में परिवर्तन द्वारा भी पैदा की जा सकती है। आयत शुल्क की दरों मे वृद्धि तथा निर्यात शुल्क की दरों में कटौती से देश के भीतरी उत्पादन को प्रोत्साहित किया जा सकता है। परंतु यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी भी प्रकार के परोक्ष कर की प्रभावित विचाराधीन वस्तु की मांग औरपूति लोच के प्रमापनों परनिर्भर करेगी। अधिक मांग तथ्ज्ञ पूर्ति लोच वाली वस्तुओं की मांग और पूर्ति को कर की दरों में परिवर्तन द्वारा अधिक सुगता से प्रभ्ज्ञावित किया जा सकात है। इसी प्रकार नवेश को बढ़ाकर देने के लिए कुछ विशिष्ट कर रियायतों का प्रयोग यिका जा सकता है।

स्फीतिपरक स्थिति पर काबू पाने के लिए कुल प्रभावी मांग में कटौती करना आवश्यक होता है। इस दश में सर्वप्रथम कदम प्रशासन द्वारा अपने व्यय में कटौती करना है। बहुधा सरकार के कई ऐसे खर्चे होते है जो गैर जरूरी होते है तथा जिनहें बिना किसी दुष्प्रप्रभाव के घटाया जा सकता है। परंतु वास्तविकता यह है कि सरकार अपने व्यय में कमी करने में बहुधा असफल रहती है। अनेक व्यय मदों में राजनीतिक तथा मानवीय दबावों के कारण कटौते नहीं की जा सकती। कुछ मामलों में निहित स्वार्थों की ओर से भी विरोध होने लगता है। इसी प्रकार कई प्रकार के व्यय कानूनी दृष्टिकोण से अनिवार्य होते है। ब्याज तथा ऋण काभुगतान आदि ऐसी मदों के मुख्य उदाहरण है।

करों से संबंध एक तर्क यह भी है कि अपनी प्रकृतिवश आर्थिक स्थिरता की प्राप्ति में योगदान देते है। उदाहरणाार्थ मंदी के दिनों में सरकार का राजस्व घट जाता है, परंतु उसके व्यय में उतनी कमी नहीं हो पाती ह। अतः सार्वजनिक बजट घाटे का हो जाता है जिससे मंदी को दूर करने में सहायता मिलती है। इसके विपरीत स्फीति के चरण में सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ बढ़ जाती है। यदि सरकार अपने व्यय में उसी अनुपात में वृद्धि न होने दें, तो बजट अधिशेष के कारण प्रभावी मांग में कमी आती है तथा स्फीति पर का काबू पाने में सहायता मिलती है।

कर प्रणाली की इस मूल प्रकृति के बावजूद यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि इसका सक्रिय प्रयोग किए बिना ही आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है। लगभग सभी स्थितियों में उसका व्यापक प्रयोग आवश्यक होता है।

## राजकोषीय नीति और आर्थिक विकास (Fiscal Policy and Economic Development):-

1. आर्थिक विकास एक बहु–आयामी प्रक्रिया है, जिसमें अनेक शक्तियाँ एक साथ सक्रिय होती है तथा जिनमें वित्तीय प्रवाह भी एक अग्रणी भूमिका निभाते है। बजटीय प्रवाह स्वयं में महत्वपूर्ण होने के अतिरिक्त अन्य प्रवाहों को भी गहरा प्रभावित करते है। अतः बजटीय नीति द्वारा आर्थिक विकास की प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया जा सकता है।
2. आर्थिक विकास की समस्या केवल अलविकसित देशों तक ही सीमित नहीं है। एक तर्कानुसार किसी अर्थव्यवस्था के लिए लगातार स्थैतिक अवस्था पर टिके रहना संभव नहीं होता ; इसे सदैव उन्नति अथवा अवनति में से एक पथ पर अग्रसर रहना पड़ता है। इसलिए एक विकसित अर्थव्यवस्था के लिए भी य आवश्रूक है कि इसकी आय रोजगार में बढ़ोतरी होती रहे।
3. ध्यानयोग्य है कि एक सामान्य निवेशकर्ता न्यूनतम अनिश्चतता के साथ्ज्ञ अधिकतम संभव लाभ आय कमाने का इच्छुक होता है क्योंकि आर्थिक स्थिरता से अनिश्चितता की स्थिति दूर होती है अतः इससे विकास की प्रक्रिया प्रोत्साहित होती हे।
4. पूँजी निर्माण और उत्पादन क्षमता में वृद्धि दीर्घकालिक आर्थिक विकास की बुनियादी कड़ियाँ है। आर्थिक स्थिरता तथा उच्चस्त्रीय रोजगार की प्राप्ति तो उपभोग में बढ़ोतरी द्वारा भी संभव है। परंतु उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी पूँजी निर्माण के साथ–साथ उसके उचित निवेश एवं प्रयोग के बिना संभव नहीं है। पूँजी निर्माण के मानवीय पूँजी के अतिरिक्त कई प्रकार हो सकते है। इसलिए पूँजी साधनों के वैकल्पिक उपयोगों में आवंटन का विकास प्रक्रिया पर गहरा प्रभ्ज्ञाव पड़ता है। स्मरणीय है कि विभिन्न उद्योगों और अन्य आर्थिक गतिविधियों की परस्पर निर्भ्ज्ञरता इतनी गहरी होती है कि उनमें आंतरिक सामंजस्य के बिना विकास प्रक्रिया को कायम नहीं रखा जा सकता। एक

सुव्यवस्थित राजकोषीय नीति इस जटिल, कठिन और बहुआयामी कार्य को संपन्न करने में सहायक हो सकती है।

5. एक अल्पविकसित देश को, पूँजी निर्माण की मंद गति और इसके दुरूप्योग, दोनों समस्याओं का एक साथ्ज्ञ सामना करना पड़ता है। साथ्ज्ञ ही बेरोजगारी और वितरणीय असमानताओं की समस्याओं पर काबू पाने के लिए भी यह तय करना पड़ता है। कि श्रम प्रधान उत्पादन तकनीकों को किस हद तक अपनाया जाए।
6. आर्थिक विकास से संबद्ध विभिन्न समस्याओं की विविधता के कारण विकास के विधि वैकल्पिक पथों मे से चुनाव करने की आवश्यकता पड़ती है। और राजकोषीय नीति की रूप रेखा भी उसी आधार पर निर्धारित करनी पड़ती है। अतः इस संदर्भ में इस नीति के कुछ मुख्य अंशों को ही उभारा जा सकता है।
7. यह सर्वमान्य तथ्य है कि एक अल्पविकसित देश में बाजार व्यवस्था अपने आप बचत और निवेश के वे उच्च स्तर प्राप्त नहीं कर सकती जो आर्थिक विकास की तीव्र गति के लिए आवश्यक माने जाते है। यदि ऐसा होता तो आर्थ्ज्ञिक विकास के लिए राजकोषीय नीति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु बाजार व्यवस्था की इस दुर्बलता के कारण राजकोषीय नीति का सक्रिय प्रयोग अति आवश्यक हो जाता है। इस उद्देश्य के लिए पूरी बजट प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे बचत और निवेश बढ़ें तथा निवेश का ढांचा विकासोन्मुख हो।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बजटीय नीति का कोई ऐसा रूपाकार नहीं है जो सभी देशो के लिए समान उपयुक्त हो। इसकी संरचना प्रत्येक देश की परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए।

**<u>भारत के संदर्भ में राजकोषीय नीति :–</u>**

भारत जैसे अल्पविकसित देश के मुख्य उद्देश्यों में बचत और निवेश की दरों में बढ़ोत्तरी के द्वारा आर्थिक विकास की गति का तेज करने के अतिरिक्त, विकास प्रक्रिया का आंतरिक संतुलन, रोजगार में वृद्धि, वितरणीय तथा क्षेत्रीय आर्थिक विषमताओं में कमी आदि आते है। अतः इन सब उद्दश्यों को ध्यान में रखते हुए, आर्थिक विकास के प्रोत्साहन हेतु बजटीय नीति के मुख्य अंगों की रूपरेखा बनाई जानी चाहिए, जो निम्न प्रकार से हैः

1. सार्वजनिक बजट का राजस्व खाता अंधिशेष में होना चाहिए, ताकि सरकार अपनी नियमित आय का एक भाग पूँजी भाग का वित्त पोषण उधार एवं अन्य प्राप्तियों द्वारा किया जा सकता है।

2. सरकार की ऋण नीति का रूपाकार अति सुचरू एवं अर्थपूर्ण होना चाहिए, ताकि इससे निजी निवेश और ब्याज की दरें दुष्प्रभावित न हों। ऋण नीति के दोषयुक्त होने पर निजी क्षेत्र के लिए निवेश साधनों का अभाव उत्पन्न हो सकात है, अथवा ब्याज की दरों में बढ़ोतरी से निवेश अलाभकारी हो सकता है।
3. बजटीय नीति का प्रयोग विदेश साधनों की प्राप्ति के लिए भी किया जा सकता है। इसके लिए सरकार स्वयं उधार लेकर निवेश कार्यों में लगा सकती है, अथवा विदेशी पूँजी को सीधा निवेश के लिए ही आमंत्रित किया जा सकता है। परतु यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि विदेशी पूँजी के कारण आंतरिक बचत को घटाने में कोई हानि नहीं है। बचत और निवेश का मुख्य उत्तरदायित्व तो देशी अर्थव्यवस्था का ही बना रहता है। विदेशी पूँजी इस कार्य में केवल एक आंशिक योगदान ही दे सकती हे। यह तथ्य अलग है कि विदेशी पूँजी के कई अन्य प्रकार के विकासात्मक प्रभ्ज्ञाव भ्ज्ञी सकते हैं, जैसे कि नवीनतम उत्पादन तकनीकों की उपलब्धि और प्रयोग तथा व्यापारिक संबंधों का विकास आदि।
4. राजकोषीय नीत के माध्यम से निजी क्षेत्र की बचत और निवेश दरों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, विविध प्रकार की कर रियायतों से न केवल बचत प्रोत्साहित होती है, प्रत्युत्त निवेश्पा पर भी अपेक्षित लाभ–दर को बढ़ाया जा सकता है।

**<u>कर प्रणाली की व्यापक भूमिका :–</u>**

व्यय की कुछ मदें ही होना चाहिए। कर–प्रणाली को सरल बनाने से भी निजी क्षेत्र में बचज को बढ़ज्ञवा मिलता है और करों की दरों में कमी तथा मुद्रास्फीति की रोकथाम से बचत की प्रवृत्ति और सुदृढ़ होती है। कर प्रणाली के सुधार में परोक्ष करों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनका मुख्य दोष यह है कि इनसे पूव्रि लागत तथा कीमतों में सीधे वृद्धि हो जाती है। इनका यह दोष उस समय और भी अहितकर हो जात है, जब ये बहु–चरणीय हों क्योंकि इस स्थिति में एक चरण की करदेयता के निर्धारण क लिए इससे पहले के चरणों में अदा किए गए करों को भी कराधार में शामिल कर लिया जाता है। परोश करों के इस दोष को दूर करने के लिए उन्हें मूल्यवर्द्धन कर का रूप दिया जाना चाहिए?

1. भारत जैसे अल्पविकसित देश में अंतक्षेत्रीय आर्थिक विषमताओं की भी एक भारी समस्या है। ये विषमताएँ नीति एक सक्रिय भूमिका निभा सकती है। उदाहरणार्थ पिछड़े क्षेत्रों में निवेश आदि के लिए कर में रियातों दी जा सकती है तथा सार्वजनिक व्यय द्वारा अवसंरचनात्मक सुविधाओं का विकास किया जा सकता है।

2. इसी प्रकार भारत जैसी श्रम–अधिशेष अर्थव्यवस्था में श्रम–प्रधान उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इनसे राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता में तीव्र गति से वृद्धि होती है। तथा बेरोजगारी घटती है। यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि छोटे पैमाने के उद्योग न केवल श्रम प्रधान होते है, प्रयुत्त उन्हें ग्रमीण इलाकों में भी स्थापित करने में कम कठिनाइयाँ आती है। परंतु उनकी सफल्ता के लिए उपज की बिक्री तथा कच्चे माल की उपलब्धि का सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है। अतः राजकोषीय नीति में छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास के लिए कर प्रणाली में उपयुक्त प्रावधानों के साथ–साथ सार्वजनिक व्यय में भी यथोचित सुधार किए जाने चाहिए।
3. यदि देश में योजनाबद्ध विकास और आर्थिक नियमन की व्यवस्था लागू हो तो राजकोषीय नीति की संरचना इसके एक प्रभ्ज्ञावी सहायक के रूप में की जानी चाहिए, अर्थात इसे विभिन्न आर्थिक गतिविधियों को योजनाबद्ध विकास की रूपरेखा के अनुरूप प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित करनाा चाहिए।
4. सार्वजनिक व्यय को विकासात्मक और विकास–भिन्न वर्गों में बांटने की प्रथा है। अतः लोक व्यय यथासंभव विकासात्मक मदों पर केन्द्रित होना चाहिए। बुनियादी तौर पर, विकासात्मक व्यय वह हे जिससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में स्थाई बढ़ोतरी होती हो, अथ्ज्ञवा इसमें होने वाली कमी रूकती हो। अतः वे सब व्यय मदें जिनसे नई पूँजी परिसंपत्तियाँ अस्तित्व में आती हों अथवा पूर्वस्थित परिसंपत्त्याँ मशीनों, भवनों, सड़कों आदि के अतिरिक्त मानवीय पूँजी तथा निर्दिष्ट संस्थाओं आदि का रूप भी ले सकती है।
5. व्यय के विकसात्मक, विकास भिन्न, अयोजना तथा आयोजन भिन्न वर्गों को अनदेशा करने पर भ्ज्ञी, सार्वजनिक व्यय की कुछ सामूहिक मदों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। सार्वजनिक व्यय का ढांचा का इस प्रकार का होना चाहिए कि इससे पूँजी वस्तुओं पर आधारित उद्यमों तथा अन्य बुनियादी उद्योगों का विकास हो। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक व्यय का प्रयोग विशिष्ट अवसंरचनात्मक सुविधाओं की सुव्यवस्थित और समुचित उपलब्धि की व्यवस्था के लिए किया जाना चाहिए।
6. सैद्धांतिक स्तर पर यह दर्शाया जा सकता है कि यदि सार्वजनिक बजट का प्रयोग सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना और उनके उत्थान के लिए किया जाए तो इससे विकास प्रक्रिया सक्षम होती है। तर्क यह है कि कालांतर में से उद्यम सरकार के लिए अतिरिक्त राजस्व का स्त्रोत बन सकते हैं जिनसे बचत और निवेश की गति को और बढ़ाया जा सकता है। इन उद्यमों का चुनाव इस प्रकार यिका जा सकता है कि अर्थव्यवस्था में उनकी केन्द्रीय भूमिका हो, और उनके माध्यम से शेष अर्थव्यवस्था को एक पूर्ण निर्धारित विकास पथ पर रखने में सहायता मिले। इस कार्य में, इन

उद्योगों की कीमत निर्धारण तथा क्रय विक्रय नीतियों के अतिरिक्त , उत्पादन तकनीकों के चुनाव और स्थान निर्धारण का भी समुचित स्थान रहता है।

7. सार्वजनिक उद्यमों की मुख्य दुर्बलता उनका ढीला पंबंधन तथा उत्पादन लागत में अनावश्यक वृद्धि हे। इन उद्यमों में बहुधा आवश्यकता से अधिक कर्मी होते है, जिनकी संख्या का सुगता से कम नहीं किया जा सकता परिणामस्वरूप ये उद्यम उत्पादन साधनों के अपव्य के स्त्रोत बन जाते है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अब परिणामस्वरूप ये उद्यम उत्पादन साधनों के अपव्यय के स्त्रोत बन जाते है। इन तथ्यों को ध्यान में रखतु हुए अब यह मत सर्वमान्य होता जा रहा है। कि सरकार को सभी 'अनावश्यक' कार्यकलापों को त्याग देना चाहिए।

**टिप्पणी :–**

1. सार्वजनिक उद्यमों की त्रुटिपूर्ण प्रणाली, जिसमें कर्मियों को अपनी कार्यक्षमता बढ़ाने के पर्याप्त अवसर नहीं मिलतें औश्र न ही इसके लिए पर्याप्त प्रोत्सहन मिलता है।
2. राजकोषीय नीति पूँजी प्रधान तकनीकों को प्रोत्साहित करती रही है।
3. पूर्वस्थित पूँजी परिसंपत्तियों के रख–रखव पर अपर्याप्त ध्यान देने की प्रवृत्ति रही हे।
4. पिछले कुछ वर्षों तक विदेशों से अधिकतर सहायता निवश के रूप में न होकर उधार के रूप में ली गई है और इसका काफी हद तक अपव्यय भी हुआ है। इसके फलस्वरूप हमारी उत्पादन क्षमता में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाई।
5. सरकारी उद्यमों को क्षेत्रीय आर्थिक विषमताएँ कम करने में उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी।
6. सिंचाई, सड़क परिवहन, विद्युत उत्पादन, विद्युत वितरण तथा इसी प्रकार के कई अन्य वर्गों के सरकारी उद्यमों की उत्पदकता अति निम्न रही है। साथ ही उनके उत्पादन की कीमतें बहुत कर रखी गई हैं। परिणामस्वरूप वे सरकार के लिए राजस्व का स्त्रोत न होकर, अपव्यय के माध्यम बनकर रह गए हैं। इससे अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया को दीर्घकालीन आघात पहुँचा है।

## राजकोषीय नीति और वितरीय न्याय (Economic Policy and Distributive Justice):-

विरणीय न्याय के सामान्य अर्थानुसार आय और धन वितरण की असमानताओं को कम यिका जाना चाहिए। भारत जैसे व्यापक गरीबी वाले देश में विरणीय न्याय के पक्ष में किसी विशेष तर्क की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर मुख्य विवाद का विषय केवल यही हो सकता है कि इतनी व्यापक दरिद्रता में कमी करने

की सर्वोत्तम विधि क्या है। इसके लिए विभिन्न प्रकार की स्कीमें अपनाई जानी चाहिए जिनसे लोगों को एक निश्चित न्यूनतम स्तर की उपभोग सुविधाओं की आश्वस्त उपलब्धि रहे। इसी प्रकार कुछ बुनियादी स्कीमें बेरोजगारी की समस्या पर काबू पाने के लिए होनी चाहिए। बजट में इन सब स्कीमों को यथासंभ्ज्ञव प्राथमिकता मिनी चाहिए और उनके लिए उचित राशियों का प्रावधान होना चाहिए। उपर्युक्त न्यूनतम सुविधाओं में स्वास्थ्य सेवाएँ, पीने का स्वच्छ पानी, प्रति व्यक्ति एक निश्चित मात्रा तक खाद्य सामग्री, आवास–स्थान , बुनियादी शिक्षा आदि शामिल है।

यहाँ पर एक आधारभूत समस्या यह है कि अधिकतर सरकारें न तो इस प्रकार के न्यूनतम वितरणीय न्याय की स्थिति लाने के लिए ही पर्याप्त साधन जुटा पाती हैं, तथा न ही अपने अन्य खर्चों में समुचित कमी कर पाती है। प्रशासनिक संयंत्र में बहुधा ऐसी त्रुटियाँ होती हैं जिनसे सार्वजनिक व्यय का काफी भाग उन लोगों तक नहीं पहुँच पाता जिन्हें इससे लाभांवित होना चाहिए।

वितरणीय असमानताओं को घटाने के लिए कर प्रणाली का प्रयोग भी एक सीमित हद तक ही किया जा सकता है। क्योंकि बहुत कम लोगों की आय इतनी अधिक होती है जिस पर कर लगाया जा सके। अतः प्रत्यक्ष करों द्वारा वितरणीय असमानताअें में प्रभावी कमी करने क लिए इन करों की दरें अत्यधिक ऊँची रखनी पड़ती है। परंतु ऐसा करने पर उत्पादन और आय–अर्जन की गतिविधियाँ हतोत्साहित होती है। फलस्वरूप साधन जुटाने के लिए सरकार को परोक्ष करों का सहारा लेना पड़ता है। ये कर स्वयं में ही वितरणीय असमानताअें को बढ़ावा देते है। अतः इस त्रृटि को केवल आंशिक रूप में ही सुधारा जा सकता है।

**<u>सारांश (Summary):-</u>** भारत में राजकोषीय नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे पूँजी को प्रोत्साहित हो, राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो, धन के आय के वितरण की विषमताओं में कमी आये; अर्थव्यवस्था में स्थिरता आये, पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो सके और विनियोजन अधिक हो इनकी पूर्ति हेतु तरीके जैसे कर नीति, सार्वजनिक व्यय नीति, सार्वजनिक ऋण नीति, हीनार्थ प्रबंधन की नीति का सहारा लिया सकता है। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में रोजकोषीया नीति की विभिन्न कठिनाइयाँ एवं सीमायें होती है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रभावशाली राजकोषीय नीति विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की उन्नति में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितियों और सामाजिक–आर्थिक उद्देश्यों के अनुसार राजकोषीय नीति का निर्माण करना होता है।

**<u>शब्दावली (Keywords)</u>**

1. मरचिका (Mirage)

2. निरपेक्ष निर्धनता (absolute poverty)
3. परिसम्पति (Assets)
4. प्रभावी मांग (Effetive demand)
5. उपभोग मांग (consumption demand)
6. निवेश मांग (Investment demand )
7. बचत (Saving)
8. संतुलित बजट (balanced budget)
9. अधिशेष का बजट (surplus budget)
10. घाटे का बजट (deficit budget)
11. राजस्व खाते का घाटा (deficit on revenue account)
12. पूँजी खाते का घाटा (deficit on capital account)
13. तदर्थ राजकोषीय हुंडियाँ (ad hoc treasury)
14. राजकोषीय घाटा (fiscal deficit)
15. मूल घाटा (Primary deficit)
16. संतुलित बजट गुणक (balanced budged multiplier)
17. राजकोषीय नीति (fiscal policy)
18. कार्यात्मक वित्त (functional finance)
19. अंतरराज्यीय आर्थिक विषमताएँ (inter state economic disparities)
20. वितरणीय न्याय (distributive justice)

**<u>सन्दर्भित पुस्तकें (Reference books):-</u>**


1. R.A Musgrave : Public finance in theory and practive
2. U.Hicks : Public finance
3. P.A samuelson : Economics, An introductory analysis
4. Eugence stan;eu : Future of under development courtries
5. Brahmanand and panchamukhi :The development process of the Indian

Economic

6. G.Thimmaiah : Studies in Indian public finance
7. Pigou : Public finance
8. Prest : Public finance
9. Robinson : Economic Analysis and policy

**<u>प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the question):-</u>**

1. राजकोषी नीति का अर्थ लिखिए।
2. राजकाषीय नीति को परिभाषित कीजिए।
3. राजकोषीय नीति और आर्थिक स्थिरता को बताइये?
4. राजकोषीय नीति और आर्थिक विकास को बताइये?
5. भारत के परिप्रेक्ष्य में राजकोषोयी नीति का मूल्यांकन कीजिए?
6. बेकारी को कैसे दूर किया जा सकता है?
7. आर्थिक विकास तथा वित्त की विवेचना कीजिए?
8. भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था की भूमिका?
9. राजकोषीय नीति के उद्देश्य बताइये?
10. राजकोषीय नीति की कठिनाइयाँ व सीमाएँ बताइए।
11. राजकोषीय नीति और रोजगार का समझाइये

**<u>बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर (Objective type question Answer):-</u>**

1. आर्थिक स्थिरता का अर्थ है–
   क. व्यापर चक्रो से छुटकारा ख. ब्याज की दर कम करना ग. ब्याज की दर बढ़ाना
   घ. इनमें से कोई नहीं (उत्तर क)
2. प्रो0 लर्नर के द्वारा राजकोषीय नीति का एक संशोधित रूप सुझाया हैः
   क. ऋण ख. लाभ ग. कार्यात्म्क वित्त घ. मजदूरी
   (उत्तर ग)
3. कार्यात्मक वित्त के अनुसार मंदी में कैसा बजट बनाना चाहिए?
   क. लाभ ख. घाटे ग. बजट घ. इनमें से कोई नहीं
4. वितरणीय न्या लाने में राजकोषीय नीति की भूमिका हैः

क. वृहद ख. सूक्ष्म ग. उपर्युक्त दोनो क ख घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर ख)

5. कर और व्यय नीतियों में राजकोषीय नीति का स्थान हैः

क. सूक्ष्म ख. व्यापक ग. दोनों क ख घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर ख)

6. कीनस के पूर्ण रोजगार सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु हैः

क. उपभोग ख. निवेश ग. उत्पादन घ. प्रभावी मांग

(उत्तर घ)

7. मसग्रव के अनुसार राजकोषीय नीति के उद्देश्य हैः

क. उच्च रोजगार ख. कीमत में स्थिरता ग. विदेशी व्यापार में सन्तुलन

घ. उपर्युक्त सभी (उत्तर घ)

8. राजकोषीय नीति किसके द्वारा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैः

क. आय ख. व्यय ग. ऋण घ. उपर्युक्त सभी

(उत्तर घ)

9. कीन्स के अनुसार रोजगार में वृद्धि के लिए वैकल्पिक उपाय क्या है?

क. घाटे का व्यय ख. उत्पादन में वृद्धि ग. पूँजी में वृद्धि

घ. ब्याज दर में कमी (उत्तर क)

10. ''ध्यान सापेक्ष असमानता से हटकर निरपेक्ष निर्धनता की ओर गया है तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की निर्धनता से हटकर राष्ट्र की जनसंख्या के बड़े भाग की ओर।'' यह कथन किसका है–

क. पीमू ख. कीन्स ग. तेन्दुलकर घ. पैरेटो

(उत्तर ग)

11. ''भारत में संसाधन जुटाव तथा विनियोग एवं विकास के मध्य विपरीत संबंध की बात कही है'', यह कथन किसका है–

क. तेन्दुलकर ख. नरोत्तम शाह ग. कीन्स घ. पीगू

(उत्तर ख)

12. प्लीज प्रभाव किसके नाम पर पड़ा था।?

क. कालडार ख. स्टानली प्लीज ग. प्लीज घ. थिमैया

(उत्तर ख)

13. श्राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य हैः

क. बचत को प्रोत्साहन　　ख. मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण　　ग. दोनो क ख
घ. इनमें से कोई नहीं　　(उत्त र ग)

## खण्ड – 04

## इकाई – 01

# भारतीय सार्वजनिक वित्त : भारतीय कर प्रणाली

# Indian Public Finance : Indian Tax Systme

**1.0 परिचय :–** भारत की कर –व्यवस्थ बहुत अधिक समय तक अव्यवस्थित , अनियंत्रित तथ अनियोजित रहीं ब्रिटिश काल में केन्द्र तथाा राज्यों की कर व्यवस्था मे अत्यधिक भेद होते हुए भी कभी एकरूपता के प्रयत्न नहीं किये गये। शासकों का मुख्य ध्येय अधिकतम आय प्राप्त करना था ओर यही कारण कि करारोपण के सिद्धान्तों का बहुत कम पालन किया गया। न्याय, निश्चितता तथा मितव्ययिता के सिद्धान्तों की करारोण के सम्बन्ध में लगभग अवहेलना ही की जाती रही। कर–वंचना काफी अधिक रही। कर व्यवस्था मुख्यतया प्रतिगामी रही ओर इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन का व्यय चलाना भर ही रहा। सामाजिक कल्याण, सामाजिक न्या तथा आर्थिक विकास को करारोपण के साथ सम्बन्धित करने का काग्र केवल स्वतन्त्रता के बाद ही प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद करारोपण के सिद्धान्तों का पालन तो भरसक किया ही गया साथ ही कर व्यवस्था को देश की विकासमान अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में उपयुक्त बनाने के भी प्रयत्न किये गये।

### 1.1 उद्देश्य (Object):-

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि ।
2. विषमता को कम करना।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ना।
4. कर की चोरी को रोकना।

### 1.2 भारतीय कर व्यवस्था की विशेषताएँ :–

प्रत्येक देश की कर व्यवस्था की विशेषताओं की पहचान और उनकी समीक्षा के मापदंड देश के सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य होते है। कर व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं एवं मूल्यांकन निम्नवत् है–

**1. कर अंशाच्छादन :–**

जीएसटी के लागू होने से पहले हमारे संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच कर अधिकारों के अंशाच्छान का काई स्थान नहीं था, अर्थात किसी परिभाषित कराधार पर दोनों एक साथ करारोपण नहीं कर सकते थ्ज्ञ। संघ राज्य क्षेत्रों की बजटीय मदें केन्द्र के बजअ में शामिल रहती है। इन क्षेत्रों में राज्य सूची के करारोपण अधिकार केन्द्र के पास है। जहां तक स्थानीय निकायों का प्रश्न है, उनहें ये कराधिकार राज्यों द्वारा अपने कराधिकारियों से हस्तांतरित किए जाते है। केन्द्र और राज्यों में विषय आवंटन 'एकरूपता, मिव्ययिता और कार्यकुशलता' की कसौटियों के आधार पर किया गया है। इस संदर्भ में निम्न टिप्पणियां भी प्रासंगिक है–

1. केन्द्र और राज्यों के बीच, साधन आवंटन की इस विधि के कारण, केन्द्र के पक्ष में विषस्तरीय वित्तीय असंतुलन का उत्पन्न होना तथा कालांतर में राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता में बढ़ोतरी अनिवार्य है।
2. राज्य–करों में एकरूपता का अभाव रहा थ्ज्ञा। अब इस कमी को बहुत हद तक दूर किया जा चुका है।
3. अपेक्षित था कि कालांतर में कर प्रणाली की जतटलता बढ़ेगी, और वास्तव में ऐसा ही हुआ भी था। जीएसटी के पश्चात् पराक्ष कर प्रणाली सरल और निर्बाध होती जा रही है, परन्तु प्रत्यक्ष करों के मालमें सरलता लाने के प्रयास में जटिलता बढ़ी है।

**2. प्रत्यक्ष और परोक्ष कर घटक :–**

परोक्ष करों के प्रभाव अवरोही होते है तथा उनसे उत्पादन लागतों में चक्रीय वृद्धि होती हे। परंतु इन दुष्परिणामों के बावजूद हमारी कर संरचना में परोश करों की एक अग्रणीय भूमिका है और यह स्थिति केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर एकसी लागू होती है। ऐसा होने का मुख्य कारण यह है कि सरकार की बढ़ती राजस्व आवश्यकता प्रत्यक्ष करों से पूरी नहीं हो पाती, और इसे परोक्ष करों पर निर्भर होना पड़ता है।

1. भारत के स.रा.उ. में सेवाओं का अनुपात तीव्र गति से बढ़ रहा था। राज्यों में आपसी कर स्पर्धा भी देखने को मिलती थी। अब इस कमी को कफी हद तक दूर किया जा चुका है।
2. आर्थ्रिक विकास, आर्थिक उदारता और वैष्वीकरण की नीतियों के कारण हमारे विदेशी व्यापार में होने वाली वृद्धि सीमा शुल्क से प्राप्तियां भी बढ़ेगी।

3. एक अल्पविकसित देश में प्रत्यक्ष करों की तुलना में परोक्ष करों का अरोपण और उगाही कम कठिन होते है।

**3.न्यायोचितता :–**

कर प्रणाली की न्यायोचितता एक अति जटिल प्रश्न है, जिसका उत्तर इसके विभिन्न आयामों परविचार किए बिना नहीं दिया जा सकता। इस संदर्भ में निम्न तथ्य विशेष रूप से ध्यानयोग्य है–

1. परोक्ष करों के प्रभाव मूलतः होते है ; भारत के सकल कर राजस्व में परोक्ष करों का अनुपात बहुत अधिक है और बढ़ भी रहा है।
2. परंतु सरकारका दावा है कि प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के करों की दरें प्रगामी है, और परोक्ष करों आव्यक वस्तुओं को करमुक्त रखने की नीति अपनाई गई है।
3. बड़े पैमाने पर कर की चोरी हमारी कर प्रणाली के अवरोहीपन को बढ़ाती है।
4. हमारी कर प्रणाली पूजँजी प्रधान तकनीकों को प्रोत्साहित करती
5. आलोचकों का यह भी कहना कि हमारे कर ढांचे का अंतवैयक्तिक और अंतरक्षेत्रीय भार वितरण मानता और न्यायोचितता की कसौटियों पर खरा नहीं उतरता।

**4.पर्याप्तता :–**

कर–प्रणाली की पर्याप्तता को दो आधारों पर परखाा जा सकता है, अर्थात (क) राजस्व में उचित दर से बढ़ोत्तरी तथा (ख) सरकार की राजस्व आवश्यकता की पूर्ति इनमें से पहले दृष्टिकोण स हमारी कर प्रणाली काफी उच्च कोटि की है। कुल मिलाकर इसमें पर्याप्त उत्प्लावकता है। करों की बढ़ती व्यप्ति तथा दरों में परिवर्तन के साथ राजस्व में लगातार होती वृद्धि उनकी उच्च कोटि का प्रतीक है।

**5.कार्यक्षमता :–**

हमारी कर प्रणाली इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती। सरकार के सभी स्तरां पर कर वसूली की लागत बहुत अधिक है। करो की चोरी भी बहुत व्यापक है। साथ ही करदाताओं को कर ढांची में लगातार परिवर्तनों के कारण आवश्यक परेशानी उठानी पड़ती है। उन्हें कर अनुपालन में अत्यधिक समय और धन का अपव्यय करना पड़ता है। कर प्रबंधन भी अनेक कमियों से पीड़ित है।

**6.सरलता और निश्चितता :–**

कर प्रणाली की सरलता और करदेयता के निर्धारिण में निश्चितता से अर्थव्यवस्था अनेकों प्रकार से लाभान्वित होती है। यद्यपिइ स लश्य की प्राप्ति हेतु कई कदम उठाए गए है, तो भी हमारी कर प्रणाली इन दोनों कसौटियो पर खरी नहीं उतरती। इसमें लगातार अनेकों संशोधन किए जाते ह, परंतु उनमे किसी भी दीर्घकालनीन नीति की झलक दिखाई नहीं देती। परंतु फिर भी कर प्रणाली को बारंबार संशोधित करने का एक औचित्य है।

1. भारत जैसे देश में एक अनम्य कर प्रणाली के कई दुष्परिणाम हो कसते है। इसके हितकर बने रहने के लिए इसमें बदलती वस्तुस्थिति और लक्ष्यों क अनुकूल संशोघन होते रहने चाहिए।
2. अपनी बढ़ती वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कर प्रणाली को संशोधित करना सरकार की एक मजबूरी है।
3. सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन में कर प्रणाली एक प्रभावी योगदान दे सकती है।
4. सरकार कर संयत्रण को एक प्रभावी नीति अस्त्र मानी है। इसकी यह मान्यता रही कि कर प्रणाली में संशोधन से अर्थव्यवस्था के बचत, निवेश, मांग आदि सभी निर्णय प्रभावित होते है।

उपरोक्त कारणों से कर प्रणाली का कलांतर से अति जटिल रूप धारण करना तथा इसके सरलीकरण क सब प्रयत्नों का विफल हो जाना स्वाभाविक था। कर ढांचे के प्रत्येक संशोधन के पीछे कभी राजस्व की प्राप्ति और कभी किसी गतिविधि को प्रोत्साहित करने के लक्ष्य रहे है।

**7.कर की चोरी :–**

कर चोरी की व्यपकता क सत्य को नकारा नहीं जा सकता । इस स्थिति की उत्पत्ति में अनेकों घटकों का योगदान रहा है, जैसे कि करों की ऊँची दरें और कर कानून की जटिलता आदि। इस संदर्भ में प्रशासन की नीति यह रही है। कि कर कर्मियों की स्वैच्छिक निर्णय शक्तियों को बढ़ाया जाए।

**8. असमानताओं में कमी :–**

कई अध्ययनों ने इस मत की पुष्टि की है कि हमारे प्रत्यक्ष कर वितरणीय असमानताओं को कम करने में सहायक नहीं है। प्रगामी दरों के साथ – साथ इनकी चोरी भी व्यापक है। इसी प्रकार परोक्ष करों के अवरोहीपन को कम करने के प्रयत्न के बावजूद इनसे इसमातनएं बढ़ती हे।

आवश्यक वस्तुओं की तुलना में विलासतिा की वस्तुओं पर परोक्ष कर अधिक है,परंतु कर चोरी व्यापकता के कारण इस तथ्य का समान्ता प्रभाव कट जाता है। इसके अतिरिक्त सरकार कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं तथा पूँजी वस्तुओं पर भी कर वसूलती हे। जिसमें लागत में चक्रीय वृद्धि होती है।

**9. पूँजी निर्माण :–**

हमारी कर प्रणाली से अपेक्षा की जाती है कि इससे पूँजी निर्माण की गति को बढ़ाने तथा आर्थिक विकास का सुदृढ़ करने में सहायता मिलेगी। कर सुधार समिति के मतानुसार हमारी कर प्रणाली बचत पक्रिया को प्रोत्साहत करने में असफल रही थी। इससे बचतें केवल कुछ विशेष प्रकार के निवेश क्षेत्रो में जाती थी।

**10. सेवा कर :–**

'सेवा' शब्द विविध प्रकार के आर्थिक कार्यकलापों के लिए प्रयुक्त होता है, और इसकी स्पष्ट परिभाषा खोज पाना अति कठिन है। आर्थिक विकास के साथ–साथ सेवाओं के बढ़ते प्रकारों के कारण इस शबद को परिभाषित करने की कठिनाई और भी बढ़ गई है। यह कठिनाई विशेषकर वस्तुओं और वेवाअें मे भेदीकरण के संदर्भ में उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त सेवा कर के आरोपण में सेवा को मुहैयया करने वाले और सेवा के उपभोक्त में भी भेद करना आवश्यक रहता है।

**11. उत्पाद शुल्कों में 1996–97 से सुधार :–**

भारत में सरकार ने संघ उत्पाद शुल्कों में सुधार हेतु कार्य 1996–97 मे प्रारम्भ करने के कुछ वर्षो के भीतर ही सम्पन्न कर लिया था। उद्देश्य यह था कि इन सुधाओं से उत्पादकता बढ़े, लागतें घटें, संसाधन आवंटन की विकृतियाँ दूर हो, कर की चोरी घटे और कर प्राप्तियों में बढ़ोतरी हो। इन सुधारों में निम्न मुख्य थे–

- शुल्कों का मूल्यवर्धन प्रारूप।
- यथासम्भव मूल्यावर्धन कर निर्धारण।
- कर की दरों में कटौती
- कर के स्लैबों में कटौती

- विशिष्ट और अंतिम उपभोग संबंधित छूटों की समाप्ति।
- कर निर्धारण प्रक्रियाओं का सरलीकरण ।

**12. सीमा शुल्कों में सुधार :–**

चार दशकों से भी अधिक लंबे समय तक आयातों पर मात्रात्मक और सीमा शुल्क रूपी रूकावटों द्वारा उद्योग और कृषि का संरक्षण प्रदान करने की नीति का अनुसरणकरने के पश्चात हमने आंतरिक सिितियों के सुधार हेतु और विश्व व्यापार संगठन के दबाव में, उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीति का पथपकड़ा। इस नव नीति में आयातों पर मात्रात्मक रूकावटों और सीमाशुल्कों में चरण बद्ध कटौतियां की गई।

**1.3 प्रत्यक्ष बनाम परोक्ष कर :–**

**इष्टतम अनुपात :–**

सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का कोई व्यापक, पूर्वनिश्चित, सर्वमान्य और इष्टतम अनुपात नहीं होता। इसका निर्णय आर्थिक सिद्धांतों और स्वीकार्य चिंतनधारा के संयुक्त आधार पर ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस निर्णय को लेते समय सरकार के समक्ष अपनी प्रशासनिक सीमाएं एवं अन्य तथ्य भी रहते है।

**भारत में :–**

भारत में प्रत्यक्ष करों को बढ़ाने के अवसर अति सीमित हे। यहां पर उनकी की दरें इतनी ऊँची है कि केवल उनको घटाने पर ही विचार किया जा सकता है। अतः प्रत्यक्ष कर राजस्व के अनुपात को बढ़ाने का मुख्य मार्ग केवल इसकी प्रणली में सुधार ओर कर की चोरी को रोकना ही है। इसके विपरीत सरकार के लिए परोक्ष कर राजस्व को बढ़ाना कम कठिन है, जिसके कई कारण है–

1. परोक्ष करों की मदों में बढ़ोतरी और दरों में संशोधन के अवसर अधिक रहते हैं, क्योंकि आर्थक विकास के साथ–साथ नए प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं अस्तित्व में आते रहते हे।
2. स0रा0उ0 में बढ़ोतरी के साथ–साथ परोक्ष कर राजस्व में अपने आप वृद्धि होती रहती है, विशेषकर जब ये कर मूल्याधारित हों।

3. केन्द्र और राज्य दोनों ने अपने परोश करों की दरों को मूल्याधारित रूप दे दिया।
4. इनसे आय और ध्न की वितरणीय असमानताएं बढ़ती हे।
5. इनसे उतपादन लागत और कीमतों में बढ़ोतरी के साथ हमारी अंतराष्ट्रीय स्पर्धा शक्ति क्षीण होती है।

**अनुपात :–**

उपरोक्त कारकों पर विचार करने यह निष्कर्ष निकलता है कि यथासीाव सरकार के प्रत्येक स्तर को अपने कर राजस्व में परोक्ष करों के अनुपात को कम करने और प्रत्यक्ष करों के अनुपात को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। केन्द्र ने अपने प्रयास के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति में श्रेयस्कर सफलता पाई है। परंतु केन्द्र की तुलना में राज्यों के लिए ऐसा कर पाना अधिक कठिन है, क्योंकि उनकी कर प्रणाली में इसके अवसर अति कम है। जीएसटी के लागू होने पश्चात प्रतयक्ष करों के अनुपात में वृद्धि की संभावनाएं और कम हो गई है।

**1.4 प्रतयक्ष कर :–**

**1. आय कर :–**

संविधान के अनुसार केन्द्र सरकार केवल कृषि भिन्न आय पर कर लगा सकती है। कृषि आय पर कर लगाने का अधिकार राजय सरकारों क लिए आरक्षित है। आय कर के दो भाग है (क) वैयक्तिक आय कर (ख) नगम कर । यहां पर सर्वप्रथम वैयक्तिक आय कर पर विचार किया जाएगा।

वर्ष 2000–01 से पहले वैयक्त्कि आय कर की निवल प्राप्तियां राज्यों के साथ अनिवार्य रूप से विभाजय थी। इन विभज्य राशियों में से राज्यों का संयुक्त हिस्सा और उसमें राज्यों के व्यक्तिगत हिस्से वित्त आयोग की सिफारिश्याों पर विचारोपरांत तय किए जाते थे।

भारत में आय कर सर्वप्रथम 1860 से 1873 त लागू रहा, तथा 1886 में दुबारा लागू होने के पश्चात् आय कर अब देश की कर प्रणाली का एक मुख्य और अभिन्न अंग बन चुका है। 1939 में वैयक्त्कि आय कर की दरों को स्लैब सिस्टम में परिवर्तित किया गया, तथा तब से इसकी दरों, छूटों, रियायतों तथा अन्य विशेषताओं में सतत संशोधन होते रहे है। कोई समय था जब सरकार के मतानुसार आय कर से राजस्व प्राप्तियाँ बढ़ज्ञने के लिए कर की दरों में बढ़ोतरी करना जरूरी था। इस नीति के अंतर्गत एक समय आय कर की उच्चतम दर 97.5 प्रतिशत तक जा पहुंची थी। परंतु वाँचू समिति की रिपोर्ट में इतनी ऊँची

दरों के दुष्परिणामों को उभारें जाने के पश्चात आय कर की रों में कमी की जाने लगी, और 1997–98 के बजट में वैयक्तिक आय कर की उच्चतम दर घटकर 30 प्रतिशत रह कई। ज्ञातत्व है कि दर घटाने की इस प्रक्रिया के संग आयकर से राजस्व प्राप्तियों में कमी होने के स्थान पर वृद्धि हुई है।

सरकार द्वारा आय कर प्रणाली की दीर्घकालीन स्थिरता के हितों स्वीकारने के बावजूद अस्थिरता इसकी मुख्य विशेषता रही हे। लगभग प्रत्येक बजट में अप्रत्याशित परिवर्तनों के घोषित किए जाने की प्रथा रही है।

1974 मे वैयक्तिक आयकर प्रणाली में एक महत्वपूर्ण संशोधन कृषि आय और कृष भिन्न आय के आंशिक एकीकरण के रूप में यिा गया। इाशय यह था कि इससे करदाताअें पर कर भार का आवंटन अधिक न्यायोचित हो जाए तथा कर की चोरी रोकने मे सहायत मिले। परंतु इस उपाए के उपरांत भी सब करदाताओं के साथ एक–सा बर्ताव नहीं होता। यदि किसी करदाता की कृषि भिन्न कर देय आय न हो, तो उसे कृषि आय पर भी कोई र नहीं देना पड़ता । साथ में सभी राज्यों में कृषि आय पर कर नहीं है, तथा न ही उसकी दरों में समानता है। कीमतें बढ़न के कारण भी करदाता में कमी नहीं की जाती।

**2. पूँजी लाभ पर कर :–**

पूँजी लाभ किसी परिसंपत्ति के विक्रय मूलय की उसके क्रय मूल्य से अधिकता है, और इस कारण इसे इाय ही एक प्रकार माना जाता है।

- पूँजी लाभ एक मौद्रिक प्रमापन है। कीमते बढ़ने के साथ इसकी क्रय शक्ति घटती है। अतः क्रय शक्ति के रूप में पूँजी लाभ पूँजी हानि में भी परिवर्तित हो सकता है।
- समस्त पूँजी लाभ को उसी वर्ष की आय माना जाता है। जिसमें परिसंम्पत्ति बेची गई हो।
- पूँजी लाभ कर से बचत और निवेश हतोत्साहित होते है तथा आर्थिक विकास में रूकावट पड़ती है।

**3. धन कर :–**

1. राजस्व प्राप्ति के आयाम को अनदेखा करने पर प्रतीत होता है किधन कर करदाता को संपत्तिहीन बनाने की एक प्रक्रिया है।
2. इस कर से पूँजी निर्माण, ओर इस कारण आर्थिक विकास, हतोत्साहित होते है।
3. धन कर के अंतर्गत कीकतें बढ़ने के साथ–साथ करदेयता भी बढ़ती है।
4. धन कर के कारणकरदाता अपनी बचतों को उन परिसंपत्तियों में लगाने को प्रेरित होते हे।

5. धन कर के पक्ष में बहुधा दो तर्क दिए जाते है। एक यह कि इससे आय कर की चोरी रोकने में सहायता मिलती है, तथा दूसरा यह कि इससे वितरणीय असमानताएं घटती है।

**4. निगम कर :–**

कंपनियां की कर योगय आय पर आरोपित कर 'निगम कर' कहलाता हे। इसे 'सुपर कर' की संज्ञा भी दी जाती है। शेयरधारियों की करदेयता के निर्धारणा में कंपनी द्वारा निगम कर की अदायगी को एक घटक नहीं माना जाता। जैसे सरकार कंपनी को अपने कर एजेन्ट के रूप में प्रयोग कर सकती है। इस स्थिति में कंपनी शेयरधारियों की ओर से वितरित लाभांश पर कर कटाती करने के उपरांत उन राशियों को सरकार के पास जमा कराती है।

सरकार द्वारा निगम कर में सरलीकरण की आवश्यकता को बारंबार स्वीकारा जाता रहा है। परंतु इस उद्देश्य की केवल आंशिक प्राप्ति ही हो पाई है। वैसे वैयक्तिक आय कर की भांति कालान्तर में निगम कर की दरों में कटौती अवश्य की गई। है।

**1.5 कर चोरी की समस्या :–**

कर चोरी और कर बचाव दो अलग–अलग समस्याएं है। कर बचाव का अर्थ कर कानूनों के प्रावधानों की कमियों का लाभ उठाते हुए कर से बचना है। इस प्रकार से करदेयता घटाना कानून की दृष्टि में अपराध नहीं है। इसके विपरीत कर कानून को तोड़ते हुए करदेयताको घटाना करचोरी है ओर कानून की दृष्टि में यह एक अपराध है। परंतु सरकार को इन दोनों प्रकार की गतिविधियों से राजस्व हानि होती है।

कर की चोरी तथा छुपाई गई आय के आपसी गहरे संबंधों के बावजूद इनमें से किसी का भी भरोसेमंद अनुमान नही लगाया जा सकता । यह तथ्य सर्वस्वीकाय्र ह कि हमारे देश में करों की चोरी एक ऐसी पुरानी, व्यापक और गंभीर समस्या है जिसे अनदेक्षा नही किया जा सकता। कालांतर में करों को चोरी इतनी बढ़ गई है। कि अब कानून से बाहर एक समान्तर अर्थव्यवस्था न केवल पूर्ण रूप से सक्रिय है।

सारांश (Summary):-

किसी देश की लोक वित्त व्यवस्था की समस्त व्यवस्था उस देश की कर प्रणाली पर निर्भर करती है। एक आदर्शराजकोषीय नीति के लिए एक आदर्श कर प्रणाली का होना आवश्यक है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ऐसी कर प्रणाली की कल्पना करना तो सम्भव है, लेकिन व्यवहार में एक ऐसी कर प्रणाली का पाया जाना कठिन माना जाता है। डाल्टन का कथन

है कि–''आर्थिक प्रभाव ज्यादा हो और बुरे आर्थिक प्रभाव कम हो।'' भारतीय कर प्रणाली में करारोपण के सिद्धान्तों के अनुकूल,करदाता को सुविधा, आयकर की दरों में कमी , परोक्ष करों का अधिक भाग, बहुकर प्रणाली , करारोपण का विस्तृत क्षेत्र , अधिकतम सामाजिक लाभ, समाजवादी कराधान, आदि के अनुकल है। जो भारत के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

शब्दावली (Key words):-

1. कर अंशाच्छादन (tax overlapping)
2. प्रत्यक्ष कर (direct taxes)
3. परोक्ष कर (indirect taxes)
4. न्यायोचितता (equity)
5. पर्याप्तता (adequacy)
6. सरलता (simplicity)
7. कर की चोरी (tax evasion)
8. कर का बचाव (tax avoidance)
9. उत्पादक परिसंपत्तियाँ (productive assests)
10. निगम कर (corporation tax)

**प्रश्न उत्तर (Answer the question):-**

1. भारतीय कर प्रणाली की मुख्य विशेषताओं पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखिए।
2. मल औरसेवा कर पर एक विस्तृत और व्याख्यात्मक नोट लिखे।
3. भारतीय कर प्रणाली के प्रगामीपन की तकधिारित समीक्षा करें।
4. पूँजी लाभ कर क्या है?
5. आय कर व्यवस्था पर एक समीक्षात्मक नोट लिखिए।
6. कर चोरी का अर्थ वताइए।

**खण्ड – 04**

**इकाई –02**

**भारतीय सार्वजनिक वित्त : प्रमुख कर**

# Indian Public Fianance : Major Tax

**1.0 परिचय :–** वर्तमान समय में राजस्व का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि राज्यों के सामने अनेक ऐसी समस्याएं हैं जिनका निदान बिना सरकारी सहायता के सम्भव नहीं है। दश में बेरोजगारी, आर्थिक अस्थिरता, आर्थिक विषमताएं, जैसी समरूाओं के निदान के लिए यह आवश्यक है कि कर–प्रणाली उपयुक्त हो। कर आज आय प्रोप्ति का ही प्रमुख साधन नहीं है, बल्कि आर्थिक असमानता, बेरोजगारी व आर्थिक उतार–चढ़ाव को रोकने का भी एक शक्तिशाली अस्त्र है। देश की स्वतन्त्रता के बाद मुख्य समस्या आर्थिक विकास की थी। देश में नये कल कारखानें की नींव रखी जाने लगी। एक नहीं अनेक बहु धन्धी योजनाओं का निर्माण किया जाने लगा तथा पंचवर्षीय योजनाओं को भी राष्ट्रीय विकास का अंग मान लिया गया। योजना अयोग तथा वित्त आयोग जैसी संस्थाओं की स्थापना की गयी। देश में सार्वजनिक तथा निजी उद्वोगों के क्षेत्र को अलग अलग विभक्त कर दिया गयां बड़े उद्योगों के साथ–साथ्ज्ञ लघु एवं कुटीर उद्योगों की भी स्थापना क लिए नीति निर्धारित की गयी। भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए एक प्रभावी कर प्रणाली होनी चाहिए।

किसी देश की लोक वित्त व्यवस्था की समस्त व्यवस्था उस देश की कर प्रणाली पर निर्भर करती है। एक आदर्श राजकोषीय नीति के लिए एक आदर्श कर प्रणाली का होना अनिवार्य माना जाता हे। सैद्धान्तिक दृष्टि से ऐसी कर प्रणाली की कल्पना करना तो सम्भव है, परन्तु व्यवहार में एक ऐसी कर प्रणाली का पाया जाना कठिन माना जाता है। डॉ0 डाल्टन के अनुसार, ''आर्थिक दृष्टि से सबसे अच्दी कर प्रणाली वह है जिसके अच्छे आर्थिक प्रभाव ज्यादा हों और बुरे आर्थिक प्रभाव कम हों।''

1. **प्रतिगामी कर :–** प्रतिगामी क रवह है जिसमें उच्च आय अर्जित करने वालों की तुलना में कम आय वाले व्यक्तियों पर अधिक कर लगता है। आय मे वृद्धि के साथ कर दरें कम होती हे। इस प्रकार, सीमांत कर दरें औसत कर दरों से कम होती ह। इस प्रणाली का पालन नहीं किया जाता है क्योंकि यह गरीब लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
2. **समानुपाती कर :–** समानुपाती कर जिसे सपाट कर के रूप में भी जाना जाता है , कम, मध्यम, और उच्च आय अर्जित करने वालों पर समान रूप लगता है। समानुपाती कर

प्रणाली के तहत, व्यक्तिगत करदाता अपनी आय का एक नियमित प्रतिशत का भुगतान करते है। इस कराधार प्रणाली में, सीमांत कर दर औसत कर दर के बराबर होती है। उदाहरण के लिए 10 प्रतिशत का आयकर जो कि आय के बढ़ाने या घटने से बढ़ता या घटता नहीं है।

3. **प्रगामी कर :–** प्रगामी कर उच्च आये वाले व्यक्तियों पर अधिक प्रभाव डालता है, और कम आये वाले व्यक्तियों पर कम प्रभाव डालता है। वर्तमान आयकर प्रगामी कर प्रणाली का पालन करता है। प्रगामी कर आय की तुलना में अधिक दर से बढ़ता है। प्रगामी कर प्रणाली के तहत, आय पर कर प्रगामी या बढ़ती कर दर अनुसूची पर आधारित होती है। प्रगामी कर प्रणाली के तहत, सीमांत कर दरें अक्सर औसत कर दरों की तुलना में अधिक होती है।

## उद्देश्य (Object):-

1. कर प्रणाली को उत्पादक बनाना।
2. करारोपण व्यवस्था की कुरूपताओं और असन्तुलनों को दूर करना।
3. उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचाना।

### 1.1 प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर :–

प्रत्यक्ष कर किसी भी कर को संदर्भित करता है जो व्यक्तियों तथा संगठनों पर लगाया जाता है। और उन्हीं से एकत्र किया जाता है। प्रत्यक्ष कर का एक उदाहरण आयकर है। आयकर जिस पर लगाया जाता है, उसी सक एकत्र किया जाता है।

अप्रत्यक्ष कर एक व्यक्ति या संगठन पर लगाए जाते है लेकिन किसी अन्य व्यक्ति संगठन से एकत्र किए जाते है। उदाहरण के लिए वस्तु और सेवा कर एक अप्रत्यक्ष कर है क्योंकि कर व्यापारियों से एकत्र किया जात है, न कि वास्तव में कर का भुगतान करने वाले लोगों से। जब व्यापारिक उपभोक्ताओं को वस्तुएं बेचते है, तो वे वस्तुओं की बिक्री मूल्य मेंज जीएसटी शामिल करते है। वे उपभोक्ताओं से जीएसटी वसूलते हैं और सरकार के पास जमा करते है। यहां, जीएसटी व्यापारियों पर लगाया जाता है उपभोक्ताओं से एकत्र किया जाता है।

### 1.2 सीमान्त दर :–

सीमांत कर दर आय में जोड़े गए अंतिम रूपये पर कर की दर को कहते है। उदाहरण के लिए, यदि आप प्रति वर्ष 500ए001 कमा रहे हैं, तो आपके 500ए001 वें रूपये पर 20 प्रतिशत

कर दर है। इस मामले में 20 प्रतिशत कर दर सीमांत कर दर है। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि पूरी आय पर 20 प्रतिशत की दर नहीं लगाई जा रही हे।

औसत दर :– औसत कर दर की गणना कुल करों के भुगतान को कुल आय द्वारा विभाजित करके की जाती है।

$$\text{औसत कर दर} = \frac{\text{चुकाया गया कुल आय कर}}{\text{कुल आय}}$$

औसत कर दर आय के सभी स्तरों पर चुकाए गए करों को शामिल करती है, इसलिए यह स्पष्ट है कि यह सीमांत दर से कम होगी।

**1.3 भारत के प्रमुख कर :–**

**(क.) आयकर :–**

आयकर व्यक्त्यिों या संगठनों की आय पर लगाया गया प्रत्यक्ष कर है। जब व्यक्तियों पर आयकर लगाया जाता है, तो इसे आयकर कहा जाता है। जब संगठनों पर आयकर लगाया जाता है। इसे निगम कर कहा जाता है।

आयकर के तरह शामिल विभिन्न प्रकार की आय निम्नानुसार हैः

अ. वेतन

ब. व्यापार या पेशे से लाभ

स. संपत्ति से किराये की आय

द. पूंजीगत लाभ–दीर्घकालिक और अल्पकालिक

ज. ब्याज आय, आदि

**(ख.) उत्पाद शुल्क :–**

उत्पाद शुल्क एक अप्रत्यक्ष कर है जो कि वस्तु के उत्पाद पर लगाया जाता है। जब सामान परिसर से बाहर निकाला जाता है , तो उत्पादक उत्पाद शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता है। उत्पाद शुल्क 1 जुलाई 2017 से वस्तु एवं सेवा कर द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

**(ग) सीमा शुल्क :–**

सीमा शुल्क वस्तुओं और सेवाओं के आयात तथा निर्यात पर भुगतान किया गया एक अप्रत्यक्ष कर है। सीमा शुल्क जीएसटी के साथ्ज्ञ प्रतिस्थापित नहीं किया गया है। हालांकि , अतिरिक्त सीमा शुल्क को जीएसटी द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। अतिरिक्त सीमा शुल्क कम कीमत की आयातित वस्तु की कीमत बढ़ाने क लिए आयात करने वाले देश द्वारा लगाया

जाता है क्योंकि अक्सर निर्यात करने वाला देश निर्यात पर उपादान प्रदान करता है। यह तब भी लगाया जाता है जब देश में उतपादित या विनिर्मित समान प्रकार की वस्तुओं पर पहले से ही अधिक कर लगता है।

**(ग) सेवा कर :–**

सेवा कर सेवाओं की बिक्री पर दिया गया अप्रत्यक्ष कर है। वस्तुओं के मामले में, उत्पादन और बिक्री की दो अलग–अलग प्रक्रियाऐं होती हैं, जबकि सेवाओं के मामले में, सेवाओं का उत्पादन और बिक्री एक साथ होनी है। वस्तुओं के मामले में, उत्पादन पर उत्पाद शुल्क लगाया जता है, और वस्तुओं की बिक्री पर बिक्री कर लगाया जाता है। सेवाओं के मामले में, एकल कर लगाया जाता है, अर्थात् सेवा कर। सेवा कर 1 जुलाई 2017 से लागू नहीं होता है। इसे वस्तु और सेवा कर द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

**(घ) निगम कर :–**

निगम कर उस कर को कहते है। जो निगमों व व्यावसायिक कम्पनियों पर लगाया जाता है और उसे कम्पनियों अदा करती है। ये कर उन करों से भिन्न होते है जो हिस्सेदारों द्वारा लाभांशों के रूप प्राप्त की गयी आमदनियों पर लगाय जाते है। संक्षेप में, हम कह सकते है कि ऐसे व्यवसायों से प्राप्त आय पर दो प्रकार से कर लगाये जाते हैं–पहले स्वयं कम्पनी पर क लगाया जाता है जिसे कम्पनी अदा करती है और फिर अंशधारियों के लाभांशों पर कर लगाया जात है। वर्तमान समय में निगम कर आय का प्रधान स्त्रात बन गया है। अब तो राज्य सरकारें भी इस कर की राशि में अपना हिस्सा मांगने लगी है।

1. **घरेलू कम्पनी की दशा में**

   क. धारा 115 बी0बी0 के अन्तर्गत लॉटरी, क्रॉसवर्ड आदि के ईनाम पर कर की दर 30 प्रतिशत

   ख. अल्पकालीन पूँजी लाभ धारा 111 ए के अन्तर्गत कर की दर 15 प्रतिशत

   ग. दीर्घकालीन पूँजी लाभ धारा 112 के अन्तर्गत कर की दर 10 प्रतिशत 20 प्रतिशत

   घ. अन्य आय पर कर की दर 30 प्रतिशत

   अधिभार – यदि कम्पनी की आय एक करोड़ से अधिक हो तो कर की दर 5 प्रतिशत

2. **घरेलू कम्पनी के अतिरिक्त**

   क. सरकार अथवा भारतीय संस्था से प्रापत अधिकार शुल्क की राशि – 50 प्रतिशत

ख. सरकार अथवा भारतीय संस्था से प्राप्त शुल्क– 50 प्रतिशत

ग. धारा 115 बी बी के अन्तर्गत लॉटरी, क्रॉसवर्ड आदि के ईनाम पर आय – 30 प्रतिशत

घ. घारा 111 ए के अन्तर्गत अल्पकालीन पूँजी लाभ – 15 प्रतिशत

ड. धारा 112 के अन्तर्गत दीर्घकालीन पूँजी लाभ– 10 प्रतिशत 20 प्रतिशत

च. अन्य आय – 30 प्रतिशत

अधिभार – यदि कम्पनी की आय एक करोड़ से अधिक हो तो – 2 प्रतिशत

**(ड.) बिक्री कर या वैट::–**

वस्तुओं की बिक्री पर बिक्री कर लगाया जाता है। भारत में, राज्यांतरिक बिक्री पर, बिक्री को मूल्यवर्धित कर कहा जाता है और अंतर–राज्य बिक्री पर, बिक्री कर को केंद्रीय बिक्री कर कहा जाता है।वैट और केंद्रीय बिक्री कर 1 जुलाई 2017 से लागू नहीं होते है। इन्हें वस्तु और सेवा कर प्रतिस्थापित किया गया है।

1. **मूल्यवर्धित कर** :–यद्यपि वैट का उपयोग भारत में राज्यांतरिक बिक्री कर के रूप में किया जाता है, यह अप्रत्यक्ष कर लगाने के लिए एक पद्धति है।

**वैट का अर्थ** :– वैट बिक्री कर है जो कि बहु–स्तर पर लगता है। वैट प्रणाली को इस प्रकार बनाया गया है कि वस्तु पर कर का बोझ वस्तु के अंतिम उपभोक्ता द्वारा उठाया जाता है। यदि व्यक्ति ने सामान खरीदते समय वैट काभ्ज्ञुगतान किया है, तो वह बिक्री पर वैट का भुगतान करते समय इनपुट पर भुगतान किए गए वैट को कुल वैट देयता से घटाता है, जिसे इनपुट क्रेडिट भी बोलते है।

**वैट पद्यति** :– उत्पादन के हर चरण पर वैट लगता है। यह हर चरण के विक्रेता द्वारा वस्तु मे जोड़े गए मूल्य पर लगाया जाता है। विक्रेता तदनुसार वस्तु के मौजूदा मूल्य में जोड़े गए शुद्ध मूल्य पर कर चुकाने के लिए उत्तरदायी है।

वैट का मतलब हर स्तर पर वस्तु की बिक्री पर कर है, साथ ही विक्रेता को अनपुट क्रडिट दिया जाता है, जिसक परिणामस्वरूप विता केवल वस्तु में जोड़े गए मूल्य पर ही कर चुकाता है। वेट का प्राथमिक उद्देश्य वस्तुओं पर बहु कर को रोकना है। ऐसा संभ्ज्ञव हुआ है क्योकि विता इनपुट क्रेडिट ले सकता है। वैट प्रणाली के अंतर्गत, कर चोरी भी मुश्किल है क्योंकि विक्रेता उन सामानों को नहीं खरीदता है जिन पर वैट कर का भुगतान नहीं किया गया है

क्योंकि इस तरह परिदृश्य में, उसे वस्तु के पूरे मूल्य पर कर देना होग, न केवल मूल्यवर्धन पर।

**(च) व्यय कर :–**

भारत सरकार ने 1956 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो0 कोल्डोर को भारत में आमन्त्रित किया था। उन्होंने अनेकानेक करों को लगाने की सिफारिश की थी। उनमें से एक व्यय कर भी था। काल्डोर ने भारत के सन्दर्भ में व्यय कर के बारे में लिखा था कि ''व्यय कर धनी वर्ग के अपव्यय को रोकने में शक्तिशाली का काय्र करता है। विलासिता का उपयभोग पर यह प्रतिगामी कर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक आदर्श यन्त्र है।'' भारत में व्यय कर 1 अप्रैल, 1958 से लागू किया गया था। काल्डोर का सुझाव था कि व्यय कर 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। व्यय कर में अनेक प्रकार की छूटें भी दी गयी थी।

**(छ) अति लाभ कर :–**

भारत सरकार ने इस कर को सन् 1963–64 के बजट से लगाना प्रारम्भ किया था। वित्त मन्त्री ने कम्पनियों के अति लाभ पर कर लगाने की व्यवस्था की थी। किसी कम्पनी को यह कर तब देना होगा जबकि आय कर व अति कर का घटाकर उस कम्पनी का लाभ उसकी प्राप्त पूँजी तथा रिवर्ज के 6 प्रतिश से अधिक हो। यहां यह व्यवसगी भी की गयी थी कि जब शुल्क आय जिस पर कर देय हो, 6 प्रतिशत से अधिक हो, परन्तु पूँजी के 10 प्रतिशत से अधिक न हो तो कर की दर 50 प्रतिशत होगी, तथा 10 प्रतिशत भाग से ऊपर कर की दर 60 प्रतिशत रखी गयी थी।

**(ज) आस्ति या सम्प्रदा कर :–**

आस्ति कर मृतक की पूरी सम्पत्ति पर लगाया जाता है इस कर में यह विचार नहीं किया जाता है कि भिन्न–भिन्न उत्तराधिकारयों को कितनी राशि मिलती हे। भारत में अस्तित्व कर लगाने के बारे में 1925–26 में विचार किया गया था, परन्तु इस 1953 से लागू किया गया। इस समय इस कर को लगाने व वसूल करने का पूरा विचार किया गया था, परन्तु इसे 1953 से लागू किया गया। इस समय इस कर को लगाने व वसूल करने का पूरा अधिकार केन्द्रीय सरकार को है। परन्तु इससे प्राप्त आय का 97.5 प्रतिशत भाग राज्यों से वितरित कर दिया जाता है। कृषि भूमि पर आस्ति कर राज्यों के अधिकार क्षेत्र में आता है। मृतक की पूरी सम्पत्ति, जैसे नकदी , सोना, चांदी, आभूषण, घर का सामान, सिक्योरिटियाँ, मोटर कार, आदि में कर लगाने से पूर्व मृतक द्वारा लिये गये ऋण की उसकी सम्पत्ति में से घटा दिया जाता है। कर लगाते समय इसमें उस सम्पत्ति को भी शामिल कर लिया जाता है। जो सम्पत्ति मरने के

दो वर्ष पूर्व मृतक को उपहार में मिली थी। यदि मृतक की मृत्यु के छह माह पूर्व कोई उपहार जो धर्मार्थ कार्यो की पूर्ति करने के लिए दिये गये होंगे तो उन पर भी करारोपण नहीं किया जायेगा।

**(झ) उत्तराधिकार कर :–**

उत्तराधिकारी पर यह कर मृतक से प्रापत होने वाली आय पर लगाया जाता है। मृतक की कुल सम्पत्ति के आधार पर उत्तराधिकारी पर कर नहीं लगाया जाता है वरन् उत्तराधिकारी को उसकी सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले अंश अथ्ज्ञवा स्वत्व पर ही कर लगता है। यदि मृतक उत्तराधिकारी का नजदीकी रिश्तेदार है या उत्तराधिकारी से उसका खून का रिश्ता है तो कर की दर कम होगी, अन्यथा दूर का रिश्तेदार होने पर प्राप्त होने वाली राशि पर की दर ऊँची रखी होगी।

मृत्यु कर को प्रगतिशील बनाने के लिए अनेक विधियाँ अपनायी गयी थी। इस सम्बन्ध में रिगनानों योगना महत्वपूर्ण है। रिगनानो इटली के अर्थशास्त्री थे। जिसमें मृत्यु कर से बचत पर प्रभाव एवं धन के वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखा गया था। इस योजना के आधार पर व्यक्ति की मृत्यु पश्चात सम्पत्ति हस्तान्तरण शनै–शनै राज्यों को हो जाना चाहिए। योजना के अन्तर्गत मृतक की सम्पत्ति तीन पीढ़ियों में राज्य को हस्तानतरित हो जाती है। सम्पत्ति के हर अगले हस्तान्तरण के साथ मृत्यु कर की दर भी बढ़ जानी चाहिए। सरकार को सम्पत्ति के प्रथम हस्तान्तरण पर 1/3 द्वितीय हस्तान्तरण पर 1/3 व अन्तिम हस्तान्तरण पर शेष सम्पत्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस प्रकार तीन पीढ़ियों के पश्चात् एक व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य के पास पहुँच जाती है और व्यक्ति के पास कुछ भी शेष नहीं रहता है। वर्तमान में इस मद से कोई भी आय नहीं होती है।

**(ण) उपहार कर :–**

उपहार कर को 1 अक्टूबर 1998 से हटा दिया गया है लेकिन वर्ष 2004 में इस अधिनियम में आंशिक रूप से परिवर्तन किया गया ,वर्तमान में 50,000 रू से अधिक का उपहार, प्राप्तकर्ता के हाथों में कुछ शर्तों के साथ 'अन्य साधनों से आय' शीर्षक में कर योग्य होता है।

**(च) धन–कर या सम्पत्ति कर :–**

1956 के सुझावों में सम्पत्ति कर सम्बन्धी सुझाव भी काल्डोर ने ही दिये थे। प्रो0 काल्डोर का मत था कि इस कर को धीरे–धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने निम्नतम पट्टी 1 लाख से 4 लाख की मानी, जिस पर करारोपण 0.2 प्रतिशत की दर पर तथा अधिकतम पट्टी 15 लाख पर कर की दर 1.5 प्रतिशत होगी। उन्होंने अपने सुझावों में यह भी बताया कि यह कर सब

प्रकार की सम्पत्ति पर लगे। सम्पत्ति कर के अन्तर्गत कुछ वस्तुओं व सम्पत्तियों को कर मुक्त रखा जाता है ; जैसे– धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति , घर में काम आने वाली वस्तुएं आदि।

**(छ) वस्तु और सेवा कर :–**

वस्तु और सेवा कर या जीएसटी वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर लगाया गया कर है। इसने 1 जुलाई 2017 से विभिन्न करों को प्रतिस्थापित किया है और कर अनुपालन को आसान बनाने के लिए उन्हें एक कर प्रणाली के अंतर्गत कर दिया है। निम्न कर जीएसटी से प्रतिस्थापित किए गए हैः

1. केंद्रीय द्वारा लगाए गए और एकत्र किए गए करः
   क. केंद्रीय उत्पादक शुल्क
   ख. अतिरिक्त सीमा शुल्क
   ग. सेवा कर
   घ. केंद्रीय बिक्री कर
2. राज्य द्वारा लगाए गए और एकत्र किए गए कर :
   क. राज्य वैट
   ख. मनोरंजन कर
   ग. लॉटरी, सट्टेबाजी और जुए पर कर
   घ. विलासिता कर
   ड. चुंगी शुल्क

**1. जीएसटी के घटक :–**

राज्यान्तरिक वस्तु या सेवाओं की आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाए गए जीएसटी को केंद्रीय जीएसटी और राज्यों द्वारा जीएसटी को कहा जाता है। अंतर राज्य वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर केंद्र द्वारा एकीकृत जीएसटी एकत्रित किया जाता है। आईजीएसटी आयात पर भी लागू होता है।

**2. जीएसटी परिषद की संरचना :–**

जीएसटी परिषद की संरचना निम्न है–

- अध्यक्ष के रूप में केंद्रीय वित्त मंत्री।
- राजस्व या वित्त के प्रभारी केंद्रीय राज्य मंत्री।
- प्रत्येक राज्य से नामित सदस्य जो वित्त या कराधान के प्रभारी है। जीएसटभ परिषद को निम्न मामलों पर निर्णय लेने के लिए अधिकार दिया गया है

- संघ राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा लगाए गए कर, उपकर और अधिभार जो वस्तु और सेवा कर में सम्मिलित हो सकते है।
- वस्तुओं और वेाओं पर कर दरे।
- जीएसटी लागू करने के लिए कानून।
- एकीकृत जीएसटी का आबंटन।
- न्यूनतम विक्रय राश्ज्ञि के आधार पर जीएसटी से छूट।
- उत्तर पूर्व और पहाड़ी क्षेत्र के राज्यो के सबंध में विशेष प्रावधान।
- जीएसटी से संबंधित कोई अन्य मामला।

**3. राष्ट्रीय मुनाफाखोरी विरोधी प्राधिकरण :–**

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने वर्ष 2017 में राष्ट्रीय मुनाफखोरी विरोधी प्राधिकरण के निर्माण को मंजूरी दे दी गई। प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और चार सदस्य है, जो 62 वर्ष से कम उम्र के होने चाहिए।

**ई–वे बिल :–**

ई– वे बिल दरअसल एक प्रकार का इलेक्ट्रॉनिक बिल यानी कम्पूयटर पर बना बिल होता है। जीएसटी प्रणाली के तहत किसी वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिए , एक इलेक्ट्रॉनिक बिल भी तैयार करना होगा। ये बिल जीएसटभ पोर्टल पर जानकारी दर्ज करके उत्पन्न होा तळै। यदिवस्तु का मूल्य 50,000 रूपये से अधिक है और वस्तु को 10 किमी से अधिक दूरी के लिए भेजा जा रहा है। तो ई–वे बिल उत्पन्न करना अनिवार्य है।

ई–वे बिल प्रणाली ने प्रत्येक राज्य के लिए एक अलग पारगमन पास की आवश्यकता तो प्रतिस्थापित किया है। वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए ई–वे बिल पूरे देश में मान्यता प्राप्त करता है।

## सारांश (Summary):-

व्यवहार में किसी कर व्यवस्था के आकार का निर्धारण बहुत अंश में इस बात से होता है कि उसका प्रशासन कित तरह से होता है। वस्तु एवं सेवा कर नेटवर्क की भूमिका, जैसे–इनपुट टैक्स क्रेडिट के मिलान, उलटने और पुनर्दावा करने के लिए उसी के अनुकूल इंजन का संचालन करना, पंजीकरण की सुविधा, करदाताओं के प्रोफाइल का विश्लेषण प्रदान करना, केन्द्रीय एवं राज्य के अधिकारियों की अग्रेषित करना, आई जी एस टी की संगठना और निपटान, करदाताओं की प्रोफाइल का विश्लेषण प्रदान करना , बैकिंग नेटवर्क के कर भुगतान

वितरणों का मिलान करना, केन्द्र और राज्य सरकारों को करदाताओं के रिटर्न/वापसी की जानकारी के आधर पर विभिन्न एमआईएस सूचना प्रदान करना आदि।

**शब्दावली (Key words):-**

1. वस्तु एवं सेवा कर (Goods and services Tax (Gst)
2. व्ययकर (Expenditure Tax)
3. सम्पत्ति पर कर (Taxes on wealth)
4. उपहार कर (Gift Tax)
5. निगम कर ( CoprationTax)
6. सम्पदा कर (Estate Duty)
7. उत्तराधिकार कर (Succesion Duty)

**प्रश्नों के उत्तर (Answer the question)**

1. वस्तु एवं सेवाकार पर चर्चा कीजिए।
2. प्रतिगामी कर क्या है?
3. समानुपाती कर क्या है?
4. प्रगामी कर क्या है?
5. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों की विवेचना कीजिए।
6. सीमान्त दर क्या है?
7. आयकर एवं निगम कर की विवेचना कीजए।
8. जी0एस0टी0 परिषद की संरचना बताइए।
9. राष्ट्रीय मुनाफाखेरी विरोधी प्राधिकरण पर चर्चा कीजिए।
10. ई–वे बिल प्रणाली की विवेचना कीजिए।
11. संपत्ति कर की विवेचना कीजिए।

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective Question):-**

1. वस्तु एवं सेवा कर द्वारा निम्नलिखित में से किस कर को समाप्त किया गया है।

   क. सम्पत्ति कर  ख. कॉर्पोरेशन कर  ग. मूल्य संवर्दित कर

   घ. आयकर (उत्तर ग)

2. जीएसटी की विभिन्न दरों के सन्दर्भ में अंतिम निर्णय लेने का अधिकार किसे प्राप्त है।

   क. भारत के प्रधानमंत्री  ख. भारत के राष्ट्रपति  ग. संसद

   घ. जीएसटी परिषद  (उत्तर घ)

3. किस संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा भारत में जीएसटी को लागू किया गया है?

   क. 122  ख. 115  ग. 101  घ. 110

   (उत्तर ग)

## खण्ड – 04

## इकाई – 03

## निजी आयकर : कर योग्य आय , कर आधार, कर मुक्त आय तथा अन्य कर छूटें :

**1.0 परिचय :–** आज विकसित देशों में आय पर कर सरकार की आय का अकेला सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत है, किन्तु विकासशील देशों में इन करों का ऐसा बोलबाला नहीं हे। जो कुछ भी हो, सभी लेखक इन करों के महत्व पर बल देते हैं, क्योंकि इन्हें योग्यता के अनुसार लगाया जा सकता है और इसलिए समानता एवं सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को सनतुष्ट किया जा सकता है। आय पर कर व्यक्तियों की आय पर लगाया जा सकता है तथा लाभ पर। व्यक्तियों की आय पर लगाए कर को व्यक्ति आय कर कहा जाता है। प्रत्येक देश की सरकार को अपने देश में शान्ति व कानून व्यवस्था बनाये रखने, देश को विदेशी आक्रमणों से बचाने तथा समाज में कल्याणकारी कार्यों को पूरा करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। धन एकत्रित करन के लिए सरकार सामान्यतया जनता एवं वस्तुओं पर विभिन्न प्रकार के कर लगाती है। ऐसे कर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के हो सकते है। जैसे–आयकर, वस्तु एवं सेवा कर आदि।

आयकर अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी रूप में प्रापत आय को कर के दायरे में रखा जाता है। ये आय नैतिक हो अथवा अनैतिक करयोग्य होती है। अमौद्रिक रूप से प्राप्त आय परभी आयकर की गणना की जाती है। अधिनियम में आय की पांच मदों की व्याख्या की गई है– 1. वेतन से आय 2. मकान सम्पत्ति से आय 3. व्यापर अथवा पेशे से आय 4. पूँजी लाभ तथा 5. अन्य श्रोतों से प्राप्तियाँ। वेतन से आय शीर्षक के अन्तर्गत किसी कर्मचारी को उसके द्वारा प्रदत्त सेवाओं पुरस्कारस्वरूप उसके नियोक्ता से प्रापत समस्त भुगतानों को सम्मिलित किया जाता है। ये भुगतान दैनिक, पाक्षिक, मासिक अथवा किसी अन्य रूप में हो सकते है। इसमें मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों प्रकार की प्राप्तियो को सम्मिलित किया जाता है। सेवा स्थाई हो अथवा अस्थाई , नियमित हो अथवा अनियमित सभी की प्राप्तियों को आयकर की गणना के लिए आय माना जाता है। यहां तक कि सेवा निवृत्ति अथवा पदच्युति के बाद प्राप्त होने वाले भुगतानों (यथा–पेंशन, अवकाश, नकदीकरण, ग्रेच्युइटी, क्षतिपूर्ति, भविष्यनिधि भुगतान आदि) को भी कर गणना मे वेतन से आय शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। कर के अन्तर्गत मूल वेतन, कमीशन, बोनस, भत्ते, अनुलाभ, वेतन के स्थान पर लाभ आदि को सम्मिलित किया जाता है।

किसी गतवर्ष के लिए करयोग्य आय की गणना करने के लिए करदाता की विभिन्न श्रोतों की आय को सम्मिलित किया जाता है किन्तु कुछ विशिष्ट आयें ऐसी होती है जिन्हें आयकर अधिनियम के अन्तर्गत आयकर से मुक्त रखा गया है अर्थात उन मदों से होने वाली आय को आयकर की गणना की दृष्टि से कुल आय सम्मिलित नहीं किया जाता है। अधिनियम की धारा 10 में इस प्रकार की आयों का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ आयें सभी प्रकार के करदाताओं के लिए कर मुक्त है तो कुछ आयें कर मुक्त होती है। ये करमुक्ति पूर्णतः अथवा अंशतः हो सकती है जिसके सम्बन्ध में कतिपय शर्तों को लागू किया गया है। इस प्रकार कर मुक्त आय का आशय उन आयों से है जिन्हें आयकर अधिनियम 1961 के अधीन कर मुक्त घोषित किया गया हो। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि–

1. ऐसी आयों को कर से छूट भी कहा जाता है।
2. इन आयों को करदाता की कुल आय में सम्मिलित नहीं किया जाता है।
3. आयकर अधिनियम के प्रावधानानुसार ये आयें पूर्णतः अथवा एक निर्धारित सीमा तक कर मुक्त हो सकती है।
4. कुछ आयें समस्त करदाताओं के लिए करमुक्त घोषित है किन्तु कुछ को विशिष्ट संस्थाओं का कोषों के लिए ही कर मुक्त घोषित किया गया है।
5. कर मुक्त होने के लिए कतिपय शर्तों का पालन किया जाना भी अनिवार्य होता है।

एक व्यक्ति का कर निर्धारण से तात्पर्य एक व्यक्ति की कर योग्य आय की गणना करके, उसके द्वारा देय आयकर की गणना से है। एक व्यक्ति की कर देयता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी करयोग्य आय तथा गैर करयोग्य आय कितनी है कर निर्धारण मे मुख्यतः दो बातें शामिल है।

1. व्यक्ति की कुल आय की गणना करना।
2. गर्णित कर योग्य आय पर आयकर की गणना करना।

**1.1 उद्देश्य :–**

1. सरकार की आय का स्थाई साधन होना :–सरकार को विभिन्न कार्यों के लिए धन की आवश्चयकता होती है। ऐसे कार्यों में कानून व्यवस्था, अन्य देशों से देश की सुरक्षा, जनहित कार्य आदि शामिल है। इन कार्यो को सम्पन्न करने के लिए सरकार आयकर लगाती है तथा वसूल करती है। ऐसे आयकर से सरकार को एक बहुत बड़ा भाग राजस्व के रूप में प्राप्त होता है।
2. पूँजी का निर्माण होना :– आयकर अधिनियम में दी गई धारा 80 की कटौतियों का लाभ प्राप्त करने के लिए जब व्यक्ति अपनी बचतों का निवेश करते हैं तो इससे पूँजी निर्माण में वृद्धि होती है, ऐसे धन को सरकार महत्वपूर्ण कार्यों में उपयोग कर लेती है।
3. बचतों एवं विनियोगों को प्रोत्साहन देना :– सरकार जनता को बचत एवं विनियोग में प्रोत्साहन करने के उद्देश्य से आयकर अधिनियम में कटौतियों का प्रावधान करती हे।
4. विषमताओं को दूर करना :– सरकार देश की जनता में व्याप्त आथ्रिक विषमताएं दूर करने के उद्देश्य से भी आयकर लगाती है, जिससे कि अमीरी तथा गरीबी क बीच की खाई को पाटा जा सके। इसके लिए सरकार ने आयकर के लिए खण्ड प्रणाली को लागू किया है।

**1.2 आयकर का अर्थ :–** आय कर एक प्रत्यक्ष कर है जो किसी व्यक्ति की गत वर्ष में अर्जित या प्राप्त की गई आय पर आयकर विभाग द्वारा वसूल किया जाता है। आयकर विभाग केन्द्रीय सरकार के वित्त मन्त्रालय का पृथक विभाग है। आयकर विभन्न खण्डों तथा विभिन्न दरों के आधार पर गणना करके ज्ञात किया जता हे। यह केन्द्रीय सकरार की आय का प्रमुख स्त्रोत है। इससे कुल केन्द्रीय करों का आधे से अधिक राजस्व सरकार को प्राप्त होता है।

**1.3 आयकर कौन चुकता है? :–** ऐस करदाताजिनकी आय गत वर्ष में मुक्त आय की सीमा से अधिक होती है वे अपनी आय के आधिक्य पर निश्चित दरों के आधार पर आयकर चुकाते है। इसके अन्तर्गत आयकर का भुगतान व्यक्ति, हिन्दू अविभाजित परिवार, कम्पनी, फर्म, सहकारी समिति, नयास एवं व्यक्तियों के समूह आदि करदाताओं द्वारा किया जााता है।

**1.4 आय की परिभाषा :–** व्यक्ति आयकर को संक्षेप में सिर्फ आयकर कहा जाता है। आयकर के सम्बन्ध में पहली समस्या यह उठती है कि आय की परिभाषा किस प्रकार की जाए। हेनरी साइमन्स ने आय को निम्न दो मदों का योग बताया :

1. किसी अवधि में व्यक्ति का उपभोग $(C)$ और
2. इसी अवधि में व्यक्ति की निजी सम्पत्ति में शुद्ध वृद्धि $(\Delta w)$

अतः $Y=C+(\Delta w)$

इस परिभाषा के अनुसार आय के अन्तर्गत किसी अवधि में व्यक्ति द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण आर्थिक लाभ को शामिल कर लिया जाता है, किन्तु इस परिभाषा को आयकर कानून में अपनाया नही जाता हे।

अधिकांश देशों के आय कर अधिनियम में आय से तात्पर्य होता है किसी अवधि में करदाता को प्राप्त सम्पत्ति का प्रवाह। उत्पत्ति के साधनों को इस अवधि में जो आय वस्तुतः प्राप्त होती है उसे ही शामिल किया जाता है। ऐसी आय मजदूरी, वेतन, ब्याज, लाभ आदि के रूप में प्राप्त होती है। आयकर में शामिल आय मुख्य रूप से निम्न पांच प्रकार की हैः

1. मजदूरी एवं वेतन
2. प्रतिभूतियों पर बज तथा शेयर के लाभांश
3. व्यवसाय के लाभ
4. सम्पत्ति से प्रापत आय
5. अन्य स्त्रोतों से प्राप्त आय।

उपभोग तथा सम्पत्ति में शुद्ध वृद्धि के रूप में प्रापत आय तथा सम्पत्ति के रूप में प्रापत आय में दो प्रमुख अन्तर है। प्रथम, आयकर का आधार होता है आय जो प्राप्त हो चुकी है न कि संभूत की आय पूँजी परिसम्पत्ति की मूल्य वृद्धि पर आयकर तभी लगाया जाता है जब सम्पत्ति की बिक्री के माध्यम से यह मूल्य वृद्धि करदाता वस्तुतः प्राप्त कर लेता है। परिसम्पत्ति के वार्षिक पुनर्मूल्यन के आधार पर आयकर लगाया नहीं जाता है। द्वितीय आयकर तभी लागू होता है जब करदाता तथा अन्य व्यक्तियों के मध्य लेनदेन होता है। इस क्रिया के द्वारा सम्पत्ति का प्रवाह करदाता की ओर होता है। यही कारण है कि जब करदाता अपने मकान में स्वयं रहता है तब इस क्रिया के कारण सृजित उपयोगिता मूल्य पर आयकर नहीं लगाया जाता क्योंकि इस स्थिति में करदाता लेनदेन की क्रिया के बिना ही उपभोग करता है।

सम्पत्ति के प्रवाह के रूप में आय की धारणा में एक गम्भीर दोष है। यह परिभाषा उस वास्तविक आय की कर में शामिल नहीं करती जिसका सृजन एक ही परिवार में वस्तुओं और वेाओं के उत्पादन एवं उपभोग से होता है। यदि इसी प्रकार की आय का सृजन ऐसे परिवार में हो इसका उपभोग खुद नहीं करता तो उस पर आय कर लगेगा। यह पक्षपात है। एक दाहरण ले। यदि किसान अपनी फसल बाजार में बेच दे तो उसे आयकर देना होगा, किनतु यदि इसी फसल का स्वयं उपयोग करे तो कोई कर नहीं देना पड़ता। उपरोक्त कठिनाई टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु जैसे मकान, फर्नीचर, मोटरगाड़ी आदि से सम्बन्ध में ाी उठी है। इन वस्तुओं में करदाता को उपयेगिता मिलती है और इस प्रकार वे सन्तुष्टि के साधन है, किन्तु आयकर ऐसे उपयोगिता मूल्य को आय नहीं मानता।

माल में प्राप्त आय भी कठिनाई का एक जरिया है। व्यावसायिक फर्म एवं अन्य नियोक्त अपने कर्मचारियों की वास्तविक आय में वृद्धि के लिए कई प्रकार के लाभ माल के रूप में प्रदान करते है, जैसे मुफ्त राशन, मुफ्त आवास, मुफ्त यात्रा, स्वास्थ्य, बीमा, आदि । ये सभी माल के रूप में आय हैं और इन्हें आयकर में शामिल नहीं करने का कोई कारण नहीं है।

**1.5 वेतन से आशय :–**

अर्थशास्त्र में मजदूरी को श्रम का पुरस्कार माना जाता है। आयकर की दृष्टि से किसी भी नियोक्ता द्वारा अपने कर्मचारी को उसके श्रम के पुरस्कार स्वरूप किया गया कोई भी भुगतान वेतन माना जाता हे। आयकर अधिनियम में वेतन और मजदूरी में भेद नहीं किया गया है तथा किसी भी स्थाई अथवा अस्थाई सेवा के लिए किये गये किसी भी मौद्रिक अथवा अमौद्रिक भुगतान को वेतन की श्रेणी में करयोग्य माना गया है।

वेतन से आय शीर्षक के अन्तर्गत कर की गणना करने के पूर्व वेतन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय है–वेतन के अनतर्गत नियोक्ता से प्राप्त सभी भुगतान जो कि सेवाओं के पुरस्कार स्परूप प्राप्त होता है, सम्मिलित किया जाता है। आयकर की दृष्टि से इसमें मूल वेतन, बोनस, कमीशन, भत्ते, सुविधाओं के रूप में प्राप्त होने वाले अनुलाभ, वेतन के स्थान पर लाभ के रूप में किसी भी प्रकार की मौद्रिक या अमौद्रिक प्राप्ति को जोड़ा जाता है। आयकर के अन्तर्गत मजदूरी और वेतन में कोई भेद नहीं किया गया है।

1. वेतन से आय की गणना के लिए नियोक्ता और कर्मचारी का सम्बन्ध होना आवश्यक है। नियोक्ता किसी भ श्रेणी का हो सकता है जैसे–व्यक्ति, फर्म, कम्पनी आदि। नियोक्ता देशी अथ्ज्ञवा विदेशी हो सकता है। यदि कर्मचारी ने एक कर निर्धारण वर्ष में एक से अधिक नियोक्ताओं के अधीन कार्य किया है। तो सभी नियोक्ताओं से प्राप्त धनराशि का योग वेतन में सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार कर्मचारी भी चाहे चौकीदार हो, लिपिक हो अथवा प्रबन्धक हो, आयकर की गणना के लिए वेतन शीर्षक का प्रयोग किया जाता है किन्तु यदि नियोक्ता व नियुक्त का सम्बन्ध नहीं है तो आय को वेतन से आय नहीं माना जायेगा। साझेदार को फम्र से प्राप्त वेतन, सांसदों व विधायकों को वेतन, विश्वालिय कार्यों हेतु शिक्षकों को मानदेय, लाभांश आदि को इसी आधार पर वेतन से आय नहीं माना जाता है।
2. वेतन के उपार्जित अथवा प्राप्त होते ही यह आय का भाग बन जाती ळै तथा इस पर आयकर देय होगा, चाहे इसका भुगतान बाद में प्राप्त हो। जिन संस्थानों में वेतन अगले माह की प्रथम तिथि को देय होता है वहां कर निर्धारण वर्ष में फरवरी तक का वेतन ही सम्मिलित किया जाता है। वेतन का बकाया उस वर्ष की आय में जोड़ा जाता है जिसमें यह प्राप्त होता है। यद्यपि इसको पूर्व वर्षों में फैलाये जाने का प्रावधान भी है। यदि कर्मचारी को अपने नियोक्ता से वेतन का अग्रिम भुगतान प्राप्त होता है तो वेतन प्राप्त होने पर ही यह करयोग्य हो जाता है तथा जिस वर्ष यह देय है उसमें इसे आय में सम्मिलित नहीं यिका जायेगा। इस प्रकार आयकर की गणना के लिए वेतन प्राप्य अथवा प्राप्त तिथि, जो भी पहले हों, कोकरयोग्य हो जाता हे। यदि कर्मचारी का वेतन

न्यायालय द्वारा रोका जाता है तो भी उसे कर निर्धारण वर्ष की आय माना जाता है क्योंकि वेतन देय हो चुका है भले ही वह प्राप्त नहीं हुआ है।

3. वेतन कभी कर मुक्त नहीं होता है। यदि कर मुक्त वेतन प्रदान किया जा रहा है तो आशय यह है कर का भुगतान नियोक्ता द्वारा किया जा रहा है। इस स्थिति में प्रापत शुद्ध वेतन में नियोक्ता द्वारा भुगतान की जाने वाली आयकर की राशि को जोड़कर आने वाली राशि को आय माना जाता है। यदि कर्मचारी वेतन अर्जित होने के बाद वेतन का त्याग कर देता है तो भी वह करयोग्य माना जाता है, भले ही यह त्योग नियोक्ता के पक्ष में ही क्यों न किया जाय किनतु यदि कर्मचारी द्वारा जनहित में वेतन के स्वैच्छिक समर्पण अधिनियम 1961 के अन्तर्गत समर्पण किया जाता है तो इसे कर्मचारी की करयोग्य आय में सम्मिलित नहीं किया जाता है।
4. कर्मचारी के अवकाश ग्रहण पर प्राप्त एकमुश्त पेंशन, ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण आदि को करयोग्य माना जाता हैं सेवा से मुक्त होने के बाद भी यदि कोई भुगतान नियोक्ता से प्राप्त होता है तो वह वेतन शीर्षक में करयोग्य के बाद उसकी विधवा अथवा उत्तराधिकारी को प्राप्त होने वाली पारिवारिक पेंशन वेतन शीर्षक के अन्तर्गत करयोग्य नहीं होती है वरन इसे अन्य साधनों की आय शीर्षक में रखा जाता है।
5. महंगाई भत्ता तथा महंगाई वेतन का समान शब्द नहीं होते है। महंगाई वेतन सदैव मूल वेतन का अंग होता है। महंगाई वेतन मूल वेतन का अंग तभी होता है जबकि यह सेवा शर्तों के अन्तर्गत देय है। यदि कर्मचारी के अवकाश ग्रहण लाभों तथा भविष्य निधि सम्बन्धी भुगतानों के लिए महंगाई भत्ते को वेतन में जोड़ा जाता है तो उसे सेवा शर्तों के अन्तर्गत माना जात है।

### 1.6 वेतन, भत्तों, अनुलाभों तथा वेतन के स्थान पर लाभ की गणना :–

वेतन शीर्षक के अन्तर्गत आय की गणना करने के लिए वेतन के चार प्रभागों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है–

1. वेतन
2. भत्ते
3. अनुलाभ
4. वेतन के स्थान पर लाभ।

उपरोक्त चारों प्रभागों का योग ही सकल वेतन होता है।

क. वेतन :–

सामान्यत वेतन प्रभाग ने मूल वेतन अथवा मजदूरी को ही जाना जाता है किन्तु वेतन के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है–

**1. मूल वेतन अथवा मजदूरी –**

वेतन मंद में प्रात होने वाली सम्पूर्ण राशि का आधार मूल वेतन ही होता है। इसमें किसी प्रकार भत्ते आदि जुड़ने नहीं होते है। इसके आधर पर ही भत्ते आदि की गणना की जाती है। वेतनमान के अन्तर्गत प्राप्त होने की दशा में प्रारम्भिक वेतन में वार्षिक वृद्धि जोड़कर मूल वेतन की गणना की जाती हे।

**2. बोनस :–**

कर्मचारी को उसके नियोक्ता द्वारा बोनस प्रदान किया जात है तो इसे वेतन का अंग माना जाता है। बोनस उसी वर्ष में वेतन में सम्मिलित होगा जबकि इसे प्राप्त किया जाता है।

**3. कमीशन, फीस, अन्तरिम राहत :–**

कर्मचारी को प्रदान किया जाने वाला कमीशन, चाहे निश्चित राशि हो अथवा वेतन का प्रतिशत, वेतन में सम्मिलित किया जाता ळै। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार की अन्तरिम राहत अथवा फीस आदि प्राप्त होने पर उसे भी वेतन का ही अंग माना जाता है।

**4. अधिसमय भुगतान (ओवर टाइम) :–**

कर्मचारी द्वारा निर्धारित समय से अधिक कार्य किये जाने के फलस्वरूप प्राप्त भुगतान को अधिसमय अथवा समयोपरि भुगतान कहा जाता है। यह रकम वेतन के साथ करयोग्य होती है।

**5. अग्रिम वेतन :–**

यदि कर्मचारी न अपने नियोक्ता से आगामी महीनों का वेतन अग्रिम स्वरूप प्राप्त किया है तो उक्त माह अगले कर निर्धारण वर्ष में होने पर भी आय उसी कर निर्धारण वष्र की मानी जायेगी जिसमें उसे प्राप्त किया गया है।

**6. बकाया वेतनः–**

यदि कर्मचारी को गतवर्ष का अवशिष्ट वेतन वर्तमान वर्ष में प्राप्त होता है तथा उस रकम पर तत्सयम कर नहीं चुकाया गया है तो उसे वर्तमान कर निर्धारण वर्ष की आय में सम्मिलित किया जाता है।

**7. प्रमाणित भविष्य निधि खाते में वार्षिक वृद्धि :–**

यदि नियोक्ता प्रमाणित भविष्य निधि का सदस्य है तथा नियोक्ता द्वारा उसमें वेतन के 12 प्रतिशत से अधिक अंशदान किया जाता है तो आधिक्त की राशि को वेतन में जोड़ा जायेगा। इसी प्रकार , यदि उक्त भविष्य निधि में ब्याज 9.5 प्रतिशत से अधिक प्राप्त होता है तो अतिरक्त ब्याज की राशि भी वेतन का भाग बनेगी।

**8. वार्षिकी (एन्युटी) :–**

यदि कर्मचारी को अपने नियोक्ता से वार्षिकी के रूपमें धनराशि हो रही है तो वह वेतन में शामिल होगी किन्तु यदि वह वार्षिकी कर्मचारी को अपने पूर्व नियोक्ता से प्राप्त हुई ता इस वेतन शीर्षक के अन्तर्गत ही वेतन के स्थान पर लाभ उपशीर्षक में रखा जाता है।

**9. अनुग्रह राशि (ग्रच्युटी) :–**

कर्मचारी को उसके सेवाकाल में की गई सेवा के प्रतिफलस्वरूप अनुग्रह राशि का भुगतान उसके अवकाश ग्रहण अथवा मृत्यु की दशा में भुगतान की जाती है। यह राशि जब कर्मचारी स्वयं प्राप्त करता है तो वेतन शीर्षक में सम्मिलित की जाती है। किन्तु यदि मृत्यु की दशा में इसे कर्मचारी के उत्तराधिकारी द्वारा प्राप्त किया जाता है तो यह अन्य साधनें से आय मानी जाती है। इस पर भी कर से छूट विद्यमान है जिसका अध्ययन इसी अध्याय में आगे किया जायेगा।

**10. अवकाश नकदीकरण :–**

कर्मचारी को उन्हें देय आवकाश का उपभोग न करने की दशा में नियोक्ता से धन प्राप्त होने को अवकाश नकदीकरण कहा जात है। इस धनराश्ज्ञि को वेतन में सम्मिलत किया जाता है। आयकर निर्धारिण के लिए इसमें छूठ भी प्रदान की जाती है।

**11. भविष्य निधि के हस्तांतरित शेष का कर योग्य अंश :–**

जब कर्मचारी अपने अप्रमाणित भविष्य निधि के शेष को प्रमाणित भविष्य निधि में हस्तांतरित करा लेता है तो अप्रमाणित भविष्य निधि खाते का शेश हस्तांतरित शेष कहलाता है। हस्तांतरित शेष का करयोग्य भाग वेतन में सम्मिलित किया जाता है।

**12. अनुसूचित पेंश्ज्ञन योजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त अंशदानः–**

केन्द्र सरकार द्वारा धारा 80 सीसीडी के अन्तर्गत गत वर्ष में अनुसूचित पेंशन योजना के अन्तर्गत कर्मचारी के खाते मे दिया गया अंशदान वेतन में सम्मिलित किया जाता है।

**13. पेंशन :–**

कर्मचारी के अवकाश ग्रहण की दशा में उसे प्रतिमाह प्रापत होने वाली राशि अनुवृत्ति कहलाती हे। यह राशि वेतन में सम्मिलित होती है। कर्मचारी की मृत्यु की दशा में परिवार को प्राप्त होने वाली पेंशन अन्य साधनों की आय शीर्षक में करयोग्य होगी।

**14. छंटनी की दशा में कर्मचारी को प्राप्त क्षतिपूर्ति की राशि :–**

व्यापार बन्द होने अथवा अन्य दश में कर्मचारी को छंटनी कर दिये जाने के कारण उसे प्राप्त होने वाली क्षतिपूर्ति की करयोग्य राशि वेतन मद में प्रदर्शित की जाती हे।

**15. स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति पर प्राप्त राशि :–**

कर्मचारी द्वारा स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण करने पर उसे प्राप्त होने वाली एकमुश्त राशि को कतिपय शर्त पूरी होने पर कर से छूट प्राप्त है। इसकी करयोग्य राशि को वेतन में सम्मिलत किया जाता है।

## 1.7 कर मुक्त आय तथा अन्य छूट :–

1. कृषि आय अधिनियम की  धारा 10 उपधारा 01
2. हिन्दु अविभाजित परिवार प्राप्त आय की धारा 10 उपधारा 02
3. साझेदारी फर्म की आय में उसके साझेदार को प्राप्त अंश की धारा धारा 10 उपधारा 2(ए)

4. स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र में स्थापित नये उद्योगों के लाभ की धारा धारा 10 (ए)
5. विशेष आर्थिक क्षेत्र में स्थापित लाभ की धारा 10 (एए)
6. मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण पर प्राप्त ग्रेजुएटी की धारा 10.10, एक मुश्त पेशन की धारा 10.10 ए, अर्जित अवकाश का नकद भुगतान धारा 10.10 एए, छंटनी के कारण क्षतिपूर्ति धारा 10.10 बी, ऐच्छिक अवकाश पर प्राप्त राशि धारा 10.100.सी , वैधानिक भविष्य निधि से प्राप्त राशि धरा 10.11 , प्रमाणित भविष्य निधि से प्राप्त राशि धारा 10. 12, अनुमोदित सेवा निवृत्ति कोष से प्राप्त राशि धारा 10.13
7. भोपाल गैस रिसाव त्रासदी के पीड़ितों को भुगतान धारा 10 (10बीबी)
8. जीवन बीमा योजना से प्राप्त रकम धारा 10 (10डी)
9. सार्वजनिक भविष्य निधि खाते से प्राप्त धन धारा 10 (11)
10. विशिष्ट विनियोगों पर प्राप्त ब्याज, बोनस, प्रीमियम की धनराशि धारा 10 (11)
11. मकान किराया भत्ता धारा 10 (13ए)
12. कर्तव्य पालन में हुए व्ययों की पूर्ति सम्बन्धी भत्ते धारा 10 (14) (आई)
13. छात्रवृत्तियाँ धारा 10 (16)
14. स्ंसद व विधान सभा सदस्यों के भत्ते धारा 10 (17)
15. पुरस्कार धारा 10 (17 ए )
16. वीरता चक्र धारकों को पेंशन धारा 10 (18)
17. सशस्त्र सेना के परिवारों को परिवार पेंशन धारा 10 (19)
18. अनुसचित जनजातियों की आय धारा 10 (26)
19. चाय बोर्ड से प्राप्त अनुदान धारा 10 (30)
20. पौधों को लगाने सम्बन्धी अनुदान धारा 10 (31)
21. अवयस्क बच्चे की आय धारा 10 (32)
22. यू0एस0 64 की इकाइयों के हस्तान्तरण पर पूँजी लाभ धारा 10 (33)
23. घरेलू कम्पनी से प्राप्त लाभांश की आय धारा 10 (34)
24. पारम्परिक कोषों की आय धारा 10 (35)
25. कृषि भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण पर प्रप्त क्षतिपूर्ति पर पूँजी लाभ धारा 10 (37)
26. अंश अथवा इकाइयों पर प्राप्त दीर्घकालीन पूँजी लाभ धारा 10 (38)
27. विद्युत उत्पादन व वितरण के क्षेत्र सहायक कम्पनी द्वारा अपनी सूत्रधारी कम्पनी से प्राप्त अनुदान धारा 10 (40)
28. विद्युत उत्पादन व वितरण के क्षेत्र में संलग्न कम्पनी पूँजी लाभ धारा 10 (41)
29. निर्धारित निकायों तथा अधिकारियों की विशिष्ट आय धारा 10 (42)
30. प्रतिवर्ती बन्धक योजनान्तर्गत प्राप्त ऋण की राश्ज्ञि धारा 10 (43)
31. नई पेंशन योजना के अन्तर्गत प्राप्त धनराशि धारा 10 (44)
32. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों द्वारा प्राप्त किसे जाने वाले भत्ते व अनुलाभ धारा 10 (45)
33. अधिसूचित निकाय, प्राधिकारी, प्रन्यास अथवा परिषद की विशिष्टि आय धारा 10 (46)

### 1.8 संस्थाओं तथा कोषों की कर मुक्त आय :–

1. स्थानीय निकायों की आय धारा 10 (20)
2. वैज्ञानिक शोध संघों की आय धारा 10 (21)
3. समाचार ऐजेन्सी की आय धारा 10 (22 बी)
4. विशिष्ट पेशेवर संस्थाओं की आय धारा 10 (23ए)
5. सशस्त्र सेनाओं के रेजीमेन्ट फण्ड की आय धारा 10 (23एए)
6. कर्मचारी कल्याण कोष की आय धारा 10 (23 एएए)
7. जीवन बीमा निगम के फण्ड से आय धारा 10 (23एएबी)
8. खादी एवं ग्रामोद्योग संगठन की आय धारा 10 (एएबी)
9. समाजिक धार्मिक संस्थाओं की प्रशासक वैधानिक सत्ता की आय धारा 10 (23 बीबीए)
10. यूरोपीय आर्थिक समुदाय की आय धारा 10 (23बीबीबी)
11. दक्षेस निधि की आय धारा 10 (23बीबीसी)
12. राष्ट्रीय कोषों की आय धारा 10 (23सी)
13. पारस्परिक कोषों (म्युचुअल फण्ड) की आय धारा 10 (23डी)
14. विनियोगकर्ता संरक्षा कोष की आय धारा 10 (23ईए)
15. वेंचर कैपिटल फण्ड तथा वेंचर कैपिटल कम्पनी की आय धारा 10 (23एफबी)
16. श्रम संघो की आय धारा 10 (24)
17. भविष्य निधियों की आय धारा 10 (25)
18. भूतपूर्व सैनिक निगम की आय धारा 10 (26बीबीबी)
19. सहकारी समितियों की आय धारा 10 (27)
20. परिषदों की आय धारा 10 (29ए)
21. श्राजनीतिक पाटियों की आय धारा 13 (ए)
22. चुनाव न्यास को प्राप्त स्वैच्छिक चन्दे की आय धारा 13 (बी)

### 1.9 करदाता के प्रकार :–

1. एक व्यक्ति
2. हिन्दू अविभाजित परिवार
3. फर्म
4. व्यक्तियों का समूह
5. कम्पनी
6. स्थानीय सत्ता
7. कृत्रिम न्यायिक व्यक्ति

### 1.10 व्यक्ति के आय के साधन :–

एक व्यक्ति की आय के बहुत सारे स्त्रोत हो सकते है। यह स्त्रोत भारत में या भारत के बाहर भी हो सकते है। प्रश्न यह है कि क्या समस्त स्त्रोतों से (भारत तथा भारत के बाहर दोनों)

पर कर देयता भारत में होगी या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है। कि उसकी निवासीय स्थिति क्या होगी।

अतः सर्वप्रथम एक व्यक्ति की निवासीय स्थिति की गणना करेंगे। एक व्यक्ति साधारण निवासी, असाधारण निवासी या अनिवासी हो सकता है। साधारण निवासी को भारत में प्राप्त, अर्जित एवं भारत के बाहर से प्राप्त एवं अजित आय सभी पर कर देना होता है। एक असाधारण निवासी को भारत में प्राप्त एवं अर्जित सभी आयों एवं भारत के बाहर व्यापार एवं पेशा से ऐसी आय जिसका भारत से नियंत्रण होता है, पर आयकर देना होगा। एक अनिवासी को केवल भारत में प्राप्त एवं भारत से उपार्जित आय पर कर देना होगा।

**1.11 व्यक्ति की कुल आय की गणना :–**

अतः इसके निवास सीान के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि उसकी किन स्त्रोतों पर भारत में कर लगेगा। इससे पश्चात् उनको शीर्षकों में बांटा जाता है। अर्थात् आयकर अधिनियम के अनुसार, पांच शीर्षकों में बांटा जाता है। उन पांच शीर्षकों की करयोग्य आय की गणना करने पर सकल कुल आय प्रप्त होगी। इन आय में अन्य मानी गयी आय एवं अन्य व्यक्तियों के वह आय, जिनको करदाता, की आय में जोड़ना अनिवार्य है, को भी सम्मलित यिका जाता है। इसके बाद स्त्रोंतो एवं शीर्षकों की हानि, अशोधित हास, अशोधित दरें आदि भी घटाते है। इसके बाद का योग सकल कुल आय कहलाता हे। यदि करदाता की ऐसी उपरोक्त वर्णित आय नहीं है तो केवल पांच शीर्षकों की करयोग्य आय का जोड़ ही सकल कुल आय कहलाएगा। इस सकल कुल आय कहलाएगा। इस सकल कुल आय से धारा 80 सी से 80 यू तक की कटौतियां घटाएंगे। इसके बाद जो शेष बचता है वह कुल आय कहलाता है।

**1.12 व्यक्ति की कुल आय गणना :–**

1. प्रत्येक शीर्षक की कर योग्य आय की गणना करना।
2. मानी गई आयों को जोड़ना।
3. व्यापारिक संस्थानों आदि की सदस्यता आय को जोड़ना।
4. आयकर गणना हेतू कुछ आयों को जोड़ना । उदाहरण के लिए कृषि आय को जोड़ना।
5. पिछली हानियों को पूरित करना।
6. धारा 80 सी से 80 यू की कटोतियों को घटाना।
7. कुल आय को पूर्णांकित करना।
8. कुल आय पर कर की गणना करना।

1.13 सारांश (Summary):-

आय के पांच शीर्षकों की करयोग्य आय की गणना सम्बन्धित प्रावधानों से करेंगे। उन पांच शीर्षकों की करयोग्य आय की गणना करने पर सकल कुल आय प्राप्त होगी। इन आय में अन्य मानी गयी आय एवं अन्य व्यक्तियों के वह आय जिनको करदाता, की आय में जोड़ना अनिवार्य है, को भी सम्मिलित किया जाता है। धारा 80 सी से 80 यू की कटौतियां भी दी जाएंगी। कुल आय की गणना की जाएगी। कुल करयोग्य आय को रू0 10 के गुणन में पूर्णांकित करना है। आयकर

अधिनियम 1961 के अन्तर्गत जिन आयों को कर की गणना करते समय सम्मिलित नहीं किया जाता है, उन्हें करमुक्त आयें कहते हे। इन आयों पर कर नहीं लगता है अतः इन्हें कर से छूट भी कहते हे। आयकर अधिनियम की धारा 10 की विभिन्न उपधाराओं के अन्तर्गत इनक र मुक्त आयों का वर्णन किया गया है। इस करमुक्त आयों में से कुछ आय सभी करदाताओं के लिए करमुक्त होती है तो कुछ को विशिष्ट संस्थाओं व कोषों के लिए करमुक्त किया गया है। अनिवासी व गैर नागरिक करदाताओं के लिए भी कुछ आयों को करमुक्त श्रेणी में रखा गया है। वेतन से आय शीर्षक के अन्तर्गत किसी कर्मचारी को उसके द्वारा प्रदत्त सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप उसके नियोक्ता से प्राप्त समस्त भुगतानों को सम्मिलित किया जाता हैं सेवा स्थाई हो अथवा अस्थाई, नियमित हो अथवा अनियमित सभी को प्राप्तियों को आयकर की गणना के लिए आय माना जाता है। यहां तक कि सेवा निवृत्ति अथवा पदच्युति के ाबद प्राप्त होने वाले भुगतानों को भी करणगना में वेतन स आय शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। कर के अन्तर्गत वतन, भत्ते, अनुलाभ, वेतन के स्थान पर लाभ आदि को सम्मिलित किया जाता है।

## शब्दावली (Keywords):-

कृषि आय, करमुक्त आय, पारस्परिक कोष, साहसिक पूँजी कम्पनी , भविष्य निधि , वेतन, भत्ता, अनुलाभ, वेतन के सीान पर लाभ, सकल वेतन, वेतन शीर्षक की कटौती, अनुवृत्ति पेंशन, परिवार अनुवृत्ति, अनुग्रह राशि, अवकाश्ज्ञ नकदीकरण, विशिष्ट कर्मचारी, सेवा निवृत्ति, पदच्यृति, कटौती, करदेयता, उपकर, समायोजन।

## सन्दर्भित ग्रन्थ सूची :–


1. Singhania : Direct Taxex, Taxman, New Delhi. (2019)
2. महरोत्रा एच0सी0 एवं जोशी सी0वी0एस0 : आय कर–कर निर्धारण वर्ष 2019–20, साहत्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा (2019)।
3. आयकर डॉ0 एच0सी0 मेहरोत्रा, साहित्य भवन , आगरा।
4. आयकर नियोजन एवं प्रबन्धन, डॉ0 आर0 के0 जैन , एस0बी0पी0डी पब्लिशर्स, आगरा।
5. Income tax VK Singhania, Taxmann, New Delhi.
6. आयकर डॉ0 पी0के0 जैन , आर0 के0 त्यागी, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाऊस, आगरा।


## प्रश्न उत्तर (Question and Answer):-

1. वेतन शीर्ष की आय की गणना करने की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।
2. नियोक्ता द्वारा प्रदान किये जाने वाले विभिन्न भत्तों के सम्बन्ध में कर्मचारियों की करदेयता का वर्णन कीजिए।
3. किसी कर्मचारी को सेवानिवृत्ति पर कौन से भुगतान प्राप्त होते है? इनकी करदेयता को समझाइए।
4. करमुक्त आय से क्या आशय है? ऐसी दस आयों का उल्लेख कीजिए जिन्हें आयकर अधिनियम 1961 के अन्तर्गत करमुक्त किया गया है।

5. आयकर अधिनियम के अन्तर्गत पूर्णतः करमुक्त तथा अंशतः करमुक्त आयों को समझाइए। पूर्णतः करमुक्त तथा अंशतः करमुक्त आयों के पांच–पांच उदाहरण दीजिए।
6. आयकर अधिनियम के अन्तर्गत विशिष्ट संस्थाओं व कोषों की आयों को करमुक्त किये जाने सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

## खण्ड – 04

## इकाई –04

## निजी आयकर : दर का ढांचा वर्द्धमानता

# Income tax : Rate of Incremental Structure

**1.0 परिचय :–**

भारत में आय–कर का प्रारम्भ 1860 से हुआ है। इस दृष्टि से यह कर अति प्राचीन है। 1860 में सर जेम्स के द्वारा इस कर को लागू किया गया था। 1935 में सर ओटो, नीमेयर की सिफारिशों पर आय–कर की प्राप्तियों का 50 प्रतिशत भाग प्रान्तों को दिया जाता था। 1950 में श्री.सी.डी. देशमुख द्वारा राज्यों के इन हिसों में मामूली सा हेर–फेर इसलिए किया गया कि देश विभाजन के कारण प्रान्तों के आकार तथा उनकीं आवश्यकताओं में भी परिवर्तन हो गये थे। 1951 के बवत्त आयोग ने यह सिफारिश की एक आय कर की प्राप्तियों का 55 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए। आयोग ने 'ब' भाग के राज्यों को दिया जाना चाहिए। आयोग ने 'ब' भाग के राज्यों सहित विभिन्न राज्यों क हिसों का भी निर्धारण कर दिया। आय कर के बंटवारे के बारे में समय–समय पर कठित वित्त आयोगों ने अनेक सुझाव दिये। आठवें वित्त आयोग ने आय कर के वितरण के बारे में सुझाव दिया कि आय कर की कुल प्राप्ति का 85 प्रतिशत भाग राज्यों में बांट दिया जाय और वितरण का आधार 90 प्रतिशत जनसंख्या व 10 प्रतिशत कर संग्रह हो। 1936 में आय कर जांच समिति ने इस कर के बारे मे महत्वपूर्ण सुझााव दिया। समिति ने बताया कि 'सोपान पद्धति' के स्थान पर 'शिल्प पद्धति' को लागू करना चाहिए। था सरकार ने समिति के इस सुझाव को मान लिया, जो 'आय कर अधिनियम, 1939' के नाम से जाना जाता है। इस अधिक की आय पर क्रमवर्धी दरों से कर अदा करना पड़ता था। 30,000 रूप्ये से ऊपर की आय पर क्रमवर्धी दरों से अतिरिक्त कर अदा करना था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आय–कर मे फिर परिवर्तन किया जाने लगा। आय कर पर अधिभार भी इसी समय प्रथम बार लगाया गया। इसके अतिरक, कर माफियां, निगमों पर लगाये जाने वाले करों की दरों में वृद्धि, अतिरिक्त लाभ कर, आदि की भी व्यवस्था की गयी थी। बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए 'अनिवार्य बचत योजना' को कुछ शर्तो के साथ्ज्ञ आय– कर सम्बद्ध कर दिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद फिर से आय कर में परिवर्तन किया गया। इसमें अब छूटें भी दी जाने लगी। अतिरिक्त लाभ कर को समाप्त कर दिया गया। कुछ शिलाओं में आय कर की

दरों में कमी कर दी गयी। अर्जित आयों पर छूट की दर ऊँची कर दी गयी। कर माफी की छूट भी दी जाने लगी। 1947 में भारत के वित्त मन्त्री लियाकत अली खां द्वारा 'व्यवसाय लाभ कर' लागू यिा गया था, परन्तु इस कर के बारे में यह कहकर कि इससे विनियोग पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, इसे तुरन्त समाप्त कर दिया गया।

### 1.1 उद्देश्य (Object):-

1. अनार्जित आय
2. न्यायोचित वितरण
3. आय का साधन

**1.2 आयकर की विशेषताएँ :–** आय–कर की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है–

1. प्रत्यक्ष करः– ऐसा कर जिस करदाता पर लगाया जाता है वही उसका भुगतान करता है। ऐसे कर का दायित्व करदाता किसी अन्य को हस्तान्तरित नहीं कर सकता।
2. केन्द्रीय सर :– केन्द्रीय सरकार द्वारा आयकर लगाये जाने के कारण इस कर को केन्द्रीय कर भी कहते हे।
3. प्रत्येक करदाता द्वारा भुगतान करना :– व्यक्ति, फर्म, कम्पनी, हिन्दू अविभाजित परिवार द्वारा आयकर का भुगतान किया जाता है। सभी करदाताओं को उन पर लागू दरों व विभिन्न खण्डों को आधर पर आयकर का भुगतान करना होता है।
4. कर मुक्त सीमाएं :– सभी करदाताओं के आयकर अधिनियम द्वारा उनकी कर मुक्त सीमा का उल्लेख रहात है। जैसे–कर निर्धारण वर्ष 2021–22 के लिए 60 वर्ष से कम आयु की महिला एवं पुरूष तथा हिन्दू अविभाजित परिवार क लिए कर मुक्त सीमा 2,50,000 है। 60 वर्ष या इससे अधिक किन्तु 80 वर्ष से कम वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह सीमा 3,00,000 तथा 80 वप्र या इससे अधिक अति वरिष्ट्र नागरिकों के लिए यह सीमा 5,00,000 है।
5. गत वर्ष की करयोगय आय पर आयकर लगाना :– करदाता की गत वर्ष की आय पर आयकर लगाया जाता है। गत वर्ष वह वित्तीय वर्ष होता है जो कर निर्धारण वर्ष से पिछले वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होकर चालू वर्ष के 31 मार्च को समाप्त हो गया हो। कर निर्धारण वर्ष 2021–22 के लिए गत वर्ष की अवधि 1 अप्रैल, 2020 से 31 मार्च, 2021 है।
6. विभिन्न खण्डों एवे निश्चित दरों से आयकर की गणना :– आयकर की गणना विभिन्न खण्डों के आधार पर निश्चित दरों से वित्तीय वर्ष में अर्जित आय पर की जाती है। ऐसी दरेँ प्रत्येक वित्तीय वप्र में वित्त अधिनियम द्वारा संशोधित होती रहती हे।

7. चालू कर निर्धारण वर्ष में आय कर का भुगतान :– आयकर का भुगतान प्रत्येक चालू कर निर्धारण वर्ष में ही किया जाता है जैसे– 31 मार्च, 2021 समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष के आयकर का भुगतान कर निर्धारण वर्ष 2021–22 के अन्तर्गत यिा जायेगा।
8. आय को विभिन्न खण्डों में बांटना :– आयकर लगाते समय आय को विभिन्न खण्डों में बांट दिया जाता है तथा उसके बाद उस आय पर कर लगाया जाता है।

**1.3 आयकर की दर की संरचना :–**

आयकर की दर की संरचना के सन्दर्भ में द्म प्रमुख प्रश्न उठते है। एक का सम्बन्ध कर भुगतान करने वाली इकाई का निर्धारण से है और दूसरे का दर के निर्धारण से।

**कर भुगतान करने वाली :–**

सर्वाधिक तर्कसंगत इकाई परिवार है क्योंकि यही आय उर्पाजन तथा आय खर्च करने वाली इकाइ है। यह सही है कि अधिकांश परिवारों में पत्नी और बच्चे उपार्जन नहीं करत, किन्तु उनहें अलग इकाई मानने से आय अर्जित करने वाले व्यक्ति को नुकसान होगा क्योंकि यह कर में दी गई अनेक छूट तथा कटौतियों से वंचित रह जाएगा। फलतः उसकी व्यय योग्य आय घट जाएगी।

पति एवं पत्नी की आय दूसरी समस्या है। प्रश्न यह है क इनकी आय को संयुक्त रूप से देखा जाए, या पृथक–पृथक । अमरीका में उन्हें संयुक्त रूप स देखा जाता है, किन्तु कर लगात समय दोनों की आय को दो बराबर हिस्सों में विभाजित कर दिया जाता है। इंगलैण्ड में पति एवं पत्नी की आय पर सम्मिलित रूप से आयकर लगाया जाता है और अदा करन की जिम्मेदारी पति की होती है। 1983–85 के सुधार के अनुसार कुंआरा व्यक्ति केवल अपना रिटर्न भरता है तथा वह अकेले व्यक्ति को मिलने वाली छूट का भागीदार होता है। शादी के बाद संयुक्त रिटर्न भर कर शादीशुदा व्यक्तियों की छूट प्राप्त करता है। तीसरा विकल्प यह है कि पति तथा पत्नी को यह छूट दी जाए कि वे चाहे तो संयुक्त रिटर्न दें या पृथक – पृथक।

परिवार में पति एवं पत्नी के अतिरिकत भाई, वहिन, पुत्र एवं पुत्रियां भी रहती है और वे भी पर्याप्त आय अर्जित कर सकते है। ऐसी परिस्थिति में आम प्रथा यह है कि आश्रित प्रमाणपत्र के आधार पर उनकी आय को कुछ सीमा तक छूट मिलती है। आश्रित प्रमाण पत्र की अनुपस्थिति में उनकी आय पर स्वतन्त्र रूप से कर लगाया जाता है। फ्रांस की प्रथा यह कि सभी आय को जोड़कर सभी सदस्यों के मध्य बराबर बांट दिया जाता है।

**दर की संरचना :–**

सभी देश मे आयकर की दरों की प्रगतिशील संरचना पायी जाती है, यद्यपि प्रगतिशीलता दर तथा गति अलग अलग होती है। अमरीका के कुछ राज्यों में सभी कर योग्य अय पर कर एक ही दर से लगाया जाता है, अर्थात दर आनुपातिक होती है।

प्रगतिशील दर की चर्चा करते समय 1980 के आस पास विकसित एक विचारधारा की चर्चा करना उचित होगा। आय कर की दर की संरचना प्रगतिशील होती है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कर की सीमान्त दर कितनी ऊंची होनी चाहिए। आर्थर लफेर का कहना कि कि कर की सीमान्त दर एक सीमा से ज्यादा हो जाती है तो आयकर राजस्व घटने लगता है। जब कर की सीमान्त दर 100 प्रतिशत हो जाती है तब उस स्थिति में भी कर राजस्व शून्य हो जाता है क्योकिं इस स्थिति में कोई व्यक्ति कुछ भी श्रम नहीं करेगा। ज्यों–ज्यों कर की दर शून्य से अधिक होने लगती है, कर ाजस्व में वृद्धि होती है और जब यह दर 50 प्रतिशत हो जाती है, कर राजस्व अधिकतम रहता है। इस सीमा के बाद कर की सीमान्त दर के बढ़ने पर कुल कर राजस्व घटने लगता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या लफेर वक्र वास्तविक है। 1982 में हॉन मफल्रस्टन ने इस प्रश्न की जांच अमरीकी आयकर के सन्दर्भ में की। उस जांच के आधार पर उसने जो लफेर वक्र खींचा वह चित्र 19.2 में चित्रित किया गया है। श्रम से प्रज्ञत आय पर आयकर की विभिन्न सीमान्त दर के प्रभाव की इस चित्र में दिखाया गया है। चित्र में ब बिन्दु कर की वर्तमान दर को बताया है। चित्र से स्पष्ट हे कि कर की सीमान्त दर में c बिन्दु के बाद वृद्धि होने पर कुल कतब तक जारी रजती है जब तक सीमान्त दर 70 से 80 प्रतिशत के मध्य न पहुं जाती है। उसके बाद दर में वृद्धि होने पर राजस्व घटने लगता है। 1985–86 में भारत में केन्द्रीय सरकार के बजट में आयकर की दर को  इस उम्मीद से घटा दिया था कि कुल आय का राजस्व बढ़ेगा, किन्तु यह आशा पूरी नहीं हो सकी। अतः लफेर वक्र की तर्कसंगति पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

हाल के वर्षों में विकसित एवं विकाशील देशों में कर सुधार बड़े पेमाने पर हुए है। विकसत देशें में सर्वाधिक परिवतन अमरीका में 1986 में हुआ । अमरीका तथा अन्य विकसित देशों में कर में महत्वपूर्ण सुधारों का कारण मुख्य रूप से यह प्रत्यक्ष ज्ञान था कि प्रचलित कर व्यवस्था अनुचित अनावश्य रूप से जटिल तथा आथ्रिक कार्यकुशलता को नुकसान पहुंचान वाली है। अनेक छूटों के साा लागू प्रगतिशील आयकर से केवल धनी करदाता को ही लाभ पहुंचता है। यह अनुचित है। आयकर की ऊंची दरों से विनियोग तथा व्यावसायिक प्रेरणाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलतः अमरीका में उच्चतम सीमान्त दर को 50 प्रतिशत से घटाकर 28 प्रतिशत कर बदया गया तथा कर

कोष्ठ को 15 से घटाकर सिफ 2 कर दिया गया। अन्य विकसित देशों में भी ऐसे परिवर्तन किए गए। आस्ट्रेलिया तथा जापान में क्रमशः 13 तथा 20 प्रतिशत बिन्दुओं तक आयकर की दर को घटाया गया जबकि अन्य देशों में 2 से 18 प्रतिशत बिन्दुओं तक।

**आयकर के प्रकार :–**

आयकर आंशिक से हो सकते है या सर्वव्यापी। आंशिक आयकर की सिति में व्यक्तिगत छूट की न्यूनतम सीमा औसत आय की तुलना में इतनी ऊंची होती है कि केवल अल्पसंख्य परिवार ही कर का भुगतान करते है। वस्तुतः यह सम्पत्ति से प्राप्त आय पर ही कर रह जाता है और अधिकांश मजदूरी तथा वेतन पाने वाले कर से मुक्त हो जाते है। ऐसा आयकर वर्ग आयकर कहलाता है।

आयकर व्यवस्था तीन प्रकार की हो सकती है, यथा : विश्वव्यापी या एकात्मक सूची विष्यक तथा मिश्रित शुद्ध एकात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी स्त्रोतों से प्राप्त आय को एक साथ जोड़ दिया जाता है। इस कुल योग से छूट तथा कटौतियों को घटाने के बाद बची कर योग्य आय पर एक ही दर से क्रमबद्ध दर पर लगाया जाता है। शुद्ध सूची विषयम व्यवस्था के अर्न्तत और मजदूरी, लाभांश, लगान, व्यवसायिक लाभ, आदि आय के प्रत्येक महत्वपूर्ण स्त्रोत पर पृथक कर लिया जाता हे। मिश्रित व्यवस्था में विश्वव्यापी एवं सूची विषयक दोनों ही के कुछ तत्वों को शामिल किया जाता है।

सर्वव्यापी आयकर व्यवहार में गैर–सूची विषयक होता है, यद्यपि सिद्धान्त में सूची विषयक, किन्तु ब्रिटिश आयकर सूची विषयक है क्योंकि अर्जित आय पर कर की दर अनाजिर्त आय की तुलना में निम्न है।

**स्त्रोत सिद्धान्त और निवास सिद्धान्त :–**

आयकर देश में सृजित आय पर लगाया जा सकता है। इसे कर का स्त्रोत सिद्धान्त कहा जाता है यदि यह कर देश के निवासियों पर लगाया जाए तो इसे निवास सिद्धान्त कहा जता है। इसमें निवासियों द्वारा अर्जित आय की शामिल किया जाता है। स्त्रोत सिऋद्धान्त का उपयोग अब कम होता जा रहा है। निवा सिद्धान्त के अन्तर्गत देश के अन्दर विदेशियों को मिलने वाली भी आयकर की जाल के अन्दर आ जाती है। गूड का कहना है निवास सिद्धान्त को 'विश्वव्यापी सिद्धान्त' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

**अल्पविकसित देशों के आयकर :–**

1. प्रमुख रूप से मौद्रिक अर्थव्यवसाि का होना आवश्यक है। जीवन निर्वाह किसानों पर आयकर नहीं लगाया जा सकता । इसका कारण यह नही है क ऐसे किसानों के पास नकद मुद्रा नहीं, बल्कि यह है कि उनकी वास्तविक आय के बड़े हिस्से का सन्तोषजनक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अत्यधिक कुशल प्रशासकों के लिए भी ऐसा समीव नहीं हो कसत है।
2. दूसरी शर्त अनिवार्य नहीं है, कन्तु आयकर की सफल्ता के लिए काफी मद्दगार है। यह कि करदाताओं का अच्दी तरह शिक्षित होना। निर्धनतम कृषक, अधिकांश मजदूर, स्वतन्त्रत कारीगर तथा छोटे–छोटे दुकानदार इतने भी पढ़े लिखने नहीं होते कि वे आकयर के सरलतम वार्षिक विवरण को भर सके।
3. ईमानदारी के साथ लेखा रखने की विस्तृत प्रथा आयकर की सफलता की एक अन्य शर्त है।
4. स्वेच्छा से करदाता यदि आयकर नियमों कापालन नहीं करेंगे तो इसकी सफलता संदिग्ध हो सकती है।
5. आयकर उस राजनीतिक परिस्थिति में अधिक सफल हो सकता है जहां लोकप्रिय सरकार रहती है। अतः उम्मीद करनी चाहिए कि स्वतन्त्र राजनीतिक प्रजातन्त्र ही इसके लिए अधिक उपयुक्त है।
6. किसी भी कर के लिए ईमानदार एवं कुशल प्रशासन जरूरी है। आयकर के लिए इसका स्तर कुछ अधिक ही ऊंचा होना चाहिए।

जब तक उपरोक्त कठिनाअयें एव कमियों को समाप्त नहीं किया जाता तब तक विकासशील देशों में आयकर को अधिक सफलतामिलने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए, किन्तु भिटो तान्जी का कहना है कि गूड ने आयकर की सफलता के लिए शर्तों की जो लिस्ट प्रस्तुत की है वह अत्यन्त कठोर है वे आदर्श शर्तें है। उनके शब्दों में, '' वे शर्ते इतनी कठोर है कि अत्यधिक आशावादी कर विशेषज्ञ भी राजस्व के लिए आयकर पर सरकार को अधिक निर्भर करने के लिए कहने का साहस नहीं कर पाएंगे। सव्तुतः किसने उसविकाशील देश के विषय में सुना हे जिसमें ये शर्ते पूरी होती हे। या, यो कहं कि किसने किसी भी ऐसे देश के विषय में सुना है जहां इन शर्तों का पालन होता है। जब से गूड ने अपने लेखो में लिखा तब से इन शार्तो का शयद ही कोई महत्वपूर्ण परीक्षाण हुआ है। अनेक अर्थशास्त्रियों ने गूड क`लेख को उद्धत करके तथा उनके नष्कर्षो की दुहरा कर ही सन्तोष किया।'' इस तथ्य को स्वीकार

करना पड़ेगा कि विकसित एवं विकाशील देशों में लोग स्वेच्छा से आयकर क नियमों का पालन नहीं करते है।

**आय – कर की सामान्य दरें :–**

क. प्रत्येक व्यक्ति करदाता (पुरूष एवं महिला) अथवा हिन्दू अविभाजित परिवार अथवा व्यक्तियों का समूह व्यक्तियों की संस्था (सहकारी समिति को छोड़कर) अथवा प्रत्येक कृत्रिम व्यक्ति (व्यक्ति करदाता क लिए गत वर्ष में किसी भी समय जिनकी आयु 60 वर्ष से कम हो)

| | |
|---|---|
| 2,50,000तक | शून्य |
| 2,50,001 से 5,00,000 तक | 5 प्रतिशत |
| 5,00,001 से 10,00,000 तक | 20 प्रतिशत |
| 10,00,000 से अधिक | 30 प्रतिशत |

ख. प्रत्येक वरिष्ठ नागरिकों (पुरूष एवं महिला) (गत वर्ष में सिकी भी समय जिनकी आयु 60 वर्ष या इससे अधिक परन्तु 80 वर्ष से कम हो)

| | |
|---|---|
| 3,00,000तक | शून्य |
| 3,00,001 से 5,00,000 तक | 5 प्रतिशत |
| 5,00,001 से 10,00,000 तक | 20 प्रतिशत |
| 10,00,000 से अधिक | 30 प्रतिशत |

ग. प्रत्येक अति वरिष्ठ नागरिकों (पुरूषों एवं महिला) गत वर्ष में किसी भी समय जिनकी आयु 80 वर्ष या इससे अधिक हो।

| | |
|---|---|
| 50,000तक | शून्य |
| 5,00,001 से 10,00,000 तक | 20 प्रतिशत |
| 10,00,000 से अधिक | 30 प्रतिशत |

नई वैकल्पिक कर व्यवसाी – (धारा 115 बीएसी)

| | |
|---|---|
| 2,50,000तक | शून्य |
| 2,50,001 से 5,00,000 तक | 5 प्रतिशत |
| 5,00,001 से 7,50,000 तक | 10 प्रतिशत |
| 7,50,0001 से 10,00,000 तक | 15 प्रतिशत |
| 10,00,001 से 12,50,000 तक | 20 प्रतिशत |
| 12,50,001, से 15,00,000 तक | 25 प्रतिशत |
| 15,00,000, से अधिक | 30 प्रतिशत |

**अधिभार :–**

1. यदि कुल आय 50 लाख से अधिक किन्तु 1 करोड़ से अधिक नहीं हो तो 10 प्रतिशत
2. यदि कुल आय 1 करोड़ से अधिक किन्तु 2 करोड़ से अधिक नहीं हो तो 15 प्रतिशत
3. यदि कुल आय 2 करोड़ से अधिक किन्तु 5 करोड़ से अधिक नहीं हो तो 25 प्रतिशत
4. यदि कुल आय 5 करोड़ से अधिक हो तो 37 प्रतिशत

**स्वास्थ्य एवं शिक्षा उपकर :–**

स्वास्थ्य एवं शिक्षा उपकर 4 प्रतिशत की दर से लगाया जायेगा। 5 लाख या इससे कम आय वाले निवासी व्यक्तियों को अधिकतम 12,500 की कर छूट यदि करदाता निम्न शर्तो पूरी करता है तो कर की कटौती प्रदान की जायेगी–

1. करदाता निवासी व्यक्ति हो।
2. उसकी कुल आय या करयोग्य आय 5 लाख या इससे कम हो।

पुरूष एवं महिला करदाता, हिन्दू अविभाजित परिवार, व्यक्तियों के समूह, व्यक्तियों का संघ तथा कृत्रिम न्यायिक व्यक्ति के लिए अविभार –

1. कुल आय (लाभांश से आय या धारा 111 ए व 112 ए के अन्तर्गत आय सहित ) 50 लाख से अधिक किन्तु 1 करोड़ तक होने पर 10 प्रतिशत की दर से अधिभर लगाया जायेगा।
2. कुल आय (लाभांश से आय या धारा 111 ए व 112 ए के अन्तर्गत आय सहित) 1 करोड़ से अधिक किन्तु 2 करोड़ तक होने पर अधिभार 15 प्रतिशत लगाया जायेगा।

3. कुल आय (लाभांश से आय या धारा 111 ए व 112 ए के अन्तर्गत आय को छज्ञेड़कर ) 2 करोड़ से अधिक किन्तु 5 करोड़ तक होना पर अधिभर 25 प्रतिशत लगायाजायेगा।
4. कल आय (लाभांश से आय या धारा 111 ए व 112 ए के अन्तर्गत आय को छोड़कर) 5 करोड़ से अधिक होने पर अधिभार 37 प्रतिशत लगाया जायेगा।
5. कुल आय (लाभांश से आय या धारा 111 ए व 112 ए के अन्तर्गत आय सहित) 2 करोड़ से अधिक होने पर अधिभार 15 प्रतिशत की दर से लगाया जायेगा।

## सरांश (Summary):-

1. भारत में आयकर सबसे पहले 1860 में सर जेम्स विल्सन द्वारा लगाया गया।
2. भारत में आयकर अधिनियम 1961 में पास हुआ।
3. आयकर खण्ड प्रणाली के आधार पर लगायाजाता है।
4. पुरूषों / महिलाओं (60 वर्ष से कम) तथा हिन्दू अविभाजित परिवार के लिए 2,50,000 वरिष्ठ नागरिकों को (60 वष्र या इससे अधिक किन्तु 80 वर्ष से कम) के लिए 3, 00,000 तक तथा अति वरिष्ठ नागरिकों (80 वर्ष या अधिक ) के लिए 5,00,000 तक की आय पर आयकर नहीं चुकाया जाएगा।

शब्दावली (key words)

1. आयकर दर की संरचना (Income tax Rate Structure)
2. स्त्रोत सिद्धान्त (Source Principle)
3. निवास सिद्धान्त (Residence Principle)
4. जन कर (mass tax)
5. आयकर वर्ग आयकर (Class incometax)
6. विश्वव्यापी (Global)
7. एकात्मक (Unitary)
8. सूची विषयक (Schedular)
9. कर कोष्ठ (Tax Brackets)
10. अनुचित (Unfair)
11. अनावश्यक रूप से जटिल (Unduly Complex)

## सन्दर्भित सूची (Reference book):-


1. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
2. लोक अर्थशास्त्र डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन्स, आगरा
3. लोक वित्त : एच0एल0 भाटिया, विकास पब्लिसिंग हाऊस प्रा0 लि0 नोयडा भारत।
4. लोक वित्त : डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय, एस0बी0टी0पी0 पब्लिसिंग, हाऊस आगरा।
5. आयकर डॉ0 पी0के0जैन0 , आर0 के0 त्यागी एस बी पी डी पब्लिक हाऊस आगरा।


## प्रश्न उत्तर (Answer the Question ):-

1. आयकर से आप क्या समझते है?
2. आयकर की प्रमुख विशेषताएँ समझाइए।
3. आय कर की संरचना का समझाइए।
4. आयकर की सामन्य दर की विवेचना कीजिए।
5. आयकर की दर की संरचना को समझाइए।
6. स्त्रोत सिद्धान्त एवं निवास को समझाइए।
7. आयकर के प्रकार की विवेचना कीजिए।
8. अल्पविकसित देशों में आयकर की भूमिका की विवेचना कीजिए।

## खण्ड – 04

## इकाई – 05

# निगम आयकर : प्रमुख विशेषताएं , दर का ढांचा

# Corporate Income tax : Key Features, Rate of Structures

परिचय :–

कम्पनियों के लाभ पर लगाए गए आयकर को कम्पनी आयकर या सिर्फ निगम कर कहा जाता है। क्या व्यक्तिगत आय पर लगाए गए आयकर से पृथक निगमों पर कर लगाना उचित है? यह एक विवादास्पद विषय है। मसग्रव एवं मसग्रेव का कहना है कि एक अच्दी कर प्रणाली में निगम कर की भूमिका स्पष्ट नहीं है और इसलिए इसकी जांच सावधानी से की जानी चाहिए। निगम एक ऐसा शब्द है जिसके अन्तर्ग कई प्रकार के व्यावसियाक उद्यम शामिल है और सभी का अपने स्वामियों से भिन्न एक वैधानिक अस्तित्व होता है। इंगलिश अमरीकी परम्परा के अनुसार तीन प्रकार के उद्यमों में अन्तर किय जाता है, यथा, एकांकी उद्यम, साझेदारी उद्यम तथा निगम या कम्पनी। इन तीनों में से केवल तीसरे का पृथक वैज्ञानिक अस्तित्व है। इसका यह अर्थ्ज्ञ कि कम्पनी के कर्ज के लिए इसके स्वामी जिम्मेदार नहीं है दूसरी बात यह है कि ऐसे उद्यम का जीवनकाल अपने की जिन्दगी से स्वतन्त्र होता है। निगम कर के औचित्य अनौचित्य के विषय में दो तरह के तर्क दिए जाते हे। ये है एकीकरणात्मक धारण तथा निरपेक्षवादी धारणा।

### उद्देश्य (Object):-

1. आर्थिक स्थिरता।
2. कर देनदारियों में कमी।
3. उत्पादकता विनिवेश।
4. बचत को बढ़ावा।
5. व्यवसाय की वृद्धि में सुधार।
6. मुकदमेंवाजी को कम करना।

**निगम कर के औचित्य–अनौचित्य पर तर्क :–**

**1. एकीकरणात्मक धारणा :–**

इस धारणा के अनुसार निगम कर केवल एक जरिया है जिसके द्वारा व्यक्गित आयकर में कम्पनियों की सभी प्रकार की आय को शामिल यिका जा सकता है। इस विचार के अन्तर्गत कम्पनी को पृथक कानूनी इकाई नहीं माना जाता । यहां मूलभूत धारणा यह है कि सभी करों का बोझ अन्ततः व्यक्तियों को ही वहन करना होग, चाहे शुरू में ये जिन पर लगाए गए हों। अब यदि यह स्वीकार यिा जाए कि केवल प्राकृतिक व्यक्ति ही कर का भुगतान करते है, तो समनता के सिद्धान्त के अनुसार केवल व्यक्तियों पर ही कर लागू होगा तथा करदान योग्यता की व्याख्या केवल व्यक्तियों के बोझ के रूप में ही होगी। अतः इसका कोई कारण नहीं है कम्पनियों के माध्यक से प्रज्ञपत आय पर अन्य स्त्रोतों से प्राप्त आय की तुलना में अधिक याकम दर पर कर लगानाचाहिए। विभेदात्मक कर से समान आय पर समान कर के सिद्धान्त का उल्लंघ्ज्ञर होता है और कर की वास्तविक प्रगतिशीलता वांछित प्रगतिशीलता से भिन्न हो जाती है। यह भी कहा जाता है कि कम्पनियों पर भरी कर लगाने पर व्यवसाय क कम्पनी रूपका उपयोग कम हो जाएगा। इससे आर्थिक विकास में बाधा पड़ेगी क्योंकि बड़े पैमाने पर व्यवसय के लिए कम्पनियां आवश्यक है।

**2. निरपेक्षतावादी धारणा :–**

यह धारणा कम्पनी को एक इकाई मानी है। ये कम्पनियां आर्थिक एवं सामाजिक निर्णय लेने में शक्तिशाली तत्व है। इनका परिचालन पेशेवर व्यक्तियों के द्वारा होता है जो व्यक्तिगत हिस्सेदारों के नियन्त्रण में नहीं होते है। कम्पनियों के स्वामी हजारों हिस्सेदार होते है जो विशाल क्षेत्र में फैले होते हैं, जबकि उच्च प्रबन्धक तथा कुछ बड़े हिस्सेदान इसका नियन्त्रण करते है। इसलिए निगम कर के प्रति जो प्रतिक्रिया होगी वह व्यक्तिगत आयकर से भिन्न होगी। इसका यह अर्थ है कि पृथक इकाई होने के कारण कम्पनी की पृथक करदान योग्यता है। यह योग्यता व्यक्तियों द्वारा लाभांश पर भुगतान किए गए आयकर से स्वतन्त्र एवं पृथक है। इस विचारधारा के प्रमुख तर्क इस प्रकार हैः

(क) कम्पनियों को सरकार से वांछित सुविधाएं मिलती है ताकि इनका परिचालन हो सके। अराजकता की स्थिति में व्यवसाय फलफूल नहीं सकात। यह तर्क लाभ के

सिद्धान्त पर आधारित है तथा कम्पनी का इसके स्वामी से भिन्न पृथक अस्तित्व होता है। इसके अस्तित्व को सरकार से लाभ मिलता है।

(ख) अपने हिस्सेदारों से स्वतन्त्र कम्पनी की करदान योग्यता होती है।

(ग) सम्पत्ति से प्राप्त अनार्जित आय को सेवाओं से प्राप्त अर्जित आय की तुलना में अधिक कर का भुगतान करना चाहिए।

निगम कर के औचित्य अनौचित्य के सम्बन्ध में एकीकरणात्मक एवं निरपेक्षतवादी धारणाओं पर आधारित तर्कों के अतिरिक्त निम्न अन्य तर्क भी दिए जाते है :

**3. कर भार :–**

पृथक कर के रूप में निगम कर का औचित्य इस मान्यता पर आधारित है कि इस कर का अन्तिम भार हिस्सेदारों पर पड़ता है, लेकिन निगम कर के भार के सम्बन्ध में यह पारम्परिक विचारधारा अब स्वीकार्य नहीं ळै। यदि यह मान लिया जाए कि निगम कर का भार अनिश्चित है, तो इसे नहीं लगाना चाहिए, किन्तु यदि यह मान लिया जजाए कि निगम कर का भार अनिश्चित है, तो इसे नहीं लगाना चाहिए, किन्तु यदि यह मान लिया जए कि इस भार को आगे टाला जाता है तो छिपे रूप में बिक्रकी कर हो जाता है और इसका भार प्रतिगामी होता है।

**4. आर्थिक प्रभाव :–**

निगम कर लगाने के विपक्ष में जो तर्क दिए जाते है उनमें से एक सम्बन्घ इस कर के आर्थिक प्रभाव की विवेचना से है। निगम कर ऐसी कम्पनियों के विरूद्ध भेदभाव बरतता है जिनके वित्त हिस्सा पूंजी से प्राप्त होते है उन कम्पनियों की तुलना में जिनक`वतत ऋण द्वारा बाण्ड बेचकर प्राप्त होते है। गौव्स का कहना है कि बॉण्ड के धारक को एक डॅल्र की जो आय प्राप्त होती है वह पूरी की पूरी उसे मिल जाती है, किन्तु हिस्सेदारों को एक डॉल्र के लाभ से मात्र 60 सेण्ट मिलता है इसका तात्पर्य यह है कि निगम कर ऋण पर आधरित वित्त व्यवस्था की तरफदारी करता है। यह ठीक नहीं है क्योंकि इससे व्यावसायिक अस्थिरता आ सकती है।

**5. सामाजिक नियंन्त्रण :–**

सामाजिक नियन्त्रण के आधार परनिगम कर के पक्ष में तर्क दिया जाता है। निगम कर एकाधिकार को रोकने तथा एकाधिकार शक्ति के आधार पर प्राप्त अनुचित लाभ को अधिकार में करने का एक माध्यम है।

**6. राजकोषीय आवश्यकता :–**

निगम कर के पक्ष मे यह सबसे अधिक शक्तिशाली तर्क है। व्यक्तिगत आय करपर दो सीमाएं है। प्रथम प्रशासनिक सीमा हे। निम्न आय पाने वाले किसानों , पेशेवर व्यक्ति तथा व्यक्तित व्यासायी पर उच्च दर पर आयकर लगाना सम्भव नहीं है। दूसरी सीमा राजनीतिक है। राजनीतिक दृष्टिकोण से यह सम्भव नहीं है। कि सरकार की राजस्व सम्बन्धी सभी आवश्यकता आयकर से पूरी हो जाएगी। अतः निगम कर आयकर के पूरक के रूप में लगाना आवश्यक है।

**निगम कर की कुछ समस्याएं :–**

1. लाभांश :–

कम्पनी कई प्रकार के लाभांश की घोषणा करती है जिन्हे हिस्सेदार प्राप्त करते है। नकद लाभांश का भुगतान शेय या स्टॉक के रूप में भी होता है। एक कम्पनी के स्टॉक के रूप में लाभंश का भुगतान कर सकती है। नकद लाभांश पर सामान्यतः व्यक्ति आयकर लगााया जाता है, जबकि कम्पनी की आय पर निगम कर, किन्तु कम्पनी आय पर कर लगाने के वैकल्पिक तरीके भी है। निम्न चार विधियों की चर्चा की जा सकती है :

(क) कम्पनी लाभ तथा लाभांश दोनों पर ही निगम कर लगायाजा सकता है। दुहरा करारोपण कह कर इसकी आलोचना की जाती है।

(ख) केवल लाभांश पर कर लगाया जा सकता है। यह कम्पनी का सेविग्सं बैंक की तरह उपयोग है।

(ग) केवल कम्पनी लाभ पर कर लगाया जा सकता है। इस विधि में बड़ी और छोटी कम्पनियों में कोई अन्तर नहीं किया जाता है।

(घ) लाभांश पर कर का भुगतान हिस्सेदार कर सकते है तथ्ज्ञा रख ली गयी आय पर निगम कर लगाया जा सकता है।

**2. घिसाव व्यय :–**

घिसाव व्य के अन्तर्गत निम्न मदों परविचारकरने की जरूरत हैः

1. मूल्य हृास के अन्तर्गत जिन मदों को शामिल करना है उनका निर्धारणकरना ;
2. पूंजी प्रतिस्थापन की अवधि का निर्धारण
3. पूंजी के घिसाव के लिए रखी जाने वाली रकम को पूंजी की मूल उत्पादन लागत के अनुसार तय करना या प्रतिस्थापन लागत के अनुसार।

प्रथम अधिक महत्वपूर्ण समस्या नहीं है इसका महत्व कुछ व्यक्तिगत उद्योगों के लिए भले ही है, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए नहीं। उद्यमी हमेशा ऐसा सोचते है कि घिसावट के अन्तर्गत मदों की जिस लिस्ट को स्वीकृति दी जाती है वह अपूण्र है। दूसरी समस्या के विषय में ऐसा अक्सर कहा जात है कि प्रतिस्थापन के लिए जिस समय की स्वीकृति दी जाती है वअ अत्यन्त कम होता है। कर प्रशासन द्वारा प्रतिस्थापन के लिए जोसमय दिया जाता है, वस्तुतः प्रतिस्थापन उसके पहले ही कर लिया जाता है। त्वरित घिसाव विध एक ऐसा तरीका है जिसक द्वारा प्रतिस्थापन समय के पूर्व सम्भव हो जाता है।

आम सहमति इस बात पर  है कि घिसावट के लिए प्रावधान मशीन की मूल लागत के अनुसार करनी चाहिए, प्रतिस्थापन लागत के आधार पर नहीं। यदि प्रतिस्थापन लागत के अनुसार घिसावट को प्रावधान किया गया तो यह पूंजी लाभ को छूट देने के समान हे। मूल लागत की व्यवस्था को अपनाना पूंजी लाभ पर लाभ एवं आय दोनों ही कर को लगाने के समान है।

**विकासशील देशों में निगम कर की भूमिका :–**

विकाशील देशों का प्रमुख उद्देश्य विकास की दर को तेज करना है और इसके लिए उपभोग को कम करते बचत में वृद्धि करने की जरूरत है। ऐसा विचार व्यक्त किया जाता है निम्न दर पर निगम कर लगाने से बचत को प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसे समझने के लिए हमें करारोपण की विधि तथा उपभोग की प्रवृत्ति के मध्य के सम्बन्ध को जानना होगा। निम्न परिस्थितियों को देखा जाएः

**(क) निगम कर की ऊंची दर तथा व्यक्तिगत आय कर की निम्न दर :–**

इस स्थिति में कम्पनी के हिस्सेदार इस बात पर जोर देंगे कि कम्पनी अधिक लाभांश का वितरण करें। कारण सरल है। यदि कम्पनियां लाभांश वितरति न करें तथा अपने लाभ का फिर से विनियोग करें तो पुनर्वियोग से प्राप्त लाभ पर कर का भारी बोझ पड़ेगा। विलास की वस्तुओं की मांग बढ़ सकती है याभवन, भूमि, जैसे गैर–प्राथमिकता वाले क्षेत्र में अधिक निवेश हो सकता है क्योंकि इनसे प्राप्त आय पर कर का बोझ अधिक नहीं होता हे। ऐसा न तो कम्पनी व्यवसाय और न ही बचत एवं निवेश के लिए अच्छा होगा।

**(ख) आयकर की ऊंची दर तथा निगम कर की निम्न दर :–**

इस स्थिति में हिस्सेदार इस बात पर जोर नहीं देंगे कि कम्पनी लाभांश का वितरण करे। यदि कम्पनी अधिकांश लाभ को रख लेती है तथा उसक पुनर्विनियोग कर देती है तो इससे प्राप्त लाभ्ज्ञ पर भारी कर नहीं लगेगा। दूसरी ओर, लाभांश्ज्ञ पर भारी आय कर लगेगा, लेनि यह पूछा जा सकता है कि क्या लोग ऐसी कम्पनी में विनियोग करेंगे जो बड़ी मात्रा में लाभांश की घेषणा नही करती । यदि लोग सम्पत्ति में वृद्धि करने के उद्देश्य से प्रेरित हों, उपभोग में बढ़ोत्तरी से नहीं , तो वे कम्पनी में निवेश करेंगे क्योंकि अवितरित लाभ तथा शेयर की कीमत के मध्य दीर्घकाल मे सहसम्बन्ध है। इनसे कुछ बचत एवं कुल विनियोग में भी वृद्धि होगी।

यदि उच्च आयकर तथा निम्न या शून्य निगम कर क साथ भूमि तथा भवन पर भारी कर लगाया जाए तो लोगों को कम्पनी के शेयर ही अधिक खरीदने चाहिए। परिणाम यह होगा कि भूमि एवं भवन की कीमत घटेगी तथा कम्पनियों में विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। इससे आन्तरिक स्त्रोतों से अधिक पूंजी उपलब्ध होगी। विकासशील देशों के आर्थिक विकास पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा क्योंकि इन देशो में (क) पूंजी बाजार अच्दी तरह विकसित नहीं है, (ख) पूंजी पर ब्याज दर ऊंची है तथा (ग) पर्याप्त मात्रा मे पूंजी उपलब्ध नहीं होती है।

## निगम कर की प्रमुख विशेषताएँ (Key Features):-

1. भारत में निगम कर विदेशी और घरेलू दानों कम्पनियों पर इनकम टैक्स विभाग द्वारा लगाया जाता है है इनकम टैक्स एक्ट 1961 के अधिनियम के साथ्ज्ञ, भारत सरकार घरेलू कंपनियों को उनकी कुल आय के आधार पर निगम कर भुगतान करना अनिवार्य बनाती है, इस बीच, एक ही अधिनियम केवल विदेश्ज्ञी कंपनियों की प्राप्त आय पर कर लेता है।
2. किसी व्यवसाय द्वारा अजिर्त लाभ उस स्थिति में प्राप्त वित्तीय मूल्य को दर्शाते है जिसमें उत्पन्न कुल राजस्व उनके कुल खर्चों से अधिक होता है।
3. आजकल, कई बिजनेस अंटरप्राइज अपनी प्रॉपर्टी को किराए पर देते है, यह उन्हें किराए की आय बढ़ाने में मदद करता है, भरत सरकार इस किरए की आय को बिजनेस आय मानती है इस प्रकार, यह निगम कर स्लैब के तहत कर के योग्य हो जाता है।
4. कैपिटल गेन का अर्थ होता है, कंपनी की कैपिटल एसेट के मूल्यांकन मेंवृद्धि इस प्रकार, कैपिट गेन या तो दीर्घकालीन या अल्पकालीन  हो सकता है और आयकर पर क्लैम किया जा सकता है।
5. विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त लाभ एक ऐसे बिजनेस से होने वाली किसी भी अतिरिक्त आय को दर्शाता है जिस पर किसी अन्य कैटेगरी के तहत स्पष्ट रूप से कर नहीं लगाया जाता है, इसमें अन्य बातों के साथ ब्याज और लाभांश आय शामिल है।

## घरेलू कम्पनी के लिए निगम कर की दर :–

1. 1956 कम्पनी अधिनियम 1956 के तहत पंजीकरण प्रदान किए गए निजी और सार्वजनिक कंपनियों को इस कर भुगतान करना होगा, वर्तमान में, घरेलू बिजनेस 30प्रतिशत टैक्स दर का भुगतान करे है।
2. इसके अलावा, अगर निवल लाभ रू 1 करोड़ से रू 10 करोड़ के बीच है, तो भारतीय आयकर टैक्स एक्ट 7 प्रतिशत अधिभार लगाता है, इसके अलावा, यह नेट प्रॉफिट पर 12 प्रतिशत पर 12 प्रतिशत सरचार्ज लागू होता है जो बिजनेस के लिए रू 10 करोड़ से अधिक होता है।

3. घरेलू कंपनियों के पास अब सेक्शन 115 बी0एए के कारण 25.168 प्रतिशत की दर से टैक्स का भुगतान करने का विकल्प है।

**घरेलू कंपनियों के लिए भारत में निगम कर की दरें निर्धारण वर्ष 2021–22 :**

| आय की सीमा | कर की दर |
|---|---|
| 400 करोड़ रूपये तक की सकल आय | 25 प्रतिशत |
| 400 करोड़ रूपये से अधिक का सकल आय | 30 प्रतिशत |

**अधिभार**

| विवरण | घरेलू कंपनियां |
|---|---|
| अगर आपकी कुल आय 1 करोड़ रूपये से 10 करोड़ रूपये के बीच है | उपरोक्त कर दर पर 7 प्रतिशत |
| अगर आपकी कुल आय 10 करोड़ से अधिक है। | उपरोक्त कर दर पर 12 प्रतिशत |

**विदेशी कंपनियों के लिए भारत में निगम कर की दरें निर्धारण वर्ष 2021– 22**

| | |
|---|---|
| 1 अप्रैल 1976 से पहले प्रदान की गई और केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित तकनीकी सेवाओं के लिए सरकार या भारतीय फर्म से प्राप्त रॉयल्टी शुल्क | 50 प्रतिशत |
| आय का कोई अन्य स्त्रोत | 40 प्रतिशत |

**अधिभार**

| विवरण | विदेशी कम्पनियाँ |
|---|---|
| अगर आपकी कुल आय 1 करोड़ रूपये से 10 करोड़ रूपये के बीच है। | ऊपर कर की दर के अनुसार 2 प्रतिशत |
| अगर आपकी कुल आय 10 करोड़ रूपये से अधिक है। | ऊपर कर की दर के अनुसार 5 प्रतिशत |

**स्वाथ्य और शिक्षा उपकर :–**

4 प्रतिशत का स्वास्थ्य और शिक्षा उपकर आयकर और संबंधित अधिभार रोशि में जोड़ा जाएगा।

**न्यूनतम वैकल्पिक कर :–**

घरेलू और विदेशी कम्पनियों के लिए न्यूनतम वैकल्पिक कर दर 15 प्रतिशत से कम नहीं हो सकती। इस दर की गणना पुस्तक आयकर अधिनियम की धारा 115 जेबी का उपयोग करके की जाती है। इसके अलावा एमएटी को 9 प्रतिशत अधिक अधिभार और उपकर की दर से एकत्र किया जाता है, यदि लागू हो जाए तो निगम अंतराष्ट्रीय वित्तीय सेवा केंद्र की एक इकाई है जो मुख्य रूप से परिवर्तन विदेशी मुद्रा में अपनी आय प्राप्त करता है।

**न्युनतम वैकल्पिक कर (एमएटी) आवेदन और छूट :–**

यदि किसी कंपनी की कुल आय (अधिभार और एसएचईसी साहित) पर देय कर उसकी बहियों में दर्ज लाभ के 15 प्रतिशत से कम है, तो कंपनी को एमएटी, या न्यूनतम वैकल्पिक कर के रूप कें एक टोकन टैक्स देना होगा। दूसरी ओर, एमएटी को आगे बढ़ाया जा सकता है, और सामन्य कर के मुकाबले ऑफसेट कियाजा सकता है। एमएटी को कुल दस वर्षो के लिए आगे बढ़ाया जा सकता है।

**न्यूनतम वैकल्पिक कर आवेदन और छूट :–**

न्यूनतम वैकल्पिक कर या एमटी, उन सभी व्यवसायों पर लगाया जाता है, जो एमएटी के मापदंड को पूरा करते है। यह भारत के आय स्त्रोतों वाले विदेशी निगमों द्वारा भी देय है हालांकि एमएटी मानकों अनुसार, कुछ अपवाद है। जीवन बीमा व्यवसाय व्यवस्था वाली कंपनियां आयकर अधिनियम की धारा 115 बी के तहत मैट की पहुंच से मुक्त होंगी । जलयात्रा से पैसा कमाने वाली कंपनियों को भी आय अधिनियम की धारा 115 वी0ओ0 के तहत एमएटी की पहुंच से छूट मिलेगी।

**लाभांश वितरण पर कर :–**

हर साल, एक कंपनी को अपने शेयर धारकों को दिए जाने वाले लाभांश पर कर का भुगतान करना होगा। हालांकि , शेयरधारकों के हाथ में यह लाभांश 10 लाख रूपये तक की छूट है। दूसरी ओर भारत में कंपनियों के लिए कर की दर 20.56 प्रतिशत है।

**कम्पनी की आय का अर्थ :–**

कंपनियों के लिए आयकर की गणना करने के लिए, आपको पहले यह समझना होगा कि संगठन की कुल आय में कौन से घटक योगदान करते है। वो हैः

1. एक कंपनी से लाभ।
2. संपत्ति आधारित आय।
3. पूंजी मे लाभ्ज्ञ।
4. आय के अन्य स्त्रोत, जैसे विदेशी लाभांश, ब्याज इत्यादि।

हर साल विदेशी निगामें सहित कंपनियों को 31 अक्टूबर तक अपना आयकर वापस दाखिल करना होगा। भले ही कंपनी उसी वित्तीय वर्ष के भीतर शुरू की गई हो, उसे 31 अक्टूबर को या उससे पहले उस अवधि के लिए अपना आयकर वापस दाखिल करना होगा।

**भारत में निगम कर टैक्स पर छूट :–**

इन सभी छूटों की सूची निम्न हैः

1. घरेलू निगम कुछ परिस्थितियों में अन्यू घरेलू निगमों से प्राप्त लाभांश में कटौती कर सकते है।
2. वेंचर फंड और वेंचर कैपिटल फर्म विशेष नियमों के अधीन है।
3. निर्यात और नए उद्यम विशिष्ट परिस्थितियों में कर कटौती के लिए पात्र है।
4. कुछ कटौतियाँ नए बुनियादी ढांचे और बिजली स्त्रोतों की स्थापना पर लागू होती है।
5. व्यापार घाटे को अधिकतम आठ वर्षों तक ले जाने की अनुमति है।
6. कुछ स्थितियों में, आप ब्याज, पूँजीगत लाभ और लाभांश में कटौती करने में सक्षम हो सकते है।

**निगम कर के लाभ :–**

1. निगम कर सरकार के लिए राजस्व का एक प्रमुख स्त्रोत है, और यह विभिन्न विकास कार्यक्रमों को वित्तपोषित करने में मददकरता है।
2. ऐसे कर कंपनियों को भारत में निवेश के लिए प्रोत्साहित करने के लिए सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण उपकर है।
3. यह देश में रोजगार के अवसर पैदा करने में मदद करता है।
4. एक ऐसा लाभ है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा देता है।
5. निगम कर धन के वितरण में असमानताओं को कम करने में मदद करते है।

**निगम कर की कमियां :–**

1. सबसे पहले, वर्तमान निगम कर प्रणाली जटिल है। यह जटिलता व्यवसायों के लिए कानून का अनुपालन करना कठिन बना देती है और परितणामस्वरूप बड़ी मात्रा में कर चोरी होती है।
2. मौजूदा व्यवस्था की एक और बड़ी आलोचना यह है कि यह छोटे व्यवसायों के लिए अनुचित है। वर्तमान प्रणाली बड़े व्यवसायों का पक्ष लेती है, जो अपनी कर देनदारी को कम करने में मदद के लिएमहंगे अकाउंटेंट और वकीलों की नियुक्त कर सकते है।
3. अंत में वर्तमान प्रणाली की अक्षमता के कारण भी आलोचना की जाती है। कई व्यवसाय निगम करो ंका भुगतान करने से बच सकते है, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को राजस्व की हानि होती है।

**सारांश (Summary):-**

निगम टैक्स प्लानिंग को उपलब्ध कटौतियों, छूटों और छूटों का उपयोग करके कर देयता को कम करते हुए लाभ का अधिकतम करने के लिए किसी के वित्तीय व्यापार मामलों को व्यववस्थित करने के रूप में परिभाषित किया गया है। कर प्रशासन एक जोखिम भरा और जटिल व्यवसाय है , और अधिकांश्ज्ञ बड़े निगम जिनके पसबहुत सारा पैसा दांव पर है, वे अपने कराधान को संभालने के लिए वित्तीय विशेषज्ञों का उपयोग करते है। भारत में कई वित्तीय खिलाड़ी निगम कर परामर्श और कार्यान्वयन प्रदान करते है। स्वस्थ कर नियोजन की गारंटी क लिएसभी कर कानूनों और संबंधित नियमों और विनियमों के बारे में उचित परिश्रम और पूर्ण जागरूकता आवश्यक है। कर चोरी या भुगतान न करना निगम कर प्लानिंग के समान नहीं है। कर प्लानिंग किसी के वित्त को इस तरह से व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है कि बकाया कर की राश्ज्ञि कम से कम दो जबकि लाभ अधिकतम हो। कर प्लानिंग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक यह है कि यह पूरी तरह से भारत सरकार की कानूनी और वित्तीय आवश्यकताओं के अनुरूप है। भारत में निगम कर और भारत में लागू कर दरों को समझने में मदद की होगी। हमने कंपनियों के लिए आयकर की विभिन्न छूटों और छूटों पर भी चर्चा की है।

**शब्दावली (Keywords) :-**

1. निगम आयकर (Corporate Income Tax)
2. निजी कम्पनी (Private Company)
3. सार्वजनिक कम्पनी (Public Company)
4. दर की सरंचना (Rate of Structure)
5. कटौती (Deduction)
6. लाभ (Profit)
7. एकीकरणात्म धारणा (Integrationist view)
8. निरपेक्षवादी धारणा (Absolutist view)
9. प्राकृतिक व्यक्ति (Natural Person)
10. घिसाव व्यय (Depreciation alloowances)

11. रख ली गई आय (Retained earnings)
12. प्रतिस्थापन (Replacement)
13. तवरित घिसाव (Accelerated depreciation)

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books):-**


1. Harold M. Groves Viewpoints on Public Fiance
2. Musgrave and Musgrave Public Finance in Theory and Practive
3. J.F Due and Ann Friedlaender Government Finance
4. Bird and Oldman Readings on taxation inDevelping countries.
5. World development Report, 1988 Government finance in developing countries.
6. लोक अर्थशास्त्र, जे0सी0 पन्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
7. मुद्रा, बैकिंग एवम लोक वित्त, डॉ0 टी0टी0सेठी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
8. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
9. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
10. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
11. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
12. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021
13. लोकवित्त डॉ0 एस0 कें0 सिंह साहित्य भवन पब्लिकेशन , आगरा।
14. पब्लिक फाइनेंस एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र डॉ0 जी0डी0 अवस्थी भारत बुक सेन्टर, लखनऊ।


**प्रश्न उत्तर (Question Answer ):-**

1. निगम कर से क्या आशय है?
2. निगम कर के एकीकरणात्मक कर व्याख्या कीजिए।

3. निगम कर की निरपेक्षाता वाली धारणा विवेचना कीजिए।
4. निगम कर के औचित्य एवं अनौचित्य के विषय दिए तर्कों की व्याख्या कीजिए।
5. निमग कर की समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
6. विकासशील देशों में निगम कर की भूमिका की विवेचना कीजिए।
7. निगम कर के गुण दोषों की विवेचना कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective Type Question) :-

1. निगम आयकर क्या है

   क. व्यक्तिओं की आय पर कर　　ख. कम्पनियों की आय पर कर

   ग. उपर्युक्त दोनों　　घ. इनमें से काई नहीं

   (उत्तर ख)
2. निगम कर का उद्देश्य है–

   क. आर्थिक स्थिरता　　ख. कर देनदारियों में कमी

   ग. उत्पादकता विनयोग　　घ. उपर्युक्त सभी

   (उत्तर घ)
3. कम्पनी के नुकसार को पूरा करने के लिए निगम के पास किहेन वर्ष का समय दिया जाता है–

   क. 8 वर्ष　　ख. 5 वर्ष　　ग. 2 वर्ष　　घ. 10 वर्ष

   (उत्तर क)
4. घरेलू कम्पनियों के लिए भारत में निगम कर (आय की सीमा 400 करोड़) की दर कितने प्रतिशत है–

   क. 05 प्रतिशत　　ख. 10 प्रतिशत　　ग. 25 प्रतिशत　　घ. 30 प्रतिशत

   (उत्तर ग)
5. विदेशी कम्पनियों के लिए भारत में निगम कर की दर कितने प्रतिशत है–

   क. 50 प्रतिशत　　ख. 40 प्रतिशत　　ग. 30 प्रतिशत　　घ. 10 प्रतिशत

   (उत्तर क)

खण्ड – 04

इकाई – 06

# निगम आयकर : कम्पनियों का वर्गीकरण , मूल्य ह्रास संबंधी नियम

**1.0 परिचय :–** कम्पनी अनेक व्यक्तियों का एक संघ है यद्यपि ये व्यक्ति संयुक्त पूँजी के रूप में मुद्रा या अन्य सम्पत्ति कम्पनी को योगदान करते हैं फिर भी कम्पनी का अपना अस्तित्व होता है, उसके अपने उत्तराधिकार होते है तथा राजनियम द्वारा कम्पनी एक कृत्रिम वैधानिक व्यक्ति के रूप में मानी जाती है जिसकी अपनी एक सार्वमुद्रा होती है। देश की अर्थव्यवस्था के साथ तालमेल, बैठाने , कम्पनियों को समाजिक कल्याण में भागीदारी दिलाने, छोटे अंशधारियां का सशकत करने इत्यादि के उद्देश्य से भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 को बदलने के उद्देश्य से भारत के गणराज्य के 64 वें वर्ष में संससद में कम्पनी अधिनियम, 2013 पारित कर दिया गया , जो 1 अप्रैल, 2014 से सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया। इस अधिनियम में 29 अध्याय, 470 धाराएँ और 7 अनुसूचियाँ हैं। व्यापार में सम्पत्तियों का प्रयोग होने के कारण, उनका जीवन समाप्त की ओर अग्रसर होता हे। निरनत प्रयोग के कारण सम्पत्तियाँ बेकार हो जाती है। उस समय उनकी पुर्नस्थापना की आवश्यकता पड़ती है। अतः व्यापार और पेशा के लाभों में से एक निश्चित राशि प्रतिवर्ष सम्पत्ति के मूल्य में होने वाली कमी की राशि से अलग कर दी जाए। यह अलग की गई राशि जिसे ह्रास के नाम से जाना जाता है, संस्था में विनियोजित रहती है। जब भी सम्पत्ति का पुर्नस्थापना किया जाता है, यही राशि प्रयुक्त हो जाती है। इससे संस्था के स्त्रोतों पर विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ता है।

**1.1 उद्देश्य :–**

1. आयकर अधिनियम में ह्रास के प्रावधान की जानकारी प्राप्त कर सकें।
2. अतिरिक्त ह्रास के नियम की व्याख्या कर सकें।
3. सम्पत्ति की वास्तविक लागत का अर्थ जान सकें।
4. अपलिखित मूल्य का अर्थ जान सके।
5. ह्रास की गणना सिक प्रकार की जाती है, की व्याख्या कर करें।
6. अंशधारियों के हितों की रक्षा करते हुए प्रबन्ध और स्वामित्व के टकराव को रोकना।
7. संयुक्त पूँजी कम्पनी के सीमित दायित्व जैसी विशेषता के बाद भी ऋणपत्र धारियों के हितों की रक्षा करना।
8. केन्द्रीय सरकार के अधिकारों को विस्तृत करना ताकि उपभोक्ताओं, श्रमिकों तथा समाज के हितों की रक्षा हो सके।
9. सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीति को सफल बनाने में सहायता देना।
10. कम्पनी का कार्य यदि जनहित के विरूद्ध हो रहा हो तो इसको जांच और कार्यवाही के लिए सरकार को सशक्त करना।
11. कम्पनी के सम्बन्ध में उचित सूचना को जनहित में प्रकटीकरण सुनिश्चित करना।

**1.2 कम्पनी का वर्गीकरण :–**

भारत में वर्तमान काल में अधिकतर कम्पनियां कम्पनीय अधिनियम के अन्तर्गत ही स्थापित होती है। कम्पनी विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति होती है जिसका समामेलन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गता होता है, जिसका उसके सदस्यों से पृथक स्थायी अस्तित्व होता है, इसका एक

विशिष्ट नाम होता है, एक सार्वमुद्रा होती है। कम्पनियों को मुख्य रूप से छः आधारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. समामेलन का आधार
2. दायित्व का आधार
3. सदस्यों की संख्या का आधार
4. स्वामित्व का आधार
5. इकाई की स्वतन्त्रता का आधार
6. विविध कम्पनियाँ।

1. समामेलन के आधार पर वर्गीकरण :– समामेलन के आधार पर कम्पनियाँ दो प्रकार की होती है–1. समामेलित कम्पनियाँ 2. असमामेलि कम्पनियाँ । इसका वर्ण्णन निम्न है–

1. **समामेलित कम्पनियाँ :–** समामेलित कम्पनियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की होती है–
   1. **राज्याज्ञा पत्र द्वारा :–** यदि कम्पनी का निर्माण राजय के आज्ञा पत्र के आधार पर होता है तो उसे राज्य आज्ञा द्वारा निर्मित कम्पनी या चार्टर्ड कमपनी कहते हे। कम्पनी को इस प्रकार के कार्य करने का उत्तरदायित्व राज्याज्ञा पत्र द्वारा दिया जात है। ऐसी कम्पनियों का निर्माण सामान्य तथा राजकीय प्रशासन करने, सैन्य शक्ति बढ़ज्ञने तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को करने लिये किया जाता था।
   2. **संसद के विशेद अधिनियम द्वारा समामेलित कम्पनी :–** कुछ कम्पनियाँ संसद राज्यविधानसभा के द्वारा पारित किसी विशेष अधिनियम के अन्तर्गत समामेलित की जाती है। राष्ट्रीय महत्व का कोई व्यापार आदि करने के लिये संसद विशेष अधिनियम पारित करके कम्पनी का समामेलन करता है।
   3. **कम्पनी अधिनियम, 2013 द्वारा समामेलित कम्पनी :–** कम्पनी अधिनियम, 2013 या इससे पूर्व पारित कम्पनी अधिनियमों के अन्तर्गत निर्मित एवं रजिस्टर्ड या समामेलित कम्पनियाँ, कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत समामेलित कम्पनियाँ कही जाती है। कम्पनियों के समामेलित के लिये कुछ वैधानिक प्रक्रियाएं सम्पन्न करनी पड़ती है तभी कम्पनी को समामेलन प्रमाण–पत्र प्राप्त होता है। कम्पनी के समामेलन को कम्पनी का पंजीयन भी कहा जाता है।इसलिये इन कम्पनियों को पंजीकृत कम्पनियाँ भी कहा जाता है।
2. **असमामेलित कम्पनियाँ :–** बड़ी–बड़ी साझेदारी संस्थाओं को असामेलित कम्पनियाँ कहते है। ये कम्पनियाँ अट्ठारहवीं शताब्दी में पायी जाती थीं। ये वैधानिक कम्पनियों की तरह सदस्यों से अलग नहीं समझी जाती है। इनमें सदस्यों का दायित्व असीमित होता था। अब इस प्रकार की कम्पनियाँ नहीं बनायी जा सकती है, क्योंकि कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 464 द्वारा इन्हें गैर कानूनी संघ घोषित किया गया है।

**क. दायित्व के आधार पर वर्गीकरण :–** दायित्व क आधार पर कम्पनियाँ दो प्रकार की होती है– 1. सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ 2. असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **सीमित दायित्व वाली कम्पनी :–** सीमित दायित्व वाली कम्पनी का आशय एसी कम्पनी से है जिसमें दायित्व या तो अंशों द्वारा या गारण्टी द्वारा अंशों व गारण्टी द्वारा सीमित द्वारा सीमित हो। इन कम्पनियों के नाम के आगे लिमिटेड शब्द अनिवार्य रूप से लगाया जाता है। ये कम्पनियाँ निम्न दो प्रकार की होती है–

**अ. अंशो द्वारा सीमित कम्पनी :–** भारत में ऐसी कम्पनियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय है। इन कम्पनियों मे सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा क्रय किये गये अंशों के अंकित मूल्य तक ही सीमित रहता है। इसलिये यदि अंशों पर अंकित मूल्य का एक भाग कम्पनी को चुका दिया है। तो अंशधारी का दायित्व अंशों पर देय अदत्त राशि तक ही सीमित होगा और अगर अंशधारी समस्त अंकित मूल्य का भुगतान कम्पनी को कर देता है उसका कम्पनी के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता।

**ब. गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ :–** धारा 2 (21) के अनुसार, जब सदस्य का दायित्व पार्षद सीमानियम द्वारा उस रकम तक सीमित होता है जिसे कम्पनी के सदस्य कम्पनी के समापन होने की स्थिति में, अपनी सदस्यता के समय अथवा सदस्यता समाप्त होने के 1 वर्ष के अन्दर, कम्पनी के कोष में जमा करने का वयन देते हैं, तो ऐसी कम्पनी को 'प्रत्याभूति द्वारा सीमित' कम्पनी कहते है।

2. **असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ :–** धारा 2 (92) के अनुसार, वर्तमान में असीमित कम्पनी का प्रचलन बहुत सीमित हो गया है। इसमें समस्त सदस्यों का दायित्व साझेदारी फर्म सा एकल स्वामित्व की भांति असीमित होता है, लेकिन जहाँ साझेदारी फम्र में साझेदारों का दायित्व व्यक्तिगत तथा संयुक्त दोनों ही रूप में असीमित होता है, वहां इस प्रकार की कम्पनियाँ में केवल संयुक्त रूप से ही दायित्व असीमित होता है तथा प्रत्येक सदस्य अपने हित के अनुपात में ही कम्पनी के दायित्वों के लिए असीमित रूप से उत्तरदायी होता है।

**1.3 कम्पनियों का परिवर्तन (धारा 18):–**

1. इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत किसी वर्ग की कम्पनी को, इस अध्याय के प्रावधानों के अनुसाार उसे या अन्य वर्ग की कम्पनी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।
2. जहां इस धारा के अधीन किसी कम्पनी में परिवर्तन करना अपेक्षित हे, वहां रजिस्ट्रार कम्पनी द्वारा किये जाने गये किसी आवेदन पर अपना यह समधान करने के पश्चात् कि कम्पनियों के पंजीयन के सम्बन्ध में लागू होने वाले इस अधिनियम के प्रावधानों का पालन कर लिया गया है, कम्पनी के पूर्व पंजीकरण को समाप्त कर देगा और रजिस्टर में उपधारा (1) में निर्दिष्ट दस्तावेजों का पंजीकरण करने के पश्चात् उसी रीति से निगमन का प्रमाण–पत्र जारी करेगा, मानो वह प्रथम पंजीकरण हो।
3. इस धारा के अधीन किसी कम्पनी के पंजीकरण से पूर्व कम्पनी द्वारा या उसकी ओर से लिये गय किन्हीं, ऋणों, दायित्वों, बाध्यताओं तथा संविदाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और ऐसे ऋणों, दायित्वों, बाध्यताओं तथा संवदाओं को उसी रीति से प्रवृत्त किया जा सकेगा जैसे यह मान लिया जाय कि ऐसा पंजीकरण किया ही नहीं गया था।

**3.सदस्यों की संख्या के आधार पर वर्गीकरण :–** सदस्यों की संख्या के आधार पर कम्पनियां दो प्रकार की होती है– 1. निजी कम्पनी एवं 2. सार्वजनिक कम्पनी। इसका वर्णन निम्न है–

1. **निजी कम्पनी (प्राइवेट कम्पनी) :–** भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2 (68) के अनुसार 'निजी कम्पी' का आशय एक ऐसी कम्पनी से है जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा –
   1. अपने अंशों के हस्तान्तरण पर रोक लगाती है।
   2. अपने अंशों और ऋणपत्रों को क्रय करने के लिए जनता को आमन्त्रित नहीं करती हे।

3. सिवाय एक व्यक्ति वाली कम्पनी के, अपने सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित रखती है। परन्तु इस संख्या में निम्न लिखित व्यक्ति सम्मिलित नहीं कियेजाते हैं–
   क. ऐसे व्यक्ति जो कम्पनी के कर्मचारी हों और कम्पनी में अंश रखते हो, तथा
   ख. ऐसे व्यक्ति जो पहले कम्पनी के कर्मचारी रह चुके हों और जब कम्परी के कर्मचारी थे उस समय कम्पनी के सदस्य भी थे तथा नौकरी समाप्त होने के पश्चात् भी सदस्य बने हुए है।
   ग. 200 की संख्या की गिनती में संयुक्त अंशधारी को एक सदस्य माना जाता है।
   घ. इसका अन्तिम शब्द 'प्राइवेट लिमिटेड' होगां

कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 92 के अनुसार प्राइवेट कम्पनी को अपने वार्षिक के साथ अपने अधिकारियों द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रमाण–पत्र रजिस्ट्रार के पास प्रेषित करना पड़ता है जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख करना होता है कि कम्पनी की स्थापना से वार्षिक विवरण की तिथि तक अपने अंषों और ऋणपत्रों को क्रय करने के लिए आम जनता को कभी आमन्त्रित नहीं किया है।

2. **सार्वजनिक कम्पनी :–** कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2 (71) के अनुसार ''एक सार्वजनिक कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो निजी कम्पनी नहीं है।'' इस वाक्यांश से ऐसा प्रतीत होता है। कि अधिनियम में सार्वजनिक कम्पनी को ऋणात्मक रूप से परिभाषित किया गया है। अधिनियम में दी गयी इस परिभाषा से कम्पनी का अर्थ पूर्णतय स्पष्ट नहीं होता है परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो यह स्पष्ट होगा कि सार्वजनिक कम्पनी वह है जिसके ऊपर निजी कम्पनी के प्रतिबन्ध लागू नहीं होते हैं। जिसमें निम्न विशेषतएं अवश्य विद्यमान हों–
   1. सदस्य संख्या न्यूनतम 7 हो अधिकतम की कोई सीमा नहीं।
   2. कम्पनी अपने अंशो के हस्तान्तरण पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध न लगाये।
   3. कम्पनी अपने अंशों व ऋणपत्रों के क्रय के लिये जनसाधारण को आमन्त्रित करे।
   4. इसकी चुकता पूँजी कम से कम 5 लाख हो।

**1.4 निजी कम्पनी के लाभ :–** भारत में निजी कम्पनियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, इनकी प्रसिद्धि निम्नलिखित लाभों के कारण से है–

1. साझेदारी संस्था तथा सीमित दायितव वाली सार्वजनिक कम्पनी दोनों के मिश्रित लाभ निजी कम्पनी को प्राप्त होत हे।
2. कम्पनी व इसके सदस्य अलग–अलग होते है या आपस में मित्र होते है।
3. इसका अस्तित्व सिरि रहता है, क्यांकि सदस्यों की मृत्यु, आदि से इसका विघटन नहीं होता है।
4. एक सार्वजनिक कम्पनी की तुलना में निजी कम्पनी को कानूनी प्रतिबन्धों से कम बाध्य होना होता है।
5. प्राइवेट कम्पनियों के लिए वैधानिक सभाओं का आयोजन करना आवश्यक नहीं होता है।
6. इसे बहुत से वैधानिक अधिकार तथा छूटें मिली है जिनका वर्णन निम्न प्रकार है–

**निजी कम्पनी के विशेष अधिकार एवं छूटें :–** कम्पनी अधिनियम 2013 के अन्तर्गत एक निजी कमपनी को निम्न विशेष अधिकार एवं छूटें प्रदान की गयी है–

1. एक निजी कम्पनी में कम से कम दो सदस्य होने चाहिए, जबकि सार्वजनिक कम्पनी में कम से कम सात सदस्य होते है।
2. एक निजी कम्पनी के लिए अंशों एवं ऋणपत्रों के आबंटन पर किसी भ प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
3. एक निजी कम्पनी में कम से कम दो निदेशक होते है और सार्वजनिक कम्पनियों में तीन।
4. धारा 160 के अनुसार प्रतयेक निदेशक की नियुक्ति के लिये इस कम्पनी में अलग प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है। दो या दो से अधिक निदेशक एक ही प्रस्ताव द्वारा नियुक्त किये जा सकते है।
5. निदेशकों को ऋण आदि देने वाले प्रतिबन्ध जो धारा 185 मे है। एक निजी कमपनी पर लागू नहीं होते है।

**1.5 स्वामित्व के आधार पर कम्पनी का वर्गीकरण :–** स्वामित्व के आधार पर कम्पनियों को दो भागों में बांटा गया है–1. सरकारी कम्पनियाँ 2. गैर–सरकारी कम्पनियाँ।

1. **सरकारी कम्पनी :–** कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (45) के अनुसार, सरकार कम्पनी का आशय उस कम्पनी से हे जिसकी कम से कम 51 प्रतिशत अंश पूँजी का स्वामित्व केन्द्रीय सरकार अथवा अंशतः केन्द्रीय सरकार तथा अंशतः राज्य सरकार या राज्य सरकारों के पास है, अथवा केवल राज्य सरकार या राज्य सरकारों के पास है।
2. **गैर – सरकारी कम्पनियाँ :–** गैर सरकारी कम्पनियाँ वे कम्पनियाँ है जो उपर्युक्क्त वर्णित प्रकार की सरकारी कम्पनियाँ नहीं होती है, अर्थात ये कम्पनियाँ जनता के द्वारा अपनी निजी पूँजी से चलाई जाती है।

**1.5 इकाई स्वतन्त्रता के आधार पर :–** एक इकाई के नियंत्रण के आधार पर कम्पनियों के अग्रलिखित प्रकार हो सकते है–

1. **सूत्रधारी कम्पनी :–**

   धारा 2 (46) । किसी कम्पनी को एक या एक से अधिक कम्पनियों की सूत्रधारी कम्पनी तभी माना जाता है, जबकि ऐसी कम्पनियाँ उसकी सहायता कम्पनियाँ हों।

   स्पष्टीकरण – इस वाक्यांश के उद्देश्य के लिए, कम्पनी शबद मे निर्गमित निकाय को भी सम्मिलित किया जाता है।

2. **सहायक कम्पनी :–**

   धारा 2 (87) किसी अन्य कम्पनी के सम्बन्ध में (जिसे सूत्रधारी कम्पनी कहा जाता है।) सहायक कम्पनी या साहयक से आशय ऐसे कम्पनी से है, जिसमें सूत्रधारी कम्पनी–

1. निदेशक मण्डल के गठन पर नियंत्रण रखती है
2. कुल मतदान शक्ति के आधे से अधिक का प्रयोग या नियंत्रण या तो स्वयं या अपनी एक या अधिक सहायक कम्पनियों के साि मिलकर करती है।

   स्पष्टीकरण–

क. एक कम्पनी की सहायक कम्पनी भी पहली वाली कम्पनी की सहायक कम्पनी होगी,

ख. किसी कम्पनी के निदेशक बोर्ड की संरचना किसी अन्य कम्पनी द्वारा नियंत्रित की गई समझ जाएगी, यदि वह अन्य कम्पनी , अपने मताधिकार से निदशकों या उनके बहुमत की नियुक्ति कर सकती है या उन्हें हटा सकती है;

ग. कम्पनी शब्द के अन्तर्गत कोई निगमित संस्था भी सम्मिलित है

घ. किसी सूत्रधारी कम्पनी के सम्बन्ध मे 'उत्तदायी' से उसकी सहायक कम्पनी या कम्पनियाँ अभिप्रेत है।

**1.6 सूत्रधारी और सहायक कम्पनियों के सम्बन्ध में नियम :–**

1. एक साहयक कम्पनी अपनी सूत्रधारी कम्पनी के अंश नहीं खरीद सकती है। ( धारा 19(1)
2. कोई भी सूत्रधारी कम्पनी अपने अंश अपनी किसी सहायक कम्पनी को हस्तान्तरित या आबंटित नहीं कर सकती है। ऐसी आबंटन या हस्तान्तरण शून्य होगा। (धारा 19 (1)

परन्तु , उपर्युक्त उपधारा कोई भी प्रावधान निम्नलिखित दशाओं में लागू नहीं होगा–

क. जहाँ सहायक कम्पनी, सूत्रधारी कम्पनी के किसी मृत अंशधारी के कानूनी प्रतिनिधि के रूप में धारण किये हुए है; या

ख. जहां सहायक कम्पनी न्यासी के रूप में ऐसे अंश धारण करती है ; या

ग. जहां सहायक कम्पनी, सूत्रधारी कम्पनी की सहायक कम्पनी बनने से पूर्व भी अंशधारी है।

**1.7 विदेशी कम्पनी** :– भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (42) के अनुसार, विदेशी कम्पनी से आशय भारत के बाहर निगमित होई कम्पनी यानिगमित निकाय है–

1. जिसका भारत में, चाहे स्वयं द्वारा या किसी अभिकर्ता द्वारा, भौतिक रूप से या इलेट्रॉनिक पद्धति द्वारा , कारोबार का कोई स्थान है, और
2. जो किसी अन्य रीति से , भारत में किसी कारोबारी क्रियाकलाप का संचालन करता है।

**1.8 विशेष अधिनियमों से नियन्त्रित कम्पनियाँ :–** बीमा कम्पनियाँ :– वह कम्पनी जो केवल बीमा का व्यापार या अन्य व्यापार के साज्ञि बीमा का व्यापार करती है, एक 'बीमा कम्पनी' कही जाती है।

**बैकिंग कम्पनियाँ :–** जो कम्पनी बैंकिंग का कार्य करती है। उसे बैकिंग कम्पनी कहा जाता हे। यदि प्रसंग भिन्न न हो तो धारा 2 (5) के अनुसार, बैकिंग का वही आशय है। जो बैकिंग रेगूलेशन एक्ट 1949 में दिया गया है।

**विद्युत कम्पनियाँः–** ये कम्पनियाँ यद्यपि कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत समामेलित होती है, लेकिन इनके लिये विद्युत की पूर्ति अधिनियम 1948 है तथा भारतीय विद्युत अधिनियम 1970 है।

विनियोग कम्पनी :–एक कम्पनी जिसका प्रमुख उद्देश्य अंशों, ऋणपत्रों या अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोग करना होता है, विनियोग कम्पनी कही जाती है।

## <u>ह्रास</u>

**ह्रास का अर्थ :–** व्यवसाय में अनेक प्रकार की सम्पत्तियाँ को प्रयोग में लाया जाता है। ऐसी सम्पत्तियों के लगातार प्रयोग के कारण इन सम्पत्तियाँ के आन्तरिक मूल्य में आने वाली कमी को ह्रास कहते है। दूसरे शब्दों में, किसी स्थायी सम्पत्ति के पुस्तकीय मूल्य में हुई कमी ह्रास कहलाती है।ऐसी कमी टूट–फूट, अप्रचलन आदि के कारण होती है। सम्पत्ति के जीवन काल में स्थायी सम्पत्ति लागतमूल्य को ह्रास के द्वारा अपलिखित किया जाता है,

**ह्रास की आवश्यकता :–** ह्रास लगानेकी अनेक विधियाँ है। इन विधियों में स्थायी प्रभाग पति या सीधी रेखा पद्धति या मूल लागत पति एवं क्रमागतह्रास पति या घटती हुई शेष पति के आधार पर ह्रास की गणन की जाती है। आयकर अधिनियम में ह्रास की गणना तथावित्तीय लेखांकन में की गई ह्रास की गणना में अन्तर होता है। किसी भी व्यवसाय के सही लाभ का निर्धारण सभी सम्भव है, जब ह्रास की गणना ठीक प्रकार से की गई हो। इसलिए ह्रास का ठीक–ठीक आयोजन करना आवश्यक होता है। ह्रास आयोजन करना करदाता के लित में होता है। कर निर्धारण वर्ष 2003–04 से ह्रास का आयोजन करना करदाताके लिए अनिवार्य होता है, भले हीउसकी कुल आय की गणना करते सुय ह्रास की छूट की मांग की गईहो अथवा नहीं ह्रास की कठौती सम्पत्ति के पुनर्स्थापन के लिए आवश्यक है।

**ह्रास के सम्बन्ध में प्रावधान :–**

1. **करदाता सम्पत्तियों का स्वामी होना चाहिए :–** स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रासस्वीकृत किये जाने के लिए करदाता को सम्पत्तियों का स्वामी होना आवश्यक है। करदाता सम्पत्ति का स्वामी पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से हो सकता है। सम्पत्ति का स्वामी यह व्यक्ति होत है जिसका सम्पत्ति पर पूर्णतः अधिकार हो। पट्टे पर ली जाने वाली सम्पत्ति का स्वामी करदाता नहीं होता है। अतः ऐसी सम्पत्तियों पर ह्रास स्वीकार नहीं किया जाएगा। यदि करदातासम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई पूँजीगत व्यय करता है तो ऐसी पूँजीगत व्यय करता है तो ऐसे पूँजीगत व्ययों के सम्बन्ध में ह्रास की कटौती स्वीकृत होती है। इसके लिए पंजीकृत स्वामी होना आवश्यक नहीं है।
2. **करदाता द्वारा सम्पत्तियाँ व्यापार एवं पेशे में प्रयसोग होनी चाहिए :–** यदि सम्पत्तियाँ गत वर्ष में करदाता ने अपने व्यापार एवं पेशे में प्रयोग की है, तभी उन पर ह्रास स्वीकार होता है। सम्पत्ति का प्रयोग गत वर्ष में कुछ समय के लिए किया गया हो तब भी ह्रास स्वीकार्य होता है। यदि कोई भवन व्यवसाय में कार्य करने वाले कर्मचारियों को रहने के लिए दिया जाता है, तो यह माना जाएगा कि भवन व्यवसय में प्रयोग किया गया है।
3. **सम्पत्तियाँ जिन पर ह्रास स्वीकार किया जाता है :–** ह्रास एक आवगत हानि होती है। ऐसी सम्पत्तियाँ जिन पर ह्रास स्वीकार किया जाता है निम्नलिखित है–
    1. भवन या मकान
    2. मशनरी
    3. स्यन्त्र
    4. फर्नीचर एवं फिक्सचर्स

कर निर्धारण वर्ष 1999–2000 से अमूर्त अथवा अदृश्य सम्पत्तियाँ जैसे–आदिजिन्हें 31 मार्च, 1998 के बाद प्राप्त किया गय हो, के समूह पर 25 प्रतिशत की दर से हृासस्वीकार किय जाता है।

**4.ऐसी सम्पत्तियाँ जिन पर हृास स्वीकार नहीं होता है :–**

1. भूमि।
2. ऐसी सम्पत्तियाँ जिन्हें केन्द्र सरकार के साथ हुए अनुबन्ध के अनसार व्यय मान लिया गया ाहो, उन पर हृास स्वीकार नही होगा।
3. अतिथि गृह।
4. 28 फरवरी, 1975 के बाद किन्तु 1 अप्रैल 2001 से पूर्व क्रय की गई विदेशी कार जिसका प्रयोग न तो टैक्सी के रूप में और न ही अपने पेशे के रूप में किया गया हो।
5. गत वर्ष में सम्पत्ति को बेचने पर, रद्द करने पर, नष्ट करने , हटाने आदि पर हृास का गत वर्ष में स्वीकार नहीं होगा।

**5.पट्टे पर ली गई सम्पत्तिया :–** यदि कोई करदाता किराये अथवा पट्टे के भवन में अपना व्यापार अथवा पेशा चलरहा है, तो ऐसी सम्पत्तियाँ पर हृास स्वीकार नहीं यिा जायेगा। किन्तु यदि वह ऐसी सम्पत्तियों के सम्बन्ध में कोई पूँजीगत व्यय करता है तो ऐसे व्ययों के सम्बन्ध में हृास की कटौती स्वीकार्य है।

6. **विदेशी कार पर हृास :–**
    1. विदेशी कार का प्रयोग टैक्सी के रूप में हो।
    2. विदेशीकार को भारत के बाहर किसी भी देश में व्यापार एवं पेशे में प्रयोग किया गया है।
7. **सम्पत्तियों के समूह पर हृास :–** व्यक्तिगत सम्पत्तियों पर हृास स्वीकार नहीं होता है, बल्कि सम्पत्तियों के समूह पर लगाया जाता है। प्रत्येक समूह की सीधी सम्पत्तियों पर एक ही दर से हृास स्वीकार होता है।
8. **सम्पत्ति के प्रत्येक समूह के लिए अलग–अलग हृास दर :–** सम्पत्तियाँ के प्रत्येक समूह के लिए हृास की दरें अलग–अलग हो सकती हे।
9. **चार्टर्ड एकाण्टेन्ट का प्रभाव पत्र :–** अतिरिक्त हृास की कटौती सभी स्वीकार्य होती है जब करदाता द्वारा बिन्दु 12.13 और 14 के लिए चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट का प्रमाण पत्र जमा कर दिया हो।
10. **मार्च को सम्पत्ति की विद्यमानता :–** यदि सम्पत्ति 31 मार्च को व्यवसाय में मॉजूद है, तभी हृास की कटौती दी जाती है।

**हृास का आधार :–**

हृास लगाने के दो आधार होते है जो निम्न है–

1. अपलिखित मूल्य विधि :– जब सम्पत्तियों के खण्ड के अपलिखित मूल्य पर निर्धारित दरों से हृास की गणना की जाती है तो इस विधि का प्रयोग किया जाता हे।

2. सीधी रेखा पद्धति :– ऐसी औद्योगिक संस्था जो कर निर्धारण वर्ष 1998–99 से विद्युत उत्पादन या विद्युत उत्पादन तथा वितरण कार्यों में संलग्न हो उस संस्था की सम्पत्तियों पर स्थायी पद्धति से हृास लगाया जा सकता है।

**अतिरिक्त हृास :–** अतिरिक्त हृास से आशय ऐसे हृास से है जब करतदाता निर्माण या उत्पादन कार्य में संलग्न हो तथा 31.03.2055 के पश्चात् किसी मशीन या प्लांण्ट को खरीदकर अपने व्यापार में लगाता हो तो उस मश्ज्ञीन या प्लाण्ट पर 29 प्रतिशतकी दर से हुासस्वीकार किया जायेगा। निम्न दशओं में मशीन तथा प्लाण्ट पर अतिरिक्त हृास की कटौती नहीं मिलेगी–

1. कोई भी पुरानी मशीन
2. ऐसी मशीन या प्लाण्ट जिसकी वास्तविक लागत पर एक वर्ष पहले किसी व्यापार या पेशे मे कटौती प्राप्त हो चुकी हो।
3. ऐसी कोई मश्ज्ञीन जिसे किसी अतिथि गृह, कार्यालय पर किसी रिहायती मकान में प्रयोग किया जा चुका हो।

**हृास की गणना :–**

1. सम्पत्त्यिों का खण्ड या समूह ।
2. सम्पत्तियों की वास्तविक लागता ।
3. सम्पत्तियों का अपलिखित मूल्य
4. हृास की गणना।

सारांश (Summary):-

भारत में कम्पनी अधिनियम 1956 इतना व्यापक अधिनियम था कि इसे विश्व के समस्त देशों में सबसे बड़ा अधिनियम कहा जाता था। इस अधिनियम एवं नियमावली के माध्यम निगम को नियंत्रित किया जाता है। जिसेस कार्यकुशलता में वृद्धि होती हे। इस कारण देश की उन्नति मं प्रत्यक्ष स्प कम्पनियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। भारत में निजी कम्पनी व सार्वजनिक कम्पनी, सूत्रधारी कम्पनी, सहायक कम्पनी, विदेशी कम्पनी, बीमा कम्पनियाँ बैकिंग कम्पनियां, विद्युत कम्पनियां, अन्य नियमित निकाय तथा धर्मार्थ कम्पनी , विनियोग, कम्पनियां दखने को मिलती है। सूत्रधारी और सहायक कम्पनियों के संबंध में नियम । अधिनियम के अर्न्तगत कार्य सम्पादित करती है। आयकर अधिनियम में दृश्य तथा अदृश्य सम्पत्तियों पर हृास मिलता है। व्यापार मे प्रयुक्त सम्पत्तियों को प्रयोग करने पर इनमें घिसावट तथा टूट फुट होती है। अतः यह जरूरी है कि व्यापार और पेशों के लाभों में से, एक निश्चित राशि प्रति वर्ष सम्पत्ति के मूल्य में होने वाली कमी के लिए अलग कर दी जाए। यह राशि संस्था में विनियोजित होने से , पुर्नस्थापना के समय यही राशि प्रयोग कर ली जाती है। यह एक वास्तविक तथा स्वीकृत कटौती हे। करदाता को स्वामी होना तथा व्यापार में प्रयुक्त सम्पत्तियों पर हृास मिलता हे। हृास सम्पत्तियों के समूह पर मिलता हे। एक समूह में खरीद को जोड़ा तथा बिक्री को घटाया जाता है। हृास प्रत्येक सम्पत्ति अपलिखित मूल्य के योग पर स्वीकृत होता है।

**शब्दावली (Keywords):-**

1. समामेलित कम्पनियाँ (Incorported Companies)
2. राज्याज्ञा पत्र (By Rpoyal Charterm)
3. असमामेलि (Uncorporates)
4. दायित्व (Liality)
5. कम्पनियों का परिवर्तन (Conversion of companies)
6. निजी कम्पनी (Private Company)
7. सार्वजनिक कम्पनी ( Public Companies)
8. विशेष अधिकार एवं छूंटे (Special Privilages and Exemption)
9. कार्यवाहक संख्या (Quorum)
10. स्वामित्व का आधार (Basis of Ownership)
11. सूत्राधारी कम्पनी (Holding company)
12. सहायक कम्पनी (Subsidiary Company)
13. हृास (Depreciation)
14. कटौती (Deduction)
15. अदृश्य (Invisible)
16. दृश्य (visible)

## सन्दर्भित ग्रन्थ सूची (Reference Books):-


1. डॉ0 राधाकृष्ण विश्नोई एवं डॉ0 सतीश कुमार साहा, एस बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स आगरा।
2. कम्पनी अधिनियम एवं सचिवीय पद्धति : डॉ0 एस0एम0 शुक्ल, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स , आगरा।
3. आयकर डॉ0 पी0के0 जैन , आर0 के त्यागी एस बी डी पी डी पब्लिशिंग हाऊस, आगरा।


## प्रश्न उत्तर दीजिए (Answer the question):-

1. कम्पनियों का वर्गीकरण के प्रकार बताइये?
2. समामेलन के आधार पर कम्पनयिों के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
3. असमामेलित कम्पनियो से आप क्या समझते है?
4. दायित्व के आधार पर कम्पनयिों के वर्गीकरण को समझाइये?
5. कम्पनियों के परिवर्तन से क्या आशय है?
6. निजी कम्पनी को आप क्या समझते है, इनकी विशेषताऐं लिखिए।
7. सार्वजनिक कम्पनी से क्या आशय है?
8. निजी कम्पनी के विशेष अधिकार एवं छूटें को बताइऐं।
9. स्वामित्व के आधार पर कम्पनी के वर्गीकरण को समझाइए।
10. इकाई की स्वतन्त्रता के आधार पर कम्पनियों की व्याख्या कीजिए।
11. हृास का अर्थ बताऐं।
12. हृास के संबंध में महत्वपूर्ण बातें को लिखिए?

13. प्लाण्ट तथा मशीन पर अतिरिक्त ह्रास को समझाइए।
14. सम्पत्तियों की वास्तविक लागत की विवेचना कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर (Objective type question )

1. कम्पनी का कार्यक्षेत्र सीमित होता है–
   क. पार्षद सीमा नियम तक ख. अन्तर्नियम तक ग. कम्पनी अधिनियम
   घ. उपर्युक्त सभी (उत्त घ)
2. कम्पनी अपने लाभों को बांटती है–
   क. अंशधारियों में ख. ऋणपत्रधारियों ग. ठेनदारों को
   घ. उपर्युक्त सभी (क)
3. सार्वजनिक कम्पनी में सदस्यों की अधिकतम संख्या होती है–
   क. 25 ख. 50 ग. 100 घ. असीमित (उत्तर घ)
4. कम्पनी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है–
   क. अंशों की हस्तान्तरणीय ख. सीमित दायित्व ग. व्यापक क्षेत्र
   घ. अधिनियम द्वारा स्थापना (उत्तर ख)
5. सीमित दायित्व से आशय सीमित दायित्व है–
   क. लेनदारों का ख. देनदारों का ग. सदस्यों का घ. ऋणपत्र धारियों का
   (उत्तर ग)

**खण्ड–05**

**इकाई–01**

# सार्वजनिक ऋण

## 1.0 परिचय (Introduction)–

हम इस बात की विस्तार से व्याख्या कर चुके हैं कि वर्तमान समय में लोक–कल्याणकारी राज्यों के विकास के साथ ही साथ सार्वजनिक व्ययों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी है। इस बढ़े हुए व्यय की पूर्ति के लिए सरकार अनेकानेक स्रोतों से आय प्राप्त करती है। राज्यों के व्ययों में इतनी अधिक वृद्धि हो चुकी है कि उसके द्वारा जुटाये गये सभी आय–स्रोत न्यून दिखायी देने लगी है। राज्यों को प्रति वर्ष घाटे के बजट बनाने पड़ते हैं, क्योंकि सरकार के विस्तृत (Extensive) व गहरे (Intensive) दोनों ही प्रकार के व्ययों में वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक सुरक्षा तथा लोक–कल्याणकारी कार्यक्रमों, यथा– शिक्षा, स्वास्थ्य, वृद्धावस्था, पेन्शन, बीमारी बीमा, बेरोजगारी जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए निरन्तर होने वाले व्ययों की पूर्ति जब सरकारी आय से नहीं होती है, तब सरकार को इसे पूरा करने के लिए ऋण लेना होता है, जिसे हम सार्वजनिक ऋण कहते हैं।

## 1.1 उद्देश्य (Object) :-

1. आय प्राप्त करना (Raising Revenue)
2. आर्थिक मन्दी से बचने के लिए (Fighting Depression)
3. चक्रीय उतार–चढ़ाव को नियन्त्रित करने के लिए (Controlling cyclical Fluctuatins)
4. मुद्रा प्रसार को नियन्त्रित करने के लिए (Controlling Inflation)
5. विकासके कार्यों के लिए वित्त का प्रबंध करना (Financing Development)

6. सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए (Meeting Fiancial needs of public sector

7. युद्ध वित्त (War Finance)

**1.2 सार्वजनिक ऋण का विकास (Development of Public Debt):–**

विश्व में सार्वजनिक ऋणों का उपयोग 17वीं शताब्दी से होने लगा है। बेस्टिेबिल (Bastable) के अनुसार प्राचीनकाल में शासन–व्यवस्था राजा के रूप में होती थी। वह अपना कार्य बिना ऋणों के भी चला लिया करता था, क्योंकि उस समय सार्वजनिक व्यय बहुत कम होता था। यदि उस समय व्यय करने की आवश्यकता पड़ती है और राजकीय कोष में धन नहीं होता तो राजा अपनी आवश्यकतानुसार लोगों से धन एकत्र कर लेता था। बाद में कम्पनियों व बैंकों से भी ऋण लिया जाने लगा था। परन्तु राजा द्वारा ऋण के न लौटाये जाने के कारण अनेक कम्पनियाँ व बैंक बन्द हो गये थे। इस सन्दर्भ में सन् 1345 का उदाहरण इस कथन की पुष्टि कर सकता है। उस समय फ्लोरेन्स (Florence) में बोर्डी (Bordi) नामक इटली की एक बड़ी फर्म फेल हो गयी थी; क्योंकि उस समय एडवर्ड तृतीय कम्पनी के 9,000 (नौ हजार) सोने के फ्लोरीन्स (Florins) वापस नहीं कर सका था। पेरूग्जी (Peruxzzi) नामक कम्पनी भी इसी कारण फेल हो गयी थी। सार्वजनिक ऋण के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बेस्टेबिल नेलिखा है कि ''पहले इंग्लैण्ड के राजाओं ने भी ऋण प्राप्त किये थे। एडवर्ड चतुर्थ तथा ट्यूडर राजाओं ने सोलहवीं शताब्दी में बलपूर्वक ऋण प्राप्त किये थे। इससे भी पहले जेनिवा (Geneoa) तथा वेनिस (Venice) में विशेष बैंकों द्वारा ऋण लिया गया था। डच लोगों ने भी दूसरे देशों को उधार देने व ऋण लेने का कार्य किया। यह कहा जाता है कि सार्वजनिक ऋणों का प्रारम्भ सन् 1344 में फ्लोरेन्स में हुआ था, जहाँ एडवर्ड तृतीय व अन्य को एक इटैलियन कम्पनी के द्वारा ऋण दिया गया था। नियमित रूप से सार्वजनिक ऋण की व्यवस्था हॉलैण्ड ने की थी। इंग्लैण्ड में भी राज्य को ऋण प्रदान करने के लिए सन् 1694 में बैंक ऑफ इंग्लैण्ड को स्थापित किया गया था।

संसार में जब से वैज्ञानिक सरकारों की स्थापना हुई है तब से सार्वजनिक ऋणों के क्षेत्र में काफी वृद्धि हो गयी है। सार्वजनिक ऋणों का जो रूप आज हम देख रहे हैं वह रूप प्राचीनकाल में नहीं था। इसका विकास क्रमिक रूप में हुआ है। राज्यों ने अपनी–अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप सार्वजनिक ऋणों का सहारा लिया। ज्यों–ज्यों राज्यों का विकास होता गया या राज्य अपनी साख को सुदृढ़ करते गये त्यों–त्यों सार्वजनिक ऋणों को प्राप्त करने में आसानी होती गयी। ऋण लेना अब बुरा नहीं समझा जाता है, क्योंकि बिना ऋणों के साधनहीन देश अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ नहीं बना सकते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि विकसित देश विकासशील देशों की तुलना में आसानी से आन्तरिक व बाह्य ऋण प्राप्त कर लेते हैं। चूँकि इन देशों में मुद्रा–बाजार आधिक विकसित रहता है, इसलिए आन्तरिक ऋण आसानी से सुलभ हो जाते हैं। इन देशों की साख अच्छी होने के कारण विदेशों से भी इन्हें ऋण मिल जाते हैं। परन्तु विकासशील देशों में मुद्रा–बाजार विकसित न होने से आन्तरिक ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है, इसलिए इन राष्ट्रों को विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना पड़ता है।

यदि प्राचीनकाल की विचारधारा पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि उस समय ऋणों को अनावश्यक व फिजूलखर्ची को बढ़ावा देने वाला समझा जाता था। इस सन्दर्भ में एडम स्मिथ (Adam Smith) ने लिखा है कि **''सार्वजनिक ऋण से फिजूलखर्ची, बेकार के युद्ध और बुरी आर्थिक दशा उत्पन्न होती है।''** परन्तु आज प्रत्येक अर्थशास्त्री सार्वजनिक ऋणों के महत्व को स्वीकार करता है; और व्यवहार में भी यह बात देखने में आती है कि यदि सार्वजनिक ऋणों का महत्व न होता तो आज दुनिया का कोई भी राष्ट्र सार्वजनिक ऋणों की ओर आकर्षित नहीं होता।

### 1.3 सार्वजनिक ऋण का महत्व (Importance of Public Debt):–

सार्वजनिक ऋणों के बारे में भिन्न–भिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न विचार दिये हैं। जहाँ एडम स्मिथ सार्वजनिक ऋणों को फिजूलखर्ची व युद्ध को बढ़ावा देने वाला मानते हैं वहीं शिराज उत्पादक ऋण को उपयुक्त समझते हैं। उनके अनुसार, **''सरकारों को यह याद रखना चाहिए कि ऋण लेना खुशहाली का मार्ग नहीं है, और जब तक उत्पादक व्यय न हो, सार्वजनिक ऋण नहीं लेना चाहिए।''** ह्यूम के अनुसार, **''सरकारी ऋण एक ऐसी क्रिया**

**है जो बिना किसी विवाद के घातक कही जा सकती है।''** जबकि जर्मन अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक ऋणों का समर्थन किया है। अन्त में, हम कह सकते हैं कि सार्वजनिक ऋणों को यदि किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लिया जा रहा है तो इसके परिणाम बुरे नहीं होंगे तथा ऋण का महत्व भी बढ़ेगा। वर्तमान में सार्वजनिक ऋणों के बढ़ते हुए महत्व को नीचे दिया गया है :

1. **प्राकृतिक प्रकोप–** प्राकृतिक प्रकोपों की क्षतिपूर्ति के लिए ऋणों का लेना आवश्यक होता है, क्योंकि करों से प्राप्त होने वाली आय का संग्रह तत्काल नहीं हो सकता है।

2. **सार्वजनिक क्षेत्र में वृद्धि–** सरकार अपने देश के प्राकृतिक साधनों का दोहन करने तथा सार्वजनिक क्षेत्र में नये उद्योग–धन्धों की स्थापना करने व यातायात, संवाददाता के साधनों के विकास के लिए सार्वजनिक ऋणों को महत्व देने लगी है। सरकार द्वारा नये–नये उद्योग–धन्धों की स्थापना करने और पुराने उद्योगों को अपने हाथ में लेने से सार्वजनिक ऋणों में वृद्धि होने लगी है।

3. **बाह्य आक्रमणों से रक्षा–** प्रत्येक देश अपने को बाहरी आक्रमणों से बचाना चाहता है। आज युद्ध में जितना व्यय होता है उसकी अपेक्षा युद्ध की तैयारी में कहीं अधिक व्यय हो रहा है। प्रत्येक देश को इस बात का डर बना रहता है कि न जाने कब दूसरा देश उसके ऊपर आक्रमण कर दे, इसलिए सुरक्षा व्यय में वृद्धि होने लगी है। इस सम्बन्ध में नये–नये अस्त्र–शस्त्रों की खोजबीन व आविष्कार में बहुत अधिक धन खर्च करना होता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि युद्ध लड़ने वाले राष्ट्र को युद्ध जीतने व युद्ध हारने, दोनों में ही अधिकाधिक व्यय करना होता है। महँगे युद्धों का संचालन करों की अपेक्षा ऋणों से ही सम्भव है।

4. **जनोपयोगी सेवाओं का संचालन–** लोक–कल्याणकारी राज्यों का मुख्य उद्देश्य देश के नागरिकों को अधिक सुविधा प्रदान करना है। यह सुविधा तभी प्राप्त हो सकती है, जब सरकार जनोपयोगी सेवाओं पर बड़े पैमाने पर खर्च करे; जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमारी, बेरोजगारी, यातायात, पौष्टिक भोजन, आवास आदि। इन सब

कार्यों के अतिरिक्त संचार साधनों का विकास, लघु एवं वृहद् सिंचाई योजनाएँ, सीमेण्ट व खाद के कल–कारखानों व जल–कल की योजनाएँ आदि।

5. **राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति–** जनमत को अपनी ओर आकर्षित करने वाली क्रिया राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है। प्रायः आज लोगों में यह धारणा बनी हुई है कि कम से कम कर लगाने वाली सरकार अच्छी होती है क्योंकि करों का भार वर्तमान में व ऋणों का भार भावी पीढ़ी पर पड़ता है। इस स्थिति को सरकार जानती है और वह यह भी जानती है कि व्ययों को कम करके समस्या से बचा नहीं जा सकता है अतः इसकी पूर्ति के लिए ऋणों का लेना आवश्यक होता है।

6. **प्रशासनिक खर्चों की पूर्ति–** सार्वजनिक व्ययों में वृद्धि का एक कारण प्रशासनिक व्ययों में वृद्धि होना है। प्रजातान्त्रिक शासन–व्यवस्था में पंचायतों से लेकर संसद तक सैकड़ों कार्यालय काम करते हैं। आज प्रशासन को चुस्त बनाने व विकास कार्यक्रमों में तेजी लाने के लिए देश के प्रशासन को छोटी–छोटी इकाइयों में बाँटा जाने लगा है। बड़े–बड़े प्रदेशों को छोटे–छोटे प्रदेशों में व बड़े–बड़े जिलों को छोटे–छोटे जिलों में बाँट देने से दोहरा तथा तिहरा व्यय बढ़ रहा है और यह प्रशासनिक व्यय प्रतिदिन, प्रति सप्ताह व प्रति मास होता ही रहता है। इस सब की पूर्ति के लिए ऋण लिये जाते हैं।

7. **आर्थिक स्थिरता स्थापित करने के लिए–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुख्य समस्या अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने की है। अनियन्त्रित अर्थव्यवस्था के कारण व्यापार–चक्रों का उदय होता है। कभी मुद्रा–प्रसार तो कभी मुद्रा–संकुचन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे बेरोजगारी तथा मूल्य–वृद्धि की पुनरावृत्ति होती रहती है। इसलिए आर्थिक अस्थिरता को रोकना आवश्यक है। मुद्रा–प्रसार के समय सरकार लोगों के हाथों से अतिरिक्त क्रय–शक्ति को छीनने के लिए कर लगाती है। इसके अतिरिक्त सरकार ब्याज–दर में वृद्धि करके भी अतिरिक्त मुद्रा के ऋण के रूप में अपने पास ले लेती है। मन्दी के समय लोगों की क्रय–शक्ति बढ़ाने के लिए सार्वजनिक विनियोग का महत्व बढ़ जाता है। इसलिए ऋणों की सहायता से ऐसे विकास कार्यक्रमों पर व्यय किया जाता है जिनसे उत्पादन की मात्रा दीर्घकाल

में प्रापत हो। इस प्रकार मुद्रा–प्रसार व मुद्रा–संकुलन दोनों ही दशाओं में सार्वजनिक ऋणों का महत्व बढ़ जाता है।

8. **समाजवाद व विश्व–मैत्री–** समाजवाद व विश्व–मैत्री के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण सार्वजनिक ऋणों का महतव बढ़ने लगा है। समाजवादी समाज की स्थापना में सरकार को नये व पुराने सभी कार्यक्रमों को अपने हाथ में लेना होता है। सार्वजनिक क्षेत्र में वृद्धि तथा विस्तार होता है, जिसमें बड़े पैमाने पर सरकार को स्वयं व्यय करना होता है। इस व्यय की पूर्ति के लिए आन्तरिक व बाह्य ऋणों की आवश्यकता पड़ सकती है।

## 1.4 सार्वजनिक ऋण और व्यक्तिगत ऋण में अन्तर (Distinction between Public and Private Debt)

सार्वजनिक ऋण एवं व्यक्तिगत ऋणों में जो मौलिक अन्तर है उसे नीचे दिया जा रहा है :

1. **साख सम्बन्धी अन्तर–** व्यक्ति की अपेक्षा सरकार की साख अच्छी होती है, क्योंकि व्यक्ति मरता है, जबकि राज्य मरता नहीं है। व्यक्ति दिवालिया हो सकता है, जबकि राज्य नहीं। व्यक्ति के साधनों की अपेक्षा सरकार के साधन अधिक होते हैं। व्यक्ति जब ऋण लेना चाहता है तो उसे ऊँची ब्याज दर पर भी आसानी से ऋण नहीं मिलता है, जबकि सरकार कम ब्याज–दर पर भी ऋण प्राप्त कर लेती है। साख में अन्तर के कारण सरकार के ऋण का क्षेत्र व्यापक होता है, जबकि व्यक्ति का सीमित।

2. **ऋण–भार में अन्तर–** सार्वजनिक ऋणों का भार ऋणदाताओं पर भी पड़ता है, जबकि व्यक्तिगत ऋणों का भार ऋणी के ही ऊपर पड़ता है। होता यह है कि जब सरकार व्यक्तियों से ऋण प्राप्त करती है तब वह एक हाथ से ऋण लेती है और दूसरे हाथ से ऋण व ब्याज के भुगतान के लिए कर लगाती है। सरकार ब्याज की रकम ऋणदाता से ही वसूल करती है जिसका आभास ऋणदाता को नहीं होता है। परन्तु व्यक्तिगत ऋणों के भुगतान का दायित्व ऋणी के ऊपर है। वह अपने भार

को दूसरे के ऊपर नहीं टाल सकता है, ऋण की राशि का पूरा भुगतान उसेही करना पड़ता है।

3. **ऋण भुगतान की प्रकृति में अन्तर–** व्यक्ति प्रभुतासम्पन्न नहीं होता है, जबकि राज्य प्रभुतासम्पन्न है। राज्य एक सर्वोच्च संस्था है जिसके द्वारा बनाये गये नियमों व कानूनों का पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना होता है, जबकि व्यक्ति के लिए ये बातें लागू नहीं होती हैं। व्यक्ति ऋण प्राप्त करने के लिए किसी को बाध्य नहीं कर सकता है, जबकि सरकार व्यक्ति को ऋण की अदायगी करने व ऋण देने के लिए बाध्य कर सकती है।

4. **गोपनीयता–** व्यक्तिगत ऋण हमेशा गोपनीय होते हैं, जबकि सार्वजनिक ऋण गोपनीय नहीं होते हैं। व्यक्ति अपनी साख व प्रतिष्ठा को बचाने के लिए ऋणों की गोपनीयता रखता है। उस पर अधिकाधिक ऋण–भार पड़ने पर भी वह अपनी स्थिति को छिपाये रखता है, जबकि सरकार समय–समय पर लिये गये ऋणों के आँकड़ों को प्रकाशित करती है, ताकि देश के नागरिकों के सामने स्थिति स्पष्ट हो सके। चूँकि ऋणों का भार तो व्यक्तियों को ही सहना पड़ता है इसलिए सरकार ऋणों को गुप्त नहीं रख सकती है।

5. **ऋण का उद्देश्य–** व्यक्तिगत ऋण पारिवारिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु और सार्वजनिक ऋण सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, ऋण देने वाला व्यक्ति ऋण देने से पूर्व सरकारी ऋणों के उद्देश्यों की जाँच नहीं करता है। परन्तु व्यक्ति के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती है। जब वह ऋण लेता है, तो ऋणदाता ऋण देने से पूर्व उसके उद्देश्यों की जानकारी कर लेना चाहता है।

6. **ऋण का क्षेत्र–** व्यक्ति के ऋण का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र व्यापक होता है। व्यक्ति स्वयं से ऋण नहीं ले सकता है, जबकि सरकार स्वयं से व विदेशों से ऋण ले सकती है। व्यक्तिगत ऋण विदेशों से प्राप्त नहीं हो सकता है।

7. **ऋण की राशि, जमानत व अवधि में अन्तर–** व्यक्तिगत ऋण की राशि बहुत कम होती है, जबकि सार्वजनिक ऋणों की राशि अधिक होती है। व्यक्ति को बिना जमानत के ऋण नहीं मिलता है, जबकि सरकार को बिना जमानत के ही ऋण मिल जाता है। व्यक्तिगत ऋण अल्पकालीन होते हैं, जबकि सार्वजनिक ऋण दीर्घकालीन होते हैं। व्यक्ति द्वारा लिये गये ऋणों का भुगतान व्यक्ति अपने ही जीवनकाल में कर देना चाहता है। इसलिए व्यक्तिगत ऋणों की अवधि अल्प होती है, जबकि राज्य के द्वारा लिये गये ऋणों की अवधि लम्बी होती है।

8. **व्यय की प्रकृति–** व्यक्ति के व्यय की प्रकृति लोचपूर्ण होती है। वह अपने व्ययों में कमी कर सकता है, इसलिए व्यक्ति के लिए ऋण लेना अनिवार्य नहीं होता है, जबकि सरकारी व्यय बेलोच होते हैं। उन्हें कम करना असम्भव है। इसीलिए आवश्यक व्ययों के लिए ऋणों का लेना अनिवार्य है। इस प्रकार व्यक्तिगत व्यय की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय अनिवार्य होते हैं; फलतः सार्वजनिक ऋण भी अनिवार्य होते हैं।

## 1.5 सार्वजनिक ऋण तथा कर में अन्तर (Difference between Public Debt and Taxation)

सार्वजनिक ऋण व कर में निम्नलिखित अन्तर हैं :

1. **दायित्व में अन्तर–** करारोपण करने का दायित्व सरकार का है, परन्तु करों के भुगतान का दायित्व करदाताओं का होता है। सार्वजनिक ऋणों व उन पर दिये जाने वाले ब्याज के भुगतान का पूरा दायित्व सरकार के ऊपर होता है। इसलिए ऋणों की अपेक्षा करारोपण अधिक उपयुक्त है।

2. **क्षेत्र सम्बन्धी अन्तर–** करों का क्षेत्र सीमित होता है जबकि सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र व्यापक है। कर देश की सीमा के भीतर ही लगाये जाते हैं, जबकि ऋण विदेशों से भी प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि विदेशी ऋणों का प्रभाव ऋणी राष्ट्र के ऊपर अच्छा नहीं पड़ता है। ऋण देने वाला राष्ट्र समय–समय पर ऋणी राष्ट्र की स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप कर सकता है।

3. **भारत एवं लाभ–** करारोपण का भार वर्तमान पीढ़ी को सहना पड़ता है और इसका लाभ भावी पीढ़ी को मिलता है, जबकि सार्वजनिक ऋणों का लाभ वर्तमान पीढ़ी को मिलता है, और इसका भार भावी पीढ़ी को भोगना पड़ता है।

4. **स्वभाव–** करों का स्वभाव नियमित होता है। सरकार नियमित रूप से करों को लगाती और वसूली करती है। इस प्रकार, सरकार छोटे–मोटे कार्यों का सम्पादन तो करों द्वारा ही कर लेती है, परन्तु सार्वजनिक ऋण तो असाधारण परिस्थितियों में ही लिये जाते हैं और ऋणों की राशि में आवश्यकतानुसार घट–बढ़ की जा सकती है। सार्वजनिक ऋणों का महत्व संकट के समय विशेष रूप से बढ़ जाता है।

5. **मितव्ययता–** सरकार करारोपण से प्राप्त आय को मितव्ययता से व्यय करती है, परन्तु जब ऋण प्राप्त किये जाते हैं तब सार्वजनिक व्ययों में मितव्ययता नहीं बरती जाती है, क्योंकि ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु करारोपण में करदाताओं को त्याग करना पड़ता है इसलिए करदाताओं के त्याग को ध्यान में रखते हुए ही मितव्ययता से व्यय किया जाता है।

## 1.6 सारांश (Summary)

सार्वजनिक ऋण का उचित या अनुचित होना उन असंख्य परिस्थितियों और उद्देश्यो पर निर्भर करता है जिस प्रसंग में यह ऋण लिया गया है, चाहे वह आन्तरिक ऋण हो अथवा वाह्य। सार्वजनिक ऋणों से देश की पूँजी अधिक उत्पादक हो जाती है। और इससे देश के उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है, उत्पादन बढ़ता है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। देश के नागरिकों का जीवन स्तर ऊँचा होता है। इसके विपरीत सार्वजनिक ऋण के दुष्परिणाम भी है, जैसे देश के साधनों का शोषण, अपव्यय की प्रवृत्ति, स्वतंत्रता के खोने का भय, आर्थिक कमजोरियों को छुपाने में सफल । विकासशील देशों की समस्याएं विकसित देशों की समस्याओं से भिन्न होती है। विकाशील देशों में आर्थिक विकास को तीन तीव्र करना होता है साथ ही सरकार करारोपण, अनिवार्य ऋण एवं मुद्रा–प्रसार का सहारा लेना पड़ता है।

### 1.7 शब्दावली Keywords

1. सार्वजनिक ऋण /लोक ऋण (Public Debt)
2. भारत का लोक खाता (Public Account of India)
3. देनदारियाँ (Liabilities)
4. घरेलू / आन्तरिक ऋण (Internal debt)
5. बह्य / विदेशी ऋण (External / Foreign)
6. अल्पकालीन ऋण (Shorterm debt)
7. दीर्घकालीन ऋण (Long Term debt)
8. निधिकृत (Funded)
9. उपभोग ऋण (Consumption loans)
10. उत्पादक ऋण (Productive Loans)

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books):-

1. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
2. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
3. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
4. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021

### 1.1.9 प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the Question):-

1. सार्वजनिक ऋण से आय क्या समझते है।
2. सार्वजनिक ऋण एवं निजी ऋण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. सार्वजनिक का वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए।
4. सार्वजनिक ऋणों के सिद्धान्तों की विवेचना की कीजिए।
5. सार्वजनिक ऋणों के उपयोग, उत्पादन वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों को बताइए।
6. सार्वजनिक ऋणों के गुण–दोषों की विवेचना कीजिए।
7. भारतीय अर्थव्यव्था में सार्वजनिक ऋणों के योगदान व्याख्या कीजिए।

## 1.9 बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर (Objective Types questions Answer)

1. व्यक्तिगत ऋण व सार्वजनिक ऋण में अन्तर को बताने वाली बात कौन सी है।

   क. दायित्व का अन्तर  ख. भार एवं लाभ

   ग. क्षेत्र संबंध अन्तर  घ. साख संबंधी अन्तर

   (उत्तर क)

2. व्यक्तिगत ऋण लिया जाता है–

   क. सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति हेत  ख. व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु

   ग. क्षेत्र संबंधी अन्तर  घ. साख संबंधी अन्तर

   (उत्तर ख)

3. डाल्टन ने ऋण परिशोधन कोषों को कितने भागों में बांटा है।

   क. एक  ख. दो

   ग. पांच  घ. तीन

   (उत्तर ख)

4. सार्वजनिक ऋण होते है–

क. एच्छिक　　ख. अनिवार्य

ग. उपर्युक्त दोनों　　घ0 इनमें से कोई नहीं

(उत्तर क)

**खण्ड–5**

**इकाई–2**

# सार्वजनिक ऋण संस्थापित सिद्धान्त क्रियात्मक एवं क्षतिपूरक वित्त :

# Public Debt Established Principles of Functional and Compensatory Finance

## 1.0 परिचय :–

किसी देश की सरकार को दो स्रोतों से आय प्राप्त होती है, यथा, लोक राजस्व तथा लोक ऋण। लोक राजस्व से तात्पर्य सरकार की उस प्राप्ति से है जिसके सम्बन्ध में सरकार का कोई नैतिक दायित्व नहीं है कि वह उसे उन लोगों को वापस कर दे जिनसे ली गयी थी। इसके विपरीत लोक ऋण के सम्बन्ध में सरकार का यह नैतिक दायित्व है कि वह मुद्रा उन लोगों को लौटा दे जिनसे ली गयी थी। वर्तमान समय में राजकीय आय की तुलना में राजकीय व्यय अधिक होने लगा है। प्रतिवर्ष सार्वजनिक व्ययों में वृद्धि के कारण सरकारों को घाटे के बजट बनाने होते है। इन घाटों की पूर्ति के लिए सरकार अतिरिक्त साधन जुटाती है और उन साधनों में से मुख्य साधन घाटे की वित्त व्यवस्था है। वर्ष 1936 में, जब से कीन्स की विचार धाराओं का प्रादुर्भाव हुआ है, तब से घाटे की व्यवस्था का महत्व बढ़ गया है। लोक ऋण एक ऐसा विषय है जो विस्मय, अज्ञानता तथा भय से घिरा है। इसके विषय में एक लेखक का कहना है कि ''इतने अधिक के विषय में इतने लोगों ने कभी भी इतना कम नहीं समझा था।'' ("Never have so many understood to little about so much")। लोक ऋण के प्रति तीन दृष्टिकोण उल्लेखनीय हैं :

### 1.1 उद्देश्य (Object) :-

1. आर्थिक मन्दीकाल को दूर करना
2. बेरोजगारी को रोकना

3. प्राकृतिक साधनों का उचित दोहन

4. आर्थिक विकास।

(क) क्लासिकल विचारधारा (Classival Approach);

(ख) केन्द्रीय विचारधारा (Keynesian Approach), तथा

(ग) केन्सोत्तर विचारधारा (Post-Keynesian Approach)।

**1.2 क्लासिकल विचारधारा–**

इस विचारधारा के अन्तर्गत उन्नीसवीं सदी के अर्थशास्त्रियों तथा उनके नव–क्लासिकल उत्तराधिकारियों के दृष्टिकोण शामिल हैं।

सामान्यतः क्लासिकल लेखक लोक ऋण के विरूद्ध थे। उनकी यह मान्यता थी कि व्यक्तिगत उपभोक्ता तथा व्यावसायिक फर्म साधनों का अधिक कुशल उपयोग करते हैं। पूर्ण रोजगार की स्थिति में सरकार जिन साधनों को उधार लेती है वे निजी क्षेत्र में अधिक उपयोगी कार्य में लगे रहते हैं। एडम स्मिथ ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया था। इसका यह अर्थ नहीं है कि क्लासिकल अर्थशास्त्री किसी भी प्रकार के सरकारी ऋण के खिलाफ थे। वे न्यूनतम लोक व्यय का समर्थन करते थे। साथ ही, कर तथा ऋण के मध्य चयन करने में वे निम्न कारणों से कर के पक्ष में विचार व्यक्त करते थे :

(क) घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण लोक ऋण में वृद्धि होती है। चूंकि ऋण लोक व्यय की आसान वित्त व्यवस्था है, अतः ऐसी सम्भावना है कि सरकार फिजूलखर्च करे तथा दायित्वहीन हो जाए। फलतः लोक ऋण अर्थव्यवस्था पर निश्चित रूप से भार बन जाएगा।

(ख) लोक ऋण पर ब्याज के भुगतान तथा मूलधन की वापसी के अतिरिक्त कर लगाने की जरूरत होगी। ऐसा करारोपण कठिन हो सकता है क्योंकि सरकार की कर लगाने की क्षमता असीमित नहीं होती है।

(ग) घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रा की पूर्ति काफी बढ़ सकती है तथा मुद्रा–स्फीति का सृजन हो सकता है।

लेकिन उपरोक्त के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि क्लासिकल अर्थशास्त्री सभी प्रकार के लोक ऋण के विरोधी थे। वे उत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेने के पक्ष में थे। कारण यह है कि ऐसी पूंजी परियोजनाओं (Capital Projects) द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं को बेचकर जो रकम प्रापत की जाएगी उससे मूलधन तथा ब्याज का भुगतान किया जा सकता है। अतः अतिरिक्त कर लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इन्हें स्वयं परिसमापन परियोजना (Self-liquidating Projects) कहा जाता है।

**1.3 केन्सीय विचारधारा–**

ऐसा कहना सही नहीं होगा कि सभी क्लासिकल लेखक लोक ऋण के खिलाफ थे। एडम स्मिथ की पुस्तक Wealth of Nations (1776) के प्रकाशन के नौ वर्ष पूर्व 1767 में जेम्स स्टुअर्ट (James Stuart) ने यह विचार व्यक्त किया कि लोक ऋण को अर्थव्यवस्था के साम्य चक्र (Balance Wheel) के रूप में कार्य करना चाहिए। अर्थव्यवस्था की स्थिति के अनुसार लोक ऋण का समायोजन किया जाना चाहिए। आर्थिक समृद्धि के काल में पूर्ण रोजगार के स्तर पर लोक ऋण का अर्थ होगा ब्याज दर में वृद्धि तथा वाणिज्य एवं व्यापार पर अनुचित प्रभाव। किन्तु, मन्दीकाल में जब व्यापार में ह्रास होता है, लोक ऋण द्वारा व्यय में वृद्धि करके आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार लोक ऋण सन्तुलन चक्र हो जाता है।

किन्तु, ऐसे छुट–पुट विचार क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की प्रमुख विचारधारा के समुद्र में डूब गए। केन्स ने इस विचारधारा को पलट दिया। उसने यह स्वीकार नहीं किया कि हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली पूंजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयं ही पूर्ण रोजगार के साम्य पर पहुंच जाती है। उन्होंने बताया कि बड़े पैमाने पर अनैच्छिक बेरोजगारी के विद्यमान रहने पर भी अर्थव्यवस्था सन्तुलन में हो सकती है। यही केन्स की

अर्ध रोजगार साम्य (Underemployment Equilibrium) की धारणा है। इस स्थिति में सरकार द्वारा यदि कोई कदम नहीं उठाया गया तो साधन काफी लम्बे समय तक निजी क्षेत्र में बेकार पड़े रह सकते हैं। अतः यदि लोक ऋण द्वारा सरकार अपने व्यय में वृद्धि करके बेकार पड़े मजदूरों तथा अन्य साधनों को रोजगार देती है, तो इस क्रिया से निजी क्षेत्र को साधनों से वंचित नहीं किया जाता है। इसके विपरीत, स्थिति यह होगी कि समग्र उत्पत्ति एवं आय में वृद्धि होगी। अतः यह कहना सही नहीं है कि लोक ऋण हमेशा अनुत्पादक, स्फीतिजनक तथा भार होता है।

केन्स के अनेक अनुयायियों ने उपरोक्त विश्लेषण को दूसरे छोर पर ले जाकर कहा कि आन्तरिक ऋण के आकार के विषय में कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए। आन्तरिक ऋण तो केवल हस्तान्तरण भुगतान (transfer payments) है तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से रद्द (cancel) हो जाता है। अतः लोक ऋण की मात्रा के विषय में न सोचकर केवल उच्च स्तर पर रोजगार तथा आय के विषय में सोचना चाहिए। विचारों में इस परिवर्तन के साथ ही उभय बजट (double budget) की धारणा का विकास हुआ। उभय बजटों में से एक है राजस्व बजट (revenue budget) जिसमें चालू लाभ प्रदान करने वाले साधारण या परिचालन लोक व्यय (ordinary or operating public expenditure) को शामिल किया जाता है। दूसरा पूंजी बजट (capital budget) है जिसमें भावी लाभ प्रदान करने वाले पूंजीगत लोक व्यय को रखा जाता है। सन्तुलित बजट की धारणा का उपयोग केवल राजस्व बजट के लिए किया जाता है, किन्तु वह भी हमेशा नहीं। कुछ लोगों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वार्षिक बजट सन्तुलन की धारणा के स्थान पर चक्रीय बजट (cyclical budget) सन्तुलन का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। लक्ष्य होना चाहिए सम्पूर्ण व्यापार चक्र के दौरान बजट में सन्तुलन। यदि अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति दीर्घकालीन मन्दी (secular stagnation) की

ओर हो तो व्यापार चक्र के अच्दे वर्षों में भी बजट में अतिरेक (budget surplus) उचित नहीं होगा। इसका यह अर्थ है कि लोक ऋण में लगातार वृद्धि होती रहेगी।

केन्सीय धारणा का विकास एक अन्य ओर भी हुआ। पारम्परिक सरकारी बजट का स्थान राष्ट्रीय आर्थिक बजट ने ले लिया। सरकार की आय तथा व्यय तो राष्ट्रीय बजट का सिर्फ एक अंग है जबकि राष्ट्रीय बजट अर्थ–व्यवस्था के सभी अंगों का विस्तृत योग है। पूर्ण रोजगार के स्तर पर सरकार को राष्ट्रीय बजट में सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। इस बात का कोई महत्व नहीं कि इसके कारण सरकारी बजट में होता है या अतिरेक या सन्तुलन। अर्थ–व्यवस्था का क्रियाकालप ही मार्ग–दर्शन का कार्य करेगा, न कि लोक ऋण की प्रवृत्ति।

लोक व्यय के क्षेत्र में कार्यात्मक वित्त (functional finance) की धारणा को लागू करते हुए लर्नर (lerner) ने विचार व्यक्त किया कि सरकार को तभी ऋण लेना चाहिए जब वह यह चाहती हो कि मुद्रा के स्थान लोगों के पास बॉण्ड रहना चाहिए। इस क्रिया से बॉण्ड की कीमत घटेगी तथा ब्याज की दर बढ़ेगी। इसका प्रभाव यह होगा कि मुद्रा–स्फीति कम होगी। समग्र मांग में ह्रास तथा उत्पादक विनियोग के फण्ड की कमी होने की स्थिति में सरकार को चाहिए कि वह निजी क्षेत्र को ऋण दे या अपने व्यय में वृद्धि करे ताकि रोजगार एवं उत्पत्ति की गिरावट रुक सके। ऋण की अदायगी के लिए भी सरकार केन्द्रीय बैंक से ऋण ले सकती है। लर्नर के विचार में लोक ऋण के औचित्य की जांच समग्र मांग पर केवल इसके प्रभाव के आधार पर होनी चाहिए, लोक ऋण की मात्रा चिन्ता का विषय नहीं है। ऋण सेवा कोई समस्या नहीं है क्योंकि सरकार हमेशा ही केन्द्रीय बैंक से ऋण ले सकती है या मुद्रा छाप सकती है। कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत उपलब्ध उत्पत्ति तथा समग्र मांग के मध्य सही सन्तुलन कायम रखा जाता है। अतः मुद्रा–स्फीति का कोई भय नहीं रहेगा।

**1.4 केन्सोत्तर विचारधारा–**

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा युद्धोत्तर काल में लोक ऋण के परिमाण में अत्यधिक वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय लोक ऋण की मात्रा जो 1940 में $ 50.9 बिलियन थी, 1946 में बढ़कर $ 259.5 बिलियन तथा 1960 में $ 290.4 बिलियन हो गयी। लोक ऋण के विशाल आकार को देखते हुए अर्थशास्त्रियों ने इसके विषय में फिर से सोचना शुरू किया। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप केन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने लोक ऋण की पारम्परिक धारणा के अन्तर्गत केन्सीय अर्थशास्त्र द्वारा लाए गए अधिकांश सुधारों को स्वीकार किया, लेकिन लोक ऋण के प्रबन्ध तथा लोक ऋण एवं मुद्रा पूर्ति के अन्तर–सम्बन्धों पर विशेष ध्यान देने की बात कही।

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आन्तरिक ऋण के कारण कर तथा ऋण सेवा के रूप में हस्तान्तरण भुगतान कई क्रमों में होते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के ख्याल से वे एक–दूसरे को निरस्त (cancel) कर देते हैं। किन्तु, लोक ऋण के विशाल आकार को बिना किसी महत्व का बताकर टाला नहीं जा सकता। अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह विचार व्यक्त किया कि आज का ऋण कल के लिए भार बन जाएगा।

लोक ऋण के सम्बन्ध में मौजूदा धारणा क्लासिकल विचारधारा को पूर्णरूप में अस्वीकार नहीं करती है। यह स्वीकार किया जाता है कि जब बेरोजगारी बड़े पैमाने पर विद्यमान रहती है, तब लोक ऋण के कारण निजी क्षेत्र साधनों से वंचित नहीं होता, किन्तु यह स्वीकार नहीं किया जाता कि पूर्ण रोजगार के समय सरकार द्वारा ऋण लेने से मुद्रा–स्फीति का सृजन होगा ही। सभी कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि ऋण के द्वारा उन साधनों को प्राप्त किया जाता है कि जनका उपयोग इसकी अनुपस्थिति में उपभोग पर किया जाता तो यह कर की तुलना में अधिक स्फीतिजनक नहीं हो सकता। विशाल मात्रा में लिया गया आन्तरिक ऋण कई समस्याओं को जन्म देता है। यह मौद्रिक नीति को जटिल बनाने के साथ–साथ प्रबन्ध की कठिनाइयों को जन्म देता है। बजट सन्तुलन के सम्बन्ध में भी हमारी धारणा में बदलाव आया है। बजट में वार्षिक सन्तुलन की

धारणा बिल्कुल बेकार नहीं है। राष्ट्रीय आर्थिक बजट एक महत्वपूर्ण धारणा है। ऐसे बजट में सरकारी बजट के कार्यकलापों की तुलना में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मसग्रेव ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि राजस्व बजट में लोक व्यय की वित्त–व्यवस्था कर आय के द्वारा की जानी चाहिए, जबकि पूंजी बजट में यह ऋण के द्वारा होनी चाहिए। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं है कि बजट में कोई घाटा हो हीं नही।

क्लासिकल तथा केन्सीय दोनों दलों के अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि आन्तरिक एवं बाह्य ऋण में अन्तर करना चाहिए। बाह्य ऋण के कारण ऋणकर्ता देश को घरेलू उत्पादन से अधिक मात्रा में वस्तुओं को खरीदने का अवसर मिलता है। इस प्रकार बाहरी ऋण से यह सम्भव होता है कि पारिवारिक एवं व्यावसायिक व्यय को विस्थापित किए बिना ही सरकार अपने व्यय के लिए वित्त जुटाए। किन्तु, बाह्य ऋण पर ब्याज के भुगतान तथा मूलधन की वापसी के समय साधनों का विदेशों में स्थानान्तरण होता है, जबकि घरेलू ऋण की स्थिति में इन कार्यों के लिए देश के निवासियों के मध्य क्रय शक्ति का केवल पुनर्आबंटन होता है। बाहरी ऋण पर ब्याज का भुगतान तभी सम्भव है जब सरकार और अधिक कर्ज ले या अनुदान प्राप्त करे या अधिक निर्यात करे (अर्थात् उपभोग तथा घरेलू विनियोग पर घरेलू उत्पादन की तुलना में कम वस्तुओं का उपयोग करे)। कुल बाहरी कर्ज कम तभी हो सकता है जब सरकार अनुदान प्राप्त करती है या निर्यात अधिक करती है या कर्ज भुगतान करने से इन्कार कर देती है। स्पष्ट है कि बाह्य ऋण को प्राप्त करने या इसके पुनर्भुतान के लिए जिन विषयों पर विचार करना चाहिए वे आन्तरिक ऋण से अलग हैं।

### 1.5 मौजूदा धारणा (Current Attitude)–

राजा चेल्याह का कहना है कि 1980 के दशक के लोक ऋण में वृद्धि को खतरनाक समझा जाने लगा। इसका कारण है कि लोक ऋण में वृद्धि के कारण निजी निवेश में कमी। किन्तु, दूसरा एवं अधिक महत्वपूर्ण कारण यह मान्यता है कि लोक ऋण के

वित्त पोषण के आधार पर किया गया अधिकांश लोक व्यय अनुत्पादक पाया गया है। 1987 में पोजनर (Michael Posner) ने स्पष्ट रूप से बताया कि मन्दी के समाधान के लिए अनुत्पादक पूंजी परियोजनाओं (unproductive capital projects) पर केन्स ने लोक व्यय में जिस असीमित वृद्धि की बात कही वह सहने योग्य नहीं है। लोक ऋण का वह भाग चिन्ता का विषय है जिस पर ब्याज चुकाने के लिए पूर्ण रूप से या अधिकांश में कर राजस्व पर निर्भर करना पड़ता है। इसी सन्दर्भ में डान्डेकर (V.M. Dandekar) का कहना है कि जब ब्याज का भुगतान उधार लेने की क्षमता को पार कर जाता है, देश ऋण जाल (debt trap) में फंस जाता है। (Economic and Political Weekly, April 10, 1993, p. 691)।

चेल्याह का कहना है कि निम्न उद्देश्यों के लिए लोक ऋण को उचित समझा जा सकता है :

(i) कर की दर के उतार–चढ़ाव को रोकने के लिए लोक ऋण की आवश्यकता हो सकती है। अलाभकर पूंजी निर्माण व्यय अक्सर भारी मात्रा में करना होता है। यदि ऐसे लोक व्यय का वित्त पोषण कर राजस्व से किया जाए तो कर की दर ऐसे पूंजी निर्माण व्यय के वर्ष में अधिक होगी तथा उस वर्ष में यह दर कम होगी जिस वर्ष ऐसा व्यय नहीं होगा। न केवल कर की दर ही कभी अधिक और कभी कम होगी, बल्कि ऊंची दर के वर्ष में ऐसी दर विकृति (distortion) पैदा करेगी। अतः ऐसे पूंजी निर्माण का वित्त पोषण लोक ऋण के माध्यम से करना उचित होगा। उचित यह भी होगा कि ऐसी परियोजना (project) के जीवनकाल मेंही ऋण का भुगतान कर दिया जाए। यदि ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो ऐसी परिसम्पत्ति (asset) की फिर से स्थापना (replacement) के लिए पर्याप्त मूल्य–ह्रास (depreciation) का प्रावधान किया जाए।

(ii) आर्थिक स्थिरता के लिए औद्योगिक देशों में चक्रीय मन्दी या बेरोजगारी को समाप्त करने में घाटे के वित्त पोषण का उपयोग किया गया है। इसलिए लोक ऋण के माध्यम से लोक व्यय में वृद्धि करना उचित ठहराया जा सकता है।

(iii) युद्ध या अन्य संकटकालीन व्यय के वित्त पोषण के लिए भी लोक ऋण उचित समझा जा सकता है क्योंकि ऐसा नहीं करने पर कर में अत्यधिक वृद्ध करनी होगी।

(iv) यों तो वैसे चालू व्यय के वित्त पोषण के लिए भी लोक ऋण को उचित ठहराया जा सकता है जिससे किसी भौतिक पूंजी का निर्माण तो नहीं होता है, किन्तु मानवीय पूंजी का निर्माण होता है या जिसका पूंजी की उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(v) लाभकर पूंजी निर्माण के लिए भी सरकार द्वारा ऋण लेना उचित ठहराया जा सकता है। निवेश के लिए उधार देने के लिए सरकार ऋण ले सकती है। अल्पकविसित देशों में पूंजी बाजार के विकसित न होने के कारण सरकार के लिए ऋण लेकर शेयर खरीदना भी उचित ठहराया जा सकता है।

## 1.6 सारांश (Summary) :-

लोक ऋण के सुचारू और न्यूनतम सम्भव लागत पर प्रबंधन और चयनित सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इसके नीति अस्त्र के रूपमें प्रयोग के मिश्रण को ऋण प्रबंधन कहा जा सकता है। प्रत्येक सरकार ऋण की ब्याज लागत को न्यूनतम संभव स्तर पर रखने का प्रयास तो करेगी लेकिन यदि इस लक्ष्य की प्राप्ति में किसी अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य का परित्याग करना पड़ता हो तो सरकार ब्याज की लागत में उद्देश्यों में चक्रीय उतार–चढ़ाव से छुटकारा तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया को सक्षम बनाना है, तो सार्वजनिक ऋण से संबंधित विचारधाराये जैसे–क्लासिक विचारधारा, केन्सीय विचार धारा, केन्सोत्तर विचार

धारा, मौजूदा धारणा, लोक ऋण की तकनीक , भार की धारणा, पर वचार किया जाना चाहिए साथ ही मंदी–काल से ऊपर आने के लिए घाटे की व्यवस्था की अति आवश्यक है। घाटे की व्यवस्था सार्वजनिक ऋणों के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक है।

## 1.7 शब्दावली (Key words) :-

1. घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing)
2. साख उपयोग में वृद्धि (usein Credit)
3. बजार ऋण (Market Borrowing)
4. तैरता या अस्थायी ऋण (Floating or temporary debt)
5. अनिधिक ऋण (Unfunded debt)
6. सकर (Hybid)
7. कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)
8. जबरन (Fored)

## 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books):-

1. Prest A.R. : Public finacing in Theory and Practice.
2. Bhargbva ; R.N. : The theory and working of Union fnance in India.
3. Lakdawala ; D.T : Taxation and the plan
4. Groves, H.M : Financing Government

5. Tripathy, R.N : Fiscal Policy and Economy development in India

6. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019

7. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03

8. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष– 2014

9. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002

10. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021

**1.9 प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the Question) :-**

1. क्लासिकल विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।
2. केन्सीय विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।
3. केन्सोत्तर विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।
4. मौजूदा धारणा की व्याख्या कीजिए।
5. लोक ऋण की तकनीक को बताइए।
6. भार की धारणा को समझाइए।
7. ऋण प्रबंध के सिद्धान्त को समझाइये?
8. ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण पर अपना मत व्यक्त कीजिए।

9. विदेशी ऋण का बोझ पर चर्चा कीजिए।

## 1.10 बिहुविक्लपीय प्रश्न (Objective type question) :-

1. घाटे की वित्त व्यवस्था का महत्व कब से अस्तित्व में आया था?

   क. 1776 ख. 1936 ग. 1919 घ0 1932

   (उत्तर ख)

2. घाटे की विता व्यवस्था का क्या उद्देश्य है–

   क. मौद्रिक नियन्त्रण ख. सरकारी नियंत्रण

   ग. मन्दीकाल को दूर करना घ. बचत

   (उत्तर ग)

3. घाटे व्यवस्था से प्रभावित होता है–

   क. सरकारी नियंत्रण ख. बेरोजगारी

   ग. उपभोग घ. युद्ध

   (उत्तर ग)

खण्ड–05

इकाई–03

# आन्तरिक ऋण एवं बाह्य ऋण, सार्वजनिक ऋणों के मुद्दे

# Internal and External debt, Public debt Issues

## 1.0 परिचय (Introduction) :–

हमारे देश के लिए बाह्य ऋणों के औचित्य को सिद्ध कर दिया है। ऋणों की सहायता से हम विकस कर पाए। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद हमारा संचित मुद्रा–कोष समाप्त हो गया था, जबकि योजनाओं को यहीं पर समाप्त नहीं करना था। प्रथम योजना के अधूरे कामों को पूरा करना था तथा नई योजना को शुरूआत करनी थी। ऐसी दशा में योजनाओं की सफलता के लिए विदेशी ऋणों की आवश्यकता थी। भारत ने ऋण लेते समय ऋणदाता राष्ट्र का दबाव स्ीकार नहीं किया है। हम अपनी अर्थव्यवस्था को और अधिक उत्पादक बनाये। अपने देश में उन वस्तुओं के व्यापार को बढ़ावा दे जिन्हें हम लगातार विदेशों से आपा करते आ रह है या जिन वस्तुओं की मांग विश्व बाजार में पयाप्त है। ऐसा करने से हमारे आयात हतोत्साहित होंगे और निर्यात प्रोत्साहित। देश से विदेशों को हाने वाली पूँजी की उड़ान को रोका जा सकेगा और निर्यातवर्द्धन से विदेशी पूँजी स्वदेश में आती रहेगी। इस प्रकार विदेशी ऋणों का भार कम होता जायेगा। आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना विदेशी ऋणों से छुटकारा नहीं मिल सकता है। भारत के संबंध में कहना है कि वह अपने गैर विकास व्यय में कमी करे और आन्तरिक साधनों का उपयोग मितव्ययियता पूर्वक करें। व्यक्तिओं के उपयोग पर धीरे–धीरे नियंत्रण लगाया जाए तथा बेकार पड़े हुए साधनों का उचित तरीके से उपयोग किया जाए। यह भी सत्य है कि विदेशों से प्राप्त ऋणों का अनुचित उपयोग किया गया है। विशाल मात्रा में विदेश ऋणों के लेन के बाद भी जनसाधारण का कोई

विशेष हित नहीं हो सका है। प्रश्न उठत है कि अतिरिक्त विदेशी सहायता तथा घरेलू साधनों के होते हुए विनियोग का स्तर इतना निम्न क्यों हो गया है ? किसी देश का काम बिना ऋण के नहीं चल सकता है और केवल ऋणों के सहारे अपनी अर्थव्यवस्था के पाला भी नहीं जा सकता है।

## 1.2 उद्देश्य (Object) :-

1. आर्थिक विकास
2. जनकल्याण में वृद्धि
3. उत्पादकता में वृद्धि
4. निर्यात को प्रोत्साहित करना
5. आयात को हतोत्साहित करना

## 1.3 आन्तरिक ऋण

आन्तरिक ऋण वह होता है जो राज्य अपने देश के लोगों व वहाँ की संस्थाओं से लेता है। इस प्रकार के ऋण के भार से सम्बन्धित बातें इस प्रकार हैं–

1. **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार (Direct Money Burden)**– आन्तरिक ऋणों में केवल धन का पुनर्वितरण होता है, इसलिये ऐसे ऋणों का कोई प्रत्यक्ष द्राव्यिक भार नहीं होता है, क्योंकि सरकार जनता से ऋण लेती है और उन्हीं पर कर लगाकर उन्हीं को वापस कर देती है।

2. **परोक्ष मौद्रिक भार (Indirect Money Burden)**– जब सरकार जनता से ऋण लेकर विकासात्मक कार्यों पर व्यय करती है तो इससे अनेक वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं। यही आन्तरिक ऋण का परोक्ष मौद्रिक भार है।

3. **प्रत्यक्ष वास्तविक भार (Direct Real Burden)**– यह भार इस बात पर निर्भर रहता है कि समाज के किस वर्ग से ऋण दिया है, अर्थात् सरकारी बॉण्ड

किस प्रकार के लोगों के पास है। यदि ऋण–पत्रों को निर्धन व्यक्तियों ने खरीदा है और इसके भुगतान के लिये सरकार ने धनी वर्ग पर कर लगाया है, तो ऋण का वास्तविक भारत कम होगा। परन्तु व्यावहारिक जीवन में धनी वर्ग ही सरकार के ऋण–पत्र खरीदते हैं और निर्धन वर्ग को कर देकर उनका भुगतान करना पड़ता है, इसलिये अधिकांश आन्तरिक ऋणों का वास्तविक भार बहुत अधिक हुआ करता है।

इसके अतिरिक्त, आन्तरिक ऋणों का प्रत्यक्ष वास्तविक भार एक–दूसरे दृष्टिकोण से भी बहुत अधिक पड़ता है। अधिकांश ऋण–पत्र वृद्ध व्यक्तियों द्वारा क्रय किये जाते हैं जबकि उनका भुगतान नवयुवकों को अपनी वर्तमान आय में से करना पड़ता है। इस प्रकार, धन का हस्तान्तरण तरूण वर्ग से वृद्ध वर्ग की ओर, और क्रियाशील व्यक्तियों से निष्क्रिय लोगों की तरफ होने लगता है।

4. **अप्रत्यक्ष वास्तविक भार (Indirect Real Burden)**– आन्तरिक ऋणों का अप्रत्यक्ष भार भी देश के नागरिकों पर पड़ता है, क्योंकि ऋणों का शोधन करने के लिए कर लगाना पड़ता है। इस कारण करदाताओं की कार्य और बचत करने की इच्छा व शक्ति हतोत्साहित होती है और उत्पादन गिरता है।

रेशफोर्ड के मतानुसार, आन्तरिक ऋण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव ऋण का भावी आय पर प्रभाव है। भारी करारोपण के कारण जो (ऋण का शोधन करने के लिए आवश्यक होता है) विनियोग रूक जाता है।

संक्षेप में, यद्यपि आन्तरिक ऋणों का प्रत्यक्ष द्राव्यिक भार कुछ नहीं होता है, परन्तु प्रत्यक्ष और परोक्ष वास्तविक भार बहुत अधिक होता है।

### 1.4 बाह्य ऋणों का भार (Burden of External Debts)

बाह्य ऋण वे ऋण होते हैं, जिनमें मूलधन व ब्याज का शोधन विदेशियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को किये जाते हैं। बाह्य ऋण के भार से सम्बन्धित कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं–

**(अ) प्रत्यक्ष द्राव्यिक भार (Direct Money Burden)–** यह भार उस राशि से नापा जाता है जो ऋणी देश को ब्याज का मूलधन के रूप में ऋणदाता देश को देनी होती है। डाल्टन के अनुसार, ''बाह्य ऋण का प्रत्यक्ष बोझ सरल होता है। किसी भी दिये हुए समय में प्रत्यक्ष द्राव्यिक बोझ चुकायी हुई धनराशि से नापा जाता है जो ब्याज तथा मूलधन चुकाने के लिये बाहरी ऋणदाता को दी जाती है।''

**(ब) प्रत्यक्ष वास्तविक भार (Direct Real Burden)–** प्रत्यक्ष वास्तविक भार का अनुमान उस हानि से लगाया जाता है जो ऋणी देश के नागरिकों को विदेशी भुगतान के बदले में देश की वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात हो जाने से उठानी पड़ती है। अतः प्रत्यक्ष वास्तविक भार का आशय आर्थिक कल्याण की कमी की मात्रा से है। वास्तविक भार की मात्रा इस बात पर निर्भर करेगी कि किस वर्ग को आर्थिक कल्याण से किस सीमा तक वंचित रहना पड़ता है। यह प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस स्थिति में कम होगा जबकि अधिकांश विदेशी ऋणों का भुगतान निर्धनों की तुलना में धनी वर्ग अधिक करते हैं।

**(स) परोक्ष द्राव्यिक तथा वास्तविक भार (Indirect Money and Real Burden)–** ऐसे ऋणों का परोक्ष तथा वास्तविक भार उत्पादन की कमी के द्वारा पड़ता है। बाह्य ऋण से उत्पादन दो प्रकार से हतोत्साहित होते हैं– (1) एक तो बाह्य ऋणों का शोधन करने के लिये भारी करारोपण करना पड़ता है, जिससे ऋणी देश के नागरिकों के कार्य तथा बचत करने की सामर्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, तथा (2) दूसरा, सरकार को ऋणों के भुगतान करने के लिए बहुत से सार्वजनिक व्ययों में कमी करनी पड़ती है जिससे उत्पादन हतोत्साहित होता है, परन्तु यह विचार पूर्णतया सत्य नहीं है। बाह्य ऋणों का प्रयोग यदि उत्पादक कार्यों के लिये किया जाता है तो उससे देश का औद्योगिक विकास होगा और उत्पादन में वृद्धि होगी, जिससे द्राव्यिक भार भी घटेगा क्योंकि उद्योग के लाभ में से विदेशी ऋणों का शोधन कर दिया जायेगा। इस प्रकार वास्तविक भार भी कम

हो जायेगा, क्योंकि उत्पादन बढ़ने से वस्तुयें अधिक मात्रा में तथा कम दामों में उपलब्ध हो जायेगी, जिससे नागरिकों के आर्थिक कल्याण में कमी नहीं आयेगी।

**डाल्टन** के अनुसार, ''बाह्य ऋण का परोक्ष बोझ, द्राव्यिक अथवा वास्तविक उत्पादन पर अंकुश लगाने से उत्पन्न होता है।

## 1.5 आन्तरिक व बाह्य ऋण (Internal and External Debts)–

आन्तरिक ऋण वे ऋण हैं जो देश के भीतर देश के नागरिकों से, बैंकों से तथा अन्य संस्थाओं से प्राप्त होते हैं, और बाह्य ऋण वे हैं जिन्हें विदेशों से प्राप्त किया जाता है। जब आन्तरिक ऋण प्राप्त नहीं होते हैं तब बाह्य ऋणों को लिया जाता है। आन्तरिक ऋणों के भुगतान की समस्या इतनी नहीं जितनी कि बाह्य ऋणों की होती है, क्योंकि आन्तरिक ऋणों का भुगतान देश की मुद्रा में किया जाता है और देश के नागरिक सरकार को ऋण अदा करने के लिए बाध्य भी नहीं कर सकते हैं, जबकि बाह्य ऋणों का भुगतान उसी देश की मुद्रा में करना होता है और बाह्य ऋणों की अदायगी के लिए दबाव भी पड़ सकता है। आन्तरिक ऋणों पर जो ब्याज दिया जाता है वह ब्याज दिया जाता है उस ब्याज का भुगतान विदेशी नागरिकों को करना होता है। आन्तरिक ऋण इच्छित व अनिच्छित दोनों ही हो सकते हैं, परन्तु बाह्य ऋण, ऋण देने वाले राष्ट्र की इच्छा के विरूद्ध नहीं लिये जा सकते हैं। आन्तरिक ऋणों को प्राप्त करते समय सरकार देश के लोगों पर दबाव डालत सकती है, परन्तु बाह्य ऋणों में ऐसा सम्भव नहीं।

**आन्तरिक ऋणों का भार–** आन्तरिक ऋणों से देश का धन देश के ही भीतर रहता है। इन ऋणों से देश के भीतर धन का पुनर्वितरण होता है, इसलिए इन ऋणों का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं पड़ता है। जहाँ तक वास्तविक भार का प्रश्न है वह इस बात पर निर्भर करता है कि ऋणों का उपयोग कैसे किया जा रहा है और उन्हें कहाँ से प्राप्त किया जा रहा है। यदि ऋणों से आय की असमानता बढ़ती है या धनी व्यक्तियों से ऋण लेकर उसके भुगतान के लिए निर्धनों पर कर लगाये गये तो इससे वास्तविक भार बढ़ेगा। यदि निर्धनों से ऋण लिया जाता है और ऋण के भुगतान के लिए धनिकों पर कर लगाये जाते हों तो वास्तविक भार कम होगा।

ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों में करने पर वास्तविक भार में कमी होगी और अनुत्पादक कार्यों से वास्तविक भार में वृद्धि होगी। उत्पादक कार्यों से लोगों की आय में वृद्धि होती है, रोजगार के लिए नये–नये अवसर प्राप्त होते हैं, जिससे वास्तविक भार में कमी होगी। यदि ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों में होता है, तो इससे आय, उत्पादन व रोजगार में वृद्धि नहीं होगी, फलस्वरूप वास्तविक भार में वृद्धि होगी।

युद्ध आदि के संचालन के लिए गये ऋण का भार भी व्यक्तियों कोसहन करना पड़ता है। युद्ध के समय मूल्यों में वृद्धि के कारण व्यक्तियों का जीवन–स्तर प्रभावित हो जाता है। युद्ध की समाप्ति के बाद बेरोजगारी बढ़ती है। यद्यपि वस्तुओं के मूल्यों में कमी होती है, परन्तु मुद्रा की कमी के कारण इसका प्रभाव भी लोगों पर पड़ता है जिससे वास्तविक भार में वृद्धि हो जाती है।

**बाह्य ऋणों का भार–** आन्तरिक ऋण–भार की तरह बाह्य ऋण–भार भी देश के नागरिकों को वहन करना पड़ता है। ऐसे ऋणों का मौद्रिक भार उस राशि से मापा जाता है जो ऋणी देश मूलधन और ब्याज के रूप में देता है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस हानि से मापा जा सकता है जो धन ऋणी देश से ऋणदाता देश को देने के बाद वहाँ के नागरिकों को सहन करनी होगी। यदि ऐसे ऋणों को चुकाने के लिए अमीर लोगों पर कर लगाया जाता है तो वास्तविक कर–भार कम होगा। इसके विपरीत, यदि निर्धनों से कर वसूल करके ऋण व ब्याज का भुगतान किया जाता है तो वास्तविक कर–भार अधिक होगा। कुछ लोगों का कहना है कि बाह्य ऋणों का वास्तविक भार बुरा नहीं है; क्योंकि बाह्य ऋणों की सहायता से बड़े पैमाने पर देश में आर्थिक विकास होता है, जिससे देश में उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होती है। चूँकि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, इसलिए लोगों की करदेय–क्षमता भी बढ़ती है। अतः वास्तविक भार अधिक नहीं होता है। यदि बाह्य ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए होता है तो इससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी। लोगों की करदेय–क्षमता भी नहीं बढ़ेगी और ऐसी दशा में वास्तविक भार बढ़ेगा।

**1.6 बाह्य ऋणों के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of External Debts)–** बाह्य ऋणों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :

(1) **युद्ध का संचालन–** युद्ध के समय आन्तरिक ऋण प्राप्त नहीं हो सकते हैं इसलिए बाह्य ऋणों की सहायता ली जाती है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसने युद्ध के संचालनार्थ विदेशों से ऋण न लिया हो। द्वितीय विश्वयुद्ध में इंगलैण्ड, जर्मनी आदि अनेक देशों ने विदेशी ऋण लेरक युद्ध का संचालन किया था। आज भी युद्धों के संचालन के लिए विदेशी ऋणों की माँग बढ़ती जा रही है।

(2) **संकटकालीन स्थिति–** प्राकृतिक प्रकोपों जैसे भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि से देश को संकट से गुजरना पड़ता है। देश के पास इस क्षतिपूर्ति के लिए साधनों का अभाव रहता है। लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं रह जाती है कि वे स्वयं इसकी क्षति पूर्ति के लिए साधनों का अभाव रहता है। लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं रह जाती है कि वे स्वयं इसकी क्षति पूर्ति कर सकें। स्वयं सरकार भी ऐसी दशा में अपने देश के नागरिकों से ऋण प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती है। तब उसके सामने बाह्य ऋणों को प्राप्त करने के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं रह जाता है।

(3) **आर्थिक विकास–** आर्थिक विकास की समस्या विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में अधिक है। इन देशों में कृषि की प्रधानता, अधिक जनसंख्या, बचत व पूँजी की कमी, अशिक्षा, बीमारी व परम्परागत व्यापार के कारण साधनों की कमी रहती है। साधनों के अभाव में ये देश अपने बलबूते पर अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकते हैं। इसलिए बिना बाह्य ऋणों की सहायता के इन देशों का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। क्योंकि इन देशों को धन के अतिरिक्त वैज्ञानिक, तकनीशियन, यन्त्र व मशीनों आदि को विदेशों से आयात करना होता है, अतः न चाहते हुए भी विदेशी ऋण लेना आवश्यक है।

(4) **विदेशी विनिमय–** विदेशी विनिमय के लिए भी बाह्य ऋणों का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस देश के निर्यातों की अपेक्षा आयात अधिक होते हैं वह देश आयातों का भुगतान करने के लिए ऋणों की सहायता लेता है।

(5) **पुनर्निर्माण–** विनाशकारी घटनाओं के कारण देश के सामने पुनर्निर्माण की समस्या होती है, क्योंकि इसकी क्षतिपूर्ति के लिए बहुत बड़े पैमाने पर व्यय करना पड़ता है।

जैसे युद्ध के समय हवाई पट्टियों व रेलवे लाइनों की तोड़–फोड़, बन्दरगाहों के विनाश, बाँध व कल–कारखानों के ऊपर किये गये हवाई हमलों से देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ ही टूट जाती है। इन सबके पुनर्निर्माण के लिए बाह्य ऋण उपयुक्त होते हैं।

**1.7 बाह्य ऋणों के विपक्ष में तर्क (Arguments against External Debts)**– बाह्य ऋणों में अनेक दोष हैं। इनके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये गये हैं :

(1) **धन का पलाचन–** बाह्य ऋणों के विपक्षी में यह कहा जाता है कि देश से विदेशों को लगातार ब्याज के रूप में धन जाता रहता है। यदि विदेशी ऋणों की जगह स्वदेशी ऋण लिया गया होता, तो धन को विदेशों में जाने से रोका जा सकता था तथा इस धन का उपयोग देश में हो सकता था। इसलिए बाह्य ऋणों से देश को क्षति होती है।

(2) **दासता को जन्म देने वाला–** बाह्य ऋणों के कारण ऋणी राष्ट्र बाहरी दबाव में रहता है, उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचायी जा सकती है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता है। ऋणदाता राष्ट्र के द्वारा समय–समय पर ऋणी राष्ट्र के साथ राजनीतिक सौदेबाजी की जाती है, और कभी–कभी तो राजनीतिक हस्तक्षेप भी किया जाता है। फलतः एक ऋणी राष्ट्र दास का–सा जीवन व्यतीत करता है।

(3) **मितव्ययता में कमी–** बाह्य ऋणों की राशि बहुत बड़ी होती है, इसलिए यह कहा जाता है कि सरकार इस राशि का उपयोग सोच–स्मझकर नहीं करती है। जो राष्ट्र ऋण लेने का आदी बन जाता है वह हमेशा ऋण लेता रहता है, और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह सही ढंग से नहीं कर पाता है।

बाह्य ऋण के पक्ष व विपक्षी में तर्कों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रायः ऋणों को लेना अनुचित नहीं है, क्योंकि लाभ और हानियाँ तो होती ही रहती हैं; परन्तु बाह्य ऋणों की हानियों की अपेक्षा लाभ अधिक हैं। इसलिए बाह्य ऋणों को त्यागा नहीं जा सकता है।

## 1.8 उत्पादक व अनुत्पादक ऋण (Productive and Unproductive Debts)–

सार्वजनिक ऋण को उत्पादक व अनुत्पादक दो भागों में बाँटा जा सकता है। उत्पादक ऋण को सक्रिय ऋण (Active Debt) भी कहते हैं। अनुत्पादक ऋण को निष्क्रिय ऋण (Passive Debt) या मृत ऋण (Dead Weight Debt) कहते हैं। उत्पादक ऋण, जैसाकि शब्द से ही स्पष्ट है, उन ऋणों को कहते हैं जो उत्पादन के कार्यों में सहायक होते हैं, जैसे नदी–घाटी योजना, जल–कल, यातायात, लौह–इस्पात, खाद व सीमेण्ट के कारखानों में लगाया गया ऋण उत्पादक है। इन योजनाओं पर लगायेगये ऋण के भुगतान की समस्या नहीं होती है। कुछ समय के बाद इन योजनाओं से उत्पादन व आय प्राप्त होने लगी है जिससे ब्याज व मूलधन की अदायगी की जाती है।

अनुत्पादक ऋण वे हैं जो प्रत्यक्ष रूप स मौद्रिक लाभ नहीं देते हैं। इन ऋणों के उपयोग से आय देने वाली सम्पत्ति का भी सृजन नहीं होता है। इन ऋणों का उद्देश्य लाभ कमाना न होकर लोक–हित को बढ़ाना है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमारी, बेरोजगारी भत्त, वृद्धावस्था पेन्शन, आवास, पौष्टिक भोजन, मनोरंजन के साधनों आदि पर व्यय किया गया ऋण अनुत्पादक ऋण कहा जायेगा। क्योंकि अल्पकाल में इन ऋणों से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है, परन्तु दीर्घकाल में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी योजनाओं से समाज लाभान्वित होगा। यदि ऋणों का उपयोग तरणताल, रात्रि–नृत्य–क्लबों व नशीली वस्तुओं के उत्पादन के लिए किया जाता है तो इस प्रकार के ऋणों को पूर्णतया अनुत्पादक कहा जायेगा। श्रीमती हिक्स ने अनुत्पादक ऋणों को मृत ऋण कहा है तथा उत्पादक ऋणों को सक्रिय ऋण; क्योंकि अनुत्पादक ऋणों के भुगतान की समस्या होती है जबकि उत्पादक ऋणों की कोई समस्या नहीं है।

## 1.9 ऐच्छिक एवं बलात् ऋण (Voluntary and Compulsory Debts)–

स्वभाव के अनुसार ऋणों को दो भागों में बाँटा गया है, जिसे हम ऐच्छिक एवं बलात् ऋण कहते हैं। जैसा कि ऐच्छिक शब्द का अर्थ है, बिना किसी दबाव के या बिना किसी विशेष प्रयत्न के जो ऋण सरकार को मिल जाते हैं उन्हें ऐच्छिक ऋण कहा जाता है। ऋणदाताओं के द्वारा ये ऋण सरकार को व्यापारिक उद्देश्यों तथा राजहित को ध्यान में रखते हुए दिये जाते हैं। इस प्रकार के ऋणों के लिए सरकार किसी प्रकार का दबाव नहीं डालती है; उसकी घोषणा सेही ये ऋण प्राप्त हो जाते हैं। ऐच्छिक ऋण आन्तरिक और बाह्य, दोनों ही होते हैं।

बलात् ऋण वे ऋण हैं जो दबाव से वसूल किये जाते हैं। जब सरकार को ऋणों की आवश्यकता होती है, और उसे आसानी से ऋण प्राप्त नहीं होता है, तो सरकार दबाव डाल कर ऋण वसूल करने का कार्य करती है। सरकार ऐसा तभी करती है जब उसके सामने राष्ट्रीय संकट होता है या सरकार को ऐच्छिक ऋण प्राप्त न हो। यह स्थिति तब उत्पन्न होती जब देश में सरकार की साख गिर चुकी हो या लोगों का विश्वास सरकार पर न हो। अतः ऐसी दशा में सरकार को विवश होकर अनिवार्य ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। प्राचीनकाल में अनिवार्य ऋणों को बड़ी मात्रा में लिया जाता था, परन्तु आज प्रजातान्त्रिक सरकारें अनिवार्य ऋणों पर विश्वास नहीं करती हैं।

## 1.10 शोध्य तथा अशोध्य ऋण (Redeemable and Irredeemable Debts)–

शोध्य ऋण उन्हें कहते हैं जिनका भुगतान ब्याज सहित एक निश्चित अवधि के भीतर कर देना होता है। अशोध्य ऋण उसे कहते हैं जिन पर केवल ब्याज दिया जाता है न कि मूलधन की अदायगी की जाती है। वर्तमान समय में अशोध्य ऋणों को नहीं लिया जाता है, क्योंकि इन ऋणों से सरकार कभी भी ऋण–मुक्त नहीं होती है, ब्याज के रूप में हमेशा एक निश्चित राशि का भुगतान करना ही पड़ता है; और ब्याज के भुगतान के लिए नागरिकों पर कर–भार बढ़ाया जाता है।

इसलिए इन ऋणों को अव्यावहारिक कहा जाता है। शोध्य ऋण अल्पकालीन, दीर्घकालीन या स्थायी या अस्थायी हो सकते हैं।

**शोध ऋणों के लाभ**– प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

**(i)** **संकट के समय सहायक**– अल्पकालीन संकट की पूर्ति के लिए जब सरकार को करों से आय प्राप्त नहीं होती है तब वह शोध्य ऋणों को लेती है। ये ऋण अल्पकालीन ऋणों के ही समान होते हैं। ऋण की राशि कम होने के कारण ये ऋण प्राप्त हो जाते हैं।

## 1.11 सारांश (Summary) :-

किसी समय यह धारणा थी कि सार्वजनिक ऋण लेना रोग थ्ज्ञा, जिसे दर करने में ही अच्छा माना जाता है। यदि किसी कारण सार्वजनिक ऋण लने की आवश्यकता पड़ भी जाए तो इससे यथासम्भ्ज्ञव जल्दी छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए। सार्वजनिक ऋण लेकर सरकारें निरर्थक युद्धों तथा विविध प्रकार की मदों पर वयय कर देती थी। साधारणः सार्वजनिक ऋण सरकारी अपव्यय का एक प्रतीक माना जाता है। लेकिन वर्तमान में सरकार का उधार लेना उचित माना जाता है जैसे– संतुलित बजटीय नीति का अनुपालन करते हुए भी सरकार को प्राप्तियां और उत्तरदायित्वों में अल्पावधिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिससे उधार लेना पड़ सकता है साथ ही युद्ध , प्राकृतिक आपदा होने के कारण सरकार को उधार लेने की आवश्यकता पड़ सकती है। आधुनिक आर्थिक चिन्तर में सरकार की बजटीय नीतियों का एक अग्रणी स्थान है। अधिकतर सरकारों का भी यह मत है कि उन्हें लोक–कल्याण और अर्थव्यवस्था के विकास हेतु ऋणों की आवश्यकता पड़ती है। उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इतने अधिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है कि अधिकतर सरकारों भी कर राजस्व तथा अन्य कर–भिन्न प्राप्तियां अपर्याप्त रहती है। तथा उन्हें उधार लेना पड़ता है। इस प्रकार सार्वजनिक ऋण के भुगतान के लिए कर राजस्व में दीर्घकालीन वृद्धि की आशा की जा सकती है।

## 1.12 शब्दावली (Key words) :-

1. उत्पादिक ऋण (Productive debt)
2. साधारण ऋण (Ordinary debt)
3. युद्धोत्तर (post war Period)
4. विदेशी (External debt)
5. आन्तरिक ऋण (Internal Debt)
6. घाटे का बजट (Deficit Financeing )
7. वर्तमान स्थिति (present position)
8. अनिधिवद्ध (unfunded)

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books) :-

1. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
2. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
3. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
4. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021

**1.14 प्रश्नों के उत्तर (Answer the Questions) :-**

1. भारतीय आर्थिक में सार्वजनिक ऋणों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. भारत में सामाजिक ऋण स्थिति की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
3. भारत में सार्वजनिक ऋणों के वृद्धि के कारणों को समझाइए।

4. सार्वजनिक ऋण का भार को स्पष्ट कीजिए।

5. बाह्य ऋणों का भार पर एक लघु लेख लिखिए।

## 1.15 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Objective type question) :-

1. साधारण ऋणों का उपयोग किस मद में किया जाता है।

   क. उत्पादन  ख. विकास कार्यो  ग. प्रशासनिक

   घ. निवेश  (उत्तर क)

2. भारतीय सार्वजनिक ऋणों की प्रमुख विशेषता क्या है?

   क. ऋण की न्यूनतम मात्रा  ख. डॉलर क्षेत्र से संबंधित

   ग. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण  घ. इनमें से कोइ नहीं

   (उत्तर ख)

3. भारत में सार्वजनिक ऋण श्वेत–पत्र कब जारी किया गया था।

   क. 1998–99  ख. 1957  ग. 1962  घ. 1990

   (उत्तर क)

**खण्ड – 05**

**इकाई – 04**

## विकास के लिए राजकोषीय नीति : साधन गतिशीलता विकास, वितरण तथा मूल्यों पर प्रभावः

# Fiscal Policy for development : Resource Mobility development, distribution and effect of Prices

**परिचय :–**

विकसित देशों में लोक वित्त की भूमिका महत्वपूर्ण है, विकाशील देशों में इसका शायद अधिक ही महत्व है। निर्धन देशों के आर्थिक विकास में लोक क्षेत्र की भूमिका अधिक ही महत्वपूर्ण रही है।

निर्धन देशों में आर्थिक विकास के लिए उन कारकों की आवश्यकता तो होती है, जिनकी जरूरत विकसित देशों में होती है, साथ ही कुछ अधिक भी चाहिए। विकास के लिए पूंजी–निर्माण तथा टेक्नोलॉजी की जरूरत तो है, किन्तु सामाजिक एवं संस्थागत पृष्ठभूमि में भी कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता हे क्योंकि वे निम्न आर्थिक विकास के कारण तथा परिणाम दोनों ही है। विकास की इन सभी आवश्यकताओं में विदेशी व्यापार की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। घरेली बाजार के आकार के छोटा होने के कारण, विदेशी व्यापार के माध्यम से ही विशिष्टीकरण, पैमाने की बचत, आदि प्रापत हो सकती है। साथ ही , विदेश विनिमय के द्वारा ही यह सम्भव है कि औद्योगीकरण के लिए जरूरी मशीनरी तथा अन्य ूपजी वस्तुओं का आयात किया जाए।

ज्यों–ज्यों आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज होती है, अनेक प्रकार की रूकावटें तथा बाधांए खड़ी हो जाती है। उदाहरणार्थ, ऐसा बताया जाता है कि विकास के प्रारम्भिक चरण में घरेलू बचत की दर ही विकास की दर को नियन्त्रित करती है। ज्यों–ज्यों बचत की दर बढ़ती जाती है त्था विदेशी सहायता की मात्रा बढ़ती जाती है, अर्थव्यवसाी को आत्मसात करने की क्षमता सीमा बन जाती है। अन्त में, विकास की प्रक्रिया भुगतान शेष पर दववा डालने लगती है तथा निर्यात के द्वारा आयात के लिए भुगतान करना कठिन हो जाता है।

**राजकोषीय नीति की भूमिका :–**

आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए देखा जाए कि अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति की भूमिका क्या है।

1. कर राजस्व का स्तर सार्वजनिक बचत के स्तर को प्रीाावित करता है ओर इस तरह यह पूंजी निर्माण के लिए उपलब्ध साधनों पर भी असर डालता है।
2. कर का स्तर तथा उसकी संरचना निजी बचत को प्रभावित करती हैं
3. आधारित संरचना पर विनियोग के लिए लोक निवेश की आवश्यकता होती है। आवश्यकतानुसार प्ररेणाएं प्रदान की जा सकें या दण्ड दिया जा सके।
4. आर्थिक विकास के लाभों के वितरण के सन्दर्भ में कर बोझ तथा लोक व्यय के लाभ के वितरण की अहम भूमिका है।
5. विदेशी पूँजी पर किस प्रकार कर लगाया जाता है उसका प्रभााव इस पूंजी के प्रवाह तथा इससे प्राप्त आय के पुनर्विनियोग पर पड़ता है।
6. घरेलू उत्पादन की वस्तुओं की तुलना में आयात और निर्यात पर लगाए गए कर का प्रभाव विदेशी व्यापर शेष पर पड़ता है।

**बचत का सृजन :–** आर्थिक विकास की दर को तेज करने के लिए निर्धन देशों को विनियोग की दर को दूनी या तिगुनी करने की आवश्यकता है। इसके लिए घरेलू बचत में भी उसी अनुरूप वृद्धि करती होगी। ऐसा अक्सर कहा जाता है, विशेषकर 1950 के दशक में कहा जाता था कि निर्धन देशों में अधिकांश लोगों की आय इतनी कम है कि वे अपनी जीवन निर्वाह आवश्यकता को पूरा करने के पश्चात कुछ भी बचा नहीं सकते, यद्यपि आर्थर लेविस ने ऐसा विचार व्यक्त यिका कि कोई भी देश इतना निर्धन नहीं हे कि वह अपनी राष्ट्रीय आय का 12 प्रतिशत नहीं बचा सकता है। इसका कारण यह बताया गया है कि इन देशों के उच्च आय पाने वाले 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का करीब 40 प्रतिशत विलास की वस्तुओं, दिखवटी उपभोग, शादी, श्राद्ध, आदि पर बर्बाद कर देते हे। अतः उनके अनुसार इस बात को समझना है कि इन देशों में किस प्रकार अनुत्पादक क्रियाओं से हटाकर धन को उत्पादक विनियोग में लगाया जाए।

दूसरी बात यह कही जाती है कि निर्धन देशों में धन एवं आय का वितरण अत्यधिक असमान है। अतः बचत की दर ऊंची होनी चाहिए। किन्तु केवल आय के वितरण की असमानता ही अधिक बचत के लिए पर्याप्त नहीं है। आर्थर लेविस का कहना है कि अधिक बचत के लिए एक विशेष प्रकार की

असमतानता की आवश्यकता है। यह ऐसी असमानता है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय में उद्यमियों के लाभ का हिस्सा अपेक्षाकृत अधिक होना चाहिए। औद्योगिक क्रान्ति के समय आज के विकसत देश के पूंजीपति अत्यधिक मित्तव्ययी होते थे। केन्स ने कहा कि इसी कारण उन्हें राष्ट्रीय आय के एक बड़े भाग का स्वमी बनने दिया गया और यह उम्मीद की गयी कि वे इसका अत्यधिक कम भाग उपभोग कर उपयोग करेंगे और उपयोग तथा भवन, जेबरात, आदि पर अत्यधिक खर्च करते है। इसलिए हम यह आशा नहीं कर सकते कि बज दर के रूप में अधिक प्रतिफल तथा प्रत्यक्ष करों से अनेक प्रकार की बचत को छूट देने पर भी वे अधिक बचत करेंगे। चूंकि सरकारी आय का प्रमुख स्त्रोत कर राजस् है, अतः विकास वित्त की सारी समस्या इसी पर आकर केन्द्रित हो जाती हैः इस प्रकार कर राजस्व के स्तर को बढ़ाया जाए।

**कर राजस्व के स्तर में वृद्धि :–** सरकार की आय में वृद्धि करने का अर्थ है कर राजस्व में वृद्धि करना । इसीलिए श्रीमती हिक्स ने कहा कि विकास वित्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत कर है। ऐसा दो कारणों से है। प्रथम, यह प्रत्यक्ष रूप से विकास वित्त में योगदान करता हे। द्वितीय, नियन्त्रित, प्रेरण तथा व्यय योग्य आय की मात्रा को कम करने में यह परोक्ष प्रभाव डालता है।

मसग्रेव एवं मसग्रेव[2] कहा कहना है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति की बहुल भूमिका है, यथाः

1. कर का स्तर सार्वजनिक बचत के स्तर को प्रभावित करता है और इस प्रकार पूंजी निर्माण के लिए उपलब्ध साधनों की मात्रा पर भी असर डालता है।
2. करारोपण के स्तर तथा संरचना का प्रभाव निजी बचत पर पड़ता है।
3. आधारिक संरचना प्रकार के विनियोग के लिए सार्वजनिक निवेश की आवश्यकता होती है।
4. साधनों के उपयोग की कार्यकुशलता को प्रभावित करने के लिए कर प्रेरणा तथा कर जुर्माना की व्यवस्था जरूरत है।
5. आर्थिक विकास के लाभों के समान वितरण को प्रोत्साहित करने में कर के बोझ वितरण की महत्वपूर्ण भूमिका है।
6. विदेशी विनियोग पर किस तरह कर लगाया जाता है इसका प्रभाव विदेशी पूंजी के आगमन तथा इस पूंजी स प्रापत लाभ के पुनर्विनियोग पर पड़ता है।
7. घरेलू उत्पादन पर कर की दरों के साथ आयत एवं निर्यात शुल्कों पर करारोपण की तुलना करके ही बताया जा सकता है। कि विदेशी व्यापार में घाटा होगा या अतिरेक।

**राजकोषीय नीति एवं आय तथा सम्पत्ति का पुनर्वितरण :–** विकसित देशों में आय एवं सम्पत्ति की नाबराबरी को काफी हद तक कम किया जा सका है। ऐसा उत्पादकता में वृद्धि तथा प्रगतिशील कर एवं पुनर्वितरित करने वाले लोक व्ययों के द्वारा सम्भव हुआ है। किन्तु, विकासशील देशों की स्थिति काफी भिन्न है। यहां राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि के बावजूद निर्धनता में कमी नहीं हो सकी। इन देशों में विकसति देशों की तुलना में असमानता अधिक है। अहलुवालिया के एक अध्ययन के अनुसार अविकसित देशों में औसतन निम्न 40 प्रतिशत लोगों का हिस्सा राष्ट्रीय आय में सिफ 12.5 प्रतिशत है, जबकि विकसित देशों मे यह हिस्सा 16 प्रतिशत है।

राजकोषीय नीति के द्वारा दो तरह से आय के वितरण की असमानता कम की जा सकती है। एक प्रगतिशील कर प्रणाली, विशेषकर आयकर एवं उपभोग करों के द्वारा। दूसरा है लोक व्यय के कार्यक्रम जिनके माध्यम से आय हस्तान्तरण निर्धनों को यिका जाता है।

रिचर्ड वर्ड का कहना है कि कर प्रणाली आय के वितरण को दो तरह से प्रभावित करती है जिन्हें (क) प्राथमिक पुनर्वितरण तथा (ख) द्वितीय पुनर्वितरण कहा जाता है। प्रथम के अन्तर्गत उन करों तथा सब्सिडी की विवेचना की जाती है जिनका प्रभाव रोजगार के स्तर को ऊपर उठाने पर पड़ता है। इन सबका सम्बन्ध प्रमुख रूप स कर प्रेरणाओं से है। द्वितीय पुनर्वितरण का सम्बन्ध कर पश्चात आय के वितरण से है। इस सन्दर्भ में प्रगतिशील आय एवं वस्तु करों की बात कही जाती हे।

**लोक व्यय की वितरण सम्बन्धी भूमिकाः–** वितरण के उद्देश्य को प्रापत करने में कर की सीमित भूमिका के कारण, इस समस्या के समाधान के लिए विकासशील देशों में व्यय को को अधिक महत्व दिया जता है। विश्व विकास रिपोर्ट, 1988 के शबदों मेः

''व्यवहार में ऐसा लगता है कि आय के वितरण में परिवर्तन लाने में कर शायद ही कुछ कर पाते है। समानता की प्राप्ति में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका यही कि वे आवश्यक राजस्व प्रदान करें ताकि पुनर्वितरण करने वाले लोक व्यय, विशेषकर, निर्धनता निवारण करने वाले व्यय, के लिए वित्त मिल सके। इसलिए विस्तृत लोक वित्त–कर लोक व्यय एक साथ– ही समानता के लिए महत्व रखता है, न कि सिर्फ कर की संरचना।''

अधिक समान वितरण के लिए लोक व्यय के पैटर्न में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है ताकि स्वाथ्य, शिक्षा तथ अन्य मद जिससे निर्धनों को लाभ पहुंचता है। पर अधिक खर्च किया जाए।

## आर्थिक विकास तथा वित्त (Economic Growth and Finance):-

आर्थिक विकास काफी हद तक पूँजी के विस्तार यथा वृद्धि की ही प्रक्रिया है अर्थात उत्पादक क्रियाओं के उपभोग की ओर पूँजी का अधिकाधिक विस्तार करना और उन क्रियाओं में इसकी और अधिक वृद्धि करना, जहाँ कि यह पहले से ही प्रयोग में लायी जा रही है। यदि हम विश्व के 'विकसित देशो' की आर्थिक उन्नति के इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती हे। यह देखा जाता है कि इन देशों में सभी प्रकार के कार्यों में पूँजी–औजार, मशीने, यंत्र व अन्य साज–सज्जा का अधिकाधिक प्रयोग यिका गया। अधिकाधिक मात्रा में ऐसे नये–नये कार्य हाथ में लिए गये निजमें कि पूँजी का उपयोग किया जाता है, और पूँजीगत साज–सामान के उपयोग ने और अधिक नई–नई क्रियाओं को जन्म दिया। लकड़ी के हल के स्थान पर ट्रैक्टर प्रयोग किया जाने लगा, हाथ्ज्ञ करघ्ज्ञे का स्थान शक्तिचालित करघे ने लिया, ओर धीमे–धीमे चलने वाली बैलगाड़ियों का स्थान शक्ति चालित परिवहन ने ले लिया। वास्तव में, यह वह समय है जिसमें कि किवल पूँ ही एक मात्र आर्थ्ज्ञिक विकास का निर्णायक तत्व नहीं है। कुछ अन्य आर्थिक तथा अनार्थिक तत्व भी हैं, जो कि आर्थिक विकास की दशा में अपना योगदान करते है तथापि, आर्थिक विकास के सबसे महत्वपूर्ण एवं आवश्यक तत्वों मे से एक हैं–पूँजीगत साधनों का संचय। अधिकतर कम–विकसत देशों को पूँजी की भारी कमी का सामना करना पड़ता है। अतः इस सम्बन्ध में पग उठाने होते है कि अर्थ–व्यवस्था के अन्तर्गत बचत तथा पूँजी के निर्माण में वृद्धि की जाये और उन्नत देशों से भी पूँजीगत साधन प्राप्त किये जाएँ।

एक ऐऐ देश में जहाँ कि मिश्रित अर्थ–व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है जहाँ सरकार को यह आश्वासन देना होता है कि गैर–सरकारी निवेश की सुविधायें तथा समुचित प्रोत्साहन दिया जायेग, और साथ ही यह भी सरकारी क्षेत्र में साधनों की वृद्धि के लिए जो अपाय अपनाया जायेंगे वे गैर–सरकारी क्षेत्र की बचत एवं निवेश की हतोत्साहित नहीं करेंगे , और करेंगे भी तो न्यूनतम सम्भव मात्रा में । जहाँ सरकार के विाकस कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध होना चाहिए, हवां साथ ही साथ–गैर सरकारी क्षेत्र में बचत व निवेश प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। चूँकि अधिकतर अल्प–विकसित देशों को मिश्रित अर्थ–व्यवस्था का मार्ग ही अपनाना होता है, अतः प्रकट रूप में परस्पर विरोधी इन दोनों ही उद्देश्य में तालमेल बिठाने का बड़ा भारी महत्व होता है।

## आन्तरिक साधनों की गतिशीलता (Mobilisation if internal resources):-

देश के अन्दर से ही पूँजीगत साधनों का संचय करने की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया बचत हे। बचत से तात्पर्य है कि–''समाज अपनी समस्यत चालू–उत्पदक क्रियाओं को तात्कालिक उपभोग की

आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ति में न लगाकर, उनका एक भाग अनेक प्रकार के पूँजीगत समान–जैसे कि औजार व यंत्र, मशीनें परिवहन के साधन, बड़े स्थिर संयन्त्र तथा अन्य साज–समान आदि के निर्माण में लगा देता है जिससे कि उत्पादक कार्यों की क्षमता में और अधिक वृद्धि हो।''

अन्य शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जाता है वर्तमान धन का वर्तमान समय में ही उपभोग करने के बजाय उसे बचा लिया जाता है जिससे कि भविष्य में और अधिक धन का उत्पादन करने में उपभोग किया जा सके।

अतः राजकोषीय नीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उपभोग तथा अन्य गैर–विकास कार्यों की ओर से पूँजी–निर्माण अर्थात बचत व निवेश की ओर साधनों का अन्तरण हो। विशेष रूप से, विकास के परिणामस्वरूप आय में जो वृद्धियाँ हों, वे अधिकाधिक मात्रा में पूँजी–निर्माण की दिशा में प्रवाहित कर दी जायें, अर्थात् राष्ट्रीय आय में जिस अनुपात से वृद्धि हो, उतने ही अनुपात में उपभोग में होने वाली वृद्धि को रोक दिया जाए।

सरकार पूँजी के निर्माण में वृद्धि के लिए कई प्रकार से सहायता दे सकती है जैसे लोगों को बचत करने के लिये प्रेरित व प्रोत्साहित करके, उधार का सहारा लेकर, कराधान के द्वारा सरकारी उद्यमों में बेशी की उत्पत्ति करके घाटे की वित्त व्यवस्था करके।

**गैर–सरकारी अथवा निजी उद्यमों में निवेश की प्रेरणायें केवल तभी प्रभावपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं जबकि–**

क. गैर–सरकारी उद्यम काफी सुरक्षित तथा लाभोत्पादक हों, तथा

ख. ऐसी उपयुक्त संस्थाएं पर्याप्त संख्या में हों जिनके द्वारा निवेश किया जा सके।

निजी उद्यमों को लाभोत्पादक बनाने में सरकार कई प्रकार से सहायता कर सकती हे। उदाहरण के लिए सकरारी संरक्षण के द्वारा कई उद्योगों के विकास में मदद मिल सकती है। सरकार तकनीक परामर्श तथा वाणिज्य सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करने की भी व्यवस्था कर सकती है। जिन लाभों को पुनर्निवेश किया जाए, उनको करों से युक्त किया जा सकता है अथवा उन पर कम कर लगये जा सकते है।

साथ ही देश में ऐसी उपयोगी संस्थाओं का होना भी अत्यन्त आवश्यक है जिनके द्वारा काफी मात्रा में निवेश किया जा सके। अधिकतर कम उन्नत देश में ऐसी सुविकसित बैंकिग संस्थाओं का अभाव भी पाया जाता है। रूपया जमा करने की सुविधाओं क अभावा में , लोग या तो बिल्कुल बचत करते ही नहीं, अथवा यदि वे बचत करते भी है तो निसंचय अथवा गहने–जेवरात आदि के रूप में ही ऐसा करते है। अतः यह आवश्यक है कि यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों केलए बैंकिंग की सुविधएं उपलब्ध कराने के व्यवस्था

होनी चाहिए। किन्तु छोटे–छोटे कस्बों तथा गांवों में साधारणतया वाणिज्यिक बैंको की स्थापना नहीं की जाती क्योंकि वहां पर वे अधिक लाभोत्पादक नहीं होते। अतः इस काय्र के लिए स्टेट–बैंक अथवा सरकारी बैंकों का आश्रय लेना पड़ सकता है।

## सरकारी उधार (Government Borrowing):-

सरकारी उधार भी निजी बचतों को गतिशील करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। लोगों की बचतों को लगाने के लिए सरकारी ऋण–पत्र एक सुरक्षित साधन है। उद्देश्य यह होना चाहिए कि भिन्न–भिन्न प्रकार के ऋण–पत्र जारी किये जाएँ ताकि विविध साधनों वाले अथवा विभिन्न आवश्यकताओं वाले व्यक्ति उन्हें खरीद सके। कम–उन्नत देशों मे अल्प बचत योजनाएँ भी अपना विशेष महत्व रखती है। इस काय्र के लिए देश भर में काफी अधिक संख्या में सेविंग्स बैंक अथवा ऐसे ही अन्य संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ती है, ओर विशेषकर छोटे–छोटे कस्बों तथा गांवों में। इसके अतिरिक्त, जो पग उठाये जा सकते हैं वे ये हैः ब्याज की आकर्षक दरें, बचत प्रमाण–पत्रों के लिए भिन्न–भिन्न परिपाक तिथियाँ तथा लाटरियाँ। एक तरीका यह भी हो सकता है कि किसी की विशेष क्षेत्र में बचतों तथा सरकारी उधार को किसी विशिष्ट योजना से सम्बन्धित किया जा सकता है जिससे कि लोग उस योजना के लिए धन देते को अधिक उत्सुक हो।

## अनिवार्य बचतें (Compulsory savings):-

यह हो सकता है कि हर प्रकार के प्रयत्न के बावजूद भी, ऐच्छिक बचतें अधिक मात्रा में न हो सके। कम–उन्न्त देशों में तो लोगों की आमदनियाँ ही सामान्यतः इतनी कम होती है कि वे बचत नहीं कर सकते। फिर, यदि आर्थिक विकास के कारण आय के स्तर कुछ ऊँचे भी उठते हैं तो भी उससे सामान्यतः लोगों को अधिक बचत करने की नहीं बल्कि उपयोग में वृद्धि करने की ही प्ररेणा मिलती हे। अनेक कम–उन्न्त देशों में, जो कुछ थोड़ बहुत बचत की भी जाती है वह स्वर्ण व भूमि की खरीद अथवा नकदी के निसंचय के रूप में की जाती है। एक सुव्यस्थित वित्तीय बाजार के न होने से भी बचतें हतोत्साहित हो सकती है। इन सब बातों के कारण यह आवश्यक हो सकता है कि सरकार लोगों को बचत करने के लिए बाध्य करें और अनिवार्य बचत की कुछ योजनाओं को चालू करे। भारत में सन् 1963–64 के बजट में अनिवार्य बचत योजना लागू की गई थी।

## कारधान (Taxation):-

साधनों को उपभोग अथवा अनुत्पादक उपयोगों से हटाकर निवेश की ओर में कराधान एक महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। सर्वप्रथम कराधान व्यक्तियों एवं फर्मों से क्रय शक्ति को लेकर उसे सरकार की ओर स्थानान्तरित कर देता है। इस प्रकार इससे एक ओ साधनों के गैर–सरकारी उपयोगों में कटौती हो जाती है ओर दूसरी ओर सरकार को धन मिल जाता है जिसकी सहायता से वह धन मिल जाता है जिसकी सहायता से वह उन साधनों पर नियंत्रण रखकर उन्हें निवेश प्रकार के कराधान का प्रभ्ज्ञाव उपयोग की कटौती के रूप में सामने आता है। प्रत्यक्ष कर आमदनियों को घटाकर तथा परोक्ष कर उपभोग की वस्तुओं को महंगा बनाकर। परोक्ष कराधान के अन्तर्गत जो कर लगाए जाते है वे केवल विलासिता या अल्प विलासिता को वस्तुओं पर ही नहीं, अपितु ऐसी वस्तुओं पर भी लगाये जाते हैं जिन्हें कि सामान्यत5 आवश्यक माना जाता है ताकि उपभोग के प्रति रूझान को, जो कि निर्धन देशों में स्वाभावतः ही अधिक होता है, रोक कर रखा जा सके। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप बढ़ने वाली आय को उपभोग की ओर जाने से रोका जा सकता है बशर्ते कि–

क. आय–कर तथा अन्य प्रत्यक्ष करों का पैमाना आरोही हो, जिससे कि ऐसे लोगों पर अधिक कठोरता से कर लगाया जा सके जिसकी आय बढ़ी हो और उन्हें अपने उपभोग की मात्रा को उस सीमा तक बढ़ाये जाने से रोका जा सके जिस सीमता तक कि उनकी आय में वृद्धि हुई है, और

ख. ऐसी वस्तुओं पर कर लगाया जा सके जिनकी मांग की आय सापेक्षता ऊँची हो अर्थात् जिनकी मांग आय में वृद्धि के साथ ही बढ़ने लगती हो।

इस प्रकार , साधनों के नियंत्रण को व्यक्तिगत उपभोग मे सार्वजनिक निवेश की और सथानान्तरित करके, कराधान देश में बचत तथा निवेश में वृद्धि करने वाले एक अस्त्र के रूप में कार्य कर सकता है। इसी कारण कराधान को अनिवार्य सामूहिक बचत का नाम दिया जाता है।

निजी हाथों में से सरकार की ओर साधनों का स्थानान्तरण करने के अलावा , एक अन्य तरीका भी है जिसके द्वारा कराधान देश में बचत व निवेश की वृद्धि का साधन बन सकता है। कराधान इस बात का भी व्यवस्था कर सकता है कि गैर–सरकारी साधनों का उपयोग–उपभोग तथा अनुत्पादक कार्यो के लिये न किया जाय। उदाहरण के लिये, व्यय कर कराधान उपभोग को हतोत्साहित तथा निवेश को प्रोत्साहित कर सकता है। आय के उस भाग पर जो बचायी तथा निवेश की जाती है, कर–सम्बन्धी छूटे प्रदान करके भी ऐसे ही परिणाम प्राप्त किये जा सकते है।

## राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in national income):-

चूँकि अल्प विकसित या अविकसित अर्थ व्यवस्थाआें में राष्ट्रीय आय अत्यन्त कम होती है, इनमें स्थायी विकास के लिए आवश्यक है कि राजकोषीय नीति राष्ट्रीय आय की वृद्धि के उद्देश्य से कार्यान्वित की जाया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजकोषीय नीति कई प्रकार से सहायता कर सकती है जैसे–

क. ऐसी कर प्रणाली–लागू की जाय जिससे, जो कुछ भी न्यून साधन उपलब्ध है, उन्हें बचाकर विनियोग में लगाया जा सके।

ख. सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण को भी निमार्णात्मक दिशाओं में संचालित किया जाय जिनसे उत्पादन हो और विकास की गति तीव्र हो। सार्वजनिक व्यय और ऋण को निर्माणात्मक दिशा में मोड़ने पर ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्भव है आधारभूत उद्योग और ऐसे उद्योग जिनका सामाजिक महत्व है, उनका विकास भी सरकार को करना चाहिए। प्रो. स्पैंगलर क शब्दों में –''सरकार बहुत सा कार्य स्वयं करके साहसियों की कमी पूरी कर सकती है; जो कि इस वर्ग के द्वारा किये जा सकते है।''

ग. यह सम्भव है कि आय में जो वृद्धि हो वह विनियोग में जाकर उपभोग में खपज ाय। अतः राजकोषीय नीति का उद्देश्य और निर्धारण इस प्रकार हो कि व्यक्त्यिों में बचत तथा विनयोग करने की प्रकृति प्रोत्साहित हो। बैंक दर में वृद्धि करके लोगों को बचत के लिए प्रोत्साहित किया जाय, बचत योजनओं और बीमा योजनाओं द्वारा बचतों आकर्षित किया जाय, आय–कर में रियातें दी जाएँ और संयुत पूँजी वाली कम्पनियों के हिस्सेदारों द्वारा किये गये विनियोगों को कर रहित घोषित किया जाय तथा इसी प्रकार अन्य समुचित उपाय आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार अपनाये जाएं।

## आय तथा धन के वितरण की असमानता को कम करना (Minimising the inequalities of income and Wealth):-

अल्प विकसित अर्थ–व्यवथाओं में विकास की दर को अधिकतम करना ही राजकोषीय का प्रमुख तथ्य होता है। अतः आय ओर धन के वितरण की असमानताअें को कम करने की दिशा में राजकोषीय नीति को आगे आना होता है। सरकार द्वारा व्यय बढ़ाकर, अनुपार्जित आय को हतोत्साहित करके तथ्ज्ञा समाजिक सेवाओं का विस्तार करके कम आय वाले व्यक्तियों की स्थिति ठीक की जा सकती हे। धनी वर्ग पर ऊँची दर से प्रगतिशील करारोपण करके, निर्धनों पर कम दर से कर लगाकर अथवा उन्हें कर युद्ध रख कर तथा विलासिता की वस्तुओं पर समुचित नियंत्रण रख कर धन के वितरण की विषमताओं को बहुत कुछ कम

किया जा सकता है। संक्षेप में, आय की असमानता को एक बड़ी सीमा तक पुनर्वितरण सम्बनीध राजकोषीय नीति उत्पादन सम्बन्धी क्रियाओं और सार्वजनिक व्यय द्वारा दूर किया जा सकता है।

प्रायः कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा यह तर्क दयिा जाता है कि अल्प–विकसित अर्थ–व्यवस्थाओं में राजकोषीया नीति का प्रयोग आर्थिक असमानता को कम करने के स्थान पर उत्पादन–वृद्धि के लिए करना चाहिए, क्योंकि धन के पुनर्वितरण से आय उपार्जन और विनियोग करने वाले लोग हतोत्साहित होंगे और इस प्रकार औद्योगिक विकास अवरूद्ध होगा अथवा अत्यन्त मन्द गति से होगा। यह तर्क निःसेदंह सारपूर्ण है, किन्तु अल्प बढ़ाना भी जरूरी है और धन के वितरण की असमानता कम करना भी जरूरी है क्योंकि जहाँ न्यायपूर्ण वितरण के अभाव में अधिक उत्पादन का कोई महत्व नहीं है, वहां अधिक उत्पादन के अभाव में न्यायपूर्ण वितरण सम्भव नहीं है। अतः वांछित यही है कि सरकार की नीति का उद्देश्य यह हो धन के उचित वितरण और धन के उत्पादन में सन्तुलन स्थापित हो जाय।

## बेकारी को दूरी करना (Removing Unemployment):-

अल्प विकसित देशों के बेकारी और अर्द्ध की समस्यायें भीषण रूप धारण किये रहती है। सइका प्रमुख कारण यह है कि इन देशों में आर्थिक क्रियाओं के विकास के लिए पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध नहीं होती। कृषि प्रमुख व्यवसाय होता है किन्तु उसमें भी पूँजी की कमी होती है, जनसंख्या का आधिक्य होता है, ऋणग्रस्तता मुँह बाये रहती है। इन विभिन्न कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश व्यक्ति वर्ष के अधिकांश भागम में बेकार रहते हैं। नगरीय क्षेत्रों में भी उद्योगों के अविकसित रहने के कारण व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिल पाता।

अतः अल्प विकसित अर्थ–व्यवस्थाओं में राजकोषीय नीति का एक प्रमुख लश्य यह होना चाहिए कि बेकारी व अर्द्ध बेकारी की समस्या का निराकरण किया जा सके। वह तभी सम्भव है जब कि राजकोषीय क्रियाओं का उद्देश्य पूँजी के विनियोग का बहुमुखी उत्पादन के क्षत्रों में लगाना हो अर्थात विनयोग की सुनिश्चित दिशाओं की ओर मोड़ा जाये तथा देश में बहुमुखी औद्योगिक विकास के प्रयत्न किये जाय। पूर्ण विकसित राष्ट्रों में बेकारी प्रायः एक अलपकालीन समस्या होती है। जो व्यापार चक्रों` प्रभाव से उत्पन्न होती है। इस समस्या को राजकोषीय क्रियाओं में सामान्रू परिवर्तन से ही दूर किया जा सकता है औ रोजगार की स्थिति पुनः लायी जा कसती है जिसका समाधान एक दीर्घकालीन विकास नीति द्वारा ही हो सकता है। अतः देशों में राजकीय व्यय और ऋण सम्बन्धी नीतियों का यह उद्देश्य होना चाहिए कि बहुमुखी विनियोग को प्रोत्साहित किया जाय। करारोपण नीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उपभोग नियन्त्रित हो ाअरे वस्तुआं को प्रोत्साहन मिले।

**<u>घाटे का वित्त व्यवस्था (Deficit Financing):-</u>** घाटे के वित्त व्यवस्था की स्थिति तब उत्पन्न होती है जबकि सरकार करों , जनता से लिए जाने वाले कर्जों तथा आय के अन्य साधनों द्वारा जितन कमाती है उससे अधिक व्यय करती है। यह स्थिति दो प्रकार से पूँजी निर्माण को सम्भव बनाती है–

1. एक तो अब तक बेकार पड़े हुए साधनों को सक्रिय एवं गतिशील बनाकर, और
2. दूसरे साधनों को चालू उपभोग से निवेश की ओर अन्तरित करके।

घाटे की वित्तय व्यवस्था साधनों को अनुत्पादक उपयोगों से अन्य दिशाओं की ओर भी मोड़ सकती है। घाटे की वित्त व्यवस्था के परिणामस्वरूप, सरकार, अतिरिक्त क्रयशक्ति पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेती ळे और उनके द्वारा अपने निवेश कार्यक्रमों के लिये आवश्यक वस्तुएं तथा सेवाएं खरीदने में समर्थ हो जाती है। इस प्रकार ये वस्तुएं तथा संवाएं निजी उपयोगों से सरकारी उपयोगों की ओर अन्तरित कर दी जाती हे। निजी उपयोगों से सरकारी उपयोगों की ओर अन्तरण की इस प्रक्रिया को घाटे की वित्त व्यवस्था की कीमतें बढ़ान की प्रवृथ्ति से और भी बल मिलता है। कीमतों में वृद्धि होने के कारण, वस्तुओं एवं सेवाओं की निजी मांग में कमी हाने लगती है और सरकारी खरीद के फलस्वरूप में वस्तुएं तथा सेवाएं सरकार द्वारा निर्धारित उपयोगों की ओर गतिशील हो जाती है। इस अन्तरण को अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत कुल बचतों में किस सीमा तक वृद्धि माना जाए, यह इन दो बातों पर निर्भर है कि निजी लोगों द्वारा इन साधनों को किस प्रकार तथा किन कार्यों में उपयोग कर रही है। यहां यह तो स्पष्ट ही है कि घाटे की वित्त व्यवाि का औचित्य केवल तभी माना जा सकता है जबकि वह अर्थ व्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करे।

कीमतों में होने वाली वृद्धि न केवल बचत करने को ही बाध्य करी है, अपितु यह गैर सरकारी क्षेत्र के लिए निवेश के लाभदयी अवसर उत्पन्न करके और इस प्रकार बेकार बचतों को सक्रिय बनाकर उत्पादकीय साधनों को निवेश की ओर आकर्षित करती है। किन्तु कीमतों की वृद्धि यदि मुद्रास्फीति का रूप ले लेती है तब तो निवेश की बजाय सट्टेबाजी को ही अधिक प्रोत्साहन देने लगती है।

घाटे की वित्त व्यवस्था का एक अन्य प्रभाव यह होता है कि कीमतों की वृद्धि उत्पादकों और व्यापारियों के पक्ष में, जोकि कीमतों के बढ़ने से लाभन्वित होते है, आय के पुनर्वितरण को प्ररित करने लगती हे। समाज के ये वर्ग अन्य वर्गो की अपेक्षा बचत तथा निवेश करने का सामन्यतः अधिक सुझाव रखते है। परिणामस्वरूप, सम्पूर्ण रूप, में, बचतों में वृद्धि हो जाती है।

अल्प विकसित अर्थ व्यवस्थाओं मे देश के सुपत तथ अविकसित साधनों का वदोहन करके देश का आर्थ्झिक विकास करने के लिए सरकार हीनार्थ प्रबन्धन को आश्रय लेती है और पत्र–मुद्रा निर्गमित करके विकास योजनाओं पर व्यय करती है। निर्यात मुद्रा से नयी मांग पैदा होती ळै। यदि

यह मांग वस्तुओं की पूर्ति के बराबर होती है तब तो स्फीति का कोई डर नहीं रहता, किन्तु वयवहार में उन वस्तुओं का पूर्ति मांग की तुलना में कम रहती है और इसलिए हीनार्थ प्रबन्धन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि मूल्य बढ़ जाते है अर्थात मुद्रास्फीतिजनक परिणाम पैदा हो जाते है।

अतः इन अवथाओं में राजकोषीय नीति का उद्देश्य मुद्रास्फीतिक प्रभावों का रोकना होता है। राजकोषीय नीति का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करके प्रभावपूर्ण मांगों को कम किया जा सकता है और इस प्रकार मुद्रा प्रसार की गति को रोगा जा सकता हैं अल्प विकसित अर्थ व्यवथाओं में प्रायः राजकोषीय नीति का प्रयोग इस दिशा में अर्थात मुद्रा–प्रसार के प्रभावों को रोकने में बड़ी कठिनता से प्रभावशील हो पाता है, फिर भी यदि राजकोषीय साधनों को निम्नांकित प्रकार से प्रयुक्त किया जाय तो उपयोगी परिणाम निश्चित रूप से निकल सकते है–

1. जनता की अधिक क्रय शक्ति को करारोपण, अनिवार्य बचत, सार्वजनिक ऋण आदि रीतियों से कम कर दिया जाय।
2. विशष प्रकार के मुद्रास्फीति कर लगाये जायें, जैसे अधिकलाभ कर वस्तु कर विलासिता की वस्तुओं पर कर आदि।
3. ऐच्छिक बचतों पर अधिक जोर दिया जाय और एक निश्चित सीमा से ऊपर की क्रय शक्ति को खत्म कर दिया जाय। कर नीति इस ढंग की निर्धारित की जाय कि वह स्वयं ही मुद्रा स्फीति की गति को रोक सके। कर प्रगतिशील हो।
4. पूँजीगत कर लगा दिये जाये और कैश बैलेन्सों व तरल सम्पत्तियों पर करारोपण किया जाय।

वास्तव में मुद्रा स्फीति की समस्या के परिणाम बड़े घातम और गम्भीर हुए और ऐसी स्थिति में राजकोषीय नीति स्वयं मुद्रा स्फीति का रोकने में तभी आंशिक रूप में सफल है जबकि उसके साथ मौद्रिक बचत और उत्पादन के उपाय भी अपनाये जायें।

**<u>अन्य उद्देश्य :–</u>** अल्प विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में राजकोषीय नीति के कुछ और भी उद्देश्य होते है, जैसे उत्पादन बढ़ाने की समस्या को हल करना, देश का नियोजित आर्थिक विकास करना, सामाजिक कलयाण को अधिकतम करना आदि। हम कह चुके है कि अल्प – विकसित देशों की मुख्य समस्या उत्पादन को बढ़ाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह वांछनीय है कि सरकार राजकोषीय उद्योगों ओर उपक्रमों का क्षेत्र बढ़ाये ताकि देश के बढ़ते हुए साधन कुछ ही व्यक्तियों के हाथें में केन्द्रित न हो जायें। यह इसलिए भी आवश्यक है कि जिससे देश में आय का समान वितरण हो तथा सामाजिक कल्याण भी अधिकतम हो। इन्ही दिशाओं में सरकार को अपनी राजकोषीय नीति का निर्माण करना होगा।

**सारांश (Summary):-**

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए राजकोषीय नीति की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। भारतम में विकास के परिप्रेक्ष्य में आवश्यकताओं और परिस्थितिया को ध्यान में रखते आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति की भूमिका है–पूँजी निर्माण, विनियोग के स्तर में वृद्धि , बचत का सृजन, कर राजस्व के स्तर में वृद्धि, आर्थिक विकास हेतु रो का विश्लेषण करना, आय तथा सम्पत्ति का पुनवितिरण वितरण संबंधी कार्यों में भूमिका, आन्तरिक साधनों की गतिशीता आर्थिक विकास एवं वित्त तथा घाटे की वित्त व्यवस्था आदि है। इस प्रकार राजकोषीय नीति देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। साधारणतः देश का विकास मुख्य रूप से राजकोषीय नीति पर निर्भर रहता है। राजकोषीय नीति के माध्यम से विषमताओं व बेकारी को कम किया जा सकता है तथा रोजगार सृजन में सहायक होती है।

**शब्दावली (Keywords):-**

1. प्राथमिक पुनर्वितरण (Primary redistribution)
2. द्वितीयक (Secondary)
3. घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Finance)
4. आधारित संरचना (Infrastruction)
5. निवेश (Investment)
6. बहुलभूमिका (Multifold role)
7. कर प्रेरणा (Tax incetives)
8. कर जुर्माना (Tax Penaltive)
9. चालू उपभोग (Current Consumption)
10. सार्वजनिक बचत (Public saving)
11. लोक क्षेत्र (Public Sector)

**सन्दर्भित पुस्तकें (Reference books):-**

1. R.A Musgrave : Public finance in theory and practive
2. U.Hicks : Public finance

3. P.A samuelson : Economics, An introductory analysis
4. Eugence stan;eu : Future of under development courtries
5. Brahmanand and panchamukhi :The development process of the Indian Economic
6. G.Thimmaiah : Studies in Indian public finance
7. Pigou : Public finance
8. Prest : Public finance
9. Robinson : Economic Analysis and policy

**<u>प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the questions)</u>**

1. राजकोषीय नीति की भूमिका लिखिए?
2. राजकोषीय नीति का परिचय दीजिए?
3. बचत का सृजन पर लघु नोट लिखिए?
4. कर राजस्व के स्तर में वृद्धि से आप क्या समझते है?
5. राजकोषीय नीति एवं आय तथा सम्पत्ति का नुनर्वितरण की विवेचना कीजिऐ?
6. आर्थिक विकास तथा वित्त में राजकोषीय नीति की भूमिका समझाइये?
7. आन्तरिक साधनों की गतिशीलता पर एक लेख लिखिए?
8. आय तथा धन के वितरण असमानता को कम कैसे किया जा सकता है? विवेचना कीजिए।
9. बेकारी को दूर करने के उपाय बताइए।
10. घाटे की वित्त व्यवस्था पर संक्षिप्त परिचय दीजिए?

खण्ड–5

इकाई–5

# पंचवर्षीय योजनाओं का वित्त पोषण : नीति आयोग की भूमिका

# Fiancing of fine year plans , Role of Niti Ayog

## परिचय (Introduction) :-

राष्ट्रीय स्तर पर पूरी अर्थव्यवस्था के लिये औपचारिक रूप से नियोजन की शुरूआत करने के लिये एक स्थायी विशेष निकाय की आवश्यकता थी, जो नियोजन के संपूर्ण क्षेत्र का उत्तरदायित्व उठा सके। के0सी0 नियोगी की सिफारिश के आधार पर केंन्द्रीय मंत्रिमंउल द्वारा लागए गए एक प्रस्ताव को पारित करके 15 मार्च, 1950 ई0 को योजना आयोग की स्थापना की गई। योजना आयोग एक संविधानेत्तर गैर–संवैधानिक एवं परामर्शदात्री निकाय थी। प्रधानमंत्री योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष होते थे। इसके उपाध्याय को कैबिनट मंत्री स्तर का दर्जा प्राप्त था। योजना आयोग के प्रथम उपाध्यक्ष 'गुलजारी लाल नंदा' थे। आर्थिक विकास से जुड़े विभिन्न मुद्दों हेतु भारत सरकार के लिये यह एक सलाहकारी निकाय थी। 1 जनवरी, 2015 से योजना आयोग की जगह 'नीति आयोग' ने ले ली है। नीति आयोग, सरकार के थिंक–टैंक के रूप में सेवाएँ प्रदान करने के साथ उसे निर्देशात्मक एवे नीतिगत गतिशीजता प्रदान करेगा। यह केंद्र और राज्य स्तरों पर सरकार को नीति के प्रमुख कारको के संबंध में प्रासंगिक, महत्वपूर्ण एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराएगा। भारत सरकार के अग्रणी नीतिगत थिंक–टैंक के रूप में नीति आयोग का लक्ष्य राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास का एक साक्षा दृष्टिकोण विकसित करना है। नीति आयोग केनद्र सरकार के नीति निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा रहा है एव ंभरत सरकार की नीतियों और कायक्रमों के कार्यान्वयन में प्रगति का अनुवीक्षण करता है।

## 1.1 उद्देश्य (object) :-

1. आर्थिक विकास
2. गरीबी और रोजगार
3. शिक्षा
4. स्वास्थ्य
5. ग्रामीण

6. पर्यावरण और धारणीयता
7. सेवा प्रदायगी
8. सशक्त राष्ट्र का निर्माण
9. अंतर–क्षेत्रीय एवं अन्तर विभागीय मुद्दों के समाधान हेतु एक मंच तैयार करना।
10. रणनीतिक और दीर्घावधिक नीतियों तथा कार्यक्रमों का ढांचा तैयार करना।

**1.2 पंचवर्षीय योजना का इतिहास–**

आजादी से पूर्व भी, हमारे स्वतंत्रता संग्रामी सोवियत संघ में अपनाए गए योजना के मॉडल से प्रेरित थे। राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee, एनपीसी) का गठन आर्थिक और सामाजिक विकास को सुविधाजनक बनाने के लिए समग्र कार्यक्रम के विकास के लिए सुभाष चंद्र बोस की पहल पर और जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 1938 में किया गया था।

एनपीसी ने आर्थिक नियोजन पर सिफारिशों के 29 खंडों को प्रस्तुत किया, जिसने आजादी के बाद भारत में योजना कार्य का मार्गदर्शन किया। ये सिफारिशें बंबई योजना से मिलती–जुलती थीं।

**बॉम्बे प्लान (बंबई योजना)–**

यह योजना भारत के अग्रणी उद्योगपतियों द्वारा तैयार की गई थी और 1944–45 में प्रकाशित हुई थी। योजना का शीर्षक ''भारत के आर्थिक विकास के लिए एक योजना'' था। यह योजना एनपीसी द्वारा दी गई सिफारिशों के साथ मिलती–जुलती थीं। ज्यादातर उद्योगपति एनपीसी के सदस्य भी थे। बंबई योजना की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नानुसार थीं:

- तीव्र औद्योगिकीकरण के साथ पूंजीगत वस्तुओं के विनिर्माण और मूल क्षेत्र उद्योगों के विकास पर जोर।
- भूमि सुधार के माध्यम से कृषि पुनर्गठन
- सरकार की अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका; नियोजक, निवेशक और नियंत्रक के रूप में

- जनता के कल्याण के लिए बड़े पैमाने पर कदम

### 1.3 भारत में पंचवर्षीय योजनाएं

#### पहली पंचवर्षीय योजना (1951–1956)

इस योजना ने कृषि के विकास पर जोर दिया, जिसमें महत्वपूर्ण सिंचाई परियोजनाएं, अर्थात् भाखड़ा नंगल और हीराकुंड बांध शामिल थे। इस योजना के दौरान, निजी क्षेत्र के पास पूंजी की कमी के कारण राज्य द्वारा सक्रिय भूमिका निभाई गई थी।

#### दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

यह योजना महालनोबिस मॉडल पर आधारित थी। इस योजना ने भारी उद्योगों के विकास पर जोर दिया। महालनोबिस मॉडल भारतीय सांख्यिकीविद पी0सी0 महालनोबिस ने दिया था, जिन्होंने गणित के माध्यम से अर्थिव्यवस्था के समग्र विकास में भारी उद्योगों की भूमिका को साबित किया था।

#### तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966)

इस योजना ने फिर से कृषि में सुधार पर जोर दिया। हालांकि, 1962 में चीनी आक्रामकता के कारण, अर्थव्यवस्था का ध्यान रखा की ओर गया।

1965–66 में, भारत ने पाकिस्तान के साथ युद्ध लड़ा। साथ ही, देश में बड़े पैमाने पर सूखा पड़ा था। युद्धों और गंभीर सूखे के कारण, योजना के लक्ष्यों को हासिल नहीं किया जा सका।

देश में एक गंभीर विदेशी मुद्रा संकट भी पैदा हो गया था। नतीजतन, 1966 में रुपए का बड़े पैमाने पर अवमूल्यन (Devaluation) किया गया। इसके अलावा, देश में अनाज की कमी हो गयी थी। सुयंक्त राज्य अमेरिका ने भारतीय रूपये के बदले में भारत को अनाज निर्यात किया। इस खाद्य सहायता को पीएल–480 कहा जाता है क्योंकि इसे संयुक्त राज्य द्वारा सार्वजनिक कानून की धारा 480 के तहत दिया गया था।

#### तीन वार्षिक योजनाएं (1966–1969)

खराब वित्तीय स्थिति के कारण, सरकार ने तीन वार्षिक योजनाओं का फैसला किया। इस दौरान, पंचवर्षीय योजना नहीं चलाई गई। इस अवधि को ''प्लान हॉलिडे'' (Plant Holiday) की अवधि के रूप में भी जाना जाता है।

**चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74)**

सूखा और भारत–पाक युद्ध (1971–72) ने धन का अत्यधिक निकास किया। इस योजना के दौरान, सरकार ने बड़ी संख्या में उपादान वाले जनवादी उपायों की शुरूआत की, जिससे राजकोषीय घाटे में बढ़ोत्तरी आई। बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण भी किया गयाः निजी क्षेत्र के बैंक, बीमा कंपनियां, कोयले की खान आदि राज्य द्वारा अधिग्रहित की गईं।

**पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–79)**

सरकार ने 1975 में लोगों के जीवन, विशेष रूप से बीपीएल परिवारों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से बीस बिंदु कार्यक्रम अपनाया। गरीबी उन्मूलन, रोजगार उत्पादन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि पर जोर दिया गया। यह जोर विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में दिया गया।

सरकार द्वारा भारी खर्चे के कारण अर्थव्यवस्था में 10% से अधिक मुद्रास्फीति देखी गई। इसके बाद, मौद्रिक नीति पर निर्णय आरबीआई को सौंप दिया गया।

1977 में, जनता पार्टी सरकार सत्ता में आई। इसने कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू की गई पंचवर्षीय योजना को निलंबित कर दिया। 1980 में सत्ता में लौटने के बाद कांग्रेस सरकार ने 1978–79 को पांचवीं पंचवर्षीय योजना के हिस्से के रूप में और 1979–80 को एक अलग वार्षिक योजना के रूप में माना।

**छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85)**

इस योजना को ''गरीबी हटाओ'' नारे के साथ अपनाया गया था। इसने अधिक लक्षित दृष्टिकोण के साथ गरीबी उन्मूलन का प्रयास किया। गरीबी उन्मूलन पर प्रत्यक्ष हमला, जिसे पाँचवी योजना के तहत अपनाया गया था, पर छठी योजना में और अधिक ज़ोर दिया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1980), गांव और लघु उद्योग विकास कार्यक्रम (1983) इत्यादि जैसे कई राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम शुरू किए गए।

**सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90)**

योजना के मुख्य उद्देश्य–विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के मार्गदर्शक सिद्धांत बने रहे। हालांकि अर्थव्यवस्था ने उच्च वृद्धि दर हासिल की, लेकिन यह समय राजकोषीय घाटे और भुगतान के संतुलन की समस्याओं से ग्रस्त था। आयात के उदारीकरण के कारण भुगतान के संतुलन की समस्याएं उत्पन्न हुई। उसी समय, निर्यात में वृद्धि नहीं की जा सकी। इसके अलावा, ईरान और इराक के बीच युद्ध, तेल की कीमतों में वृद्धि और पश्चित एशिया से प्रेषण में कमी का कारण बना।

**दो वार्षिक योजनाएं (1990–92)**

पंचवर्षीय योजना को निलंबित किया गया ताकि अर्थव्यवस्था की तत्काल समस्याओं, अर्थात् भुगतान संतुलन और राजकोषीय घाटे को हल किया जा सके। इन दो वार्षिक योजनाओं में उदारीकरण (Liberalisation) की दिशा में आर्थिक सुधार किए गए थे।

### 1.4 उदारीकरण से पहले और बाद में सरकार की भूमिका में बदलाव

उदारीकरण (Liberalisation) का अर्थ अर्थव्यवस्था में व्यापार पर प्रतिबंधों को हटाना है। आजादी के बाद से, भारत सरकार व्यवसाय पर प्रतिबंधों को कम कर रही है, लेकिन 1991 में, प्रतिबंधों में उल्लेखनीय कटौती हुई। उदारीकरण ने निजीकरण के लिए दरवाजे खोले।

निजीकरण (Privatisation) या तो नए निवेश के माध्यम से या निजी क्षेत्र को मौजूदा सरकारी उपक्रमों की बिक्री के माध्यम से, अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की अधिक भूमिका को संदर्भित करता है।

नजतीतन, अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को एक बड़ी भूमिका दी गई है। सरकार की भूमिका का केवल सुगमता और नियामक (प्रमुख निवेशक की नहीं) की रह गई है। इसके बाद से, सरकार एक सहायक के रूप में निजी क्षेत्र के विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति

का सृजन करती है। एक नियामक के रूप में, सरकार निजी क्षेत्र की गतिविधियों की निगरानी करती है।

हालांकि, सरकार अभी भी उन क्षेत्रों में एक प्रमुख निवेशक बनी हुई है जहाँ निजी क्षेत्र के लिए निवेश करना व्यवहार्य नहीं है जैसे कि सामाजिक क्षेत्र। सरकार केवल उन क्षेत्रों में विस्तृत योजनाएं बनाती है, जहाँ यह वास्तव में एक निवेशक है। नतीजतन, उदारीकरण के बाद, योजना की भूमिका मुख्य रूप से सामाजिक क्षेत्र तक सीमित हो गई है।

**आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97)**

1991 में शुरू किए गए आर्थिक सुधार जारी रहे। अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की बड़ी भूमिका को मान्यता मिली इसके अलावा, पिछड़े क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के विकास पर जोर दिया गया था।

**नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)**

इस योजना ने आबादी के लिए समय–समय पर न्यूनतम बुनियादी सेवाओं पर जोर दिया, जैसे कि सुरक्षित पेयजल, स्वास्थ्य सेवाएं, शिक्षा का सार्वभौमिकरण और राजकोषीय समेकन।

**दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07)**

इस योजना के दौरान योजनाओं के प्रशासन के संबंध में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए :

- विकास के चयनित संकेतकों के लिए विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किए गए और मंत्रियों को इन विशिष्ठ लक्ष्य के लिए उत्तरदायी ठहराया गया।
- योजना प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थानों की अधिक भागीदारी पर जोर दिया गया था।

- वित्तीय उत्तरदायित्व और बजअ प्रबंधन अधिनियम, 2003 पारित किया गया, जिसने केन्द्रीय और राज्य सरकारों के लिए राजकोषीय घाटे के लक्ष्यों पर जोर दिया

**ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12)**

इस योजना ने समावेशी विकास के विचार पर जोर दिया। योजना की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

- पिछली योजना में निवेश दर को 30.8% से 36.7% तक बढ़ाने का प्रस्ताव दिया गया।
- योजना का प्रमुख जोर कृषि और ग्रामीण विकास सहित सामाजिक क्षेत्र पर रहा।
- महत्वपूर्ण लक्ष्यों में 10 प्रतिशत अंकों से गरीबी को कम करना, 7 करोड़ नए रोजगार के अवसर पैदा करना और सभी गांवों के लिए बिजली कनेक्शन सुनिश्चित करना शामिल थे।
- सिंचाई, पेयजल, और सीवेज सहित बुनियादी ढांचे क्षेत्र में अधिक निवेश।

**बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17)**

बारहवीं पंचवर्षीय योजना का विषय ''तेज़, समावेशी और संधारणीय वृद्धि (Faster, Inclusive and Sustainable Growth)'' था। इस प्रकार, इस योजना ने आर्थिक वृद्धि की उच्च दर पर जोर दिया, जो समाज के सभी वर्गों का लाभ दे और जो पर्यावरण के अनुकूल भी हो। योजना के तहत प्रमुख लक्ष्य निम्नानुसार थे:

- आर्थिक वृद्धि दर का लक्ष्य 8% था।
- गरीबी दर में 10% से गिरावट।
- गैर–कृषि क्षेत्र में पांच करोड़ नए कार्य अवसर और कौशल प्रमाणन।
- जी0डी0पी0 का 9% बुनियादी ढांचे में निवेश।

- हर साल 1 मिलियन हेक्टेयर तक हरित क्षेत्र में वृद्धि।

**1.5 योजना के प्रकार**

**एकल स्तरीय बनाम बहुस्तरीय योजना**

योजना लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। एक योजना प्रक्रिया या तो (i) एकल स्तरीय (single level) या (ii) बहुस्तरीय (multi-level) हो सकती है।

**एकल स्तरीय योजना**

एकल स्तरीय योजना में, योजना निर्माण और निर्णयन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है; योजना प्रक्रिया केन्द्रीकृत होती है और निचले क्षेत्रीय स्तर केवल योजनाओं के कार्यान्वयन में भूमिका निभाते हैं। भारतीय योजना अनिवार्य रूप से एकल स्तरीय आर्थिक योजना रही है।

**बहुस्तरीय योजना**

बहुस्तरीय योजना प्रक्रिया में, राष्ट्र को विभिन्न स्तरों पर छोटी क्षेत्रीय इकाइयों में बांटा जाता है। ऐसी योजना प्रक्रिया में निचले स्तर के प्रशासनिक निकाय भी भागीदारी लेते हैं।

भारत में बहुस्तरीय योजना के विभिन्न स्तर हैं– (1) केन्द्र, (2) राज्य, (3) जिला, (4) ब्लॉक और (5) गांव। 1992 में संविधान में संशोधन से पहले, योजना प्रक्रिया का कार्य मूल रूप से केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा किया जाता था। हालांकि, 1992 के बाद, योजनाओं के निर्माण में निम्न स्तरों को भी भूमिका दी गई है।

1. **केन्द्रीय स्तरः** योजना निर्माण का वास्तविक कार्य योजना आयोग द्वारा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में किया गया था।

2. **द्वितीय स्तर या राज्य स्तरः** राज्य स्तरीय योजना निकाय का नेतृत्व मुख्यमंत्री करते हैं।

3. **जिला स्तरः** जिला स्तरीय योजना कार्य कलेक्टर के समग्र प्रभार के अधीन है, जिसे कुछ राज्यों में डिप्टी कमिश्न भी कहा जाता है।

4. **ब्लॉक स्तरः** ब्लॉक–स्तरीय योजना पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू की गई थी। प्रत्येक जिले को कई ब्लॉक में विभाजित किया गया था, और प्रत्येक ब्लॉक में लगभग 100 गांव शामिल थे, जिनकी आबादी लगभग 60,000 थी। ब्लॉक विकास अधिकारी के नेतृत्व में ब्लॉक स्तर पर योजना बनाई जाती है।

5. **पंचायत स्तरः** संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के माध्यम से, पंचायत को योजनाओं की तैयारी और कार्यान्वयन की देखभाल करने के लिए अधिकृत किया गया है।

## 1.6 सारांश (Summary) :-

योजना आयोग को 01 जनवरी 2015 को नीति आयोग द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। नीति आयोग की तरह , याजना आयोग केन्द्र का एक गैर सांविधिक निकाय था। योजना आयोग का मृख्य कार्य देश के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करना था। योजना आयोग योजनाओं के रूप में सिफारिशें देता था। ये सिफारिशें संघ कार्यकारी पर बाध्यकारी नहीं थी। लेनि अक्सर संघ कार्यकारी इन सिफारिशें पर अमल करता था। नीति आयोग प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा स्थापित भारत सरकार का थिंक टैंक है। इसने योजना अयोग को प्रतिस्थापित किया हैं नीति आयोग बनाने का प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक नीति बनाने की प्रक्रिया में राज्य सरकारों की सहभागिता की बढ़ावा देना है। उसने योजना निर्माण के लिए ''उल्टी विनियोग विधि (bottom up approach) को अपनाया है अर्थात स्थानीय लोगों की आवश्यकतओं और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार योजनाऐं बनाई जाती ह।

## 1.7 शब्दावली (Key words) :-

1. गवर्निग परिषद (Governing council)
2. क्षेत्रीय परिषद (Regional council)
3. उल्टी विनियोग विधि (bottom up approach)
4. आदेशात्मक योजना (Imperative planning)

5. सांकेतिक योजना (Indicative planning)

6. विकेन्द्रीकृत योजना (Decentralized plannint)

7. एकल स्तरीय (single level)

8. बहुस्तरीय (Multi level)

9. तेज समावेशी (faster inclusive)

10. प्लान हालिडें (Plan Holiday)

## 1.8 सन्दर्भित ग्रन्थ सूची (Reference Book) :-

1. दत्त एवं सुन्दरम : भारतीय अर्थव्यवस्था

2. मिश्रा एवं पुरी : भारतीय अर्थव्यवस्था

3. बी0 के0 सिंह : भारतीय अर्थव्यवस्था

4. Economics : Cengage learning India Pvt Ltd.

5. Indian Economy : Drishti Publication Pvt Ltv New Delhi

## 1.9 प्रश्नों के उत्तर (Answer the Question)

1. योजना आयोग से क्या आशय है?

2. नीति आयोग से क्या आशय है?

3. योजना आयोग और नीति आयोग में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

4. पंचवर्षीय योजनाओं की व्याख्या कीजिए।

5. नीति आयोग की संरचना बताइए।

6. योजना के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

## 1.10 बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective type questions) :-

**1.** सरकार ने पांच साल की योजनाओं को किसके साथ प्रतिस्थापित किया है?

क. वार्षिक योजना　　ख. 100 वर्ष परिवर्तनकारी दस्तावेज

ग. 15 वर्ष का दूरदर्शिता दस्तावेज　　घ. 20 वर्ष का स्वर्णिम काल युग

(उत्तर ग)

**2.** नेहरू महालनोबिस की विकास की रणनीति ने भारत में किस पंचवर्षीय योजना की निर्देशित किया ?

क. पहली पंचवर्षीय योजना　　ख. चौथी पंचवर्षीय योजना

ग. दूसरी पंचवर्षीय योजना　　घ. पांचवी पंचवर्षीय योजना

(उत्तर ग)

**3.** नीति आयोग की किस वर्ष स्थापना हुई –

क. 01 जनवरी 2015　　ख. 01 फरवरी 2014

ग. 01 माच्र 2014　　घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर घ)

**खण्ड–5**

**इकाई–6**

# भारतीय बजटीय प्रक्रिया :

# Indian Budget Process

1.0 परिचय (Introduction ) :-

'बजट' शब्द का उद्‌गम फ्रान्सीसी शब्द 'Bougette' अर्थात् चमड़े के थैले से हुआ है। बजट में आय व व्यय के अनुमान लगाये जाते हैं। इसमें व्ययों को करने के लिए विभिन्न साधनों व पद्धतियों को प्रयोग किया जाता है। यह आय व व्यय का एक वार्षिक विवरण है। भारतीय संविधान के अनुसार यह वार्षिक लेखा लोकसभा व राज्यसभा के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। इस लेखे पर बहस के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है। पक्ष तथा विपक्ष के सभी सदस्य बहस में भाग लेते हैं। हमारे देश के बजट में गत वर्ष की वास्तविक राशि, चालू वर्ष की वास्तविक राशि, चालू वर्ष के संशोधित अनुमान तथा अगले वर्ष के अनुमान प्रस्तुत किये जाते हैं। वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है और 31 मार्च को प्रतिवर्ष समाप्त हो जाता है।

## 1.1 उद्‌देश्य (Object) :-

1. लेखा देयता
2. कार्यकलाप बजट पद्धति
3. राजकीय नीति का उपकरण
4. कार्यात्मक दृष्टिकोण
5. योजना से संबंधित

## 1.2 बजट की परिभाषा (Definition of Budget)

विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से बजट की परिभाषा की गयी है। मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:

1. किंग (King) के अनुसार, ''बजट एक प्रशुल्क योजना है, जिसके द्वारा व्यय को आय से सन्तुलित किया जाता है।''

2. शिराज (Shirras) के शब्दों में, ''बजट आय तथा व्यय का विवरण है। यह सरकार द्वारा अनुमानित व्यय को पूरा करने के लिए बनाया जाता है। इसमें सामान्यतया दो वित्तीय अवधियाँ होती हैं– समाप्त होने वाली अवधि तथा आगामी अवधि। संक्षेप में, बजट में पिछले वर्ष के आय–व्यय का अनुमान तथा घाटों को पूरा करने और बचत को वितरित करने के लिए प्रस्ताव होते हैं।''

3. टेलर (P.F. Taylor) के अनुसार, ''बजट सरकार की मास्टर वित्तीय योजना है।''

4. विलोबी (W.P. Willoughby) के अनुसार, ''बजट एक साथ एक रिपोर्ट, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा वित्तीय प्रशासन की सभी विधियों को सम्बन्धित किया जाता है, उनकी तुलना की जाती है और उनमें समन्वय स्थापित किया जाता है।''

5. शाही जन–प्रशासन संस्था के अनुसार, ''बजट का महत्व आर्थिक नियोजन के यन्त्र के रूप में बताया गया है। राष्ट्रीय विकास में सम्भाव्य विकास को निर्धारित करने के साधन के अतिरिक्त यह मुद्रा–प्रसार के भय तथा आर्थिक मन्दी के डर को दूर करने हेतु करों के निर्माण एवं शासकीय व्ययों को नियन्त्रित करने से सम्बन्धित है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से ज्ञात होता है कि बजट राष्ट्रीय आय–व्यय का वार्षिक लेखा–जोखा है, जिसमें व्यवस्थित रूप से हर पक्ष का उल्लेख होता है, जो एक नियोजित व वैज्ञानिक व्यवस्था है।

### 1.3 बजट का निर्माण (**Preparation of the Budget**)

भारत में बजट को कार्यकारिणी सभा द्वारा बनाया जाता है। बजट तैयार करने से पूर्व विभिन्न विभागों को एक नोट भेजा जाता है जिसमें विभागों के अध्यक्षों से यह अनुरोध किया जाता है कि वे अपने–अपने विभाग के आय तथा व्ययों के लेखों का अनुमान लगाकर

वित्त–मन्त्रालयच को भेजें। वित्त–मन्त्रालय अगस्त तक विभिन्न मन्त्रालयों को एक अनुमान फॉर्म भेज देता है। इस अनुमान फॉर्म को भरकर अन्य मन्त्रालय वित्त–मन्त्रालय के पास अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक भेज देते हैं। अनुमान फार्म को दो भागों में विभाजित किया जाता है–प्रथम भाग में वर्तमान आय तथा व्यय से सम्बन्धित अनुमान होते हैं, जबकि दूसरे भाग में आने वाले वर्ष के आय–व्यय सम्बन्धी अनुमान होते हैं। इस प्रकार प्रथम भाग का सम्बन्ध वर्तमान से होता है और दूसरे भाग का सम्बन्ध भविष्य से। पहले भाग में आय और व्यय अलग–अलग दिखाये जाते हैं, जिनके मुख्य शीर्षक निम्नवत् हैं :

(i) पिछले वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय,

(ii) चालू वर्श के आय तथा व्यय सम्बन्धी स्वीकृत अनुमान,

(iii) चालू वर्ष तथा पिछले वर्ष के वास्तविक आय–व्यय सम्बन्धी आँकड़े,

(iv) भावी वर्ष के बजट अनुमान, तथा

(v) चालू वर्ष के दुहराये हुए आय–व्यय अनुमान।

**बजट के निर्माण में सावधानियाँ–** बजट बनाने से पूर्व निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

1. **बजट सन्तुलित होना चाहिए–** संकट–काल को छोड़कर सामान्य काल में बजट सन्तुलित होना चाहिए। लगातार बजट अथवा घाटे के बजटों का परिणाम अर्थव्यवस्था के लिए हितकर नहीं हो सकता है।

2. **बजट में सभी प्रकार की आय सम्मिलित करनी चाहिए–** बजट में सभी प्रकार की आय सम्मिलित होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पायेगा। यदि अलग–अलग विभाग अपना अलग–अलग बजट बनाने लगें तो इससे अपनी आपसी समन्वय नहीं रहेगा। बजट बहीखाते के आधार पर नहीं बनाया जाना चाहिए, बल्कि उसका आधार नकद होना चाहिए।

3. **अनुमान काल्पनिक नहीं होने चाहिए–** बजट बनाते समय आय–व्यय के जो अनुमान लगाये जाते हैं वे काल्पनिक न होकर वास्तविकता के आस–पास ही होने

चाहिए। यह कार्य कठिन तो है परन्तु असम्भव नहीं है। कर्मचारियों का हमेशा यही प्रयत्न रहता है कि वे अपने अनुमानों में आय की अपेक्षा व्यय के अनुमान अधिक लगाते हैं। बजट अनुमान पूर्व के होते हैं, इसलिए ये वास्तविकता से दूर हो सकते हैं। फिर भी, प्रयत्न करके इन्हें वास्तविक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

4. **समाप्ति के नियम का आधार–** बजट में जिस वर्ष के लिए जिस मद में जितनी राशि व्यय करने के लिए स्वीकृत की जाती है उस राशि को उसी वर्ष व्यय करना होता है। बची हुई राशि को दूसरे वर्ष व्यय करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जो राशि व्यय करने से बच जाती है उसे अगले वर्ष के लिए समाप्त समझा जाना चाहिए। यदि ऐसी व्यवस्था न की गयी तो बजटों में स्वीकृत राशि को प्रतिवर्ष व्यय नहीं किया जायेगा और वर्तमान व्यय को भविष्य के लिए टाल दिया जायेगा। इसलिए समाप्ति के नियम को आधार मानकर जिस वर्ष के लिए व्यय की राशि स्वीकृत होती है उस राशि को उस वर्ष व्यय किया जाना चाहिए। यही व्यवस्था उत्तम व्यवस्था है और भारत में इसी व्यवस्था को लागू किया गया है।

**बजट–निर्माण प्रक्रिया (Budgetary Procedure)–** बजट बनाने से पूर्व उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसके बाद बजट बनाने की प्रक्रिया शुरू करनी चाहिए। भारत के सन्दर्भ में बजट की प्रक्रिया को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :

1. **बजट की तैयारी (Preparation of the Budget)–** जैसा कि हमने ऊपर बताया है बजट की शुरूआत अगस्त से हो जाती है। वित्त–मन्त्रालय विभिन्न मन्त्रालयों से अनुमानित आय–व्यय के लेखे माँगता है। विभिन्न विभाग अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक वित्त–मंत्रालयों को अपने–अपने अनुमानित लेखे भेज देते हैं। भारत में संघीय शासन–व्यवस्था होने के कारण राज्यों व केन्द्र के अलग–अलग बजट होते हैं। 1911 के बाद भारत में रेलवे बजट को अलग से प्रस्तुत किया जाने लगा है।

2. **बजट पेश करनस (Presentation of the Budget)–** बजट के बन जाने के बाद उसे राज्यसभा व लोकसभा के द्वारा पारित किया जाता है। जब तक बजट स्वीकृत नहीं हो जाता है तब तक वह प्रभावी नहीं माना जाता है। लोकसभा द्वारा बजट का पारित होना अनिवार्य है। संसद के सामने वित्त–मन्त्री के द्वारा बजट का लेखा प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वह अपना बजट–भाषण भी देता है, जिसमें पूरे वर्ष की आर्थिक नीति की समीक्षा होती है। बजट–भाषण में नये करों व नये व्ययों का विवरण दिया जाता है, और ऐसा करने का

2. **बजट पेश करना (Presentation of the Budget)–** बजट के बन जाने के बाद उसे राज्यसभा व लोकसभा के द्वारा पारित किया जाता है। जब तक बजट स्वीकृत नहीं हो जाता है तब तक वह प्रभावी नहीं माना जाता है। लोकसभा द्वारा बजट का पारित होना अनिवार्य है। संसद के सामने वित्त–मन्त्री के द्वारा बजट का लेखा प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वह अपना बजट–भाषण भी देता है, जिसमें पूरे वर्ष की आर्थिक नीति की समीक्षा होती है। बजट–भाषण में नये करों व नये व्ययों का विवरण दिया जाता है, और ऐसा करने का उद्देश्य भी स्पष्ट किया जाता है। बजट घाटे और बचत के हो सकते हैं अतः वित्त–मन्त्री को इस बात पर प्रकाश डालना होता है कि उसने ऐसा बजट क्यों बनाया, इस प्रकार के बजट की क्या आवश्यकता पड़ गयी और इससे सामान्य जनता को क्या लाभ होने वाला है, आदि। इन सभी बातों का स्पष्टीकरण बजट–भाषण में दिया जाता है। वित्त–मन्त्री द्वारा सदन में जो भाषण सुनाया जाता है, उसकी छपी हुई एक–एक प्रति सदस्यों में वितरित की जाती है।

3. **सामान्य बहस (General Discussion)–** जब वित्त–मन्त्री अपना पूरा भाषण पढ़ देते हैं तब उस भाषण पर बहस के लिए अलग से दिन निश्चित कर दिया जाता है। बजट पर बहस का दिन निश्चित कर लेने के बाद फिर उस पर पक्ष–विपक्ष के सदस्यों के द्वारा सामान्य रूप से चर्चा की जाती है। सदस्य बजट के अनुमानों व उसकी मदों की आलोचना कर सकते हैं, या उसकी सराहना भी कर

सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि करारोपण की दर बढ़ायी गयी है या कोई नया कर लगा दिया गया है या आय–कर में राहत न दी गयी, तो ऐसी दशा में कुछ सदस्यों को यह कहते हुए सुना जा सकता है कि बजट ने सामान्य व्यक्तियों की कमर तोड़ दी है। और कुछ सदस्य यह भी कह सकते हैं कि बजट ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास का द्योतक है। जो भी हो, बजट पर तीन–चार दिन तक खुलकर वाद–विवाद होता रहता है। अन्त में, वित्त–मन्त्री सदस्यों की शंकाओं का समाधान करता है।

4. **मतदान (Voting)–** बजट पर सामान्य बहस हो जाने के बाद विभिन्न विभागों के मन्त्री अपने–अपने विभागों के लिए अनुदानों की माँग करते हैं और इन पर अलग–अलग बहस होती है। व्यय की कुछ मदें ऐसी होती हैं जिनके लिए संचित कोष से प्रत्यक्ष माँग की जाती है। इन मदों पर सदस्यों को मतदान करने का अधिकार नहीं होता है, परन्तु इन मदों पर चर्चा हो सकती है। इस चर्चा का लाभ यह होता है कि सरकार को यह पता लग जाता है कि बजट के प्रति सदस्यों की क्या धारणा है। नियम बनाने वाली सभा के सदस्यों को सरकार के प्रत्येक खर्चे पर अपनी राय प्रकट करने का अधिकार नहीं है। हमारे देश के संविधान की धारा 115 में ऐसी मदों की गणना की गयी है, जो निम्नलिखित हैं :

(i) राष्ट्रपति का वेतन तथा उस पर होने वाले अन्य खर्चे;

(ii) विधानसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का वेतन तथा लोकसभ के प्रवक्ता व उप–प्रवक्ता के वेतन व भत्ते;

(iii) ऋण सम्बन्धी मूलधन तथा ब्याज का भुगतान;

(iv) ऋण लेने तथा उसका हिसाब लेने पर होने वाले खर्चे;

(v) सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्राप्त होने वाले वेतन, भत्ते तथा पेन्शन;

(vi) सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था का व्यय तथा उसके कर्मचारियों के वेतन, भत्ते तथा पेन्शन;

(vii) कन्ट्रोलर तथा ऑडीटर–जनरल के भत्ते तथा पेन्शन और उसके कार्यालयों के शासन सम्बन्धी व्यय तथा कार्यालयों में काम करने वाले कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और पेन्शन; तथा

(viii) कोई भी अन्य व्यय जिसे विधान तथा राष्ट्रपति ने इस श्रेणी में रख दिया हो।

प्रत्येक विभाग का मन्त्री अपने विभाग के लिए माँग प्रस्तुत करता है और अपने भाषण में उस माँग के औचित्य को स्पष्ट करता है। जिन सदस्यों को बहस में रुचि होती है वे उसमें भाग ले सकते हैं। जिस दिन जिस मद पर बहस पूरी नहीं होती है उसे दूसरे दिन के लिए छोड़ दिया जाता है। कभी–कभी अनुदानों की माँग में कटौती लाने का प्रस्ताव भी पेश किया जाता है। कटौती का उद्देश्य मितव्ययिता होता है। इस स्थिति को वित्त–मंत्री के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। वह यह बताता है कि अमुक–अमुक मद में अमुक–अमुक कारणों से कटौती नहीं हो सकती है, या हो भी सकती है। यदि वित्त–मन्त्री के स्पष्टीकरण से सदस्य सन्तुष्ट न हों तो वे उस पर मतदान करा सकते हैं। यदि कटौती का प्रस्ताव पारित हो जाता है तो इसका अभिप्राय सरकार के प्रति अविश्वास का मत हो सकता है। परन्तु ऐसी दशा में सरकार अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य नहीं है। यदि कटौतियों के सम्बन्ध में वित्त–मन्त्री का स्पष्टीकरण सदस्यों को सन्तुष्ट कर देता है तो वे कटौती का प्रस्ताव वापस ले लेते हैं और मतदान नहीं होता है।

जब माँगों पर वोटिंग समाप्त हो जाती है तब केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपाल की स्वीकृति ली जाती है। इन लोगों को यह भी अधिकार होता है कि जिन व्ययों की मदों को संसद व विधानसभा ने स्वीकार नहीं किया है उनके लिए वे स्वीकृति दे सकते हैं। यदि वे चाहें तो बजट को पुनः विचार के लिए संसद व विधानसभा को लौटा भी सकते हैं।

6. **विनियोग विधेयक (The Appropiration Bill)–** बजट की माँगों पर बहस के बाद एक विनियोग विधेयक रखा जाता है, जिसमें करों के लगने के सब

प्रस्ताव होते हैं। यह प्रक्रिया साधारण विधेयक की ही भाँति होती है। नये कर लगाने तथा वर्तमान करों की दरों में वृद्धि करने के प्रस्तावों पर लोकसभा में बहस होती है। हमारे देश में केन्द्रीय सरकार कर सम्बन्धी प्रत्येक प्रस्ताव को एक वित्त–विधेयक के द्वारा पेश करती है, जिसमें उन सब परिवर्तनों को स्पष्ट कर दिया जाता है जो करारोपण के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार के बिलों को नये वित्त वर्ष से पूर्व ही पारित कर लिया जाता है। पुराने करों को कम करने तथा नये करों को लगाने के सन्दर्भ में जो भी संशोधन करना होता है उस संशोधन की रूपरेखा सरकार के सामने विरोधी दलों के द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार के संशोधनों को यदि सरकार उचित समझती है तो स्वीकार कर लेती है। जब लोकसभा में वित्त–विधेयक पारित हो जाता है तब उसे स्वीकृति के लिए राज्यसभा में भेज दिया जाता है। हमारे देश में इस सम्बन्ध में दो प्रकार के बिल प्रस्तुत किये जाते हैं–एक वित्त–बिल और दूसरा प्राव्यिक बिल। पहले बिल मेतं कर व व्यय के अतिरिक्त अन्य बातों का समावेश होता है, जबकि दूसरे प्राव्यिक बिल में केवल कर व व्यय–सम्बन्धी प्रस्ताव ही शामिल होते हैं। इन बिलों में भेद केवल स्पीकर ही करता है। वित्त–बिल बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के प्रस्तुत नहीं किया जाता है, जबकि प्राव्यिक बिल के लिए मात्र स्पीकर का ही प्रमाण–पत्र काफी होता है। ये दोनों बिल लोकसभा में पेश किये जाते हैं और उसके बाद राज्यसभा में स्वीकृति के लिए भेजे जाते हैं। यदि राज्यसभा इन बिलों में कोई संशोधन करती है तो ऐसी दशा में फिर से ये बिल पुनः विचार के लिए लोकसभा में आ जाते हैं। जब कभी दोनों सदनों में इन बिलों के बारे में मतभेद पैदा होता है तब दोनों सदनों के सदस्यों की एक संयुक्त सभा बुला ली जाती है। इस सभा के बहुत से इस बिल को पारित कर लिया जाता है।

### 1.4 सारांश (Summary) :-

भारत में बजट के आंकड़ो, नीतियों और प्रस्तावों को अंतिम क्षण तक पूर्ण रूप से गोपनीय रखने को प्रथा है जबकि यह विषय विवादित है। गोपनीयता के विपक्ष में काफी सक्षम तर्क प्रस्तुत किए जा सकते है। बजट वह है जो समाज और

अर्थव्यवस्था द्वारा चयन्ति उद्देश्यो की प्राप्ति में सहायक हो। भारत सरकार की प्राप्तियां जो अपने स्वामित्व हे। भारत की समेकिन विधि में रखा जाता है। विधि से देयताएं भारत सरकार का लोक ऋण कहलाती है। वित्तीय प्राप्तियां भारत के लोक खाते में रखी जाती है और खाते से देय ऋण को अन्य देनदारियां कहा जाता है। भारत सरकार की आकस्मिकता निधि अनापेक्षित व्यय की पूर्ति के वित्त पोषण के लिए है। प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था वाले देशों में बनाने बजट वनाने की समान विधि प्रयोग में लायी जाती है। बजट की प्रक्रिया के चरण है, जैसे–बजट की तैयारी, बजट प्रस्तुतीकरण सामान्य बहस, मतदान, विनियोजक विधेयक, वित्त विधेयक बजट निष्पादन लेखा अनुदान है।

## 1.5 शब्दावली (Key words) :-

1. बजट की तैयारी (preparation of budget)
2. बजट की प्रस्तुतिकरण (presentation of the budget)
3. सामान्य बहस (General disucusion)
4. मतदान (voting)
5. मतदान आयोग्य (Not voting items)
6. कटौती प्रस्ताव (Cut motion)
7. पूरक बजट (Supplementary budget)
8. सांकेतिक मांगे (Token grants)
9. विनियोजक विधेयक (Appropriaton bill)
10. बजट का निष्पादन (Execution of the Budget)

## 1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Book)

1. लोकवित्त, एच0 एल0 भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि0 नोयडा, उ0प्र0 वर्ष–2019
2. राजस्व, डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 प्रेममोहन श्रीवास्तव, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा , वर्ष 2002–03
3. लोक अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवल आगरा वर्ष – 2014
4. अर्थशास्त्र, डॉ0 जे0सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0सी0 जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा वर्ष – 2002
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह, मैक ग्रा हिल (प्रा0) लि0 चेन्नई वर्ष 2021

### 1.7 प्रश्नों के उत्तर दीजिए (Answer the question) :-

1. बजट की अवधारणा को समझाइये।
2. बजट की प्रक्रिया की विवेचना कीजिए।
3. बजट के महत्व की विवेचना कीजिए।
4. बजट के कार्यान्वयन पर किस प्रकार नियन्त्रण रखा जा सकता है।?
5. निष्पादन बजट की व्याख्या कीजिए।
6. बजट के विभिनन रूपो की व्याख्या कीजिए।

### 1.8 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर (Objective type question) :-

1. एक अच्छा बजट बनाया जाता है–

   क. लेखा रूप में  ख. विवरण रूप में

   ग. खाते के रूपम`  घ. रोकड. के रूप में

   (उत्तर ख)

2. बजट देश की आर्थिक स्थिति का होता है–

   क. दर्पण  ख.. प्रतिबिम्ब  ग. प्रतिलिपि  घ. आकार

(उत्तर क)

3. बजट पर सामानय बहस चलती हैः

क. दो दिन ख. चार दिन ग. तीन दिन घ. पांच दिन

(उत्तर ग)

4. सरकारी बजट हैः लोक अर्थवयवस्था का :

क. आखिरी बिन्दु ख. केन्द्र बिन्द ग. मध्य बिन्दु

घ. इनमें से कोई नहीं

(उत्तर ख)